रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', एम्० ए०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

वक्तव्य

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ।
धनुर्द्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ।।[1]

'रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना'—हिन्दी में अपने विषय का सर्वथा नवीन एवं अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। ग्रन्थकार स्वयं इस उपासना-पद्धति के भावुक साधक हैं। आपकी भूमिका से पाठकों को मालूम होगा कि इसके निर्माण में आपको कितना अध्यवसायशील होकर परिश्रम करना पड़ा है। ग्रन्थानुशीलन से यह भी विदित होगा कि आपको अपने अधिकृत विषय के विवेचन एवं प्रतिपादन में कहाँ तक सफलता मिल सकी है। हमारा अनुमान है कि आपके स्वाध्याय की गहनता और आपकी मननशीलता एवं रसानुभूति की गम्भीरता इसके अनेक स्थलों के निरीक्षण से प्रकट होगी।

कृष्णभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रन्थ से यह ज्ञात हो जायगा कि रामभक्ति-साहित्य में भी मधुर उपासना का टोटा नहीं है।

हमारे ईश्वरावतारों में राम और कृष्ण ही सबसे सुन्दर हैं। मधुर-उपासना इन्हीं दोनों अवतारों की होती है। पर दोनों की सुन्दरता में कुछ अन्तर है। राम की सुन्दरता पर सौम्य शील का आवरण है। कृष्ण की सुन्दरता में लीला-विलास का बाँकपन है। राम लोकाभिराम हैं—कृष्ण लोक-ललाम। राम की मुखाम्बुजश्री में जो प्रसन्नता की कान्ति है, वह शीतल है। कृष्ण के मनमोहन मुखड़े पर जो आनन्दोल्लास की कमनीय किरणें किलोलती हैं, वे दीप्तिमन्त हैं। राम केवल अधरों और नेत्रों में ही हँसते हैं, कृष्ण अधरों और आँखों के अतिरिक्त भौहों में भी हँसते हैं, बल्कि उनका अंग-अंग रोम-रोम हँसता रहता है। इसीलिए, उपासक भक्त की मधुर भावना को जितना कृष्ण उकसाते हैं उतना राम नहीं; क्योंकि राम के रमणीय रूप में जो सुहावना भोलापन है उसमें भक्त की मधुर भावना को छेड़ने की शोखी नहीं है; किन्तु कृष्ण की चञ्चल-चटुल और मञ्जुल-मृदुल मूर्त्ति तो उपासक की मधुर भावना को बरबस गलबहियाँ में समेट ले जाती है। अरे, आकर्षण तो भोलापन और बाँकपन दोनों में है, जिसका रहस्योद्घाटन करके यह ग्रन्थ राम-भक्तों की मधुर उपासना को प्रोत्साहन देगा।

---

१. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६

घनश्याम राम श्यामसुन्दर हैं। रसराज शृंगार भी श्यामसुन्दर हैं। दोनों का वर्ण समान है। आदिरस के अधिष्ठाता देवता भी रमा-रमण राम हैं। अतः शृंगार के आधार राम की भक्ति में मधुर उपासना की सार्थकता समीचीन है। यह समीचीनता इस ग्रन्थ से समर्थित है।

प्रियदर्शन राम, अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ, मधुर भाव के उपासकों के प्राणाधार हैं। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' अभिन्न दोनों की छवि-छटा में जो सुषमा-सुधा-माधुरी है, वही भक्तों की मधुर उपासना के लिए सञ्जीवनी है। इस ग्रन्थ का यही शुभ सन्देश है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र शील-शक्ति-सौन्दर्य-निधान हैं। यद्यपि उनके शील से भक्तों ने काफी लाभ उठाया है तथापि उसके कारण उनकी ओर भक्त उतनी मात्रा में आकृष्ट नहीं हुए हैं, जितनी मात्रा में उनके अविरल सौन्दर्य के कारण। उनकी शक्ति के प्रताप से भक्तों को निर्भयता तो प्राप्त हुई है, पर उसके कारण उनमें भक्तों की आसक्ति-अनुरक्ति नहीं हुई है। भक्तों के मन में मधुर भाव की उपासना का स्रोत बहानेवाला उनका अलौकिक सौन्दर्य ही है।

केवल शील और शक्ति के लिए मधुर भाव की उपासना हो भी नहीं सकती। मधुर भाव की उपासना तो केवल अनुपम सौन्दर्य के निमित्त ही सम्भव है। राम यदि रूपवान न होकर केवल शीलवान और शक्तिमान ही होते, तो अपने दर्शन मात्र से भक्तों को कदापि मुग्ध न कर सकते। शील और शक्ति तो सौन्दर्य के ही शोभावर्द्धक हैं।

सौन्दर्य के अतिरिक्त उपास्य के अन्यान्य गुण उपासक के लिए चित्ताकर्षक भले ही बन जायँ, चितचोर नहीं बन सकते। चितचोर तो केवल अनवद्य सौन्दर्य ही हो सकता है। वास्तव में चितचोर सौन्दर्य ही दूसरों से अपनी उपासना करा सकता है। वह भी मधुर भाव की उपासना तो एकमात्र सर्वाङ्गसुन्दर की ही हो सकती है। इसीलिए, भगवदैश्वर्य में भी सौन्दर्य ही सर्वोपरि है।

भक्तजन प्रायः कहा भी करते हैं—किशोर राम का चितचोर रूप जनकपुर की युवतियों के नयन-मन में घर कर गया था, इसीलिए वे व्रजमण्डल की गोपियाँ होकर अवतरीं और उनका मनोरथ सफल करने के लिए राम स्वयं ही गोपिकावल्लभ कृष्ण हुए। यह रहस्य तो तत्त्वज्ञ ही जानें; पर इसमें रञ्चमात्र सन्देह नहीं कि राम के अनिन्द्य-अमन्द रूप ने जड़-चेतन पर जादू डालने में विस्मयविवर्धक सफलता पाई। जहाँ कहीं राम गये, चराचर पर मोहिनी डाल दी।

जनकपुर में तो राम सर्वालङ्कारभूषित दुल्लह बने थे। अतः वहाँ राजर्षि जनक-जैसे विदेह योगी का भी मन मुट्ठी में कर लिया था, फिर औरों की तो बात ही क्या। उसके बाद तो जंगल के रास्ते में ग्रामीण नर-नारियों पर, तपोवनों में ऋषि-मुनियों पर, चित्रकूट में कोल-भिल्लों पर, रणभूमि में शत्रु राक्षसों पर; यहाँ तक कि जंगली और समुद्री जन्तुओं पर भी राम के रुचिर रूप का जादू चल गया। उनके 'निज इच्छा निर्मित तनु' में कैसा अद्भुत सौन्दर्य भरा था, यह सीता-सखी की उक्ति से ही ज्ञातव्य है—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'[1] ऐसे अनिर्वचनीय दिव्य

१. प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना, कहि नहिं सकहिं तिनहिं नहिं बयना। –(तुलसी)

रूप का रस पीने के लिए निर्विकार दृष्टि चाहिए। वैसी निष्कलंक दृष्टि भक्तों अथवा सन्तों की ही हो सकती है। इस ग्रन्थ में उस कोटि के सन्त भक्तों की उपासना-प्रणाली का वर्णन अतिशय हृदयग्राहिणी शैली में किया गया है। जहाँ-कहीं उपासना-परक ग्रन्थों की चर्चा है, वहाँ ऐसा अनुभव होता है कि मधुर भाव का असली भक्ति-साहित्य जब प्रकाशित हो जायगा, तब भगवान् राम का सौन्दर्य-माधुर्य उन मर्यादादर्शवादी भक्तों को भी लुभावेगा, जो 'जटिलस्तपस्वी' रणरंगधीर महारथी राम के उपासक हैं।

ग्रन्थकर्त्ता इस समय बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग में उपनिर्देशक हैं। आप इस परिषद् के और हिन्दू विश्वविद्यालय-कोर्ट के भी सदस्य हैं। पहले आप औरंगाबाद (गया) के सच्चिदानन्दसिंह-डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल थे। उससे भी पहले आप प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक 'चाँद' और साप्ताहिक 'भविष्य' तथा काशी के साप्ताहिक 'सनातनधर्म' के प्रधान सम्पादक रह चुके थे। आप दस वर्षों (सन् १९३२-४२ ई०) तक गीता प्रेस (गोरखपुर) के हिन्दी मासिक 'कल्याण' और अँगरेजी-मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' के संयुक्त सम्पादक रह चुके हैं। आप शाहाबाद जिले के निवासी हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी) से आपने सन् १९३० ई० में हिन्दी और अँगरेजी में एम्० ए० पास किया। हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य को आपकी देन उल्लेखनीय है। भक्ति-साहित्य की रचना में ही आपकी विशेष अभिरुचि एवं प्रवृत्ति है। आपकी प्रकाशित पुस्तकों से आपकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है—'मीरा की प्रेम-साधना', 'धूपदीप', 'सन्त-साहित्य', 'मेरे जीवन-मरण के साथी'। प्रथम और अन्तिम पुस्तक में सहृदय लेखक के जो मनोभाव व्यक्त हुए हैं, उनका विकसित रूप इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से विशेषतः साहित्यिक शोध के योग्य ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। आशा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से शोधकर्त्ता सज्जनों को इस दिशा में अग्रसर होने की पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी।

चैत्र पूर्णिमा, शकाब्द १८७९
विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

शिवपूजन सहाय
(सञ्चालक)

निवेदन

भगवान् की कृपा और सन्त-महात्माओं के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हुआ और इसे आज पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे अपूर्व प्रसाद की अनुभूति हो रही है। अवश्य ही इस ग्रन्थ में सन्त-महात्माओं का अनुभव है और मैंने यथासम्भव उसे एक ढंग से सजाकर प्रस्तुत कर दिया है। सन्त तुकाराम के शब्दों में मैं कह सकता हूँ—"सन्तों की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बाणी। जा ̣उसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी।"

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना-सम्बन्धी जो कुछ भी काव्य है, वह अब तक प्रायः उपेक्षित रहा है। इसके कई कारण हो सकते हैं। परन्तु, मेरी दृष्टि में इसका मुख्य कारण यह है कि रामभक्ति-साहित्य की धारा मर्यादावादिनी रही है और इसलिए प्रायः ऐसा मान लिया जाता रहा है कि उसमें शृंगारोपासना के विकास के लिए कम अवकाश है या है ही नहीं। विद्वानों ने इस रसिकोपासना के साहित्य को बड़ी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इस साहित्य के सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने अपने इतिहास में जो कुछ लिख दिया, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। आचार्य शुक्लजी स्वयं विशुद्ध मर्यादावादी थे। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामभक्ति के रसिकोपासना-सम्बन्धी साहित्य को देखने का अवसर न पा सके। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड में आये हुए कुछ शृंगारिक पदों में शुक्ल जी ने सूरदासजी की शृंगारिक रचना का अनुकरण माना और इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष के इस सुविकसित साहित्य के सम्बन्ध में अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया। इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नहीं देता। भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित को और उनकी दिव्य लीलाओं को एक सीमा में बाँधना उचित नहीं प्रतीत होता। निश्चय ही यदि शुक्ल जी यह सारा साहित्य देखने का अवसर पा सके होते, तो इसके सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें सम्भवतः बदलना पड़ता।

स्वामी मधुराचार्य से लेकर श्री रूपकला जी तक अनेक सन्त-महात्माओं और अनुभवी साधकों ने रसिकोपासना में अपने अनुभव को बड़ी ही भव्य सुन्दर शैली में व्यक्त किया है और हजारों ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें यह उपासना-साहित्य विद्यमान है और जिसका अध्येता कभी घाटे में नहीं रहेगा। साहित्य के अध्ययन के लिए अपनी मान्यताओं और निजी राग-द्वेष से मुक्त हो जाना अनिवार्यतः आवश्यक है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए तो तटस्थता और राग-

द्वेषशून्यता एक अत्यन्त आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। अपनी निजी मान्यताओं की दृष्टि से देखने पर साहित्य का स्वस्थ और स्वच्छ रूप हमारे सामने नहीं आ सकता। अस्तु;

लगभग बीस-बाईस वर्ष पूर्व मुझे एक हस्तलिखित पोथी अपने प्रिय सुहृद् डा० राजबली पाण्डेय (प्रिन्सिपल, कालेज ऑव इण्डालॉजी, काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय) से मिली, जिसका नाम है 'भक्तिरसामृतार्णव'। वह पत्राकार लगभग छः सौ पृष्ठों में है और जो १७ वीं शती के अन्तिम भाग में लिखी गई है। उसमें रामभक्ति और कृष्णभक्ति की अष्टयाम-उपासना पर अलग-अलग पदों का संकलन किसी भक्त ने किया है, जिसने अपना नाम देना उचित नहीं समझा। इस पोथी को लिपि की कठिनाई से पढ़े जाने में लगभग छः महीने लगे। परन्तु, यह परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। क्योंकि, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आई कि कृष्णभक्ति की तरह रामभक्ति की भी अष्टयाम-उपासना का एक सुव्यवस्थित रूप रखा जा सकता है। परन्तु, काल-प्रवाह में वह विचार जैसे खो-सा गया और इस सम्बन्ध में कुछ आगे करने की रुचि न रही। परन्तु, भक्तिरसामृतार्णव मेरे पीछे पड़ी रही। मैंने उसका साथ छोड़ दिया, परन्तु वह मेरे साथ लगी रही। और जहाँ भी जाता था, मेरी पेटी में मेरे साथ-साथ घूमती रही।

लगभग चार वर्ष पूर्व काशी में स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ जी कविराज के दर्शनों के लिए गया। पूज्य श्री कविराज जी महोदय से कुछ लिखने का आदेश माँगा, परन्तु क्या विषय हो, इसका निर्णय न हो सका। बात वहीं समाप्त हो गई होती, यदि उसी दिन मेरे बाल्यबन्धु और हिन्दी-साहित्य के गौरवस्तम्भ पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के दर्शन न हुए होते। आचार्य द्विवेदीजी ने यह राय दी कि रामभक्ति साहित्य की मधुर उपासना पर अभी तक ठीक से विचार नहीं किया गया है और यह साहित्य बहुत कुछ तिरस्कृत और उपेक्षित पड़ा है। इसीलिए, इसी पर कुछ लिखा जाना चाहिए। हम दोनों महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज जी के यहाँ गये। उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान कर दी।

आरम्भ में तो इस कार्य को बहुत सुगम और सरल समझा था, पर जैसे-जैसे मैं गहराई में उतरता गया, मेरी कठिनाइयाँ बढ़ती गईं। इसमें सन्देह नहीं कि श्री कविराज जी का वरद हस्त मेरे मस्तक पर था, और भाई हजारीप्रसाद जी का हाथ मेरी पीठ पर था। जहाँ कहीं भी भटक या भरम गया, वहीं उन दोनों की सहायता सदा मेरे साथ रही। यह निस्संकोच स्वीकार करना चाहिए कि जो कुछ विचार इस ग्रन्थ में किये गये हैं, उन पर यहाँ से वहाँ तक श्री कविराज जी की छाप है। उन्हीं से सुनी बातों का आधार लेकर यथाश्रुत और यथागृहीत मैंने अपने विचार प्रकट किये हैं। इस ग्रन्थ के प्रणयन में आदि से अन्त तक श्री कविराज जी और श्री द्विवेदीजी का हाथ रहा है। परन्तु, मेरा काम बहुत कठिन हो गया होता और शायद मैं इसे बीच में ही छोड़कर भाग गया होता, यदि श्री हनुमत्-निवास के महात्मा रामकिशोर शरण जी और श्री प्रमोद रहस्यवन (अयोध्या) के स्वामी परमानन्द जी का सहारा न मिला होता। इन दोनों कृपालु महात्माओं ने उन्मुक्त

रूप से इस कार्य में मेरी सहायता की। और, इनके यहाँ प्राचीन हस्तलिखित अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थों का जो संग्रह है, उसे देखने और नोट लेने की स्वतन्त्रता प्रदान कर मेरा अनन्त उपकार इन दोनों ने किया है। अयोध्या में मणिपर्वत पर श्री रामकुमार दास जी के पास ऐसे ग्रन्थों का एक ख़ासा अच्छा संग्रह है। उनके पुस्तकालय से भी मुझे लाभ हुआ। परन्तु, स्वामी परमानन्द जी और महात्मा रामकिशोरशरण जी की सहायता के बिना मेरा काम कभी पूरा नहीं हो पाता। आरम्भ में श्री रूपकलाकुञ्ज के श्री जनकदुलारीशरण जी ने भी इस कार्य में मेरी बड़ी सहायता की थी। मुझे दुःख है कि इस ग्रन्थ के पूरा होने के पहले ही उनका साकेतवास हो गया। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में गालवाश्रम (जयपुर), चित्रकूट, काशी, अयोध्या, जनकपुर (मिथिला) आदि कई स्थानों में भ्रमण करने का अवसर मिला। अनेक महात्माओं ने अनेक प्रकार से मेरी इसमें सहायता की। काशी के संकटमोचन के महात्मा इस रस के उपासक हैं। और, उनसे इस उपासना की परम्परा को प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिली। निश्चय ही सबके मूल में भगवान् की कृपा रही है जिसके कारण ही अत्यन्त गुप्त और दुर्लभ हस्तलिखित साहित्य के अवलोकन-अनुशीलन का अवसर मिला। श्रावणकुञ्ज (अयोध्या) से भुशुण्डी रामायण की मूल हस्तलिखित प्रति, जिसमें ६०००० अनुष्टुप् श्लोक के छन्द हैं, प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई हुई। उस समय यदि 'कल्याण'-सम्पादक स्वनामधन्य पूज्य श्री भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने मेरी सहायता नहीं की होती, तो इस ग्रन्थ के देखने से मैं वञ्चित रह जाता। अन्त में गीता प्रेस ने इस पूरी पोथी का फोटो-स्क्रिप्ट तैयार कर लिया और अब सम्भवतः वह अनमोल ग्रन्थ सबके लिए उपलभ्य हो सकेगा। सैकड़ों ऐसी पुस्तकें, जो सैकड़ों वर्षों से बेठन में बँधी चली आ रही हैं और जिनका एक मात्र उपयोग धूप, दीप और आरती दिखलाकर पूजन के सिवा और कुछ नहीं है मैंने देखीं, पढ़ीं और नोट लिये। पूजा की पुस्तकों से नोट लेना साधु-महात्माओं की दृष्टि में एक बड़ी अटपटी-सी बात थी। परन्तु, भगवान् की कृपा-शक्ति से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। अवश्य ही, चित्रकूट और अयोध्या में, गलतागद्दी (जयपुर) और जनकपुर में अभी ऐसे अनेक ग्रन्थ होंगे जो रसिकोपासना साहित्य के हृदयंगम के लिए अनिवार्यतः आवश्यक होंगे। जिज्ञासुओं को इनका पता लगाना चाहिए।

रामभक्ति के रसिकोपासना के संतों का एक विशेष अभिज्ञान यह है कि वे तिलक में श्री के नीचे बिन्दी लगाते हैं। प्रायः रामरज में रँगे वस्त्र धारण करते हैं, गले में नाना प्रकार के तुलसी के आभूषण पहनते हैं। हल्दी का तिलक लगाते हैं और मस्तक को श्री युगलनाम से अंकित करते हैं। लीला-विहार में मिथिला भाव, अवध भाव और चित्रकूट भाव मुख्य हैं और इसीके आधार पर 'स्वसुखी', 'तत्सुखी' और 'चित्सुखी' उपासना का क्रम चलता है। जैसे भक्तों ने भगवान् श्री-कृष्ण को मथुरा में पूर्ण, द्वारिका में पूर्णतर और वृन्दावन में पूर्णतम माना है उसी प्रकार यहाँ भी भगवान् राम को अवध में पूर्ण, मिथिला में पूर्णतर और चित्रकूट में पूर्णतम माना गया है।

रसिकोपासना के अधिकांश उपासक चित्रकूट भाव से अष्टयाम भजन करते हैं, जहाँ परकीया रति की पराकाष्ठा है अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि इस उपासना के साहित्य में कुछ अनधिकारियों द्वारा विकृति आई है, पर उससे विचक कर यदि हम आगे खड़े हुए और इसके स्वस्थ साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से वंचित रह गये तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा। प्रायः इसी कारण इस साहित्य के प्रति घोर अन्याय हुआ है। परन्तु देखता हूँ, अब इधर इस ओर विद्वानों का ध्यान जाने लगा है और इस साहित्य का अनुशीलन अपेक्षाकृत विशेष अभिरुचि और सहानुभूति के साथ होने लगा है। यह शुभ लक्षण है।

लगभग डेढ़ वर्ष सामग्री-संकलन करने में लग गये। जिसमें हजारों मील की यात्रा और हजारों रुपयों का व्यय हुआ। परन्तु, मैं हरि-कृपा से संकल्प बाँधे हुए था कि इस कार्य को पूरा करके ही दम लूँगा। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं और मेरी चाह को उन्होंने अपनी प्रीति से अभिसिंचित कर दिया। लगभग डेढ़ वर्ष तक काशी में रहकर, गंगाजल का सेवन कर, इस ग्रन्थ को मैंने पूरा किया। जैसे-जैसे अध्याय लिखकर टाइप होते गये, वैसे-वैसे श्री कविराज जी और श्री द्विवेदी जी को इसे दिखाता गया। दोनों महानुभावों ने बड़े स्नेह और सहानुभूति से इसमें मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रेस-कॉपी तैयार होने के पूर्व मैं इसे कुछ और अनुभवी सन्तों तथा रसिकोपासकों को दिखला लेना चाहता था। मेरे सामने स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज, श्री अखण्डानन्द जी महाराज और स्वामी श्री चक्रधर जी थे। पाण्डुलिपि की एक प्रति श्री कविराज जी के पास देखने को भेजी। स्वामी चक्रधर जी महाराज ने बड़े प्रेम से आरम्भ के दो अध्याय देखे और उनके आदेश के अनुसार उसमें आवश्यक संशोधन के साथ आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी किये। श्री कविराज जी तो आदि से अन्त तक सूत्रधार ही रहे। अत्यन्त समयाभाव होने पर भी भाई श्री द्विवेदीजी समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावों से मेरा पथ प्रकाशित करते रहे। इस तीन वर्ष की अवधि को जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूँ, तब पग-पग पर भगवान् की कृपा और सन्तों के आशीर्वाद के चमत्कारिक प्रभाव के दर्शन होते हैं। ऐसा लगता है कि प्रभु ने मुझ जैसे अपात्र और अज्ञ को निमित्त बनाकर अपना कार्य स्वयं अपने ही सम्पन्न किया।

इस ग्रन्थ को लेकर कई बातें मन की मन में ही रह गईं। मैं चाहता था कि इस सम्पूर्ण साहित्य का रस, छन्द, अलंकार आदि की दृष्टि से एक विधिवत् साहित्यिक मूल्यांकन किया जाता। मैंने यह भी सोचा था कि कृष्णभक्ति की मधुर उपासना के साथ-साथ सूफी मधुरोपासना और ईसाई मधुरोपासना की एक तुलनात्मक समीक्षा रामभक्ति की मधुर उपासना के साथ की जाय। मेरे मन में एक यह भी वासना थी कि इस सम्पूर्ण साहित्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। परन्तु, समय के संकोच से और जीवन की घोर कार्य-व्यस्तता के कारण ये अरमान मेरे मन में ही रह गये। भगवान् की इच्छा हुई, तो दूसरे संस्करण में इन प्रसंगों का सन्निवेश हो सकेगा। लगभग तीन वर्ष तक ग्रीष्मावकाश और पूजावकाश में, डा० बी० एल० आत्रेय (काशी) के 'आत्रेय-निवास'

में बिल्ववृक्ष के नीचे उस एकान्त कमरे में रहकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। डा० आत्रेय ने जिस स्नेह के साथ मुझे अपने सत्संग का लाभ दिया, वह आजीवन चिरस्मरणीय रहेगा। बन्धुवर डा० राजबली पाण्डेय और डा० रामअवध द्विवेदी ये दोनों ही मेरे सतीर्थ हैं और इन दोनों का स्नेह और सहयोग सदा मुझे प्राप्त रहा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया है, उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगा। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र और इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो सका, इसका सारा श्रेय परिषद् को है। गीता प्रेस (गोरखपुर) ने चित्र छापकर बहुत ही थोड़े समय में दे दिया, यह उसकी कृपा और मेरे प्रति अपनापन है।

इस ग्रन्थ को पूरा कर चुकने पर मुझे गंगा-स्नान का आनन्द मिला है। मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि 'कल्याण'-सम्पादक पूज्य भाई जी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार की दृष्टि से यह ग्रन्थ पूत हो चुका है और परमगुरुदेव ऋषिकल्प महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ कविराज जी ने इसका समर्पण स्वीकार किया है। मेरा इतना समय भगवान् की लीलाओं के रसास्वादन में, सन्तों के सत्संग में, और उनके अनुभवपूर्ण ग्रन्थों के अनुशीलन में बीता, इसे मैं अपना परम-सौभाग्य मानता हूँ। सन्त महात्माओं से मैं यह भीख माँगता हूँ कि भगवान् के चरणों में सदा मेरी प्रीति बढ़ती रहे।

रसिक सम्प्रदाय की उपासना तथा उसके साहित्य पर हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है। निश्चय ही, अनजान में इसमें अनेक भूलें रह गई होंगी। सन्त महात्माओं, विद्वान् समालोचकों तथा साहित्यिक बंधुओं से मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी भूलों को बतलाने की कृपा करें, ताकि मैं अगले संस्करण में उनका परिमार्जन कर सकूँ।

हरिः ओं तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु

सचिवालय
पटना, जानकी-नवमी
संवत् २०१४ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

विषय-विवरण

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णव-परम्परा

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्मसाधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्धसहजिया

चौथा अध्याय

सिद्धदेह और लीला-प्रवेश

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक-परम्परा

श्रीप्रेमलता जी की जीवनी में रसिक-परम्परा; रसिक-साधना का नाम; निजगुरु की परम्परा; ग्रियर्सन की सूची; तपसीजी की छावनी में हस्तलिखित ग्रंथ में प्राप्त परम्परा; 'रहस्य-मय' में प्राप्त रसिक-परम्परा; 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' में प्राप्त परंपरा; 'मंत्रराज-परंपरा' में प्राप्त परम्परा; मौलाना रशीद की तजकी रतुलफ़्क़्रा; श्रीसम्प्रदाय की दो शाखाएँ; 'महा रामायण' में प्राप्त परम्परा; श्री विश्वंभरोपनिषद् की टीका में प्राप्त परंपरा; श्री सीतोपनिषद् में प्राप्त परम्परा; श्री रामनवरत्न सार संग्रह में प्राप्त परम्परा; 'कल्याण कल्पद्रुम' में प्राप्त परम्परा; 'प्रपत्ति रहस्य' में प्राप्त परम्परा; श्रीरूपकला जी के 'भक्ति सुधास्वादतिलक' में प्राप्त परंपरा; जयपुर गालवाश्रम की परम्परा; मधुराचार्य; श्रीसुन्दरमणि सन्दर्भ; श्रीमधु-राचार्य जी की परम्परा; रसिक प्रकाश भक्तमाल; श्रीअग्रदास स्वामी; रसिक-सम्प्रदाय के मूल तत्त्व। (पृ० सं० ११६–१४०)

सातवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

उपनिषद्-ग्रन्थ संस्कृत में

रसिकोपासना का साहित्य उपेक्षित क्यों? श्रीरामतापनीयोपनिषद्; श्री विश्वम्भ-रोपनिषद्; श्रीसीतोपनिषद्; सीता का स्वरूप एवं प्रभाव; सीता की इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति; श्रीमैथिलीमहोपनिषद्; श्री रामरहस्योपनिषद्।

संहिता-ग्रन्थ—श्रीहनुमत्संहिता; श्रीशिवसंहिता; श्री लोमश संहिता; श्रीबृहद्ब्रह्म-संहिता; श्री अगस्त्य-संहिता; श्री वाल्मीकि-संहिता; श्रीशुक-संहिता; दिव्य-चित्रकूट; गोलोक अयोध्या का प्रतिबिम्ब; श्रीवसिष्ठ संहिता; दिव्य अयोध्या; दिव्य अयोध्या के बारह वन चार पर्वत; सदाशिव संहिता; सप्तावरण; श्रीमहाशंभु-संहिता; हिरण्यगर्भ-संहिता; महासदाशिव-संहिता; ब्रह्मसंहिता।

स्तवराज और गीति—श्रीरामस्तवराज; श्री जानकीस्तवराज; श्री जानकी गीत; श्रीसहस्रगीति।

रामायण—श्रीवाल्मीकीय रामायण; आनन्दरामायण; महारामायण; आदि रामायण; रामायण-मणिरत्न; मैन्द रामायण; मंजुलरामायण; भुशुंडी रामायण।

नाटक, उपाख्यान, लीला-चरितकाव्य—महानाटक अथवा हनुमन्नाटक; प्रसन्नराघवम्; मैथिली-कल्याण; उदार राघव; जानकी हरण; सत्योपाख्यान; बृहत् कौशल-खण्ड; माधुर्य केलिकादम्बिनी; राम लिंगामृत।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ—श्रीसुंदरमणि संदर्भ; श्रीरामतत्त्व प्रकाश; श्री राम-नवरत्नसार संग्रह; श्रीसीतारामनाम प्रताप-प्रकाश; श्रीरामतत्त्वभास्कर; उपासनात्रय सिद्धान्त; श्रीरामपटल; शृंगारिक खण्ड काव्य; मेघदूत-काव्य के अनुकरण पर लिखित छह दूतकाव्य—हंस-संदेश अथवा हंसदूत, भ्रमरदूत, भ्रमर संदेश, कपिदूत, कोकिलसंदेश और चन्द्रदूत; गीत-गोविन्द के अनुकरण पर लिखित रामसीता संबंधी-काव्य—रामगीतगोविन्द, गीताराघव, जानकी गीता, रामविलास, संगीत रघुनन्दन १८ वीं शताब्दी, राघवविलास, रामशतक, समार्या-शतक, आर्यारामायण। (पृ० सं० १४१–१८६)

आठवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

(हिन्दी में)

अष्टयाम; श्रीअदग्रस्वामीकृत 'भगवान् राम के सखा और सखी'—ध्यान, सखियों की सेवा का वर्णन, सोलह शृंगार; ध्यान मंजरी—(श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी)—श्रीरामका ध्यान, श्रीसीताजी का ध्यान, पार्षदों का ध्यान; रामाष्टयाम (श्रीनाभादासजी)—द्वादश-वन-वर्णन, महल की शोभा, अन्तःपुर का वर्णन, अन्तःपुरमें सखियों की सेवा, भोजन के समय नृत्य संगीत, शयन; नेह प्रकाश (महात्मा बाल अली जी)—सखियन की नामावली और सेवा, सखी और दासी में भेद, श्रीरामजी के वचन सीताजी के प्रति, रस-विलास, प्रेम-विलास, रूप-विलास, सखियों के वचन जानकी के प्रति, सखी-वचन राम के प्रति, सीता की छवि, प्रभाव-वर्णन; ध्यान मंजरी (बाल अलीजी); लगन पचीसी (श्रीकृपानिवासजी); अनन्य चिंता-मणि (श्रीकृपा निवासजी); रामरसामृत सिन्धु; रासपद्धति (महाराज कृपा निवासजी); भावनापचीसी (कृपानिवासजी)—श्री जानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा, श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा; पदावली (श्रीकृपानिवास); श्रीस्वामी जनकराज किशोरी शरण 'श्री रसिक अली'—लिखित—सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्तानन्यतरंगिणी, अमररामायण (संस्कृत), रहस्य रत्नमाला, सिद्धान्त चौतीसी, होलिका-विनोद, कवितावली, श्रीजानकी करुणा भरण, अध्यायत्रयी, दोहावली; आन्दोलन रहस्य दीपिका (श्रीरसिकअली); पञ्चशतक (श्रीरामचरणदास 'करुणा सिंधु'), विवेकशतक—रामरसामृतखण्ड—शोभा-वर्णन; रसमालिका

(श्रीरामचरणदास जी)—सिद्धान्त, वन-विहार, वसन्त-विहार, सखियों का नृत्य, शृंगार, नृत्यविहार, जल-क्रीडा, हिंडोला; अष्टयाम पूजाविधि (श्रीरामचरण जी),—सखियों और सीता का शृंगार, श्रीरामजी का शृंगार, सखियों द्वारा सीता और राम का शृंगार; युगल प्रिया पदावली, शृंगार रहस्यदीपिका, अष्टयाम (श्री जीवाराम 'जुगलप्रिया' जी); उज्ज्वल उत्कण्ठा-विलास (श्रीयुगलानन्यशरण 'हेमलता' जी); अर्थपञ्चक (श्रीयुगलानन्यशरण जी); श्री-जानकी सनेहहुलास शतक (श्रीयुगलानन्यशरण जी); संतसुख प्रकाशिका पदावली (स्वामी युगलानन्य शरण जी); श्रीसीतारामनाम परत्व पदावली (स्वामी युगलानन्यशरण जी); श्रीप्रेमपरत्वप्रभा दोहावली (श्रीयुगलानन्यशरणजी); श्रीलवकुशशरण लीलाबिहारी जी—विरह-ज्वर, अष्टयाम-भावना, रूप-सुषमा; श्रीयुगलविनोद विलास—युगलविहार; उभय प्रबोधक रामायण (श्री बनादास); श्रीसीताराम झूलाविलास (श्रीरसरंगमणि जी); श्रीराम-नामयशविलास, श्रीरामरूपयश विलास; श्रीसरयू रसरंग-लहरी तथा अवधपञ्चक (श्रीरस-रंगमणि); श्रीसीताराम शोभावली प्रेमपदावली (श्रीसीताराम शरण रामरसरंग मणि)—अंग-प्रत्यंग-वर्णन; वसन-आभूषण वर्णन, ऋतुवर्णन आदि; श्रीरामशतवंदना (श्री सीताराम शरण रामरसरंगमणि); श्रीरामरसरंगविलास (श्रीरामरसरंगमणि);—श्रीराम का ध्यान वर्णन, श्रीसीताजी का ध्यान-वर्णन, श्रीसीताजी का प्रभाव-वर्णन, कनक भवन में प्रिया-प्रियतम की झाँकी; रामझाँकी विलास (श्रीरामरसरंगमणि); सियबरकेलि-पदावली (श्री ज्ञानाअली सहचरि जी);—आत्म-परिचय, राम-जन्म की बधाई, जानकी जन्म की बधाई, लगन; जानकी नौरत्न माणिक्य (रामसखेविरचित); रामसखेकृत पदावली; नृत्यराघव मिलन (श्रीराम सखेजी);—रसिक लक्षण, नर्म सखा; श्रीसीतायन (श्रीरामप्रियाशरण प्रेमकली), बाल-विहार, अयोध्यावर्णन, श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी के कुछ लीथो में छपे ग्रन्थ—श्रीजानकी मंगल, श्रीराममंगल; भूषण रहस्य, अश्विनीकुमार बिन्दु, हनुमत बिन्दु, श्यामलगन, श्यामसुधा, जानकी-बिंदु, कृष्णसहस्र परिचर्या, गयाबिन्दु, शिसा-व्याख्या (संस्कृत) सांख्यतरंग और वैराग्य प्रदीप; बृहद् उपासना रहस्य (श्रीप्रेमलता जी),—नाम प्रसंग, रूप प्रसंग, धाम प्रसंग, उपासक प्रसंग—युगलोपासक, उपासना, पञ्चसंस्कार प्रसंग, अष्टयाम-भावना प्रसंग, संबंध का महत्त्व, रासकुञ्ज, गुह्य; रघुराजविलास (श्रीरघुराज सिंहजी)—महाराज; भजनरत्नावली (श्रीरामनारायण-दास)—भजन राँनावली; सीता का रूप, राम का रूप; शृंगारप्रदीप (श्रीहरिहर प्रसाद); सियारामचरण चन्द्रिका (कविराज लछिमन); श्रीरामचन्द्र विलास (श्रीनवलसिंह 'श्री शरण' युगल अलि); भावनामृत कादम्बिनी (श्रीयुगलमञ्जरीजी), समय रस वर्द्धिनी (श्रीसिया अली); नित्य रासलीला (श्रीसियाअली); श्यामसखे की पदावली; श्रीसीताराम शृंगाररस (श्रीमहाराजदास जी)—दिव्य अयोध्या; श्रीरामप्रेमामंजरी—प्रेममंजरी विलास; युगलो-त्कंठ-प्रकाशिका (जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभलीला' जी) वैष्णवविनोद (श्री-

परिशिष्ट (क)

रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णवपरंपरा

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप में व्याप्त है। उसके दो रूप हैं––एक निर्गुण निराकार निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, सौन्दर्य, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणों का परम धाम स्वरूप। एक के ही ये सगुण स्वरूप अनेक हैं। उनके नित्य चिन्मय दिव्य धाम अनेक हैं, उनकी नित्य चिन्मय अगजगमोहिनी दिव्य लीला अनन्त है। उन दिव्य धामों में वही व्यापक निर्गुण ब्रह्म सगुण हो कर नाना रूपों में नित्य क्रीड़ा किया करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है वैसे ही सगुण स्वरूप भी सर्वगत है। सभी सगुण स्वरूप, उनकी सभी लीलाएं सदा सर्वत्र व्याप्त हैं। देश-काल की कल्पना वहां नहीं जाती।

वह पूर्ण वस्तु अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यमय है। कारण कि उपास्य में दो मुख्य गुण होते हैं-१––परत्व, २––सौलभ्य। परत्व है ऐश्वर्य और माधुर्य है सौलभ्य[1]। कहीं-कहीं ऐश्वर्य के तेज का विशेष प्रकाश है, कहीं-कहीं माधुर्य के सौन्दर्य की कमनीय कान्ति का। ऐश्वर्य में वे अपनी महामहिमा में विराजमान हैं और जीव अपनी लघुता में घिरा हुआ। वे विभु हैं, जीव अणु। परन्तु दोनों में संबंध है––स्वामी सेवक का। जीव का नित्य कैंकर्य, नित्य प्रपत्ति और अखण्ड शरणागति ही है इस सम्बन्ध का मूलाधार। इसमें वैधी भक्ति ही चलती है और वेदशास्त्रादि के निर्देश के आधार पर श्रवण कीर्तनादि से लेकर आत्मनिवेदन तक उसका क्रम-विकास होता है[2]। भाव के उदय होने तक यह 'विधि भक्ति' चलती है।

परन्तु भगवान् का माधुर्य जहां प्रधान है वहां 'रुचि भक्ति' अथवा रागमयी भक्ति का आविर्भाव होता है। रागमूला प्रवृत्ति के साधकों के लिए रागमयी भक्ति है और विधिमूला प्रवृत्ति के साधनों के लिए वैधी भक्ति है। वैधी में विधि निषेध का विशेष ध्यान और षोडशोपचार पूजा की बड़ी महिमा है। वैधी भक्ति का आचरण शास्त्र-निर्देश के अनुसार होता है। इसमें वैदिक क्रियाकलाप, वर्णाश्रमधर्म के नियमादि का पालन करते हुए प्रभु के प्रति कुछ भय, श्रद्धा तथा संभ्रम (Awe) का भाव-विशेष रहता है। यह ऐश्वर्य प्रधान भक्ति है। इसमें कर्म, धर्म पर

---

१ श्री मधुराचार्य का सुन्दरमणि संदर्भ पृ० ६।

२ श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

श्रीमद्भागवत ७. ५. २३।

विशेष आग्रह रखते हुए भजन की ओर भी मन रहता है। रागमयी भक्ति में विधि या विधान का सर्वथा परित्याग हो जाता है। ध्यान रहे रागभक्ति में विधि निषेध का परित्याग किया नहीं जाता; अपितु स्वतः सहज ही हो जाता है। यहां भक्त अपने आन्तरिक भाव से ही प्रेरित होकर भगवान के साथ अपने सम्बन्ध के अनुसार अपने प्राणसखा परम प्रियतम को लाड़ लड़ाता है— कभी उसका सखा होकर, कभी प्राणप्रिया प्रियतमा होकर। वस्तुतः यह रागमयी भक्ति हृदय की साधना है। यहां हृदय में ही हृदय के द्वारा हृदयेश्वर की रागमयी उपासना होती है। स्पष्ट शब्दों में यों कह सकते हैं कि भक्त के हृदय में भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय में भक्त के लिए जो स्वाभाविक गाढ़ तृष्णा होती है वही है रागमयी भक्ति।

समस्त वैष्णव साहित्य में इस रागमयी भक्ति का सविशेष महत्ववर्णित है, कहीं प्रच्छन्न गुह्य रूप में, कहीं प्रकट व्यक्त रूप में। इस रागमयी भक्ति को 'परम गोपनीय' रहस्य कहा गया है[1]। यह गोपनीय क्यों है इसे यहां थोड़े में समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

वह शाश्वत तत्व शक्ति एवं शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भिन्न और भिन्न होकर भी अभिन्न है। वस्तुतः वे अभिन्न ही है। क्रीड़ा के लिए उनका भेद है। इसी भेद से व्यापक निर्गुण तत्त्व में सत् चित् आनन्द का भाव है और सगुण के साथ वही शक्ति संधिनी,संवित् और ह्लादिनी शक्ति के त्रिविध रूप में उपस्थित होती है। सगुण रूप की भांति ही ये शक्तियां भी नित्य, परस्पर अभिन्न तथा शक्तिमान् से अभिन्न हैं। नित्य अभेद और नित्य भेद तथा अभेद में भेद और भेद में अभेद का यह शास्त्रीय ज्ञान ईश्वरीय वरदान है।अपौरुषेय रूप में ही यह मनुष्य को प्राप्त हुआ है।

सैकड़ों जन्मों के जब दान, पूजनादि शुभ कर्मों का जब पुण्य उदय होता है तब विशुद्धान्तः-करणवाले मनुष्य के हृदय में कृपापरवश प्रभु अपनी असीम करुणा में भक्ति का दान देते हैं। ध्यान रहे कि भक्ति में अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा उनकी करुणा ही मुख्य कारण है। इसमें वैधी भक्ति तो ज्ञान का साधन है परन्तु रागानुगा भक्ति का उदय ज्ञान तथा विज्ञान के अनन्तर होता है। रागानुगा भक्ति साधन नहीं अपितु साध्य है। इस महा आनन्दप्रदायिनी स्वरूपा भक्ति का विषयालम्बन हैं स्वयं आत्मास्वरूप भगवान्।

आत्यन्तिक स्नेह ही रागानुगा का स्वरूप है। निर्मल चित्त में पूर्ण वैराग्य का उदय होने पर तथा शुद्ध विज्ञान के अनन्तर रागानुगा भक्ति का आविर्भाव होता है। पाप रहित शुद्ध अन्तःकरण में भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सांसारिक सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थों का एवं निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पंचक' का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दों में अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति

---

१ गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा

—श्री हनुमत्संहिता ७. ५

राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्
प्रत्यक्षावगमं धर्म सुसुखं कर्तमव्ययम। गीता

का स्वतः अन्तःकरण में जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है। यह सर्वश्रेष्ठ अथच परम दुर्लभ है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार भेद से रागानुगा के पांच प्रकार हैं। भाव का जैसे-जैसे विकास एवं प्रगाढ़ता होती जाती है वैसे-वैसे शान्त दास्य में, दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य माधुर्य में परिणत होता जाता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि जैसे पृथ्वी जल अग्नि आदि पंच तत्त्वों के क्रम विकास में हम जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं पिछले वाला तत्व भी उसमें सन्निहित रहता है उसी प्रकार भावोंके विकास में जैसे जैसे हम आगे बढ़ते हैं पिछले वाले भाव या भावों का अंश भी सार रूप में बना रहता है—जैसे दास्य में दास्य है शान्त भी, वात्सल्य में वात्सल्य की मुख्यता है परन्तु है उसमें दास्य भाव भी इसी प्रकार शृंगार में दास्य,सख्य, भाव ही है, प्रधानता है माधुर्य की। रस के विशेषज्ञों ने रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए बतलाया है कि शान्त और दास्य की परस्पर मैत्री है और सख्य वात्सल्य की इनसे तटस्थता है तथा उज्ज्वल रस से शत्रुता है। सख्य और उज्ज्वल की परस्पर मैत्री है। उज्ज्वल का शान्त और वात्सल्य से शत्रुता है सख्य से तटस्थता है। वात्सल्य का उज्ज्वल तथा दास्य रस से शत्रुता है।

रागानुगा भक्ति के और भी तीन अवान्तर भेद हैं— प्रेमा, परा, प्रौढ़ा।

प्रेमा—श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का सम्यक् प्रकारेण, विधिपूर्वक, सन्त भक्त तथा सद्गुरु के शुभ सान्निध्य में रह कर सेवन करने से प्रभु के प्रति स्नेह-वृत्ति का उदय होता है जिसे 'प्रेमाभक्ति' कहते हैं। इसका इतना प्रभाव है कि भक्त के समस्त दोष-विकार और पाप-ताप दग्ध हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में उमड़ी हुई नदी की तरह जो समुद्र की ओर प्रखर वेग में भागी जा रही है जब हृदय में प्रभु के प्रति भाव का प्रवाह उमड़े तो उसे 'प्रेमा' कहते हैं।

परा—भगवान् के साथ किसी संबंध विशेष में दृढ़तापूर्वक बंध जाने पर जब भाव में पूर्ण परिपक्वता आ जाती है, भावना में स्थिरता आ जाती है और साधक उसी भावना में सर्वथैवतल्लीन हो जाता है और अन्य समस्त भावों एवं व्यापारों का विस्मरण हो जाता है तो इस अनुभवात्मिका भक्ति को 'परा' कहते हैं। इसमें रति स्थिर हो जाती है।

प्रौढ़ा—प्रौढ़ा भक्ति परमात्मा की साक्षात्कारात्मक होती है। सबसे पहले रसराज का महामधुर रसास्वादन करने पर जब अपने दिव्य स्वरूप का क्रमशः पूर्ण आवेश आ जाता है उसके पश्चात् तीव्र विरहानल का उदय होता है। अन्त में सब वृत्तियों का एकान्त निरोध हो जाता है। निरोध के अनन्तर जो परमात्मा का साक्षात्कार होता है वही 'प्रौढ़ा भक्ति' है। प्रेमा और परा भक्ति का दर्शन तो दास्य, सख्य, वात्सल्यादि रसों में होता है परन्तु प्रौढ़ा भक्ति विशेषतः एकमात्र शृंगार रस में ही दृष्टिगोचर होती है। यह प्रौढ़ा भक्ति ही वस्तुतः परम पुरुषार्थ स्वरूपा साध्या भक्ति है। 'रस' शब्द का व्यवहार यद्यपि सब रसों में होता है परन्तु वास्तव में शृंगार ही मुख्य रस है। और रसों में रसत्व गौण है। शृंगार ही रसस्वरूप रसराज है[1]।

---

१ शृंगारमेव रसनाद् रसमामनाम — श्री मधुराचार्य

दिव्य साकेत धाम में युगल प्रभु के श्री अंगों से कोटि-कोटि सखियों का आविर्भाव होता है। इन सखियों की कृपादृष्टि से ही प्रीतिरूपा भक्ति का उदय होता है तथा रसराज के उपासन में अधिकार लाभ होता है। साधना अथवा सुकृत तो उनकी शुभ दृष्टि को आकर्षित करने के लिए होता है। यथार्थ लाभ उनकी कृपा से ही होता है। वास्तविक लाभ का अर्थ है रसराज में प्रवेश का अधिकार, प्रिया प्रियतम का चिद्विलास तथा पुण्य विहार का परात्परतम दर्शन। इसे ही पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है, पूर्णकाम हो जाता है। यही वह स्थिति है जिसे उपनिषदें आत्मरति, आत्मक्रीड़, आत्ममिथुन, आत्मरमण, आत्माराम की स्थिति कहती हैं। अस्तु

परन्तु यहां प्रश्न उठता है कि जब उस परम प्रियतम के रूपरस या लीलारस या सेवारस का आस्वादन नारी-भाव या सखी-भाव से ही हो सकता है तो विचारा पुरुष क्या करे ? इस प्रश्न पर विचार कुछ विस्तार से हम अगले अध्याय में करेंगे। यहां इतना संकेत रूप में कह देना अभीष्ट है कि जीव न तो स्त्री है, न पुरुष, न नपुंसक। जो-जो शरीर धारण करता है वह शरीर धर्मानुसार उसका अभिमानी होता है[1]। और इसी प्रकार परमात्मा भी न स्त्री है न पुरुष, न कुमार, न कुमारी। विश्व का सब कुछ वही है[2]। अतएव भक्त और भगवान् के बीच कोई भी और सभी प्रकार का सम्बन्ध संभव है--स्वामी सेवक का, सखा सखा का, पिता पुत्र या पुत्र माता का, पति पत्नी या पत्नी पति का। आगे हम यह दिखायेंगे कि जीवमात्र भगवान का भोग्य है, भोक्ता है एकमात्र प्रभु ही। जीव भोक्ता हो नहीं सकता, भोक्ता होने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। वह प्रभु के कृपा-प्रसाद से ही प्रभु का दिव्य भोग्य है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का सम्यक् ज्ञान ही परम ज्ञान है[3]। वास्तव में भोक्ता भोग्य का विषय बड़ा ही गंभीर एवं गोपनीय है। इसकी थोड़ी बहुत चर्चा हम अगले अध्याय में संकेत रूप से प्रस्तुत करेंगे। अस्तु

रागमयी भक्ति के क्रम-विकास के अध्ययन में हम दक्षिण भारत के सबसे प्राचीन आलवार वैष्णव भक्तों के साहित्य में स्पष्ट देखते हैं कि रागमयी भक्ति का स्वर ही मुख्य है। 'आलवार' शब्द का अर्थ है आत्मज्ञानी भक्त जो भगवान् के प्रेम में सदा डूबा रहता है। आलवारों में १२ मुख्य हैं उनमें गोरा अन्दाल ठीक मीरा की तरह प्रेम पुजारिन हुई। ईसवी सन् की सातवीं से नवीं शती में ये आलवार भक्त हुए। 'आत्मनिवेदन' भक्ति के ये साकार विग्रह थे। वे भागवत के इस वचन को मानते थे कि प्रेमस्वरूप हरि भक्ति से ही प्रसन्न होता है, शेष सब

---

१ नैव स्त्री न पुमानेषु न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमाधत्ते तेन तेन स रक्ष्यते॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।१०

२ त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वचयसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः।

३ भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्।

--श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२

विडम्बना है[1]। आलवारों की भक्ति प्रभु में उतनी ही दृढ़ है जितनी विषयी पुरुषों की विषयों में होती है और यह इतनी प्रगाढ़ है कि उसकी समता का कोई उदाहरण नहीं[2]। श्री जे०एस० एम० हूपर ने आलवारों के पदों का तमिल से अंग्रेजी में अनुवाद किया है जो अपने ढंग का अद्वितीय है।[3] अभिप्राय यह कि आलवारों की भक्ति सर्वथा रागमयी, प्रीतिमयी भक्ति है और उसमें प्रेम की ही प्रधानता है। प्रीतिपूर्वक आत्मदान, प्रणय का आत्मसमर्पण ही उनके गीतों का मुख्य स्वर है। गोदा अन्दाल आलवारों में प्रसिद्ध भक्तिन हुई। उसने कहा है कि मैं अब पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गई हूं और अपना संपूर्ण यौवन मैं श्री हरि के चरणों में समर्पित कर दूंगी, उनके सिवा इसका उपभोग करने का अधिकारी और है भी कौन? इन्हीं आलवारों की परम्परा में श्री स्वामी रामानुजाचार्य आते हैं। इनके प्रपत्तिवाद में सर्वथा आत्मसमर्पण का स्वर मुख्य है। शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, आत्मा से या स्वभाव का अनुसरण करते हुए जो कुछ भी कार्य होता है सब कुछ नारायण को समर्पित है[4]। न तो मुझमें धर्म की निष्ठा है, न आत्मविद् हूं, न तुम्हारे चरणारविन्द में भक्ति ही है। हे नाथ, मैं सब प्रकार अकिंचन हूं, तुम्हारे चरणों की शरण में हूं[5]। सहस्र-सहस्र अपराधों से भरा हुआ मैं तुम्हारे चरणों में प्रपन्न हूं, नाथ!

---

१ प्रीयतेऽमलया भक्तया हरिरन्यद् विडम्बनम्।

२ या प्रीतिरस्ति विषयेष्वविवेकभाजां सेवाऽच्युते भवति भक्तिपदाभिधेया।
भक्तिस्तु काम इह तत्कमनीय रूपे, तस्मान् मुनेरजनिकामुकवाक्यभंगी।

—दमिडोपनिषद् संगतिः

३ Day and night she knows not sleep
In floods of tears her eyes do swim
Lotus like eyes, She weeps and reels.
No kinship with the world have I
Which takes for true the life that is not true,
For Thee alone my passion burns,
I cry Rangam, my Lord I !

Hooper–Hymns of the Alwars

४ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धात्मना वानुसृतः स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत्।

५ न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमान्स्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनः नान्यगतिः शरण्य! त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

—स्तोत्र रत्न २२

मुझे स्वीकार करो[1]। रामानुज के श्री संप्रदाय में आत्मनिवेदन की पूर्ण विवृति है और शरणागति या 'प्रपत्ति' ही उसमें एकान्ततः विकसित हुई है। रागमयी भक्ति का विशेष विकास क्रमशः मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभीय और हितहरिवंश में ही हुआ, जिसका अनुशीलन हम बहुत संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

यहां लक्ष्य करने योग्य एक बात है वह यह कि स्वामी रामानुजाचार्य के पूर्ववर्ती आलवार भक्तों में रागमयी भक्ति विशेष निष्पन्न हुई है तथा इन्हीं स्वामी रामानुज की परंपरा में आगे चलकर स्वामी रामानन्द तथा परवर्ती संत भक्तों में भी इसी रागमयी भक्ति का विशेष विकास एवं श्रृंगार हुआ है। अयोध्या के रसिक भक्तों की परंपरा परम प्राचीन होती हुई भी स्वामी रामानन्द से स्पष्ट रूप में पकड़ में आती है। आलवार भक्तों से लेकर स्वामी रामानन्द तक की रसिक परंपरा, लगता है कि योग, सहज और अन्य गुह्य साधनाओं के अंतराल में गुप्त रूप में प्रवाहित होने लगी थी, गुप्त गोदावरी की तरह और पुनः स्वामी रामानंद के परवर्ती भक्तों में रसिकता की वह बाढ़ आई, जिससे सतरहवीं शती के बाद हमारा अधिकांश रामसाहित्य ओतप्रोत है। मर्यादा के कठोर आवेष्ठन में श्रृंगार का ऐसा मधुर विन्यास विश्व-साहित्य में दुर्लभ है। अवश्य ही गोस्वामी जी ने अपने चारों ओर फैले हुए इस साहित्य को देखा था और वे स्वयं मर्यादावादी तथा लोकमंगल और व्यक्तिगत साधना में सामंजस्य के प्रबल पोषक होने के कारण भक्ति के श्रृंगार पक्ष पर बल न दे सके, परन्तु यदा-कदा इतस्ततः उनके अंदर की भावधारा फूट पड़ी है जैसा हम गीतावली के कुछ पदों का उद्धरण देकर आगे बतायेंगे। स्वामी रामानन्द से लेकर श्री 'रूपकला' तक रामोपासना में श्रृंगार-भावना का जो अखण्ड प्रवाह विद्यमान है और अब भी वह अवध की मुख्य एवं परम गुह्य साधना के रूप में चल रहा है, उसी का विवरण अपना अभीष्ट है। परन्तु यह भूल न जाना होगा कि भक्ति के अन्यान्य संप्रदायों में भी इस भाव की उपासना विशेष व्यक्त एवं उन्मुक्त रूप में हुई है उनका भी दिग्दर्शन प्रसंगतः आवश्यक है। अस्तु, यहां हम संक्षेप में पहले उन भक्ति संप्रदायों का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करना चाहेंगे जहां रागमयी साधना का ही स्वर मुख्य है और तभी यह संभव होगा कि हम तुलनात्मक दृष्टि से यह देख सकेंगे कि उनमें और रामोपासना की श्रृंगारी साधना में क्या और कितना भेद है और यदि है तो क्यों है। रामावत संप्रदाय की मधुर उपासना के अनुशीलन-परिशीलन में एक बात का ध्यान सदा रखना होगा कि इसमें यहां से वहां तक मर्यादा का भाव अक्षुण्ण रूप में बना हुआ है। भीतर-भीतर श्रृंगार-उपासना और बाहर-बाहर मर्यादा-भावना। यही कारण है कि रामावत संप्रदाय की मधुर उपासना का विषय अबतक सर्वथा उपेक्षित रहा है और उसे वह महत्त्व न मिल पाया जो कृष्णावत मधुर उपासना को प्राप्त है। फिर भी इस परम

---

१ **अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीम भवार्णवोदरे।**
अगतिं शरणागतं हरे! कृपया केवल आत्मसात्कुरु।

—आलवन्दार स्तोत्र ५१

गुह्यतम साधना का साहित्य अपने-आपमें इतना सुपुष्ट, आकर्षक एवं प्रभावशाली है कि इसका अध्येता किसी प्रकार घाटे में नहीं रहेगा और हमारे साहित्य के इस उपेक्षित अंग पर प्रकाश डालने के लिए अधिक-से-अधिक विद्वानों को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अस्तु

अब हम रागमयी भक्ति की जो विवृत्ति विविध भक्ति संप्रदायों में हुई है, उसका एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करेंगे।

इष्टे स्वारसिकोरागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः साऽत्र रागात्मिकोदिता॥
विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥
—हरिभक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व, द्वि. लहरी ६०,६२

भक्ति के लक्षण—गौड़ीय मत

इष्ट वस्तु में गाढ़ तृष्णा—बलवती लालसा। यही है राग का स्वरूप लक्षण और इष्ट में परम आविष्टता—यह है तटस्थ लक्षण। श्रीजीव गोस्वामी अपने 'भक्ति-संदर्भ' में इसकी यों व्याख्या करते हैं—'तत्र विषयिणः स्वाभाविको विषयसंसर्गेच्छामयः प्रेमा रागः यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते।'

अर्थात् जैसे विषयी पुरुषों का स्वभावतः ही विषयों के प्रति विषय-संसर्ग की इच्छा से युक्त आकर्षण होता है—जैसे आंखों का सौन्दर्य के प्रति एवं कानों का मधुर स्वर के प्रति, उसी प्रकार भक्त का जब श्रीभगवान् के प्रति आकर्षण या तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तब उसे 'राग' कहते हैं।

श्रीकृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्याचरितामृत' में इसी विषय की व्याख्या की है, जो श्रीरूपगोस्वामी कृत 'हरिभक्तिरसामतसिन्धु' की व्याख्या से बहुत मिलती-जुलती है—

इष्टे गाढ़ तृष्णा राग एइ स्वरूप-लक्षण।
इष्ट आविष्टता एइ तटस्थ लक्षण॥—मध्य २२।८६

राग का जो स्वरूप ऊपर बताया गया है, उससे युक्त भक्ति को 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं और उसी का अनुसरण करती हुई भक्ति की जो धारा प्रसरित होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं।

रागमयी भक्तिर हय रागात्मिका नाम॥ मध्य० २२।८६

मूल कारण

व्रज के भक्तों की प्रेम-सेवा की चर्चा सुनकर किसी भाग्यवान् के चित्त में जो तदनुरूप सेवा पाने का लोभ उत्पन्न होता है और जिसमे प्रेरित होकर व्रज-वासियों के भावों का आनुगत्य स्वीकार कर के भजन की प्रवृत्ति होती है, वह लोभ ही इस रागानुगा का मूल कारण है। श्री जीव गोस्वामी कहते हैं—

'यस्य पूर्वोक्तरागविशेषे रुचिरेव जातास्ति न तु रागविशेष एव स्वयं तस्य तादृश राग-सुधाकरकराभाससमुल्लसितहृदयस्फटिकमणेः शास्त्रादिषु तासु तादृश्या रागात्मिकाया भक्तेः परिपाटीष्वपि रुचिर्जायते।'

श्री गोविन्द भाष्य में श्री बलदेव विद्याभूषण इसी को 'रुचि भक्ति'' कहते हैं—

'रुचिभक्तिर्माधुर्यज्ञानप्रवृत्ता, विधिभक्तिरैश्वर्यज्ञानप्रवृत्ता। रुचिरत्र रागः। तदनुगता भक्तिः रुचिभक्तिः। अथवा रुचिपूर्णा भक्तिः रुचिभक्तिः इयमेव 'रागानुगा' इति गदिता।'

रागानुगा पुष्टि-मार्ग में

इसी रागानुगा भक्ति को पुष्टि मार्ग में पुष्टि-भक्ति या 'अविहिता भक्ति' कहते हैं—

'माहात्म्यज्ञानयुते वरत्वेन प्रभोर्भक्तिर्विहिता, अन्यतः प्राप्तत्वात् कामाद्युपाधिजा त्वविहिता।'
—अणुभाष्य

श्रीनिम्बार्क-मत में

श्री निम्बार्क-सम्प्रदायमें श्री हरिव्यास जी ने अपनी 'सिद्धान्त-रत्नांजलि' टीका में अविहिता भक्ति का उल्लेख किया है। 'महावाणी' में उन्होंने सखी-भाव से नित्य वृन्दावन में श्री राधा-गोविन्द की युगल सेवा-प्राप्ति की साधना बताई है। उक्त साधना में दास्य, सख्य अथवा वात्सल्य के लिए स्थान नहीं है। इस प्रकार गौडीय वैष्णवों की रागानुगा भक्ति के साथ श्री हरिव्यासजी की साधना का भेद सुस्पष्ट है। क्योंकि महाप्रभु के सम्प्रदाय में सभी भावों का समावेश हो जाता है —'कुत्रापि तद्रहिता न कल्पनीया।' श्री हरिव्यासजी में श्रीकृष्ण की देवलीला-परायणता है, परन्तु गौडीय वैष्णव केवल भगवान् की नरलीला में माधुर्योपासना का पथ अप-नाते हैं।

स्मरणकी मुख्यता

रागानुगा भक्ति में स्मरण की प्रधानता[1] है। श्री सनातन गोस्वामी ने बृहद्-भागवतामृत में इसका विस्तार से वर्णन किया है। इस साधन में मानसिक सेवा और तदनुकूल संकल्प ही मुख्य हैं। रघुनाथदास गोस्वामी के 'विलाप-कुसुमांजलि' और श्री जीव गोस्वामी के 'संकल्प-कल्पद्रुम' में रागानुगा भक्ति अनुकूल संकल्प और मानसी सेवा के क्रम का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।[2]

सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः।।

---

१ गौडीय आचार्य श्री जीव गोस्वामी 'अविहिता' का निर्णय यो करते हैं—'अविहिता रुचिमात्रप्रवृत्या विधिप्रयुक्तत्वेनाप्रवृत्तत्वात्' रुचिमात्र से प्रवृत्ति होने के कारण ही इस प्रकार की भक्ति को 'अविहिता' कहते हैं।

२ रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यता

अर्थात् व्रजवासी जनों के भाव से लुब्ध हुए व्यक्ति को इस रागानुगामार्ग में साधक रूप से अर्थात् यथावस्थित देह के द्वारा तथा सिद्ध रूप से—अन्तचिन्तित सिद्ध देह से व्रजवासियों के आनुगत्य स्वीकार करते हुए सेवा करनी चाहिए।

साधना का क्रम

माता-पिता से उत्पन्न हुआ मात्र भौतिक शरीर ही साधक-देह है और अन्तर में अभीष्ट श्री राधा-गोविन्द की साक्षात् सेवा के उपयुक्त अपने जिस देह की भावना की जाती है, वह सिद्ध-देह है। सिद्ध-देह से ही व्रज भाव प्राप्त होता है। माधुर्योपासना के अन्तर्गत सिद्ध देह की भावना के सम्बन्ध में 'सनत्कुमार-तंत्र' में कहा गया है—

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्।।

अर्थात् गोपी भाव में अपने को रूप यौवन-सम्पन्न परम मनोहर किशोरी के रूप में सिद्ध देह से भावना करनी चाहिए।

सखी की आज्ञा के अनुसार सदा सेवा के लिए उत्सुक रहते हुए श्री राधाजी के निर्माल्य स्वरूप अलंकारों से विभूषित, साधनों की सिद्धि रूप इस मंजरी-देह की भावना निरन्तर की जाती है। मंजरी स्वरूप में तनिक भी संभोग के लिए अवकाश नहीं। इसमें केवल सेवा-वासना है। पद्म पुराण, पाताल खंड में इसी प्रसंग पर कहा गया है—

आत्मानं चिन्तयेत् तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्।।
नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराङ्मुखीम्।।
राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्।।
प्रीत्यानुदिवसं यत्नसेत् तयोः संगमकारिणीम्।।
तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम्।।
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावत् स्यात् तु महानिशा।।५२।७-११

गोपीभाव की उपासना करनेवाले को चाहिए कि वह अपने-आपकी भी प्रिया-प्रियतम की सेवा में लगी हुई उन सखियों से ही एक अत्यन्त मनोरम, रूपयौवन-सपन्न किशोर अवस्था की रमणी के रूप में भावना करे, जो विविध शिल्पों एवं कलाओं में प्रवीण तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उपभोग के योग्य हो, किन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जो उनके साथ दिव्य संभोग के प्रतिसर्वथा पराङ्मुख हो, जो श्री राधाकिशोरी की सेवा में सदा परायण रहने वाली उनकी अनुचरी हो, जो श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधाकिशोरी से ही अधिक प्रेम करती हो और प्रति

दिन बड़े ही प्रेम एवं तत्परता से उन दोनों का मिलन कराना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझती हो और उन्हीं के सेवा-सुख को परम आह्लाद का कारण मान कर अत्यन्त सुखी रहती हो। अपने बिषय में इस प्रकार की भावना कर के ब्राह्म मुहूर्त से ले कर रात्रि के शेष भाग तक दोनों की मानसी-सेवा में रत रहना चाहिए।

रागानुगा-साधन में जो 'अजात रति' साधक हैं—अर्थात् जिन्हें रति की प्राप्ति नहीं हुई है, उनको अपने लिए गुरुदेव के उपदेशानुसार किसी सखी की संगिनी के भाव से मनोहर वेशभूषा से युक्त किशोरी रमणी के रूप में भावना करनी चाहिए। जो जात-रति हैं, अर्थात् जिनको रति प्राप्त हो गई है, उनमें इस सिद्ध स्वरूप की स्फूर्ति अपने-आप हो जाती है। प्राचीन आलवार भक्त शठारि मुनि के साधक देह में ही सिद्ध देह का भाव उतर आया था। उन्होंने अनुभव किया कि श्री भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं और अखिल जगत् स्त्री-स्वभाव हैं। इस विषय में उनका 'तिरुविरुत्तम' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। कहते हैं शठारि में सचमुच कामिनी भाव का आविर्भाव हो गया था—

जात रति

पुंस्त्वं नियम्य पुरुषोत्तमताविशिष्टे
स्त्रीप्रायभावकथनाज्जगतोऽखिलस्य।
पुंसां च रञ्जकवपुर्गुणवन्तयापि
शौरेः शठारियमिनोऽजनि कामिनीत्वम्॥

—वैष्णव धर्म

गौड़ीय वैष्णव साधकगण 'गोविन्द लीलामृत' और 'कृष्णभावनामृत' आदि ग्रन्थों के क्रमानुसार गुरु गौरांगदेव के अनुगत भाव से श्री राधागोविन्द की अष्टकालीन लीला का स्मरण करते हैं। इस लीला के ध्यान में ही मानसोपचार से इच्छित सेवा होती रहती है। श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में भी अष्टयाम की लीलाओं का स्मरण मुख्य साधना है।

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

—आचार्य कृत सिद्धान्त-मुक्तावली

श्री हरिरायजी की 'सहस्रश्लोकी सेवा-भावना' इस विषय का देखने योग्य ग्रन्थ है। इसमें गोपांगनाओं की सेवा-भावनाओं का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रातःकाल की मंगला-आरती से लेकर रात के शयन तक भिन्न-भिन्न समयों की भिन्न-भिन्न लीलाओं के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में उसी सम्प्रदाय के महानुभावों द्वारा रचित अनेकानेक पद उपलब्ध हैं एवं भक्तों के द्वारा गाये जाते हैं। जिनसे सहज ही भगवान् की विविध लीलाओं का स्मरण, चिन्तन एवं ध्यान होता है और भक्त शरीर से चाहे जहां हो, भाव-देह से निरन्तर भगवान् की सन्निधि में रहते हुए अमृतोपम सुख लूटता है।

साधक-देह में ही सिद्ध-देह की स्फूर्ति किस प्रकार होती है—इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें बंगाल के वैष्णव-इतिहास में इस प्रकार मिलता है। बंगाल के साधक **श्रीनिवास आचार्य** किसी

समय मंजरी-देह से श्रीराधाकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्होंने देखा श्री गोपीजनों के साथ श्रीकृष्ण **यमुना में** जलक्रीड़ा कर रहे हैं। श्रीराधाजी के कान का एक कुण्डल जल में गिर गया। सखियां खोजने लगीं। भावना-देह से इस कुण्डल की खोज करने में श्रीनिवासजी को बाह्य दृष्टि से एक सप्ताह का समय लग गया। साधक देह निस्पन्द आसन पर विराजमान था। रामचन्द्र कविराज आये तो वे भी सिद्ध-देह से श्रीनिवास की सङ्गिनी के रूप में उनके साथ हो लिये और रामचन्द्र को एक कमलपत्र के नीचे राधाजी का कुण्डल दिखलाई पड़ा। उसी क्षण उन्होंने उसे श्रीनिवासजी के उस भावना-देह के हाथ में दे दिया। सखी-मंजरियों में आनन्द की तरंगें उछलने लगीं। श्रीराधारानी ने प्रसन्न होकर अपना चबाया हुआ पान इन्हें पुरस्कार-रूप में दिया। रामचन्द्र और श्रीनिवास दोनों ही सोकर उठनेवालों की तरह साधक देह में लौट आये। देखा गया कि सचमुच श्रीराधाजी का दिया हुआ पान-पुरस्कार उनके मुख में था।

भाव-देह

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भावशरीर या सिद्ध-देह भी होता है साधक इसी भाव-देह से भगवान् की लीलाओं का रसास्वादन करता है। भाव-देह और सिद्ध-देह की चर्चा हम विस्तार से यथास्थान करेंगे।

उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें

भगवान् के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहते हैं—'पोषणं तदनुग्रहः'। उस अनुग्रहसे जो भक्ति या भगवत्प्रेम होता है, उसे 'पुष्टि भक्ति' कहते हैं। यह भक्ति स्वरूप से रागमयी है। शाण्डिल्य ने इसकी परिभाषा 'सा परानुरक्ति रीश्वरे' इस प्रकार की है। नारद इसी को 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा' कहते हैं तथा 'पाञ्चरात्र' में उसकी परिभाषा इस प्रकार है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।।

अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो भगवान् के प्रति गाढ़ एवं सर्वोपरि स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहा गया है और उसी से मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकार नहीं।

यहाँ असाधना ही साधन है

यह स्नेहमयी रागात्मिका भक्ति भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् का अनुग्रह साधन-साध्य नहीं, वह साधन से प्राप्त होनेवाली वस्तु नहीं है, वह किसी साधन के परतंत्र नहीं है। भगवान् भक्त-परतंत्र हैं, भक्त-पराधीन हैं। अतः यहां असाधना ही साधन है।

भक्ति भी भगवान की एक लीला ही है

जैसे सर्ग-विसर्ग आदि श्री पुरुषोत्तम की लीलाएं हैं, यह भक्ति, अनुग्रह या पुष्टि भी भगवान् की लीला ही है। वह 'लीला' क्या है, 'सुबोधिनी' भा० ३, स्कन्ध में वर्णित है—"'लीला' नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या बहिः कार्यं जन्यते। जनितमपि कार्यं नाभिप्रेतम्। नापि कर्तरि प्रयासं जनयति। किन्त्वन्तःकरणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननसदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते।"

अर्थात् लीला नाम है विलास की इच्छा का। किसी प्रयोजन से रहित क्रिया को ही लीला कहते हैं। उस क्रिया से बाहर किसी कार्य की सृष्टि नहीं होती। और उत्पन्न हुआ कार्य भी अभीष्ट नहीं होता और न वह क्रिया कर्ता में रंचमात्र भी प्रयास की सृष्टि करती है। अपितु अन्तःकरण में पूर्ण आनन्द भर जाने से उस आनन्द के उल्लास में कार्योत्पादन के समान एक क्रिया उत्पन्न होती है, उसी का नाम 'लीला' है।

लीला ही प्रयोजन

भगवान् स्वतः परिपूर्ण हैं, तृप्त हैं, अतएव विना प्रयोजन के ही, एकमात्र लीला-रस का आस्वादन करने और कराने के लिए ही तत्र नहि किञ्चित् प्रयोजनमस्ति 'लीला—एव प्रयोजनत्वात्' (अणुभाष्य) लीला करते रहते हैं। भगवान् स्वतः तृप्त होते हुए भी चिर अतृप्त हैं, निष्काम होते हुए भी विलासेच्छु हैं। अद्वितीय होते हुए भी भक्त के प्रेम-पराधीन हैं। रसस्वरूप होते हुए भी रस के पिपासु हैं।

ब्रह्मसंबन्ध तथा ताप

गुरु शिष्य के हृदय में भगवान् की प्रीति का दान देकर उसका भगवान् से सम्बन्ध करा देता है, जिसे पुष्टि मार्ग में 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहते हैं। और इसी ब्रह्म-सम्वन्ध के बाद शिष्य के हृदय में मिलन की लालसा होती है, जिसे 'ताप' कहते हैं। यह 'ताप' ही पुष्टि मार्ग की साधना का प्राण है। 'पञ्चतापाः सदा यत्र[1]।'

---

१ इस सम्बन्ध में श्री हरिदासजी कृत 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' उल्लेनीय है—

सर्वसाधनराहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनम्।
फलं वा साधनं यत्र पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥१॥
अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विद्धिः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥२॥
स्वरूपमात्रपरता तात्पर्यज्ञानपूर्वकम्।
धर्मनिष्ठा यत्र नैव पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥३॥
यत्रांगीकरणे नैव योग्यतादिविचारणम्।
अवलम्बः प्रभुकृतः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥४॥
यत्र प्रभुकृतं नैव गूढदोषविचारणम्।
तत्कृतावुत्तमज्ञानं पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥५॥
न लोकवेदसापेक्ष्यं सर्वथा यत्र वर्तते।
सापेक्षता स्वामिसुखे पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥६॥
वरणे दृश्यते यत्र हेतुर्नाणुरपि स्वतः।
वरणं च निजेच्छातः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥७॥

रागानुगा के मूलस्वरूप उत्तमा या शुद्ध भक्ति का लक्षण श्री रूपगोस्वामी ने अपने हरिभक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।पूर्व. प्रथम. ११

अर्थात् अन्य अभिलाषा से शून्य, एकमात्र भक्ति की अभिलाषा से युक्त, ज्ञान-कर्म आदि से सर्वथा रहित, भगवान् की प्रीति-सम्पादन के उद्देश्य से की जाने वाली भगवद्विषयक सम्पूर्ण चेष्टा का नाम ही उत्तमा भक्ति है।

यत्र स्वतन्त्रता भक्तेराविर्भावानपेक्षणात्।
सानुभावस्वरूपत्वं पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।८।।
लोकवेदभयाभावो यत्र भावातिरेकतः।
सर्वबाधकतास्फूर्तिः पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।९।।
संबंधः साधनं यत्र फलं संबंध एव हि।
सोऽपि कृष्णेच्छया जातः पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१०।।
तत्संबंधिषु तद्भावस्तद्भिन्नेषु विरोधितः।
उदासीनेषु समता पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।११।।
विद्यमानस्य देहादेर्न स्वीयत्वेन भावनम्।
परोक्षेऽपि तदर्थित्वं पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१२।।
भजने यत्र सेव्यस्य नोपकारकृतिः क्वचित्।
पोषणं भावमात्रस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१३।।
भजनस्यापवादो न क्रियते फलदानतः।
प्रभुणा यत्र तद्भावात्पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१४।।
यत्र वा सुखसम्बंधो वियोगे संगमादपि।
सर्वलीलानुभावेन पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१५।।
फले च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता।
फलभावः साधनस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१६।।
पश्चात्तापः सदा यत्र तत्संबंधिकृतावपि।
दैन्योद्भावाय सततं पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१७।।
आविर्भावाय सापेक्षं दैन्यं यत्र हि साधनम्।
फलं वियोगजं दैन्यं पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१८।।
विषयत्वेन तत्त्यागः स्वस्मिन् विषयतास्मृतेः।
यत्र वै सर्वभावेन पुष्टिमागः स कथ्यते।।१९।।
एवं विधैर्विशेषेण प्रकारैस्तु सदाश्रितः।
हृदि धृत्वा निजाचार्यान् पुष्टिमार्गो हि बुध्यताम्।।२०।।

'नारद पाञ्चरात्र' में भी यह बात इस रूप में कही गई है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।

इन्द्रियों के द्वारा सब प्रकार की उपाधियों से शून्य, एकमात्र सेवा के उद्देश्य से किया जाने वाला जो निर्मल भगवत्सेवन है, उसे भक्ति कहते हैं।

श्रीमद्भागवत में उत्तमा भक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।।

जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवान् के प्रति हो जाना तथा उस पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम हो जाना यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त दिये जाने पर भी भगवान् की सेवा को छोड़ कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते। भगवत्सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करनेवाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघ कर भगवद् भाव को—भगवान् के प्रेम रूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

रागानुगा का मूलस्वरूप-उत्तमा भक्ति

इस भक्ति में दो उपाधियाँ हैं—१ अन्याभिलाषिता २ ज्ञान, कर्म, योगादि का मिश्रण। अन्याभिलाषिता में भोग कामना और मोक्ष-कामना दोनों ही सम्मिलित हैं। सच्चा भक्त भुक्ति और मुक्ति दोनों को हेय समझ कर छोड़ देता है। ज्ञान, कर्म एवं योग आदि भी उपाधियाँ हैं; यहां ज्ञान का अर्थ है—अभेद ज्ञान; भगवान् ही भजनीय हैं—इस अनुसंधान से तात्पर्य नहीं है। कर्म का अर्थ है—स्मृति-प्रतिपादित नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म; भगवान् की परिचर्या रूप कर्म अभिप्रेत नहीं है। जिस ज्ञान के द्वारा भगवान् के स्वरूप और भजन का रहस्य जाना जाता है, जिस कर्म के द्वारा भगवान् की सेवा बनती है तथा जिस ध्यानादि योग से चित्त भगवान् के गुण, लीला आदि में लगता है, वे ज्ञान, कर्म, योग बाधक न बन कर भक्ति के साधक ही होते हैं।

उत्तमा भक्ति

उत्तमा भक्ति अथवा शुद्धभक्ति के तीन भेद हैं—साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति। उत्तमा भक्ति में निम्नलिखित गुण होते हैं[1]—१ क्लेशघ्नी, २ शुभदायिनी, ३ मोक्षलघुताकृत्, ४ सुदुर्लभा, ५ सान्द्रानन्द विशेषात्मा और ६ भगवदाकर्षिणी।

क्लेशघ्नी—क्लेश तीन प्रकार के हैं—पाप[2], वासना, अविद्या। पाप का बीज है वासना, वासना का कारण है अविद्या। इन सब क्लेशों का मूल कारण है भगवद्विमुखता[3]। भक्तों की संगति में भगवान् की सम्मुखता प्राप्त होती है[4]। फिर उपर्युक्त क्लेशों के सारे कारण अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। इसी से उत्तमा भक्ति में 'सर्वदुःखनाशकत्व' गुण आ जाता है।

शुभदायिनी—'शुभ' शब्द का अर्थ है साधक के द्वारा समस्त जगत् के प्रति प्रीतिविधान और सारे जगत् का साधक के प्रति अनुराग, समस्त सद्गुणों का विकास तथा त्रिविध सुख। सुख के तीन भेद हैं—विषय-सुख, ऐश्वर्य-सुख, (विविध सिद्धियाँ) एवं ब्राह्म सुख (मोक्ष)। ये सभी 'शुभ' उत्तमा भक्ति से प्राप्त होते हैं।

'मोक्ष लघुताकृत्'—यह भक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य इन पांचों प्रकार की मुक्ति) इन सब में तुच्छ-बुद्धि पैदा कर के सबसे चित्त को हटा देती है।

सुदुर्लभा—अनासक्त पुरुषों के द्वारा अनेकानेक साधनों का चिरकाल तक अनुष्ठान होने पर भी यह भक्ति प्राप्त नहीं होती; स्वयं भगवान् भी साम्राज्य, सिद्धि, स्वर्ग, ज्ञान आदि तो सहज ही दे देते हैं, पर अपनी उत्तमा भक्ति नहीं देते।

सान्द्रानन्द विशेषात्मा—ब्रह्मानन्द को परार्द्ध की संख्या से गुणित करने पर भी वह इस भक्ति सुखसागर के एक परमाणु की भी तुलना में भी नहीं आ सकता।

भगवदाकर्षिणी—यह उत्तमा भक्ति भगवान् को भक्त के वश में कर देती है।

साधन भक्ति के भेद—इस उत्तमा भक्ति के जो तीन भेद ऊपर बताये गये हैं, उनमें प्रथम साधन-भक्ति के दो भेद हैं—वैधी और रागानुगा। जहां राग तो हो नहीं, केवल शास्त्राज्ञा से भजन में प्रवृत्ति हो, उसे वैधी भक्ति कहते हैं। रागानुगा की परिभाषा ऊपर की जा चुकी है।

रागात्मिका की तरह ही रागानुगा के भी दो भेद बन जाते हैं—कामानुगा और सम्बन्धानुगा। रागात्मिका के दो भेद हैं—कामरूपा और सम्बन्ध रूपा।

---

१ देखिये भक्तिरसामृतसिंधु पूर्व० १—लहरी १३

२ पाप भी दो प्रकार के होते हैं—अप्रारब्धसंचित और प्रारब्ध

३ देखिये श्रीमद्भागवत ११।२।३७

४ देखिये श्रीमद्भागवत १०।५१।५४

मैं भगवान् का पिता हूँ, माता हूँ, सखा हूँ, दास हूँ, आदि-आदि भावनाओं से भावित होकर जो यथोचित रूप से रागमयी सेवा करते हैं, उनकी उस रागमयी भक्ति को सम्बन्ध रूपा रागात्मिका भक्ति कहते हैं। तथा रागात्मिका कामरूपा भक्ति वह है, जिसमें उपर्युक्त प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। केवल मात्र भगवान् की सेवा कर के उन्हें सुखी बनाने की वासना ही समस्त चेष्टाओं को प्रेरित करती है और उस वासना से भावित होकर रागमयी सेवा निरन्तर अनुष्ठित होती रहती है। यहां ध्यान रखने की बात है कि कामरूपा एवं सम्बन्ध रूपा दोनों में ही राग तो अवश्य है; किन्तु सम्बन्ध रूपा भक्ति में सम्बन्ध-विशेष का अभिमान ही भगवत्सेवा का प्रयोजक है और कामरूपा में ऐसा कोई अभिमान हेतु नहीं है, केवल काम-प्रेममयी सेवा के द्वारा भगवान् को सुखी करने की वासना ही प्रवर्तक है। व्रजलीला में सम्बन्ध रूपा रागात्मिका के पात्र हैं—श्री नन्द-यशोदादि पितृ-मातृवर्ग, सुबल-मधुमंगलादि सखावर्ग एवं रक्तक एवं पत्रक आदि दासवर्ग; तथा कामरूपा रागात्मिका के पात्र हैं—मधुर भावभावित श्री ब्रज सुन्दरियां। उपर्युक्त ब्रज सुन्दरियों में ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है, जो उन्हें भगवत्सेवा के लिए प्रेरित करे—जिसके कारण वे सेवा के लिए लालायित हों। भगवान् को अपनी सेवा समर्पित कर उन्हें सुखी बनाने की ऐकान्तिक वासना-प्रेम ही उनकी भक्ति का प्रवर्तक है। इस वासना को ही भक्तिशास्त्र में 'काम' कहा गया है—'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्' (गौतमीय तन्त्र)। ठीक इसी के अनुगामी रागानुगा के भी दो ऐसे ही उपर्युक्त भेद बन जाते हैं—कामानुगा एवं सम्बन्धानुगा।

सम्बन्ध रूपा भक्ति का स्वरूप

कामानुगा के दो भेद हैं—संभोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। केलि-सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति का नाम संभोगेच्छामयी और यूथेश्वरी ब्रज देवियों के भाव और माधुर्य प्राप्ति विषयक वासनामयी भक्ति का नाम तत्तद्भावावेच्छामयी है।

'भावभक्ति'—भाव शुद्ध, सत्य, विशेष स्वरूप है—यह भाव का स्वरूप-लक्षण है।

भगवान् की सर्व प्रकाशिका स्वरूपशक्ति के वृत्तिविशेष को शुद्ध सत्व कहते हैं। भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा, भगवदनुकूलता की अभिलाषा और उनके प्रति सौहार्द आदि की अभिलाषा—इनके द्वारा चित्त की जो स्निग्धता सम्पादित होती है, वह है 'भाव' का तटस्थ लक्षण। भाव का ही दूसरा नाम रति या प्रेमांकुर या प्रीत्यंकुर है। प्रेम की पहली अवस्था को ही भाव कहते हैं। प्रेम के परिणत हो जाने के अनन्तर वृद्धि-क्रम से यही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव के रूप में व्यक्त होता है। साथ ही यही प्रेम की पहली अवस्था 'रति' भक्तों की भावना के भेद से पाँच प्रकार की बन जाती है—शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुर रति। रति-भेद से भगवद्भक्ति-रस भी पांच प्रकार का बन जाता है—शान्तरस, दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस और मधुर-रस।

भाव अथवा रति

१. क्षान्ति--धन, पुत्र, मान आदि का नाश, असफलता निन्दा, व्याधि आदि क्षोभ के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का जरा भी चंचल न होना।

जातरति भक्त के लक्षण

२. अव्यर्थकालत्व---क्षणमात्र का भी समय सांसारिक कार्यों में वृथा न बिता कर मन, वाणी, शरीर से निरन्तर भगवत्सेवा-सम्बन्धी कार्यों में जीवन भर लगे रहना।

३. विरक्ति---इस लोक और परलोक के समस्त भोगों से स्वाभाविक अरुचि।

४. मानशून्यता---स्वयं उत्तम आचरण, विचार और स्थिति से सम्पन्न होने पर भी मान-सम्मान से सर्वथा दूर रह कर अधम का भी सम्मान करना।

५. आशाबन्ध---भगवान् के और भगवत्प्रेम के प्राप्त होने की चित्त में दृढ़ आशा।

६. समुत्कंठा---अपने अभीष्ट भगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रबल और अनन्य लालसा।

७. नाम-गान में सदा रुचि---भगवान् के मधुर और पवित्र नाम का गान करने की ऐसी स्वाभाविक कामना, जिसके कारण नाम-गान कभी रुकता ही नहीं और एक-एक नाम में अपार आनन्द का बोध होता है।

८. भगवान् के गुण-कथन में आसक्ति---दिन-रात भगवान् के गुणगान---भगवान् की प्रेममयी लीलाओं का कथन करते रहना और कदाचित् किसी अनिवार्य कारण से ऐसा न होने पर बेचैन हो जाना।

९. भगवान् के निवास स्थान में प्रीति---भगवान् ने जहाँ-जहाँ मनोहर लीलाएँ की हैं, जो भूमि भगवान् के चरण-स्पर्श से पवित्र हो चुकी है---मिथिला, अवध, वृन्दावनादि---उन्हीं स्थानों में रहने की उत्कट इच्छा।

प्रेम

भाव की गाढ़ता का नाम 'प्रेम' है। यह प्रेम-नाश का हेतु उपस्थित हो जाने पर भी सर्वदा और सर्वथा अक्षुण्ण बना रहता है---'सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे' (उज्ज्वलनीलमणिः, स्थायि० ५७)। यह प्रेम दो प्रकार का होता है।

महिमा-ज्ञान युक्त और केवल विधिमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम महिमा ज्ञानयुक्त है और रागमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम प्रायः केवल अर्थात् ऐश्वर्य ज्ञानशून्य होता है। यही प्रेम क्रमशः अपने माधुर्य का प्रकाश करते हुए, सूर्य की भाँति चित-रूपी नवनीत को अपने प्रभाव से द्रवित करते हुए **स्नेह** के रूप में परिणत होता है। प्रेम की परिणति का नाम ही है स्नेह। यह स्नेह प्रेमविषयक अनुभूति को उसी प्रकार उद्दीप्त कर देता है, जैसे तेल दीपक की ऊष्मा एवं प्रकाश को बढ़ा देता है। इस मनोद्रव को कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ---इस तरह तीन प्रकार का माना जाता है। स्नेह को भी स्वरूपतः **घृतस्नेह** एवं **मधुस्नेह**---दो प्रकार का रसशास्त्रियों ने माना है। स्नेह की उत्कृष्ट परिणति का नाम है **मान,** जिसमें अपने स्वरूप को ढँकने के लिए वाक्य का विकास हो

प्रेम का प्रकार भेद

जाता है। इस मान को भी रसमर्मज्ञोंने उदात्त एवं ललित—दो रूपों में वर्णन किया है। इसी मान में जब विश्रम्भ की—अपने प्राण, मन, देह आदि से प्रेमास्पद के साथ अभेद की भावना जाग्रत हो जाती है, तब उसे **प्रणय** कहते हैं। यह विश्रम्भ भी मैत्र और सख्य—दो प्रकार का माना गया है। किसी-किसी स्थल-विशेष में स्नेह से प्रणय का उद्भव होकर उस प्रणय की परिणति मान में होती है और कहीं-कहीं स्नेह से मान का आविर्भाव होकर वह मान प्रणय के रूप में परिणत होता है। प्रणय की उत्कृष्टता के कारण जहाँ बड़े दुःख का हेतु भी भगवत्प्राप्ति की सम्भावना से सुख के कारण—जैसा प्रतीत होने लगता है, वहाँ प्रणय का नाम **राग** हो जाता है। इस राग के भी दो विभाग माने गये हैं—१ नीलिमा और २ रक्तिमा। इनके भी अवान्तर भेद हैं। विस्तार-भय से उनका उल्लेख नहीं किया गया है। उन्हें रस-ग्रन्थों में देखना चाहिए। अपने इष्ट में अनुभव किये हुए सौन्दर्य, गुण, माधुर्य को जो नित्य नवीन रूप में आस्वादनीय बनाने लग जाय, और स्वयं भी नित्य नवीन बनता चला जाय, वह राग **अनुराग** के नाम से कहा जाता है। इसके आगे **भाव** की अवस्था आती है। अनुराग प्रतिक्षण बढ़ता चला जाता है। जब इसकी सम्पूर्ण पराकाष्ठा की दशा आ जाती है और इस प्रकार यह स्वयंवेद्य रूप में परिणत हो जाता है, तब इसे 'भाव' कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र का जल क्रमशः तरंगों में बढ़ता हुआ ज्वार के समय तट को प्लावित कर देता है, साथ ही तट पर जितनी वस्तुएँ होती हैं, वे सभी निमग्न हो जाती हैं, अब आगे बढ़ने के लिए मानो उसे स्थान नहीं रह जाता, उसी प्रकार अनुराग भी क्रमशः हृदय में बढ़ता हुआ सम्पूर्ण हृदय को परिपूर्ण कर देता है तथा उसके विकास के समय सिद्ध भक्त या साधक भक्त, जो कोई भी पास में हो, उन्हें प्रभावित कर देता है और अन्त में अपने-आपमें ही उसकी बाढ़ केन्द्रित हो जाती है। कई रसशास्त्रकार **भाव एवं महाभाव** को एक ही वस्तु समझते हैं और कई इनमें कुछ भेद की कल्पना करते हैं। जो भेद करनेवाले हैं, उनकी दृष्टि में भाव एवं महाभाव में उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर मिश्री और शुद्ध (उज्ज्वल) मिश्री में होता है। महाभाव की अवस्था व्यक्त होने पर जिसमें यह भाव व्यक्त होता है और उसके मन में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

भगवद्‌रति विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव के साथ मिल कर चमत्कृतिजनक आस्वादन के योग्य बनती है और उस समय उसका नाम भक्ति रस होता है। यों तो यह रस बारह प्रकार का है; उनमें सात गौण और पाँच मुख्य हैं। वीर, करुण, अद्‌भुत, हास्य, भयानक, रौद्र और वीभत्स—ये सात गौण हैं; तथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य हैं।

रति के प्रकार

जिसमें, जिसके द्वारा रति आदि का आस्वादन किया जाता है, उसको 'विभाव' कहते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं—इनमें से जिसमें रति विभावित होती है, उसका नाम है 'आलम्बन-विभाव'; जिसके द्वारा रति उद्दीपित होती है, उसका नाम है 'उद्दीपन-विभाव'। आलम्बन-विभाव भी दो प्रकार का होता है—विषयालम्बन, आश्रयालम्बन। इस भगवद्‌रति के विषयालम्बन हैं भगवान् और आश्रयालम्बन हैं उनके भक्तगण। जिनके द्वारा रति का उद्दीपन होता है, वे क्रिया, मुद्रा, रूप, वस्त्रालंकारादि एवं देश-कालादि वस्तुएँ हैं 'उद्दीपन-विभाव।'

नाचना, भूमि पर लोटना, गाना, जोर से पुकारना, अंग मोड़ना, हुंकार करना, जँभाई लेना, लंबे श्वास छोड़ना, लोकानपेक्षता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का आदि। जिन लक्षणों के द्वारा चित्त के भाव बाहर प्रकाशित होते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भी दो प्रकार के होते हैं—'शीत और क्षेपण'। गाना, जँभाई लेना आदि को 'शीत' और नृत्यादि को 'क्षेपण' कहते हैं।

अनुभाव

भगवान् से साक्षात् अथवा व्यवहित सम्बन्ध रखनेवाले भावों से जो आक्रान्त हो जाता है, उस चित् को 'सत्व' कहते हैं तथा उस 'सत्व' से उत्पन्न हुए को 'सात्विक' कहते हैं। सात्विक भाव आठ हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय (मूर्च्छा)। ये सात्विक भाव 'स्निग्ध', 'दिग्ध' और 'रूक्ष'–भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें स्निग्ध सात्विक के दो भेद होते हैं—मुख्य और गौण। साक्षात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव मुख्य है और किंचित् व्यवधानपूर्वक श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव गौण है।

सात्विक भाव के प्रकार-भेद

जात-रति भक्तों के सात्विक भाव को 'दिग्ध' भाव कहते हैं और रति शून्य किन्तु भक्त से प्रतीत होनेवाले मनुष्य में कहीं-कहीं भगवच्चरित्र के श्रवणादिजन्य आनन्द-विस्मयादि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भाव को 'रूक्ष' भाव कहते हैं।

दिग्ध, रुक्ष

ये सब सात्विक भाव पुनः चार प्रकार के होते हैं—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त। कहीं-कहीं इनके अतिरिक्त सूद्दीप्त नाम का एक पाँचवाँ भेद भी माना जाता है। जो सात्विक भाव अकेले या अन्य सात्विक भावों के साथ किंचित् व्यक्त हो तथा जिनका गोपन सम्भव हो, वे 'धूमायित' कहलाते हैं। एक ही साथ भलीभाँति व्यक्त हुए और कठिनता से गोपन-योग्य दो तीन भावों का नाम 'ज्वलित' है। बढ़े हुए और एक ही साथ व्यक्त होनेवाले तीन, चार या पाँच सात्विक भावों को 'दीप्त' कहते हैं। इन 'दीप्त' भावों को छिपा कर नहीं रखा जा सकता। परमोत्कर्ष को प्राप्त एवं एक ही साथ उदय होनेवाले पाँच, छह या सभी सात्विक भावों का नाम 'उद्दीप्त' है। ये उद्दीप्त भाव ही महाभाव में सूद्दीप्त हो जाते हैं। उस समय इन सबकी पराकाष्ठा हो जाती है।

सात्विक भावों के पुनः चार भेद

इसके अतिरिक्त सात्विकाभास भी होते हैं। उनके चार प्रकार हैं—रत्याभासज, सत्वाभासज, निःसत्व और प्रतीप। मुमुक्षु आदि में उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'रत्याभासज' है। स्वभाव से ही शिथिल हृदय में आनन्द, विस्मय आदि का आभास जब बढ़ जाता है, तब उसे सत्वाभास कहते हैं। और उससे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'सत्वाभासज' है। जो स्वभावतः ऊपर से शिथिल और भीतर से कठिन है, ऐसे चित्त में तथा भगवद्भजन में परायण अन्तःकरण

सात्विकाभास

में सत्वाभास के विना भी कहीं-कहीं जो अश्रु-पुलकादि होते हैं, उन्हें 'निःसत्व' कहते हैं। भगवान् से विद्वेष रखनेवाले जीवों में क्रोध, भय, आदि से उत्पन्न सात्विकभाव को 'प्रतीप' कहते हैं। यहाँ स्मरण रखने की बात है कि ये सात्विकाभास ऐसे लोगों में ही प्रकट होते हैं, जिनका मन स्वभाव से शिथिल अथवा ऊपर से शिथिल, किन्तु भीतर से कठिन होता है।

व्यभिचारी या संचारी भाव

जो भाव विशेष रूप से अभिमुख हो कर स्थायी भाव के प्रति संचरित होते हैं, उन्हें 'व्यभिचारी' कहते हैं। इनका ज्ञान वाणी, भ्रू-नेत्र आदि अंगों तथा सत्व से उत्पन्न अनुभावों के द्वारा होता है। ये व्यभिचारी भाव तैंतीस हैं—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था (भाव-गोपन), स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुप्ति और बोध। इन तैंतीस व्यभिचारी भावों को 'संचारी' भी कहते हैं; क्योंकि इन्हीं के द्वारा भाव की गति का संचालन होता है।

स्थायी भाव

हासादि अविरुद्ध एवं क्रोधादि विरुद्ध भावों को दबा कर जो महाराजा की भाँति प्रतिष्ठित होता है, उसे 'स्थायी भाव' कहते हैं। इस भक्तिशास्त्र में भगवद्विषयिणी रति ही 'स्थायी भाव' कहलाती है। इस रति के 'मुख्या' और 'गौणी' दो भेद माने गये हैं। 'मुख्या' को भी स्वार्था और परार्था—दो प्रकार की माना गया है। पुनः यह 'स्वार्था' और 'परार्था'—रूप मुख्या रति पञ्चविध मानी गई है—'शुद्धा', 'प्रीति', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'प्रियता'। 'शुद्धा' के तीन भेद माने गये हैं—'सामान्या', 'स्वच्छा', और 'शान्ति'। साधारण पुरुषों की जो रति उन-उन प्रीति आदि विशेष अवस्थाओं को नहीं प्राप्त होती, उसे 'सामान्या' कहते हैं। साधकों की जो रति नानाविध भक्तों के संग से उन-उन साधनों के कारण विविध रूप धारण कर लेती है, वह 'स्वच्छा' कहलाती है। जब जिस प्रकार के भक्त का संग होता है, स्फटिक मणि की भाँति उस समय वैसा ही रूप धारण कर लेने के कारण इसे 'स्वच्छा' कहते हैं। प्रायः जिनमें 'शम' (मन की निर्विकल्पता) का बाहुल्य हो, वैसे व्यक्तियों की भगवान् में ममता-गन्ध-शून्य तथा परमात्म बुद्धि से उत्पन्न जो रति होती है, वह 'शान्ति' रति कहलाती है।

अपने से जो न्यूनजन हैं, वे भगवान् के लिए अनुग्रह के पात्र हैं—इस भावना से भगवान् के प्रति आराध्य-बुद्धि लेकर जिनकी रति प्रसरित होती है, उनकी उस रति को 'प्रीति' कहते हैं। भगवान् के प्रति यह आसक्ति भगवान् के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओं में लगी हुई प्रीति को नष्ट कर देने वाली होती है।

भगवान् के प्रति तुल्यत्व (समकक्षता) का अभिमान पोषण करनेवाले जो व्यक्ति हैं, वे भगवान् के सखा कहे जाते हैं। इस तुल्यता के कारण इन लोगों की विश्रम्भ-रूप जो रति होती है, उसे 'सख्य' कहते हैं। यह विश्रम्भ परिहास, प्रहास आदि का कारण होता है, फिर भी इस रति में खेद के लिए अवसर नहीं होता।

भगवान् के जो गुरुजन हैं, वे पूज्य कहे जाते हैं। उनकी जो भगवान् के प्रति अनुग्रहमयी रति होती है, उसे 'वात्सल्य' कहते हैं। यह वात्सल्य लालन, शुभकामना, चिबुकस्पर्श आदि का प्रयोजक होता है।

भगवान् एवं उनकी प्रियतमाओं का परस्पर मिलन आदि करानेवाली जो रति है, उसे 'प्रियता' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'मधुरा' है। इसमें कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाणी, स्मित आदि को स्थान मिलता है।

इनके अतिरिक्त गौणी रति के भी सात प्रकार माने गये हैं—हास्य, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा। इनका विस्तृत विवरण विभिन्न रसग्रन्थों में देखना चाहिए।

साधना के आरम्भ में भी भक्ति है और अंत में भी भक्ति है। भक्ति ही साधना का प्राण है। जीव की आत्मा शिव-स्वरूप है। मोह और अज्ञान से आच्छन्न होने के कारण वह मूर्च्छित पड़ी रहती है। यह शिवरूपी आत्मा व्योम-तत्त्व में अर्थात् विशुद्ध चक्र में शवरूप में अवस्थित रहती है। यह बड़ी ही गम्भीर प्रसुप्ति है। इस सुप्त आत्मा को अर्थात् शवरूप शिव को जगाये विना आत्मज्ञान के पथ पर अग्रसर होना कठिन क्या, असम्भव है। परन्तु इस सोयी हुई आत्मा को जगानेवाली है एकमात्र शक्ति। शक्ति के विना शिव को कोई जगा ही नहीं सकता। अथच, स्वयं शक्ति भी निद्रा से अभिभूत होकर आधार-चक्र में जड़ पिण्ड की भाँति पड़ी रहती है। इसलिए साधक का सर्वप्रधान एवं सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि इस सुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसकी सहायता से शवरूपी शिव को प्रबुद्ध करे। मूलाधार से विशुद्ध-चक्र तक पाँच चक्र पाँच भौतिक तत्त्वों के केन्द्र हैं। शक्ति व्यापक-भाव से सर्वत्र ही सुप्त रहती है। शक्ति है एक और अभिन्न, तथापि चक्र-भेद से उसकी स्थिति पृथक्-पृथक् है। मूलाधार में शक्ति जाग्रत होने से उसके प्रभाव से स्वाधिष्ठान में स्थित शक्ति भी जाग्रत हो जाती है और इसी प्रकार क्रमशः पाँचों चक्रों में शक्ति जाग्रत हो जाती है। जैसे-जैसे शक्ति जाग्रत हो कर ऊपर की ओर उठती है, वैसे-वैसे उसका जागरण क्रमशः अधिक उज्ज्वल और स्पष्ट होता जाता है और चरमावस्था में जब शक्ति पूर्णतः जाग्रत हो जाती, तब पाँचों चक्र खुल जाते हैं और तब लेशमात्र को भी जड़त्व का आभास कहीं रह नहीं जाता। इस अवस्था में, अर्थात् आकाश-तत्त्व में शक्ति के पूर्ण जागरण का फल यह होता है कि शवरूपी शिव जाग्रत हो जाते हैं, आत्मा की अनादि निद्रा भंग हो जाती है और तभी सिद्ध होता है शिव-शक्ति-सामरस्य।

भक्ति और शक्ति

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

मधुर रस के सम्बन्ध में उपनिषदों में यत्र-तत्र संकेत रूप में उल्लेख मिलता है। पुराणों में श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त्त में इसका बड़ा ही भव्य एवं दिव्य वर्णन है। यह निःसंकोच स्वीकार करना होगा कि श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त्त ही मधुर रस के आकर-ग्रन्थों में मुख्य एवं शिरोमणि हैं। वृहद् गौतमीय तंत्र, ब्रह्म संहिता, संमोहन तंत्र आदि ग्रन्थों में भी इस तत्त्व की विशद व्याख्या है। कतिपय अन्य संहिताओं में भी मधुर रस की विवृति है, परन्तु भक्ति का जैसा सांगोपांग मार्मिक, वैज्ञानिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गौडीय वैष्णव-संप्रदाय में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गौडीय वैष्णवों ने इसका पुंखानुपुंख विचार किया है। अस्तु, यहाँ श्री रूप गोस्वामी के 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' के आधार पर मधुर रस के तात्त्विक स्वरूप एवं रहस्य का आकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। तदनन्तर हम दिखायेंगे कि रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना पर इसका क्या प्रभाव है।

जड़ जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन

यह जड़ जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन है। इसमें गूढ़ तत्त्व यह है कि प्रतिफलित प्रतीति स्वभावतः विपर्यय धर्म को प्राप्त कर लेती है, अर्थात् आदर्श जहाँ सर्वोत्तम होता है, प्रतिफलन सर्वाधम, आदर्श जहाँ अत्यन्त निम्न कोटि का होता है प्रतिफलन अत्यन्त उच्च कोटि का। दर्पण में का परम दिव्य अपूर्व रस जड़ जैसे प्रतिबिम्ब उलटा पड़ता है वही दशा यहाँ भी है। चिज्जगत् जगत् में विपर्यस्त होकर जड़ जगत् में स्थूल रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः परम वस्तु रस-रूप-तत्त्व है। उसकी अद्भुत विचित्रता है। इस जगत् में उसकी जो परछाईं पड़ती है उसी का अवलम्बन करके आगे बढ़ा जाय तो उस अतीन्द्रिय रस का अनुभव हो सकता है।[1]

चिज्जगत् के रस और जड़ जगत् के व्यापार

चिज्जगत् के अत्यन्त निम्न भाग में है शान्त रस, उसके ऊपर दास्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर वात्सल्य रस और सबसे ऊपर मधुर रस। इस जड़ जगत् में विपर्यस्त प्रतिफलन के द्वारा मधुर रस सब से नीचे है। उसके ऊपर है वात्सल्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर दास्य रस और सबसे ऊपर शान्त रस। दिव्य मधुर रस की जो स्थिति और क्रिया है, वह इस जड़ जगत् में नितान्त तुच्छ और लज्जास्पद है।

---

१ द्रष्टव्य—जैव धर्म, अध्याय ३१।

चिज्जगत् में पुरुष और प्रकृति का सम्मिलन अत्यन्त पवित्र एवं तत्त्वमूलक है। चिज्जगत् में एक मात्र भगवान् ही भोक्ता है। शेष समस्त चित्सत्त्वगण प्रकृति-रूप में उसकी भोग्या हैं। इस जड़ जगत् में कोई जीव भोक्ता है और कोई भोग्या—इस प्रकार मूलतत्त्व के विरोध में यह सारा व्यापार लज्जाजनक एवं घृणास्पद हो जाता है। तत्त्वतः जीव जीव का भोक्ता हो नहीं सकता। सकल जीव भोग्या है, एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोक्ता हैं। कहाँ जीव जीव का उपभोग और कहाँ कृष्ण और जीव का उपभोग! परन्तु इस हेय के भीतर से भी एक अत्यन्त उपादेय तत्त्व उपलब्ध हो जाता है। कैसे, इसका विवेचन आगे करेंगे।

कृष्ण ही मधुर रस के विषय हैं और उनकी वल्लभाएँ इस रस का आश्रय हैं। दोनों मिल कर रस के आलम्बन हैं। मधुर रस के विषय श्रीकृष्ण हैं परम सुन्दर, परम मधुर, नवजलधर वर्ण, सर्व सल्लक्षणयुक्त, बलिष्ठ, नवयौवनशाली, प्रियभाषी, विदग्ध, कृतज्ञ, प्रेमवश्य, रमणीजनमनोहारी, नित्य नूतन, अतुल्य-केलि, सौन्दर्यशाली, प्रियतम, वंशीवादनशील। उनके चरणों की नखद्युति कोटि-कोटि कंदर्पों का दर्प चूर्ण कर देती है और उनके कटाक्ष से सबका चित्त विमोहित हो जाता है।

मधुर रस के आश्रय और विषय

नायकचूड़ामणि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ जो लीला-विलास है वही है मधुर रस की आत्मा। इसका स्थायी भाव है दोनों की प्रियता या मधुरा रति[1] जो दोनों को दोनों से संयोग की प्रेरणा देती रहती है। युक्त विभावों-अनुभावों के द्वारा जब यह रति भक्तों के हृदय में रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचती है, तब इसे भक्ति-रस-राज 'मधुर रस' कहते हैं।[2] कृष्ण का कान्तत्वेन स्फुरण ही मुख्यतः इस रस का आधार है पर कान्त को दोनों ही भाव में लिया जा सकता है। पतिरूप में, उपपति रूप में। शृंगार रस का तो उपपति रूप में ही परमोत्कर्ष माना जाता है। शृंगार का चिद् व्यापार एक रहस्यमणि की माला की तरह है तो उसमें परकीय मधुर रस को उस मणिमाला में कौस्तुभ विशेष मानना चाहिए। जैसे शान्त से दास्य में, दास्य से सख्य में, सख्य से वात्सल्य में और वात्सल्य से मधुर में इसका अधिकाधिक उत्कर्ष होता चला जाता है, उसी प्रकार स्वकीय की अपेक्षा परकीय में रस अपने चरमोत्कर्ष पर आ जाता है।[3]

---

१ **मिथो हरेर्मृगाक्ष्यश्च संभोगस्यादिकारणम्।
मधुरापरंपर्या प्रियताख्योदिता रतिः॥—उज्ज्वल नीलमणि**

**श्रीकृष्ण की द्विविध लीलाओं में ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की लीला श्रेष्ठ है।
—दे० जीवगोस्वामी का प्रीति-संदर्भः पृ० ७०४-७१५।**

२ **स्वाद्यतां हृदि भक्तानां अनीता।—उ० नी० म०**

३ **अत्रैव परमोत्कर्षः शृंगारस्य प्रतिष्ठितः।—उ० नी० म०**

श्रीकृष्ण का अवतार ही रसास्वादन के लिए हुआ।[१] परकीया या तो कल्पका हो सकती है या प्रौढ़ा। लोकदृष्ट्या, यह भाव गर्हित हो सकता है, पर यह परकीया-भाव ही वैष्णवों का परमादर्श हुआ और इसी का आधार लेकर आत्माएँ अपने-आपको सर्वभावेन श्रीकृष्ण को समर्पित करती रही हैं।[२] श्रीकृष्ण के इसी भाव को लेकर वैष्णव शास्त्रों ने द्वारकामें उन्हें पूर्ण, मथुरा में पूर्णतर तथा व्रज में पूर्णतम माना है। नायक नायिका परस्पर अत्यन्त 'पर' होकर जब राग की तीव्रता द्वारा मिलते हैं, तब एक अद्‌भुत आनन्द रस का संचार होता है। यही है परकीय रस। गोपियों और श्रीकृष्ण का प्रेम अपनी सघनता, प्रच्छन्न कामना तथा विवाह के अव्यक्तत्व के कारण ही परकीया-भाव की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हुआ।

परकीया-भाव की रसात्मक उत्कृष्टता

यह लक्ष करने की बात है कि श्रीकृष्ण की चिन्मयी लीला नित्य है। उस नित्य गोलोक की नित्य चिन्मयी लीला में कृष्ण-कृपा से दिव्य देह से प्रवेश का विषय आगे यथास्थान आयेगा।

नित्य गोलोक और नित्य चिन्मयी लीला

यहाँ इतना निवेदन करना अपेक्षित है कि श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति चिज्जगत् में है और जड़ जगत् में एक पाद विभूति है। एक पाद विभूति चौदहों लोकात्मक मायिक विश्व है। मायिक विश्व एवं चिज्जगत् के बीच 'विरजा' नदी है और विरजा के पार है

परकीया-भाव के सम्बन्ध में विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि 'यन्तः गोकुले स्वीयाऽपि पित्रादिशंकया परकीया इव।' जीव गोस्वामी ने अपने 'प्रीति-संदर्भ (पृ० ६७६–६८६) में विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ विहार 'प्राकृत काम' नहीं है, प्रत्युत् 'शुद्ध प्रेमन्' है और प्रकट लीला में ही स्वकीय-परकीय का प्रश्न उठता है। 'वस्तुतः परमस्वीयाऽपि प्रकटलीलायां परकीयामानाः श्री व्रजदेव्यः।'

१ **रसनिर्यासस्वर्थ अवतारांणि।—उ० नी० म० (पृ० ५४७)**

श्रीकृष्ण संदर्भ में जीव गोस्वामी ने व्रजलीला की रहस्यपरक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि मथुरा और द्वारका की गोपियाँ श्रीकृष्ण की 'स्वरूपा शक्ति' हैं। गोपियों का परकीया-भाव वस्तुतः है नहीं, वह प्रकट वृन्दावन लीला में आभास मात्र है। इतना ही नहीं, उनका कहना है कि व्रजसुन्दरियों का कभी अपने पतियों के साथ संगम हुआ ही नहीं—'न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह संगमः।'

२ Even if orthodox poetics deprecates love to a married woman she is according to Vaisnav's idea, the highest type of heroine and forms the central theme of the later parakiya doctrine of the school in which the love of the mistress for her lover becomes the universally accepted symbol of the soul's passionate devotion to God.

—S. K. De. Vaisnava Faiths & Movement. P. 54

चिज्जगत्। इस चिज्जगत् को वेष्टन-प्राकार की तरह घेरे हुए है ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम। उसे भेद करने पर परव्योन रूप वैकुण्ठ दिखता है। वैकुण्ठ प्रबल है। यहाँ के राजराजेश्वर हैं अनन्त चिद्विभूतिपरिसेवित नारायण। वैकुण्ठ है भगवान् का स्वकीय रस। श्री, भू आदि शक्तिगण स्वकीय स्त्री रूप में उनकी सेवा उस लोक में करती रहती है। वैकुण्ठ के ऊपर है गोलोक। वैकुण्ठ में स्वकीया पुरवनितागण यथास्थान सेवा में तत्पर रहती हैं और गोलोक में व्रज-वनितागण निज रस में कृष्ण-सेवा करती रहती हैं।

व्रज सुन्दरियों के प्रकार-भेद

इन व्रजवनिताओं के कई भेद हैं और इनका प्रकार-भेद काव्यशास्त्र के अनुसार किया गया है—स्वकीया, और परकीया। इनके तीन भेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। इसमें 'मान' के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के भेद हैं—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। नायक के साथ इनके सम्बन्ध के आधार पर पुनः इनके आठ भेद हैं—१—अभिसारिका, २—वासकसज्जा ३—उत्कंठिता, ४—विप्रलब्धा, ५—खंडिता, ६—कलहान्तरिता, ७—प्रोषितभर्तृका, और ८—स्वाधीनभर्तृका। नायक के प्रेम के आधार पर पुनः उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा ये तीन भेद हैं।

सखी भेद

यह तो हुआ सामान्य शास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन, परन्तु धर्मशास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन सर्वथैव नूतन है और भक्ति रसराज मधुर रस में वही गृहीत है—
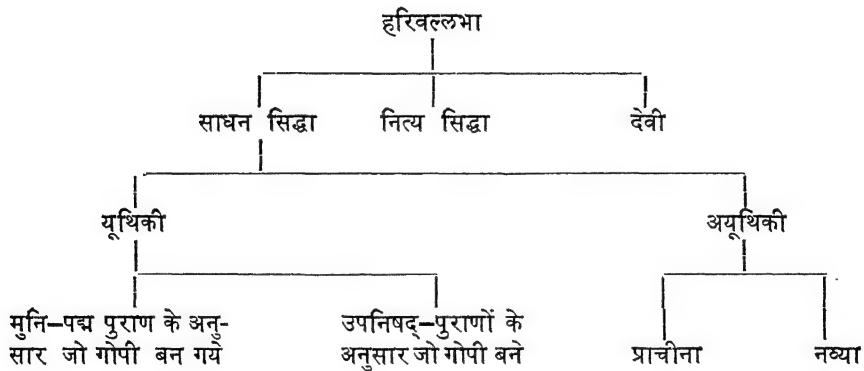
इनमें राधा वृन्दावनेश्वरी, कृष्ण की नित्य सहचरी, परम प्रियतमा ह्लादिनी महाशक्ति है। राधा की सखियाँ पाँच प्रकार की हैं—सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिया सखी और परम प्रेष्ठा सखी।

यह एक बात ध्यान में रहे कि कोटि-कोटि मुक्त पुरुषों में एक भगवद्‌भक्त दुर्लभ हैं। जो लोग अष्टांग योग या ब्रह्मज्ञान के द्वारा मुक्ति पा जाते हैं, वे ब्रह्मधाम में ही आत्म-

व्रजरस

विस्मृति का आनन्द लेते रहते हैं। जो भगवान् के ऐश्वर्यपरायण भक्त हैं वे लोग भी गोलोक में नहीं जाते। वे वैकुण्ठ में अपने भावानुसार भगवान् की ऐश्वर्य-मूर्त्ति की सेवा करते रहते हैं। जो लोग व्रजरस से भगवान् का भजन करते हैं वे ही गोलोक देख पाते हैं। गोलोक में शुद्ध चित्प्रतीति है। गोलोक स्वप्रकाश वस्तु है। भक्तों के हृदय में गोलोक प्रकाशित होता है।
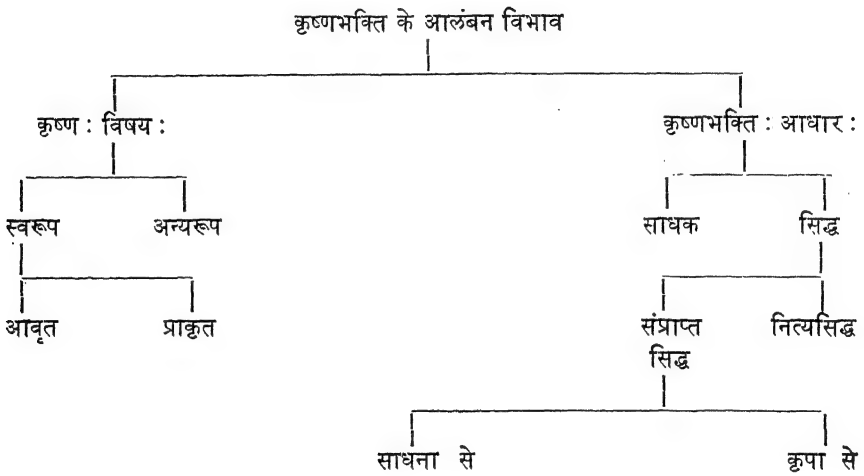
नायक भेद

नायक के चार भेद—(१) अनुकूल, (२) दक्षिण, (३) शठ और (४) धृष्ट। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद—धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत और धीरशांत।

नायक के सहायकों के पाँच भेद हैं—चेट, विट, विदूषक, पीठमर्दक और प्रियनर्मसखा। दूती के दो प्रकार—स्वयं और आप्त। विभिन्न चेष्टाओं और संकेतों से, जैसे भ्रूविलास, अधरदंशन

सहायक भेद

आदि द्वारा जो नायक को नायिका की ओर आकृष्ट करती है वही स्वयं दूती हैं। आप्त दूती वह है जो नायक का पत्र आदि ले जाती है। उनके तीन भेद हैं—अमितार्था, विसृष्टार्था और पत्रहारिका। इनमें शिल्पकारी, दैवज्ञ, लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, सखी, वनदेवी आदि कई भेद हैं। संकेत वाच्य भी हो सकता है, व्यंग्य भी। साक्षात् भी हो सकता है अथवा व्यपदेशन भी।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में पति भाव से और व्रजपुरी में उपपत्ति भाव से लीला करते हैं। सकल व्रजवासिनी ललना व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की परकीया हैं। कारण कि परकीया के अतिरिक्त मधुर रस का अत्यन्त उत्कृष्ट विकास हो नहीं सकता। थोड़ा इसे विस्तार से समझना आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्रियों में जो वामता, दुर्लभता, निवन्धन-निवारणादि प्रतिबंधकता है, वही है कंदर्प का परम आयुध। जहाँ निषेध विशेष है और ललना दुर्लभ है, वहीं नागर का हृदय अतिशय आसक्त होता है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोप हैं। वे गोपों के सिवा किसी से रमण करते नहीं। गोपियाँ जिस भाव से श्रीकृष्ण की भजन-सेवा करती थीं, शृंगार रसाधिकारी साधक भी उसी भाव से कृष्ण का भजन करते हैं। भावनामार्ग से अपने को व्रजवासी मान कर किसी सौभाग्यवती व्रजवासिनी के परिचारिका-भाव से उसके निर्देश पर राधा-कृष्ण की सेवा करे। अपने को प्रौढ़ा जाने विना रसोदय होगा नहीं। यह प्रौढ़ाभिमान ही व्रजगोपीत्व धर्म है।[1]

परकीया में रस की उत्कृष्टता क्यों ?

---
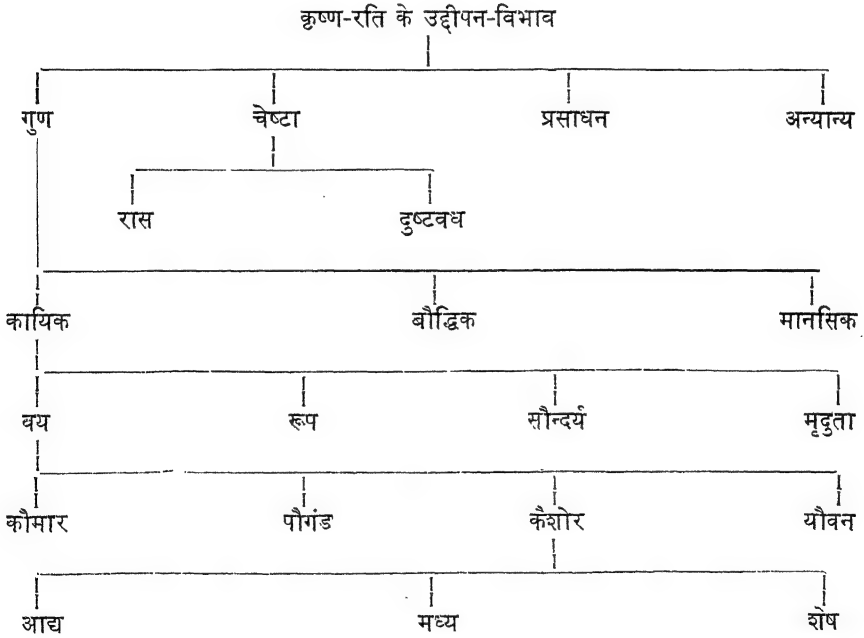
१ श्री रूपगोस्वामी लिखते हैं—

मायाकल्पिततादृक्-स्त्री-शीलनेनानसुयिभिः।
न जातु व्रजदेवीनां पतिभि सह संगमः॥

परन्तु यह प्रश्न उठता है कि पुरुष साधक अपने को 'प्रौढ़ा' किस प्रकार माने ? पुरुष इस 'प्रौढ़ाभिमान' को कैसे सिद्ध कर सकेगा ? उत्तर यह है कि पुरुष मायिक स्वभाववश ही संसार में अपने को पुरुष समझता है। शुद्ध चित्स्वभाव में कृष्ण के अतिरिक्त यावत्जीवमात्र स्त्री है। चिद्गठन में वस्तुतः स्त्री पुरुष चिह्न है नहीं, इसलिए जो कोई भी व्रजवासिनी होने का अधिकार लाभ कर सकते हैं। जिन्हें मधुर रस की स्पृहा है उन्हें तो व्रजवासिनी होना ही पड़ेगा। स्पृहा के अनुरूप साधना करते-करते सिद्धि का उदय होता है।

व्रजवासी भाव
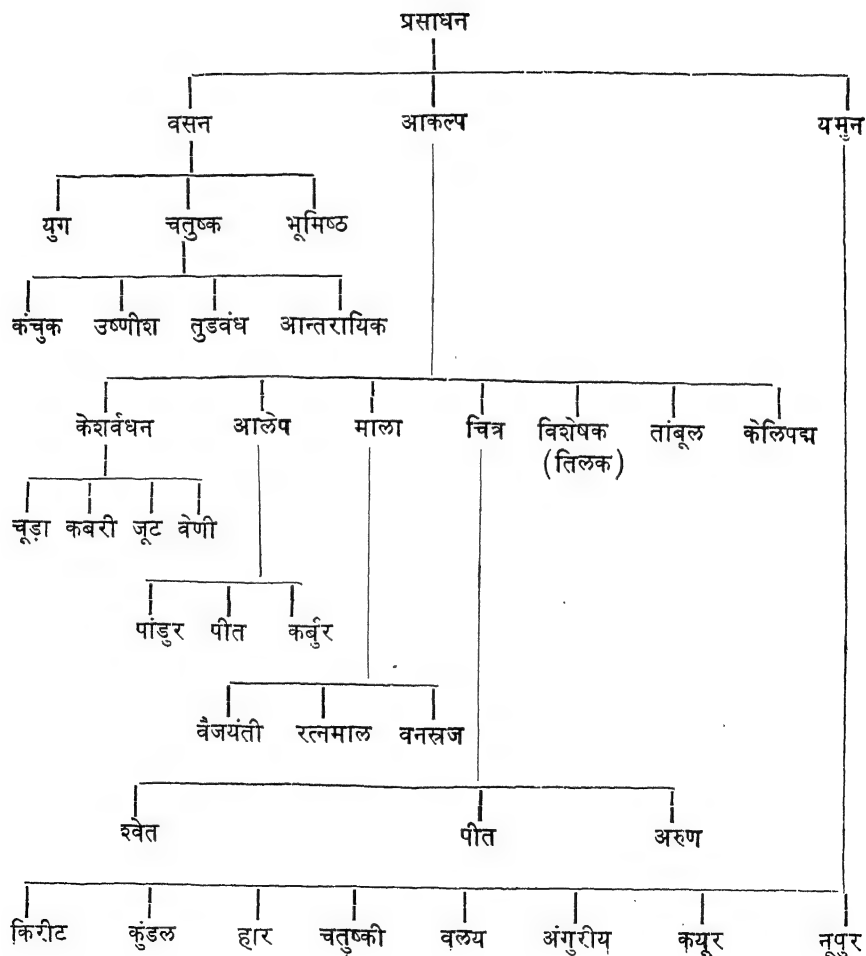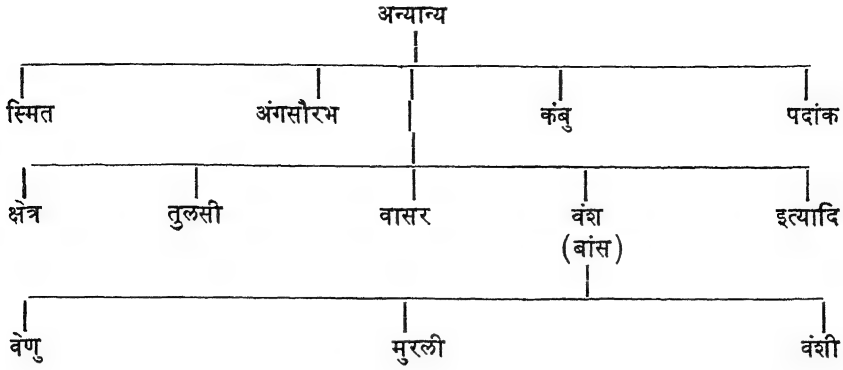
रति के अनुभाव कृष्ण-रति के अनुभाव हैं—नृत्य, विलुठित, गीत, क्रोशन, तनु-मोटन, हुंकार, जृंभन, श्वासभूयन, लोकानपेक्षिता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का।

अष्ट सात्विक भाव स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

स्थायी भाव काव्य-शास्त्र के अनुसार रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद, परन्तु भक्ति-शास्त्र के अनुसार श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

व्यभिचारी भाव ३३ निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध।

मुख्य भक्ति-रस के रंग आदि

रस— शान्त	प्रीत	प्रेयस्	वात्सल्य	मधुर प्रिया प्रीतम्
भाव— शान्त	विश्वस्त	मित्रता	स्नेह	श्याम
रङ्ग— श्वेत	चित्र	अरुण	शोण	उज्ज्वल
देवता—कपिल	माधव	उपेन्द्र	नृसिंह	कृष्ण

उद्दीपन-विभाव की विशेषता

ऊपर हम उद्दीपन-विभाव का विवरण प्रस्तुत कर चुके हैं। उद्दीपन में तटस्थ वस्तुओं में वसन्तागमन, कोकिल-कूजन, मेघमाला का घिर आना, चन्द्रदर्शन आदि मुख्य हैं। कायिक सौन्दर्य में रूप, लावण्य, मार्दव आदि मुख्य हैं। यौवन की तीन अवस्थाएँ हैं—नव्य, व्यक्त और पूर्ण। श्रीकृष्ण का नाम, चरित, लीला, उदाहरणार्थ वंशीवादन, गोदोहन, गोवर्धनधारण आदि विशेष रूप से उद्दीपन विभाव में आते हैं। वृन्दावन, इसकी नदियाँ, कुञ्ज, वृक्ष-गुल्मलता, पुष्प, पक्षी, पशु आदि भी प्रेम को उद्दीप्त करते हैं।

अनुभावों की विशेषता

अनुभावों का विवरण भी ऊपर की तालिकाओं में आ गया है। उसमें बाईस अलंकार, सात उद्भास्वर और तीन अङ्गज हैं। अङ्गज अनुभावों में भाव, हाव, हेला और स्वभावज में लीला, विलास, विच्छित, मोट्टायित आदि मुख्य हैं। 'लीला' का अर्थ है प्रियतम के चरित का क्रीड़ामय अनुकरण, 'विलास' का अर्थ है क्रीड़ा के संकेत, 'विच्छित्ति' का अर्थ है अलंकरण और 'मोट्टायित' का अर्थ है इच्छा का स्पष्ट उल्लेख। ये सब तो काव्य-शास्त्र की परम्परा में भी हैं, पर सात उद्भास्वर सर्वथा नये हैं—वे हैं नीवीविस्रंसन, उत्तरीय-स्खलन-,जृंभा-जँभाई लेना, केश-संस्रन इत्यादि। ये वस्तुतः विलास और मोट्टायित के अन्तर्गत आ जाते हैं। द्वादश वाचिक अनुभावों में हैं आलाप, विलाप, प्रलाप, अनुताप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश और व्यपदेश।

अष्टसात्विक भाव तो काव्य-शास्त्र की तरह ज्यों-के-त्यों यहाँ भी हैं। परन्तु उनकी चार अवस्थाएँ हैं—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त।

मधुरा रति के भेद (नायिका की दृष्टि से)

नायिका की दृष्टि से मधुरा रति के तीन भेद हैं—(१) साधारणी–आत्मतर्पणैकतात्पर्या–जिसमें अपनी ही तृप्ति मुख्य है–जैसे कुब्जा। यह प्रेमावस्था तक जाती है। (२) समञ्जसा–उभयनिष्ठारति–जिसमें अपना सुख और कृष्ण का सुख समान रूप से अपेक्षित है– जैसे रुक्मिणी। यह अनुराग अवस्था तक जाती है। (३) समर्था केवल कृष्णार्थ–जैसे गोपियाँ। यह महाभाव अवस्था तक जाती है। रामभक्ति-साहित्य में इसी को (१) स्वसुखी (२) चित्सुखी और (३) तत्सुखी नाम से अभिहित किया गया है जो वस्तुतः और भावतः सर्वथा इससे अभिन्न है।

१. प्रेम—प्रेम का अर्थ है भावबन्धन। यही है रति का अमर बीज और उत्कृष्टता की दृष्टि से इसके तीन भेद होते हैं—प्रौढ़, मध्य और मन्द। २. स्नेह—यह प्रेम की विकसित एवं उन्नीत अवस्था है। शब्द सुनकर, रूप देखकर या स्मृति में हृदय द्रवित होता है; क्योंकि 'हृदय-द्रावण' इसका मुख्य लक्षण है। इसमें भी उत्कृष्टता की दृष्टि से तीन भेद हैं—श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ। इस स्नेह के दो मुख्य भेद हैं—

मधुरा रति के भेद (भावों के अनुसार)

घृत-स्नेह और मधु-स्नेह

(क) घृत-स्नेह—अखण्ड घृतधारावत्, उत्कण्ठा–घृत की तरह तरल भी घनी भी। रति का उदय।

(ख) मधु-स्नेह—अखण्ड और मधुर। रति स्थिर हो जाती है।

३. मान – अर्थात् प्रेमातिरेक की अवस्था में उपेक्षा का अभिनय। इसके दो भेद—उदात्त (घृतस्नेहवत्) और ललित (मधुस्नेहवत्)।

४. प्रणय—विश्रम्भ—इसके मुख्य दो भेद (१) मैत्र और (२) सख्य। उदात्त और ललित के सम्पर्क में इन दोनों प्रकार के प्रणय के फिर दो भेद होते हैं—सुमैत्र और सुसख्य। विकास-क्रम में इसकी गति होती है—

प्रणय के भेद तथा विकासक्रम

स्नेह प्रणय मान

अथवा—

स्नह मान प्रणय

५. राग—शृङ्गार में दुःख का सुख में बदलना। इसके दो रङ्ग माने गये हैं (१) नीलिमा या (२) रक्तिमा। नीलिमा के फिर दो भेद—(१) नीली राग—जिसका रङ्ग न बदले और जो अव्यक्त हो या श्यामा राग—धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त होनेवाला और जरा-जरा प्रकाशित। रक्तिमा राग के भी दो भेद—कुसुंभ राग—हलके रङ्ग का—जो जल्दी दूसरे राग में घुल जाय और दूसरे रागों को अभिव्यक्त करे या मञ्जिष्ठ राग—स्थायी और स्वतन्त्र।

राग और उसके भेद

६. अनुराग—नित नूतन प्रेम। इसके कई स्तर हैं—(१) परवशी भाव—आत्म-समर्पण और (२) प्रेमवैचित्य—विरह की स्नेहमयी आशंका (३) अप्राणि-जन्म—प्यारे के स्पर्श पाने के लिए निर्जीव वस्तुओं के रूप में जन्म लेने की आकांक्षा और (४) विप्रलम्भ विस्फूर्त्ति—विरह में प्रिय की झलक।

७. भाव या महाभाव—(१) रूढ़—जहाँ सात्विकों की परम उद्दीप्त स्थिति हो गई है। सम्भोग या विप्रलम्भ दोनों ही अवस्थाओं में (क) निमिष मात्र को भी विरह असह्य हो जाता है, (ख) आसन्न जनता के हृदय को विलोड़ित करने की शक्ति होती है, (ग) एक क्षण कल्प की तरह और एक कल्प क्षण की भाँति हो जाता है, (घ) प्रियतम की सुखमय अवस्था में भी

आर्त्ति-शंका के कारण खिन्नता और (ङ) मोह, मूर्च्छा आदि के अभाव में भी पूर्ण आत्म-विस्मरण।[1]

(२) अधिरूढ़—उपर्युक्त रूढ़ भाव की विशेष उत्कर्ष दशा। इसके दो प्रकार—(क) मोदन—सात्विकों का अत्यन्त उद्दीप्त सौष्ठव—जो केवल राधा-वर्ग में मिलता है। इसीका और विकसित रूप है (ख) मादन सात्विकों का सूद्दीप्त सौष्ठव—प्रिया के आलिङ्गन में होते हुए भी प्रिय का मूर्च्छित होना[2]—तथा स्वयं असह्य दुःख स्वीकार करके भी प्रिय के सुख की कामना[3]—तथा सारे संसार को दुःखी कर डालने की प्रवृत्ति[4]—पशुलोक का रोदन[5]—मृत्यु का वरण करके भी प्रियतम के साथ अङ्ग-सङ्ग की अभिलाषा—और अन्त में है दिव्योन्माद। दिव्योन्माद की अवस्था में नाना प्रकार की अवश क्रियाएँ तथा चेष्टाएँ हो सकती हैं जिसे 'उद्घूर्ण' कहते हैं। प्रियतम के किसी मित्र से मिलने पर नाना प्रकार की बातचीत हो सकती है जिसे 'चित्रजल्प' कहते हैं। इस चित्र-जल्प की दस अवस्थाएँ होती हैं—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभि-जल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

'मादन' का अर्थ है समस्त भावों का अंकुरित हो जाना। यह केवल राधा में मिलता है।

पुनः मादन — इसका लक्षण यह है—मान के कारण न होने पर भी मान करना और प्रियतम के साथ सम्भोग की अवस्था में भी विरहाशंका या नायक के सम्बन्ध की विविध बातों का चिन्तन-स्मरण।

मधुरा रति का स्थायी भाव ही मधुर रस या शृङ्गार रस हो जाता है। इसके दो भेद हैं—सम्भोग और विप्रलम्भ। विप्रलम्भ के अनेक अवान्तर भेद हैं।[7]

---

१ **पंचत्वं तनुरेतु भूतनिवहा स्वांशे विशांतु स्फुटम्।**
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्॥
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयांगने।
व्योम्नि व्योम तवीयवर्त्मनि धरा तत्तालवन्तेऽनिलाः॥

—श्री जीव गोस्वामी

२ **'कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्छना।'**
३ **'असह्यदुःखस्वीकरादपि तत्सुखकामिता।'**
४ **ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वम्।'**
५ **'तिरश्चामपि रोदनम्।'**
६ **'मृत्युस्वीकारात् स्वभूतैरपि तत्संगतृष्णा।'**
७ **'रसार्णव-सुधाकर' में विप्रलंभ के चार प्रकार हैं—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा।**

१. पूर्वराग—प्रसुप्त प्रेम, मिलन के पूर्व का प्रेम। प्रियतम के प्रथम दर्शन, श्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन से उद्भूत प्रणय-पिपासा। यह 'प्रौढ़', 'समञ्जस' या 'साधारण' भेद से तीन प्रकार का होता है। प्रौढ़ पूर्वराग की दस दशाएँ हैं—

लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव (दुर्बलता), जडिमा (शरीर का सुन्न पड़ जाना), वैवग्र्य (व्यग्रता), व्याधि (पीला पड़ जाना), उल्लास, मोह (मूर्च्छा) और मृत्यु।

समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ

समञ्जस पूर्वराग की दस दशाएँ हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कीर्त्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति।

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ हैं जो समञ्जस पूर्वराग की प्रथम छह के समान ज्यों-की-त्यों अभिलाष से आरम्भ होकर विलाप पर समाप्त हो जाती हैं।

२. मान[1] —प्रेम की परिणति में बाधा डालने वाला तथा प्रणयोल्लास को उभारने वाला क्रोधाभास। प्रेमास्पद की कोई चेष्टा या 'हरकत' देखकर, सुनकर या अनुमान कर जो मान होता है वह 'सहेतुक' है। मान का दूसरा भेद है निर्हेतुक या कारणाभाससहित। मधुर शब्द से, उपहार आदि से, आत्म-प्रशंसा से अथवा उपेक्षा से मान का उपशमन हो जाता है।

३. प्रेमवैचित्र्य—अर्थात् प्रेमास्पद की उपस्थिति में भी विरह की आशंका।

४. प्रवास—प्रिय के वियोग में मानसिक क्षोभ। प्रवासजन्य क्लेश की दस दशाएँ हैं—चिन्ता, जागरण, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

नित्य लीला में कृष्ण का व्रजदेवियों से कथमपि वियोग नहीं होता, क्योंकि इनका मिलन नित्य है। प्रकट लीला में ही श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियों को प्रवासजन्य क्लेश होता है।

नित्य लीला में नित्य संयोग अर्थात् प्रकट लीला में बाहर-बाहर से देखने भर को ही श्रीकृष्ण का मथुरागमन होता है, वास्तव में तो सच यह है कि 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'

संयोग-श्रृङ्गार के दो भेद (१) मुख्य और (२) गौण। मुख्य संयोग है साक्षात् प्रकट मिलन और गौण है स्वप्नादि में मिलन। इन दोनों के पुनः चार भेद हैं[2] —(१) संक्षिप्त, (२)

---

१ 'मान' शब्द भी 'रस' की भाँति बड़ा ही व्यापक और गंभीर अर्थ वाला है। हर्ष, विषाद, भय, आशा, अहंकार और क्रोध, प्रेम और वितृष्णा आदि का सम्मिलित रूप 'मान' अपने-आपमें कितना रहस्यमय शब्द है, बाहर-बाहर से उदासीनता और भीतर-भीतर से प्रबल आसक्ति। इसके व्यक्त रूप की कल्पना ही की जा सकती है, चित्रण नहीं।

२ 'रसार्णव-सुधाकर' ने भी संयोग के चार उपर्युक्त भेद माने हैं। जीव गोस्वामी ने पूर्वराग के बाद संभोग के चार भेद माने हैं और उनके नाम हैं—संदर्शन, संस्पर्श, संजल्प, संप्रयोग।

संकीर्ण, (३) सम्पन्न और (४) समृद्धिमत्। इसके अनेक प्रकार हैं—दर्शन, स्पर्श, मन्द-मन्द वार्तालाप, राह रोकना, रास, जलक्रीड़ा, वृन्दावन-क्रीड़ा, यमुना जल-केलि, नौका-विहार, चीर-हरण, वंशी-चोरी, पुष्पचौर्य, दान-लीला, कुञ्जों में आँख-मिचौनी, मधुपान, कृष्ण का स्त्रीवेश धारण, कपट-निद्रा, द्यूत-क्रीड़ा, वस्त्राकर्षण, नखार्पण, बिम्बाधरसुधापान, निधुवनरमणादि संप्रयोग, चुम्बन, आलिङ्गन आदि-आदि और अन्त में सम्भोग। सम्प्रयोग की अपेक्षा लीला विलास में अधिक सुख है।

संयोग-शृंगार के भेद उपभेद

लीला के दो भेद—प्रकट लीला और अप्रकट लीला। वन-वृन्दावन में प्रकट लीला, मन-वृन्दावन में अप्रकट लीला और नित्य-वृन्दावन में नित्य लीला। परन्तु प्रकट व्रज-लीला के भी दो भेद हैं—नित्य और नैमित्तिक। व्रज में जो अष्टकालीन लीला है वही नित्य है और पूतना-वधादि दूरप्रवासादि नैमित्तिक लीला है। निशान्त, प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायं, प्रदोष और रात्रि-भेद से अष्टकालीन लीला।[1]

लीला के भेद

ऊपर बहुत संक्षेप में हमने गौड़ीय मतानुसार मधुर रस के स्वरूप की चर्चा प्रस्तुत की है। मधुर रस का द्विविध रूप है—सामान्य रूप में वह सर्वगत व्यापक है परन्तु विशेष रूप में वह परि-च्छिन्न है। सामान्य रूप में वह उपनिषदादि में विद्यमान है। मूल में एक अद्वय वस्तु, परन्तु आनन्द के लिए दो; स्त्री-पुरुष अथवा प्रकृति-पुरुष। ये दोनों परस्पर पूरक हैं और एक दूसरे को पाकर पूर्ण होना चाहता है।[2] इसी प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय की एकता त्रिपुरी-भङ्ग द्वारा होती है। मिलन की पूर्णता के आधार पर ही भाव का विकास होता है। पूर्ण मिलन—निःसंकोच और निरावरण मिलन-मधुर में ही होता है।

मधुर रस की उपासना संसार की प्रायः सभी साधनाओं में प्रकट या गुप्त रूप में विद्यमान है। ईसाई सन्तों और सूफी फकीरों की अनुभूतियों में मधुर रस की ही धारा है। समस्त सगुण उपासना में मधुर भाव की स्वतः स्फूर्त्ति है, क्योंकि जीव अपने-आप को पूर्णतः देकर अपने प्राणाराम को पूर्णतः पा लेना चाहता है। जीव-जीवन की यह एक परम सामान्य, परन्तु साथ ही परम विलक्षण विशेषता है कि वह अपने प्यारे का प्रियतम बनना चाहता है, जिसे प्यार करता है उसके प्यार पर अपना एकाधिकार या इजारा चाहता है।[3] सगुण साधना में यह चाह सहज

---

१ **निशान्तः प्रातः पूर्वाह्णो मध्याह्नश्चापराह्णकः। सायं प्रदोषरात्रिश्च कालाष्टौच यथाक्रमम्॥**

२ One longs for another for perfection. —*M. M. G. N. Kaviraj*
इसी को प्रो० रायस (Royce) 'Man's homing instinct.' **कहते हैं।**

३ **इश्क अल्लाह महज़ुब अल्लाह।—अल बस्तामी**
The lover of God is the beloved of God
He who chooses the Divine has been chosen by the Divinei.
—*Sri Aurobindo.*

रूप में बलवती एवं फलवती होती है, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जो अत्यन्त गुह्य अर्थात् 'एसाटरिक' साधनाएँ हैं उनमें भी किसी-न-किसी रूप में मधुर भाव की उपासना बनी हुई है। ईसाई तथा सूफी साधना में मधुर भाव का प्रसङ्ग हम यथास्थान कुछ विस्तार से प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम इतना ही देखना चाहते हैं कि भारतीय गुह्य सहज साधनाओं में मधुर भाव का क्या स्वरूप है और उसकी पूर्ण निष्पत्ति का क्रम क्या है। क्योंकि बौद्ध धर्म में भी प्रज्ञापारमिता तथा आदि बुद्ध के सम्मिलन से 'महासुख' की उपलब्धि होती है। तन्त्रादि में भी इसकी विशेष व्याख्या है। नाथ, सिद्धों और सन्तों में भी इस उपासना का विशेष उल्लेख है। वैष्णव-सहजिया-सम्प्रदाय में इसका साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस प्रकार ऐतिहासिक क्रम से देखने पर ही मधुर रस की साधना हमारे देश की परम प्राचीन साधना है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

सहज साधनाओं की पृष्ठभूमि

भारतवर्ष की समस्त गुह्य (एसाटरिक) धर्म-साधनाओं की पृष्ठभूमि तथा लक्ष्य एक है। वासना के विवर्जन या तिरस्करण के स्थान पर वासना के शोधन एवं उन्नयन द्वारा मानव-मन के अन्दर सोये हुए दिव्य आनन्द को उद्‌बुद्ध एवं उल्लसित करना ही इसका लक्ष्य है। इसके लिए शरीर की दृढ़ता, मन की निर्मलता, बुद्धि की तीक्ष्णता एवं आत्मा की विजयोत्कण्ठा अनिवार्यतः आवश्यक है। समस्त सहज साधनाओं में वाणी, मन, श्वास, वीर्य और प्राण पर सहज रूप से नियन्त्रण स्थापित कर इनका ऊर्ध्व दिशा में उन्नयन आवश्यक माना गया है। लक्ष्य इनका है समरस की स्थिति में प्रवेश करना। यह स्थिति योग से प्राप्त हो या प्रेम से प्राप्त हो— साधन-भेद या प्रस्थान-भेद जो भी हो—लक्ष्य में कोई भेद नहीं है।

समरस की अवस्था

समरस की अवस्था दिव्य आनन्द की वह अवस्था है जिसमें दो का एकीकरण होता है। सहजिया यह मानते हैं कि मनुष्य समस्त जीवन पर्यन्त संघर्ष झेलकर भी काम को सर्वथा निर्मूल या उच्छिन्न नहीं कर सकता। अतएव इसका उन्नयन (सब्लीमेशन) कर इसे ही दिव्य प्रेम और दिव्य आनन्द अर्थात् महासुख और महानुभव का निर्मल एवं अमोघ साधन बनाया जा सकता है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य राग द्वारा ही बँधता और राग द्वारा ही मुक्त होता है— 'रागेन बध्यते जीवो रागेनैव प्रमुच्यते।'

समस्त गुह्य साधनाओं की एक सामान्य मान्यता यह भी है कि एक से दो हुआ और दो से अनेक। इसीलिए एक वचन, द्विवचन तब बहुवचन। 'स एकाकी ना रमतएकोऽहं बहु स्यां प्रजायेम' का भाव यही है। एक से ही यह अनेक है, परन्तु इस अनेक के प्राण में पुनः उसी 'एक' में लौट आने की प्रबल वासना है जिसमें से वह निकला है। इसीलिए इन आन्तर गुह्य साधनाओं का चरम और परम लक्ष्य है द्वैत का सर्वथा निरसन और अद्वय स्थिति की उपलब्धि। इस अद्वय स्थिति में दो का एकीकरण हो जाता है अथवा एक ही में दोनों समाविष्ट होते हैं जिसे उनकी भाषा में अद्वय, मिथुन, युगनद्ध, यामल, युगल, समरस, सहज आदि नामों से अभिहित किया गया है। हिन्दू-तन्त्रों ने परात्पर तत्त्व के द्विधात्मक रूप को शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति के

रूप में स्वीकार किया है। और, इन अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओं ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता को स्वीकार करते हुए यह माना है कि मूल तत्त्व में, जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है, वह पिण्ड में भी है। शिवका निवास सहस्रदल कमल —सहस्रार में है और शक्ति का मूलाधार में। शक्ति मूलाधार में सर्प की तरह गेंडुर मारे बैठी रहती है। साधना के द्वारा इसे जगाकर मूलाधार से उठाकर सहस्रार में शिव के साथ इसका सम्मिलन कराया जाता है। शिव शक्ति का यह सम्मिलन ही आनन्द का आदि विलास है।

इसी सन्दर्भ में यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रत्येक पुरुष-शरीर के वाम भाग में नारी और दक्षिण भाग में पुरुष तत्त्व विद्यमान रहता है, इसी से सदाशिव के अर्धनारीश्वर रूप में वामार्ध में उमा और दक्षिणार्ध में महेश्वर हैं। इसी प्रकार वैष्णव सहजिया में रसिक साधक वामार्ध में राधा, दक्षिणार्ध में कृष्ण, बाईं आँख में राधा और दाहिनी आँख में कृष्ण हैं——ऐसा मानते हैं।[1] अस्तु, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारी में पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व विद्यमान है——पुरुष में पुरुष-तत्त्व की प्रधानता है नारी में नारी-तत्त्व की, परन्तु है दोनों में दोनों ही। ठीक जैसे वाम और दक्षिण का अर्थ है नारी और पुरुष वैसे ही वाम का अर्थ है इड़ा और दक्षिण का पिङ्गला, वाम का अर्थ है प्राण और दक्षिण का अर्थ है अपान। साधना के द्वारा इन्हें 'सम' करके प्राण-प्रवाह को सुषुम्ना में प्रवाहित किया जाता है। यही 'सुषुम्ना-साधना' है।

इस दृश्य जगत् में पुरुष और नारी का जो भेद हम देखते हैं वह भेद परात्पर तत्त्व में भी ज्यों-का-त्यों विद्यमान है——शिवशक्ति रूप में। शिवशक्ति का सामरस्य ही परात्पर सत्य है। अस्तु, प्रत्येक पुरुष और नारी शरीर में शिव और शक्ति विद्यमान है। अस्तु; परम सत्य के साक्षात्कार के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुष अपनेको शिव रूप में और प्रत्येक स्त्री अपने को शक्ति रूप में अनुभव करे और तब परस्पर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सम्मिलन द्वारा परम आनन्द की उपलब्धि करे। समस्त अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओं की यही चरम परिणति है। समस्त गुह्य साधनाओं के अन्दर यही है परम रहस्य, जिसका सन्धान साधक और साधिका करते हैं।

बौद्धों का 'सहज'

बौद्ध सहजिया साधना में, जिसका हम कुछ विस्तार से विवेचन आगे करेंगे, परात्पर तत्त्व 'सहज' है——वह आत्म-अनात्म-निरपेक्ष है। शून्यता और करुणा——दूसरे शब्दों में 'प्रज्ञा' और 'उपाय' उस सहज के प्रधान लक्षण हैं। यह 'प्रज्ञा' और 'उपाय' और कुछ नहीं है बल्कि हिन्दू-तन्त्रों के शिव और शक्ति हैं। 'प्रज्ञा' (नारी-तत्त्व) और 'उपाय' (पुरुष-तत्त्व) का सम्मिलन ही बौद्ध सहजिया साधना का लक्ष्य है। प्रज्ञा और उपाय का एक और भी अर्थ है और वह है प्रज्ञा इड़ा, उपाय पिङ्गला। इन दोनों का सम करने पर प्राण-प्रवाह सुषुम्ना से होकर ऊपर

---

१ वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन।
दुई नेत्रे विराजमान राधा कुंड श्याम कुंड दुई नेत्रे हम।
सजल नयन द्वारे भावप्रेमे आस्वादय।

की ओर उठता है। इस प्रकार प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से योगी 'अन्तः सम्मिलन' की साधना में प्रवेश पाता है। उपाय ही है बज्रसत्व जिसका सहस्रार में निवास है और प्रज्ञा है शक्ति जो मूलाधार में रहती है। अन्तर्मिलन का अर्थ है नाभिदेश से शक्ति को उद्बुद्ध कर सहस्रार में शिव के साथ युगनद्ध करना।

वैष्णव सहजिया में राधाकृष्ण तत्त्व

वैष्णव सहजिया साधना में चिर भोक्ता और चिर भोग्या के रूप में क्रमशः कृष्ण और राधा की उपासना चलती है और इस साधना विशेष में यह मानकर चलना होता है कि प्रत्येक पुरुष कृष्ण और प्रत्येक स्त्री राधा है। 'आरोप' के द्वारा जब पुरुष अपनेको कृष्ण और स्त्री अपनेको राधा रूप में अनुभव करने लगती है तब पुरुष और स्त्री का सम्मिलन तत्त्वतः पुरुष स्त्री का सम्मिलन न होकर कृष्ण और राधा का सम्मिलन हो जाता है। बौद्ध सहजिया में योगसाधना की मुख्यता है, पर वैष्णव सहजिया में प्रेमसाधना या रस-साधना की।

नाथ पंथ की उपासना सूर्य चंद्रतत्त्व

नाथपन्थ में युगलोपासना एक और ही रूप में व्यक्त हुई। यहाँ सूर्य और चन्द्र प्रतीक रूप में लिये गये—सूर्य कालाग्नि रूप में और चन्द्र अमृत रूप में। नाथ सिद्धों का लक्ष्य रहा है दिव्य शरीर में अमृतत्व की उपलब्धि। हठयोग की नाना क्रियाओं, बन्ध, मुद्रा आदि द्वारा तथा रसायन द्वारा काया-शोधन और काय-सिद्धि की प्रणाली सिद्धों में विशेष रूप में पाई जाती है। नाथ सिद्धों की काय-सिद्धि और रस-सिद्धि की यह साधना रसायन-सम्प्रदाय से बहुत मिलती-जुलती है, भेद इतना ही है कि रसायनियों में रससिद्धि की ही प्रधानता रही जहाँ नाथ पन्थ में यौगिक क्रियाओं की। साथ ही वैष्णव सहजियों की भाँति नाथ पन्थियों ने भी अन्तरङ्ग साधना के लिए प्रेम को ही सर्वोपरि मान्यता प्रदान की। सहज उपासना में बौद्ध सहजियों का लक्ष्य 'महासुख' और वैष्णव सहजियों का लक्ष्य 'परम प्रेम' रहा; पर दोनों ही प्रकार के लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह अनिवार्यतः स्वीकार किया गया कि सबल और निर्मल शरीर के विना यह साधना हो नहीं सकती, इसीलिए सभी प्रकार की अन्तरङ्ग साधनाओं में किसी-न-किसी रूप में हठयोग की प्रधानता बनी रही।

इन साधनाओं की चर्चा कुछ विस्तार में करके हम यह देखेंगे कि प्रकट या अप्रकट रूप में, कियदंश में ही सही, इन्होंने रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना को प्रभावित किया है।

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्म-साधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्ध सहजिया

महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय इस देश में चीनी यात्री फाहियान आया था और उसने बौद्ध धर्म के सूत्रों की प्रतिलिपि की। उसके लेखों से प्रकट है कि बौद्ध धर्म जनसाधारण में अतिशय लोकप्रिय हो गया था और स्थान-स्थान पर बौद्ध संघारामों की भरमार थी, जहाँ बौद्ध साधक रहते थे। फाहियान के बाद हुएनसंग इस देश में महाराजा हर्षवर्धन के शासनकाल में आया था, ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी में। उसने भी सैकड़ों संघारामों का विवरण दिया है जिनमें सहस्र-सहस्र बौद्ध साधक निवास करते थे। शीलभद्र के प्रति हुएनसंग की बड़ी श्रद्धा थी। यह शीलभद्र नालन्दा केआचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और बाद में उस विश्वविद्यालय में प्राचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। शीलभद्र के शिष्य और भतीजे बुद्धभद्र भी नालन्दा के एक प्रख्यात पंडित और अध्यापक थे और बौद्ध योगाचार के मर्मज्ञ थे।

बौद्धधर्म की लोकप्रियता

कहते हैं, इन्होंने अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मंजुश्री से प्रेरणा पाई थी। अस्तु; बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान तथा बज्रयान। हीनयान त्रिपितकों के आधार पर व्यवस्थित अपरिवर्त्तनवादी शाखा है। इसमें आचार विचार, संयम का कसाव खूब तगड़ा है। यह बौद्ध धर्म का 'आर्थोडक्स स्कूल' कहा जा सकता है। ये लोग अपने को 'थेरवादी' (स्थविरवादी) कहते हैं।

बौद्ध योगाचार में अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मंजुश्री

दूसरी शाखा जिसे 'महायान' कहते हैं सुधारवादी (रिफार्मर स्कूल) है। हीनयान है अपरिवर्त्तनवादी (नो चेंजर) और महायान है परिवर्त्तनवादी (चेंजर)। हीनयान समय के साथ चलना नहीं चाहता था। वह रूढ़ियों को पकड़े रहा, परन्तु महायान समय के साथ चलनेवाला आवश्यक सुधार,संशोधन और उदारता के भाव को लेकर आगे बढ़ा और यह स्वाभाविक ही था कि इसका अधिक-से-अधिक लोगों पर प्रभाव पड़ता। परिणामतः, इस शाखा के अनुयायियों की संख्या बेतरह बढ़ी।

दो शाखाएँ : हीनयान तथा बज्रयान

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के अनन्तर अनुयायियों में घोर विवाद चला कि तथागत के वचनों का वास्तविक अभिप्राय क्या है। इसी के लिए बौद्ध धर्मानुयायियों के सम्मेलन या 'संगीति' होने लगी पहली। संगीति मगध की राजधानी राजगृह में हुई, परन्तु लोगों को इससे संतोष नहीं हुआ, अस्तु पुनः कौशाम्बी में दूसरी संगीति हुई जिसमें बौद्ध संघ में दो प्रधान भेद हो गये—(१) स्थविरवादी और (२) महासंघिक। 'विनय' में किसी प्रकार का भी परिवर्त्तन स्वीकार न करनेवाले कट्टर अपरिवर्त्तनवादी भिक्षु स्थविरवादी (थेरवादी) हुए और उसमें आवश्यक परि-वर्त्तन, संशोधन, सुधार आदि स्वीकार कर चलनेवाले तथा संख्या में अधिक होने के कारण दूसरा दल 'महासंधिक' कहलाया। इस प्रकार शनैः-शनैः बौद्ध धर्म में शाखाएँ-प्रशाखाएँ होने लगीं और उनके अलग-अलग 'कैंप' हो गय।[1]

'संगीति'

'यान' का अर्थ है रथ, सवारी। साधना के ये मार्ग अपनी-अपनी सवारियों की प्रशंसा में और अन्तिम लक्ष्य की संसिद्धि में अपनी विशिष्टता एवं अजेय अमोघता का डंका पीट रहे थे।

महासंधिकों ने भगवान् बुद्ध के 'मानुसी तनु' की अवहेलना कर उन्हें मानव-लोक से ऊपर उठाकर दिव्यलोक में पहुँचा दिया। इतना ही नहीं, आगे चलकर वेतुल्लवादियों ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि भगवान् बुद्ध कभी इस धराधाम पर आये ही नहीं और न कभी उपदेश दिया। बात यहीं रुक जाती तो कोई विशेष अनर्थ न होता। इन्होंने यह भी माना कि एकाभिप्रायेण मैथुन का सेवन किया जा सकता है। इसी से तांत्रिक बौद्धधर्म या वज्रयान का आविर्भाव हुआ, ऐसा निःसन्देह मानना पड़ता है।

भगवान् बुद्ध का 'मानुसी तनु'

परन्तु, इस विषय पर थोड़ा जम कर विचार करना होगा कि बौद्ध धर्म में गुह्य साधना का प्रवेश क्यों और कैसे हुआ और वज्रयानी शाखा के आविर्भाव तथा विकास का हेतु क्या है, कहाँ है।

त्रिपिटकों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध की मूल शिक्षा में ही तंत्र-मंत्र के वीज सन्निहित थे। स्थविरवादियों ने भी इसे स्वीकार किया है कि तथागत में अनेक अलौकिक सिद्धियाँ थीं। वे यह मानते हैं कि बौद्ध धर्म में लौकिक कल्याण तथा पारलौकिक कल्याण का समान रूप से विधान है। इस लोक में प्रज्ञा, आरोग्य, वैभव आदि की उपलब्धि के लिए स्वयं बुद्ध ने 'मंत्रधारिणी' आदि तांत्रिक विषयों की शिक्षा दी, ऐसा विचार शान्तरक्षित का है।[2] 'गुह्य' समाज तंत्र' में भी यह उल्लेख है कि तथागत ने अपने अनुयायियों

गुह्य साधना का प्रवेश क्यों और कैसे?

---

१ देखिये डा० चन्द्रधर शर्मा : इंडियन फिलॉसफी, पृ० ८६।

२ तदुक्तमन्त्रयोगादिनियमाय विधिवत् कृतात्।
प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्टधर्मोऽपि जायते॥—तत्व-संग्रह, श्लोक ३४८६

को शिक्षा देते समय कहा कि जब मैं दीपंकर बुद्ध और कश्यपबुद्ध के रूप में प्रकट हुआ था तब मैंने तांत्रिक शिक्षा इसलिए नहीं दी कि मेरे श्रोताओं में उन शिक्षाओं को ग्रहण करने की क्षमता न थी। 'विनय-पिटक' की दो कथाओं में अलौकिक सिद्धियों का विवरण है। अभिप्राय यह है कि बौद्धधर्म में तंत्र-मंत्र का प्रवाह-क्रम स्वयं भगवान् बुद्ध से ही चला, परवर्ती क्षेपक नहीं है।[1]

महायान उदारतावादी परिवर्त्तनवादी एवं क्रान्तिवादी शाखा के रूप में प्रकट हुआ। इसी का विकास 'मंत्रयान' और पुनः बज्रयान के रूप में हुआ। मंत्रयान सौम्यावस्था है और उसी का उग्ररूप है बज्रयान। पालवंशीय राजा रामपाल ने

महायान, मंत्रयान वज्रयान

जगद्दल के महाविहार में आलोकितेश्वर और महातारा की मूर्तियों की प्रस्थापना की। जगद्दल विहार में मोक्षकार गुप्त एक सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री थे और उनका लिखा 'तर्कशास्त्र' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। उन्हीं के भाई शुभंकर गुप्त ने 'सिद्धैकवीर तंत्र' नामक एक तंत्र ग्रंथ पर भाष्य लिखा और उसी विहार में रहनेवाले धर्मकर ने कृष्ण की 'संवर व्याख्या' का अनुवाद किया। अभिप्राय यह कि धीरे-धीरे बौद्ध धर्म में तंत्र-साधना की ओर साधकों और विद्वानों का ध्यान विशेष रूप में आकृष्ट होने लगा।

इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी ढूँढ़ने के लिए कोई विशेष तूल नहीं करना होगा। योगाचार से जनसाधारण की कुतूहल-वृत्ति को कुछ समय तक तो परितोष मिला अवश्य, परन्तु विज्ञानवाद की गूढ़ गुत्थियों एवं गहन सिद्धान्तों ने मानव मन को

मनोवैज्ञानिक कारण

बेतरह थका दिया और लोग इससे ऊबने लगे और भागने लगे। वे कुछ ऐसी चीज़ चाह रहे थे जिसके द्वारा सुखोपलब्धि अधिक-से-अधिक मात्रा में और कम-से-कम समय में हो सके। इसी प्रवृत्ति विशेष ने बज्रयान को जन्म दिया। इसमें बौद्ध देवों और देवियों की विशेषतः बज्र सत्त्व और महातारा की मूर्त्तियाँ युगनद्ध रूप में मिलती हैं। इसे बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव भी कहा जा सकता है।

ऊपर हम कह आये हैं कि महायान शाखा में धर्म का लोकप्रिय रूप खूब खिला। सामान्य जनता धर्म की गूढ़ गुत्थियों, सिद्धान्त या रहस्य में रस नहीं ले सकती। उसे तो एक ठोस आधार चाहिए, धर्माचरण की एक विधि या प्रणाली मिलनी चाहिए, जिसे वह सहज रूप में चरितार्थ करती रहे और विकास की ओर उन्मुख रहे। महायान ने धर्म और साधना के 'साधारणीकरण' पर विशेष लक्ष्य रखा और फलस्वरूप असंख्य देवी-देवताओं की परिकल्पना, मंत्र, जप, पूजा, अर्चा आदि का सन्निवेश सहज रूप में हो गया और महायान की एक स्वतन्त्र शाखा मंत्रनय अथवा मंत्रयान बन गई। इस प्रकार महायान की दो शाखाएँ हुई—(१) पारमितानय और (२) मंत्रनय।

---

१ पं० बलदेव उपाध्याय—'बौद्ध दर्शन', पृ० ४२५-३०।

महायान ने भगवान् बुद्ध को मानव से उठाकर दिव्य रूप में प्रतिष्ठित किया। परमतत्व ही हुए आदि बुद्ध और उनके चार काय माने गये –(१) धर्मकाय, (२) संभोग काय, (३) निर्माण काय और (४) सहज काय। इसमें मात्र निर्माण काय ऐतिहासिक है। धर्मकाय, संभोग काय और सहज काय ऐतिहासिक नहीं है। महायान का लक्ष्य रहा—(क) दुःख निवृत्ति, (ख) निर्वाण, (ग) बुद्धत्वलाभ। आदि बुद्ध का सहज काय ही परमार्थतः सत्य है। शुचिता के ज्ञान होने से यह विशुद्ध है। वास्तव 'करुणा' का उदय इसी काय में होता है। अतः यह 'ज्ञानवज्र' है। धर्मकाय निर्विकल्पक चित्त की भूमि होने से इसे 'चित्तवज्र' या 'धर्म योग' कहा जाता है। संभोगकाय में मंत्र का उदय होता है। इसे 'वाग्वज्र' या मंत्रयोग' कहते हैं। 'निर्माणकाय' का संवंध जाग्रत दशा से है। इसी के द्वारा, भगवान बुद्ध क्लेश का नाश करते हैं। यही कायवज्र तथा 'संस्थान योग' कहलाता है।[1]

आदि बुद्ध के धर्मकाय, संभोग-काय, निर्माणकाय, सहजकाय

'असंग' योगाचार सम्प्रदाय का प्रबल समर्थक था। बौद्ध धर्म में तंत्रवाद के प्रवेश का कारण भी वही माना जाता है। कहते हैं मैत्रेय ने उसे इस पथ में दीक्षित किया था। कुछ लोगों का कहना है कि माध्यमिक सम्प्रदाय के नागार्जुन ने गुह्य साधना की ओर प्रवृत्ति का सूत्रपात किया। नागार्जुन के गुरु बुद्ध वैरोचन और बुद्ध वैरोचन के गुरु दिव्य बोधिसत्व वज्रसत्व थे। कुछ विद्वानों के मत में असंग के 'महायान सूत्रालंकार' में बौद्ध धर्म के मिथुन भाग के अभ्यास के स्पष्ट संकेत हैं। उक्त 'सूत्रालंकार' में भगवान् बुद्ध के दिव्य गुणों में 'प्रवृत्ति' का उल्लेख बार-बार आता है। उसमें एक श्लोक है—

असंग और नागार्जुन

> मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्वं लभ्यते परम्।
> बुद्ध-सौख्यविहारेऽथ दारा-संकेश-दर्शने।।

इस श्लोक में आए हुए 'मैथुनस्य परावृत्तौ' का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न ढंग से किया है। सिलवन लेवी का कथन है कि यहां मैथुन का अर्थ है बुद्ध और बोधिसत्व का सम्मिलन। विंटरनीज़ का कथन है कि 'परावृत्ति' का अर्थ है—उपेक्षा, विरति। महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज 'परावृत्ति' का अर्थ रूपान्तर, शोधन (ट्रांसफारमेशन) करते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि स्वयं बुद्ध ने मुद्राओं, मण्डलों और तंत्रों का उपदेश अधिकारी विद्वानों को दिया था।

---

१ सेकोदेश टीका—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, पृ० ५५-५९।

जो हो, पर इतना तो निश्चित है कि तंत्र भारतीय साधना की परंपरा में उतना ही पुरातन है जितना वेद। मनुष्य सदा से ही सिद्धि का सरल मार्ग खोजता आ रहा है। अस्तु तंत्र सदा ही ज्ञान-विस्तार का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता रहा है। जहां कहीं भी पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का सन्निवेश है, वही 'तंत्र' है। बाद में इसमें पुरश्चरण, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण-मोहन तथा पंचमकार का भी प्रवेश हो गया।

तंत्र की प्राचीनता

तंत्रों की विशेषता यह रही है कि यहां अधिकार-भेद के अनुसार साधना की शैलियां और विधियों का निर्देश है और इसीलिए यहां पशुभाव, वीर भाव और दिव्य भाग—ये तीन भाव हैं तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार—ये सात आचार हैं। इन भावों और आचारों की चर्चा हम कुछ विस्तार में यथास्थान करेंगे। यहां इतना ही अभीष्ट है कि तंत्र-साधना भारत की परम प्राचीन साधना है। प्राचीन वैदिक युग में भी तंत्र-मंत्र का प्रयोग था; पर परवर्तीकाल में भ्रष्ट हो गया था। गहराई में जाकर देखा जाय तो बौद्ध तंत्र और हिन्दू तंत्र में मूलतः कोई बहुत असामान्य भेद नहीं है। वे मूलतः एक हैं और परस्पर अविरोधी हैं। अस्तु।

तीन भाव और सात आचार

मंत्रतत्त्व में महायानी बौद्धों ने 'धारिणी' पर बहुत बल दिया है। धारिणी का अर्थ है 'धार्यते अनया इति' अर्थात् जो चित्त को सम अवस्था में धारण कर सके। उसके मुख्यतः चार प्रकार हैं—धर्म धारिणी, अर्थ धारिणी, मंत्र धारिणी और धारिणी। धर्म धारिणी की साधना से साधक में स्मृति, प्रज्ञा और बल का संचार होता है। अर्थ धारिणी से धर्म का आन्तरिक और गुह्य अर्थ खुलता है, मंत्र धारिणी से पूर्णता की प्राप्ति होती है और धारिणी से शान्ति की उपलब्धि होती है।

'धारिणी' और उसके चार भेद

बौद्ध साधना का मार्ग जब जन-साधारण के लिए उन्मुक्त और प्रशस्त हो गया तब सहज ही लोग अपने-अपने विश्वास, परम्परा, मान्यताएं एवं संस्कार के कारण देवी देवता में आस्था, भूतप्रेत, पिशाच, हाकिनी, डाकिनी की पूजा, जादू-टोना, मोहिनी, मारिणी, उच्चाटनी आदि विद्याओं में विश्वास आदि लेकर इस पथ में आ गये और साथ ही साधनाक्रम में शनैः शनैः हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, राजयोग को भी आदर का स्थान मिलने लगा। आरम्भ में मंत्र, मुद्रा, मण्डल, अभिषेक पर विशेष बल था; पर कालान्तर में मिथुन योग का भी सन्निवेश होता गया। तंत्र में मुद्रा का अर्थ है—गुह्य साधना के लिए किसी कुमारी का वरण। धीरे-धीरे साधना के अंग रूप में मत्स्य, मांस, मुद्रा, मदिरा और मैथुन का प्रवेश हो गया और वज्र यानी शाखा में 'पंच मकार'की उपासना ही मुख्य बन बैठी। 'पंच मकार' शब्द का व्यवहार

बौद्ध साधना में मिथुन-योग का प्रवेश क्यों और कैसे ?

तो इस साधना में नहीं मिलता; पर प्रायः मदिरा, मांस और मत्स्य की चर्चा आती है और मुद्रा तथा मिथुन के प्रयोग की चर्चा एक सामान्य बात हो गई थी।

'पंचमकार' की उपासना का रहस्य, यहां संक्षेप में, प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। 'पंचमकार' में, जैसा ऊपर कह आये हैं, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन है। इनका ठीक-ठीक अर्थ न जानने के कारण ही इस सम्बन्ध में नाना प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई हैं। इन पांचों तत्वों का सम्बन्ध अन्तर्योग से है। ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रदल कमल से स्रवित अमृत ही 'मद्य' है।[1] जो साधक ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पाप की बलि देता है, वही 'मांस' का सेवन करने वाला है[2] अथवा जो वाणी का संयम करता है, वही मांसाहारी है[3]। बाईं नाड़ी है इड़ा और दाहिनी है पिंगला--जिसे क्रमशः 'गंगा'-'जमुना' भी कहते हैं। इसमें प्रवाहित होने-वाले श्वास-प्रश्वास ही 'मत्स्य' हैं। श्वास-प्रश्वास कर नियमन का प्राण-वायु को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही 'मत्स्य सेवन' है।[4] असत् संग का त्याग कर सत्संग सेवन ही 'मुद्रा' है[5]। सुषुम्ना और प्राण का संगम ही मैथुन' है।[6] ये शब्द प्रतीकात्मक थे और इनकी साधना अन्तर्योग की थी; परन्तु आगे चलकर अधिकारी न होने के कारण और मानव प्रकृति निम्नगामिनी होने के कारण लोग इसे वाह्य और स्थूल रूप में ग्रहण करने लगे।

पंच मकार का रहस्य

---

१ व्योम-पंकज-निस्यन्द-सुधापानरतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्यपायिनः॥ --कुलार्णवतंत्र

कुण्डल्याः मिलनादिन्दोः श्रवते यत् परामृतम्।
पिबेत योगी महेशानि! सत्यं सत्यं वरानने॥ --योगिनी तंत्र

२ पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लव नयेत् चित्तं मांसाशी स निगद्यते॥ --कुलार्णवतंत्र

३ मा शब्दात् रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रियान्।
सदा यो भक्षयेत् देवी, स एवं मांस-साधकः॥ --आगमसार

४ गंगायमुनोर्मध्ये मत्स्यो द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः॥ --आगमसार

५ सत्संगेन भवेत् मुक्तिरसत्संगेषु बन्धनम्।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्राः परिकीर्तिताः॥ --विजयतंत्र

६ इड़ापिंगलयोः प्राणान् सुषुम्नायो : प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवाऽयन्तु परः शिवः॥
तथोस्तु संगमो देवैः सुरत नाम कीर्तितम्॥ --मेरुतंत्र

वज्रयान का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। इसमें एकमात्र सहजावस्था[1] पर ही अधिक बल है। यह सहजावस्था ही बौद्ध सहजियों की साधना एवं सिद्धि की चरमावस्था है। इसी को निर्वाण, महासुख, सुखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि नामों से अभिहित करते हैं। अर्थात् इस अवस्था में मन और प्राण का संचार नहीं होता, जहाँ सूर्य और चन्द्र को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है, वहीं योगी विश्राम लेता है। यह सहजावस्था ही उन्मनी अवस्था है। वही महासुख की अवस्था है।[2] यह अवस्था न प्रवचन, न मेधा, न बहु श्रवण से प्राप्त होती है। यह प्राप्त होती है—एकमात्र गुरु कृपा से।

सहजावस्था ही महासुख, सुख राज महामुद्रा की अवस्था है

गुरुकृपा का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध में बौद्ध साधना का अपना वैशिष्टय है और वह यह कि गुरु शून्यता और करुणा की युगनद्ध मूर्त्ति है। बोधिचित्त की प्राप्ति के लिए शून्यता और करुणा अनिवार्यतः आवश्यक हैं। चित्त की सम अवस्था और जगत् के प्रति करुणा का भाव है—साधनात्मक बोधिचित्तत्व।

गुरुकृपा का स्वरूप-वैशिष्टय

शून्यता और करुणा के संयोग की चरम स्थिति को 'धर्ममेघ' की स्थिति कहते हैं। इसी प्रकार गुरु हैं—प्रज्ञा और उपाय के मिथुनीभूत रूप। न केवल प्रज्ञा से और न केवल उपाय से ही बुद्धत्व की प्राप्ति हो सकती है। दोनों का योग अनिवार्य है तभी बुद्धत्व की उपलब्धि हो सकती है।[3]

'धर्ममेध' की स्थिति

---

१ यह सहजावस्था सरहपा के शब्दों में ऐसी है—

जन्ह मन पवन न संचरइ रवि ससि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिय उवेश।।

२ जयति सुखराज एकः कारणरहितः सदोदितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः।।

अर्थात् इस सुखराज की जय हो जो कारण रहित है और जिसका निर्वचन करते समय स्वयं सर्वज्ञ भी वचन से दरिद्र हो गये। सेकोद्देश टीका पृ० ६३ पर, सरहपाद का वचन।

३ न प्रज्ञा केवलमात्रेण बुद्धत्वं भवति नाप्युपायमात्रेण।

किन्तु यदि पुनः प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवतः एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवतः, तदा भुक्तिर्मुक्तिर्भवति। —ज्ञानसिद्धिः १३

यह शून्यता और करुणा तथा प्रज्ञा और उपाय को ही पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व मान लिया गया और इनके अद्वय मिलन को ही साधना की परिणति। उपाय पुरुष तत्त्व है और प्रज्ञा नारी तत्त्व। शून्यता नारी तत्त्व और करुणा पुरुष तत्त्व।

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय

अर्थात् शून्यता प्रज्ञा-नारीतत्त्व शक्तितत्त्व, करुणा-उपाय पुरुष तत्त्व-शिवतत्त्व। प्रज्ञा और उपाय का योगिक भाषा में और नाम है। वह है—क्रमशः इड़ा और पिंगला, चन्द्रनाड़ी और सूर्यनाड़ी,बाम और दक्षिण, स्वर और व्यंजन।

अवधूतिका

इड़ा और पिंगला के वीच जो सुषुम्ना है, उसे ही बौद्ध साधना में 'अवधूतिका' कहते हैं।

इस 'अवधूतिका' के मार्ग से ही बोधिचित्त निर्माण-काय या निर्माण चक्र (नाभिदेश-स्थित) से ऊपर चढ़ता है और क्रमशः धर्मकाय अथवा धर्मचक्र (हृदयस्थित) पर पहुंचकर संभोग-काय या संभोग चक्र (ग्रीवास्थित) पर आता है और अन्ततः उष्णीश कमल में पहुँचकर परम आह्लाद को प्राप्त होता है। यही महासुख की अवर्णनीय अवस्था है, जहां प्रज्ञा और उपाय, शून्यता और करुणा का महामिलन संघटित होता है।[1]

'युगनद्ध' पर कुछ और विचार करना चाहिए। क्योंकि यही है बौद्ध सहजियों की सहज साधना का प्राण। 'पंचकर्म' के पांचवें अध्याय में युगनद्ध कर्म की बड़ी ही स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या है। वहां यह लिखा है कि 'युगनद्ध' वह स्थिति है, जहां

युगनद्ध तत्व

'संक्लेश' और 'व्यवदान' की अभिज्ञा के द्वारा संसार का सर्वथा निरसन हो जाता है, परम निवृत्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह ग्राहक और ग्राह्य का, सान्त और अनन्त का, प्रज्ञा और उपाय का, शून्यता और करुणा का, पुरुष और नारी का पूर्णतः सम्मिलन-सामरस्य है। शरीर, मन और वचन से 'तथता' में स्थित होकर फिर इस दुःखपूर्ण संसार की ओर लौटना—केवल इसलिए कि 'संवृत्ति' और 'परमार्थ' का सम्यक् ज्ञान हो जाय और फ़िर इस संवृत्ति और परमार्थ को पूर्णतः मिलाकर एक कर देने का नाम 'युगनद्ध' है।[2]

---

१ उभयोर्मिलनं यच्च सलिल क्षीरयोरिव।
अद्वयाकार - योगेन प्रज्ञोपायं तदुच्यते॥
चिन्तामणिरिवाशेषं जगतः सर्वदा स्थितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सम्यक् प्रज्ञोपाय स्वभावतः॥

—हेवज्रतंत्र

२ द्रष्टव्य—प्रो० हर्बर्ट वांन गुंथर का 'यगुनद्ध' ग्रन्थ, चौखंभा सिरीज स्टडीज अ० ३।

'अद्वयवज्र संग्रह' के 'युगनद्ध प्रकाश' में हम देखते हैं कि शून्यता और करुणा का एकान्त और नितान्त सम्मिलन सर्वथा अनिर्वचनीय है, अचिन्तनीय है। वे चिर सम्मिलन की स्थिति में नित्य विद्यमान हैं। उक्त ग्रन्थ के 'प्रेम पंचक' में यह बताया गया है कि शून्यता करुणा की पत्नी है और इनके इसी भाव में अखण्ड मिलन को 'सहज प्रेम' कहा जाता है। युगनद्ध या अद्वय या समरस स्थिति एक ही है। शैव और शाक्त तंत्रों में जिसे 'मैथुन' या 'कामकला' कहा गया है, वह भी यही है।[१] इन तंत्रों में परात्पर तत्त्व की दो शक्तियां—चल-अचल, ऋणात्मक और धनात्मक (Static and; Dynamic Positive & Negative) के मिलन और परम सत्य की उपलब्धि का जहां विवरण है, वहां पुरुष-तत्त्व और नारी तत्त्व अथवा बीज और योनि का प्रसंग प्रतीकात्मक रूप में आया है। आरंभ में तो यह प्रतीकात्मक साधना अपने स्वस्थ गुह्य साधना के रूप में रही; परन्तु बाद में चलकर क्या हिन्दू-तंत्र और क्या बौद्ध तंत्र ने इनके स्थूल और भ्रष्ट रूप को ही साधना के रूप में स्वीकार कर लिया। मानव-प्रकृति की अधोगामिनी प्रवृत्ति के लिए यह एक सहज आधार मिल गया। परिणाम यह हुआ कि शून्यता और करुणा अथवा प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन को बौद्ध तंत्रों ने देवताओं और देवियों के शारीरिक सम्मिलन को आदर्श स्थिति के रूप में अंकित किया—चित्रों में भी और मूर्तियों में भी।

शून्यता और करुणा

'समरस का वास्तविक अर्थ है—विश्व की विविधता में एकता की अनुभूति, तथा समस्त विषमताओं के भीतर एक अविच्छिन्न अखण्ड आनन्द -विलास की धारा। 'हेवज्रतंत्र' में यह उल्लेख है कि 'सहजावस्था' में न प्रज्ञा का भाव रहता है न उपाय का, द्वैत का किसी प्रकार अनुभव ही नहीं होता। ऐसी स्थिति में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ सब समान है।[२] योग साधना के द्वारा साधक एक ऐसी स्थिति में प्रवेश करता है, जहां से सारा संसार आनन्द का एक अपरिमेय पारावार-सा दीखने लगता है, जिसमें सारी द्वैतभावना, विषमता, द्विधा, विरोध या भेद नष्ट हो चुके होते हैं और आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। यही 'महासुख' की सहजावस्था है। महासुख की इस सहजावस्था को बौद्ध तंत्र प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा के सम्मिलन से सिद्ध होता मानते हैं और इसी को हिन्दू-तंत्र शिव और शक्ति के 'समरस' होने से उद्भूत मानते हैं। अतः 'महासुख' बौद्धों में साधक की एक विशिष्ट स्थिति का नाम है जो लगभग 'निर्वाण' का पर्याय-वाची है। महासुख भावात्मक या धनात्मक है और निर्वाण है अभावात्मक या ऋणात्मक। परन्तु

'समरस' का वास्तविक अर्थ

---

१ दे० कामकला विलास १२, पद २, ५, ७।

२ हीन मध्वोत्कृष्टान्य एव अन्यानि यानि तानि च।
सर्वे तानि समानीति द्रष्टव्यं तत्वभावतः॥

—हेवज्रतंत्र (ह० लि०) पृ० २२

प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के 'आब्सक्योर रिलिजस कल्ट' के पृ० ३४ से उद्धृत।

यह लक्ष्य करने की बात है कि 'निर्वाण' ही बौद्ध साधना का केन्द्र-विन्दु एवं परम लक्ष्य है। उसका विवरण 'पर', 'शान्त', 'विशुद्ध', 'पुनीत', 'शान्ति', 'अक्खर', ध्रुव', 'सच्चा', 'अनन्त', 'अजात', 'असंखता', 'एकता', 'केवलं', 'शिव' आदि शब्दों में किया गया है।[१]

तंत्रों ने भी प्रायः 'निर्वाण' और 'महासुख' को एक ही अर्थ में व्यवहृत किया है। निर्वाण का अर्थ ही हैं--सतत् सुखमय स्थिति, आनन्द और मुक्ति का केन्द्र, अखण्ड परमानन्द, समस्त वस्तुओं का बीज, आप्त कामना की पराकाष्ठा, बुद्धों का परम संस्थान--'सुखावती'।

'सुखावती'

मुद्रा--मनः स्थिति और आनन्द की साधन-प्रक्रिया यों है--
मुद्रा--कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा, समयमुद्रा--
मनःस्थिति--विचित्र, विपाक विमर्द, विलक्षण
आनन्द, आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द, सहजानन्द

'महासुख' की अवस्था को भी प्रायः इन्हीं शब्दों में व्यक्त किया गया है। न इसका आदि है, न मध्य और न अन्त। प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से महासुख की जो स्थिति होती है, वही वज्र सत्त्व की स्थिति है। 'हेवज्र-तंत्र' में महासुख का एक बड़ा ही भव्य और उदात्त रूप मिलता है--सुख ही है परात्पर तत्व, यही है धर्मकाय, यह स्वयं भगवान् बुद्ध है। सुख का रंग काला है, नीला है, रक्त है, श्वेत है, हरा है, यही सारा विश्व ब्रह्माण्ड है, यही प्रज्ञा है, यही उपाय है, यही स्वयं युगल-मिलन है, यह सत् है, असत् है, यह स्वयं भगवान् बज्रसत्व है।

ऊपर हम कह आये हैं कि वज्र-यान का ही दूसरा नाम सहजयान है और इसमें 'महासुख' को ही केन्द्र में रखकर समस्त साधना चलती है तथा इस साधना-शैली में योगाभ्यास के साथ मिथुन योग ऐसा घुला मिला है कि इन्हें पृथक् किया ही नहीं जा सकता। अस्तु, महासुख ही है समस्त गुह्य (Esoherie) साधनाओं का सार-समुच्चय और यही है समस्त गुह्य धर्म-साधनाओं की 'सहजावस्था', जिसका भी उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। 'सहज' शब्द जितना सीधा-सादा देखने में लगता है, उतना यह वास्तव में है नहीं। यों इसका अर्थ है 'सह जायते इति सहजः।[२]

---

१ Rhys Davids A Dictionary of Pali language **में 'निर्वाण' के पर्यायवाची शब्दों में**--The harbour of refuge,t he cool cave, the island amidst the floods, the place of bliss, emancipation, libration, safety, tranquillity, the home of ease, the calm, the end of suffering, the medicine for all suffering, the unshaken, the ambrosia, the unmaterial, the imperishable, the abiding, the further shore, the unending, the bliss of effort, the supreme joy, the ineffable, the holy city **इत्यादि-इत्यादि दिए हैं।**

२ **तस्मात् सहज जगत्सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।**
स्वरूपमेव निर्वाणं विशुद्धाकार--चेतसः॥ **पृ० ३९**

यद्यपि महासुख की साधना में सहज स्थिति की उपलब्धि होती है; परन्तु यह भूलकर भी नहीं मानना चाहिए कि यह 'देहज' है—

'देहस्थोऽपि न देहजः'। यह सहज स्थिति स्वसंवंध है। वहाँ न ज्ञाता है न ज्ञेय और न ज्ञान।

शक्ति जब वज्र-काय या सहजकाय में पहुंचती है तब वह स्वयं 'शून्यता' हो जाती है और साधक का शुद्ध बुद्ध-चित्त ही भगवान् वज्रसत्व बन जाता है। इस प्रकार जब वज्रसत्व और शून्यता का पूर्ण सम्मिलन साधक के सहज काय में हो जाता है तब वह 'महासुख' की स्थिति को प्राप्त होता है। चित्त महासुख की मदिरा पीकर मदमत्त हो जाता है, स्वयं वज्रसत्व हो जाता है। इस सहज विलास की स्थिति में बोधिचित्त के उदय से अज्ञान वैसे ही भाग जाता है जैसे सूर्य के उदय से अंधकार। यही है परम ज्ञान और परम आनन्द की चरम परिणति जो बौद्ध साधना का लक्ष्य है।

सहज विलास की स्थिति

(ख) सिद्ध सम्प्रदाय और रसेश्वर दर्शन में मधुरभाव

सिद्ध सम्प्रदाय अपने देश में गुह्य धर्म साधना का एक परम प्राचीन सम्प्रदाय है जिसमें काय साधना पर विशेष बल है। इस शरीर को ही सुदृढ़ कर अमरत्व लाभ की साधना ही इस सम्प्रदाय की अपनी निजी विशेषता है। सिद्धों का रसायनियों से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'सर्व-दर्शन-संग्रह' में रसायनियों को भी एक संप्रदाय विशेष के रूप में सायण-माधव ने स्वीकार किया है और रसायन के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों से इस दर्शन की विशेषताओं का निदर्शन किया है। रसायनियों में 'रस' विशेष के द्वारा शरीर को ही अजर-अमर बनाने तथा अमर-सिद्धि लाभ की व्यवस्था है। चीन और तिब्बत में रसायनियों का बहुत पहले बड़ा ही व्यापक विस्तार था और वहाँ यह अत्यन्त गुह्य परन्तु अत्यन्त लोकप्रिय साधना थी। तिब्बत से ही यह भारत में आई ऐसी मान्यता इतिहासकारों की है। जो हो, परन्तु है यह परम प्राचीन साधना-प्रणाली। महर्षि पंतजलि अपने 'योगसूत्र' के कैवल्य पाद में कहते हैं कि औषधि के द्वारा भी सिद्धि लाभ होता है।[1] इसपर भाष्य करते हुए व्यास और वाचस्पति ने कहा है कि यहां ओषधि का अर्थ 'रस' है और निश्चय ही इसका संकेत उन योगियों की गुह्य साधना से है जो रसायन के द्वारा सिद्धि-लाभ करते थे। नेपाल, तिब्बत तथा हिमालय की उपत्यका में नाथ सिद्धों तथा बौद्ध सिद्धाचार्यों का मिलन हो गया और दोनों सम्प्रदायों की विचारधारा, साधना-शैली, आचार आदि में बहुत अंशों में

रसायन

यह जगत् स्वरूपतः सहज है, यह सहज ही जगत् का सार है, विशुद्ध चित्तवालों के लिए यही निर्वाण है।
—हेवज्रतंत्र संहिता

१. जन्मौषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।

—योगसूत्र कैवल्पपाद ४–१

समानता आ गई। समस्त गुह्य साधनाओं में एक विचित्र अखण्ड एकरूपता मिलती है और यह दो प्रकार की है (१) आचार की संकुल प्रणाली और (२) योगाभ्याम। किम्वदन्ती और जनश्रुति है कि जब क्षीरोद सागर में देवी को यह रहस्य बतलाया जा रहा था तब मत्स्येन्द्र नाथ ने मत्स्य रूप में यह रहस्य विद्या पहले पहल पाई। इनके पहले गुरु आदिनाथ हैं जो हिन्दुओं के शिव और बौद्धों के बुद्ध हैं। इन्हीं गुरु आदिनाथ से योग साधना की धारा चली। बौद्धों की तरह नाथों के यहां भी सिद्धि की चरमावस्था को सहज समाधि की अवस्था कहते हैं। और 'अकुलवीर तंत्र' में जो मत्स्येन्द्र नाथ का लिखा बताया जाता है उस सहज अवस्था का एक पद है जिसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि सहज समाधि की स्थिति परम शान्ति, परम अद्वय की स्थिति है जिसमें योगी का चित्त तरंग-हीन समुद्र की तरह सम और गम्भीर हो जाता है और समस्त जगत उसमें एकाकार हो जाता है। उस समय स्वयं साधक ही देवी है, देव है, गुरु है, शिष्य है, ध्यान है, ध्याता है और स्वयं सर्वेश्वर देवता है[1]। नाथों ने शरीर के भीतर ही सभी तीर्थ माने हैं—उनके नाम हैं—पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र सन्देह आदि। ८४ सिद्ध और ९ नाथ हैं। सिद्धों में '८४' शब्द ही रहस्यमय ढंग से व्यापक पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र सिद्धान्त

तंत्र और योग की प्रक्रिया में सूर्य और चन्द्र का उल्लेख बार बार आता है और इन दोनों के सम्मिलन को 'योग' कहा गया है। सूर्य और चन्द्र का अर्थ साधारणतया दाहिने और बायें की दो नाड़ियों से है और इनके मिलन से प्राण और अपान की समता प्राप्त होती है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में जो गोरख का लिखा बताया जाता है, वह स्पष्ट है कि भौतिक शरीर के पांच तत्त्वों या कारणों के समवय से संगठित किया है और वे पांच तत्त्व हैं—कर्म, काम, चन्द्र, सूर्य और अग्नि[2]। इसमें पहले दो अर्थात् कर्म और काम पिण्ड शरीर के कारण हैं और दूसरे तीन सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं शरीर के मूल कारण। सूर्य और अग्नि एक ही तत्त्व हैं अस्तु इन तीनों में दो ही प्रधान रूप से हैं और वे हैं चन्द्र और सूर्य। चन्द्र है रस तत्त्व या सोम तत्त्व और सूर्य हैं अग्नि तत्त्व। इस प्रकार यह शरीर सोम अग्नि के संगठन से हुआ। रस या सोम है उपभोग्य और अग्नि है उपभोक्ता। इसी प्रकार इस स्थूल जगत में अग्नि और चन्द्र का प्रकाशन क्रमशः पिता के शुक्र और माता की रज के रूप में हुआ और इन दोनों के संयोग से ही यह शरीर हुआ।[3] 'हठयोग प्रदीपिका' का

---

१ स्वयं देवी स्वयं देवः स्वयं शिष्यः स्वयं गुरुः।
स्वयं ध्यानं स्वयं ध्याता स्वयं सर्वेश्वरो गुरुः॥

—अकुलवीर तंत्र २६

२ कर्मकामाश्चन्द्रः सूर्योअग्निरीति प्रत्यक्ष कारणं पंचकम्।

—१६२

३ किं च सूर्याग्नि-रूपम पितुः शुक्र सोम रूपम च मातरजः। उभयोःसंयोगे पिण्डोत्पत्तिर्भवति।

यह भी सिद्धान्त है कि हठयोग में ह-सूर्य और ठ-चन्द्र के मिलन से साधना पूरी होती है। सूर्य चन्द्र के सम्बन्ध में स्वयं गीता कहती है——

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यऽहं ओजसा।
पुष्णाणि चौषधिः सर्वः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्रणिनां देहमाश्रितः।
प्राणोपानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

'बृहज्जावालोपनिषद' के दूसरे ब्राह्मण में सूर्य चन्द्र-तत्त्व की बड़ी ही मार्मिक व्याख्या है।[1] चन्द्र-सूर्य तत्त्व का एक और भी अर्थ है और वह है शिव शक्ति। चन्द्रमा अमृत है सूर्य कालाग्नि। चन्द्रमा सहस्रार में ठीक सहस्र दल कमल के नीचे स्थित है नीचे की ओर मुंह किए और सूर्य है नाभिदेश के मूलाधार में ऊपर की ओर मुंह किए। शरीर में बिन्दु के दो रंग हैं——पाण्डुर बिन्दु और लोहित बिन्दु। पहला है शुक्र और दूसरा महा रजस्। चन्द्रमा में पाण्डुर बिन्दु है, सूर्य में लोहित बिन्दु है। चन्द्रमा ही है शुक्र अर्थात् शिव और सूर्य ही है रजस् अर्थात् शक्ति। बौद्ध तंत्रों तथा बौद्ध सहजिया गानों में सूर्य को निर्माण काय में गौर चन्द्रमा को 'बोधिचित' रूप में उष्णीश कमल में स्थित मानते हैं। 'गोरक्षविजय'[2] में सूर्य चद्रतत्त्व का अनेक रूपों में विवरण आया है। चन्द्र सूर्य के मिलने की विविध व्याख्याओं में पहली और मुख्य व्याख्या है शिव शक्ति का सहस्रार में

---

१. अग्निसोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते।
रौद्री घोरा या तैजसी तनूः सोमः शतयमृतमयः शक्तिकरी तनूः।
अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्।
स्थूल सूक्ष्मषु भूतेषु स एक रसतेजसी।।१।।
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका।।२।।
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
तेजो रस विभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्।
अग्नेरमृत निष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अतएव हविः क्लृप्तमग्नीसोमात्मकं जगत्।।
ऊर्ध्वशक्तिमयः सोम अधोशक्तिमयो बलः।
ताभ्यां संपुटिततस्तस्माच्छश्वविश्वमिदं जगत्।।
शिवश्चोर्ध्वमयी शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्रतमिह किंचन।।

——बृहज्जाबोलोपनिषद् २।१-८

२ वे० पृ० १४०

मिलन।[1] दूसरी व्याख्या है योग की एक विशिष्ट प्रक्रिया जिसमें योगी और योगिनी का मिलन होता है और रेतस् और रजस् के सम्मिलित द्रव पदार्थ को वज्रौली मुद्रा द्वारा योगी या योगिनी पान कर जाते हैं। तीसरी व्याख्या है, प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को समकर के इडा और पिंगला नाड़ियों को वश में करना। इडा और पिंगला और सुषुम्ना को नाथ पंथ में सोम सूर्य और अग्नि नाड़ी के रूप में भी वर्णन मिलता है। नाथ पंथ में सूर्य चन्द्र के सम्मिलन का एक और, और महान रहस्यमय अर्थ है वह यह कि सूर्य को वश में करके चन्द्रमा से झरते हुए अमृतरस से शरीर को नव नवायमान कर दिया जाय। सूर्य का अर्थ है संहार, चन्द्रमा का अर्थ है सृजन। दोनों को वशीभूत करके योगी शरीर में ही अमरत्व लाभ करता है। योग की प्रक्रिया में यह माना जाता है कि शरीर का मूल तत्त्व है सोम या अमृत जो सहस्रार स्थित चन्द्रमा में जमा रहता है। सहस्रार से एक नाड़ी जिसे 'शंखिनी' कहते हैं जिह्वा के मूल तक चली गई है। यही है योगियों का 'वंकनाल' जिसके द्वारा सोम रस या महारस का पान होता है। इस शंखिनी नाड़ी का वर्णन 'गोरक्षविजय' में दोनों छोर पर मुँह वाली नागिन के रूप में मिलता है। शंखिनी का मुंह जिससे चन्द्रमा को अमृत झरता रहता है 'दशम द्वार' कहा जाता है। योगियों की यह मान्यता है कि चन्द्रमा से झरता हुआ अमृत रस या सोम रस सूर्य में गिरने के कारण कालाग्नि में जलकर भस्म होता जाता है और इसी कारण मनुष्य जीवन को मृत्यु में पर्यवसित हो जाना पड़ता है। यदि किसी प्रकार इस अमृत रस को सूर्य में गिर कर जल जाने से बचाया जा सके, तो मनुष्य काल को जीत कर अमर बन सकता है। इसके लिए यदि दसवें द्वार को बन्द कर दिया जाय और चौकसी रखी जाय, तो अमरत्व की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यदि यह द्वार खुला रहा तो 'महारस' को सूर्य या काल खा जाएगा।[2] इसी दसवें द्वार से योगी अमृत रस का पान करते हैं और अमरत्व लाभ करते हैं।

प्रश्न यह है कि इस महारस को नष्ट होने से बचाया कैसे जाय? इसके लिए योग की अनेक प्रक्रियाएं हैं जिनमें 'खेचरी मुद्रा' बहुत ही प्रभावशालिनी है। जीभ को उलट कर 'राज-दन्त' या शंखिनी के द्वार तक पहुंचा देते हैं और दृष्टि को मध्य में स्थित कर योगी उस सोमरस का पान करता है। योग शास्त्र में 'खेचरी' की बड़ी प्रशंसा है और कहा गया है कि खेचरी सिद्ध हो जाने पर किसी रमणी द्वारा आलिंगित होने पर भी 'विन्दु' चंचल नहीं होता।

---

१ बिन्दु शिवोरजः शक्ति बिन्दुरिन्दु रजो रविः।
उभयो संगमादेव प्राप्यते परमं पदम्॥

—गोरस सिद्धान्त संग्रह पृ० ४१

२ चन्द्रात् सारः स्रवति वपुषः तेन मृत्युर्नराणाम्।
त० बध्नीयात् सुकर्ण अतो नान्यथा कार्य-सिद्धिः॥

—गोरक्षपद्धति १५

'गोरक्षपद्धति'[1] तथा 'हठयोग प्रदीपिका' में खेचरी मुद्रा की अत्यधिक प्रशंसा है। चन्द्रमा से झड़ते हुए अमृत रस, सोमरस, महारस को 'अमर वारुणी' भी कहते हैं। नाथयोगियों में खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को उलट कर ऊपर चढ़ाने का नाम है 'मांस भक्षण' और सोमरस के पान का नाम है वारुणीपान[2]।

सूर्य चन्द्र—स्त्री पुरुष भाव

ऊपर हम कह आए हैं कि सूर्य है रसज् और चन्द्रमा है रेतस्। सूर्य का अर्थ है शक्ति और चन्द्रमा का अर्थ है शिव। चन्द्रमा को सूर्य की वह्नि से बचाना चाहिए। दूसरे शब्दों में पुरुष को स्त्री के स्पर्श से बचना चाहिए। स्त्री को नाथ-पंथवाले बाघिन के रूप में रखते हैं। वह दिन में 'जादूगरनी' और रात में 'बघिनी' है। नाथ सिद्ध सभी के सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और इस बात पर वे सतत सावधान थे कि बाघिनी के पंजे में न पड़े।[3] गोरख ने कहा है कि स्त्री के श्वास-मात्र से शरीर सूख जाता है और नष्ट हो जाता है।[4]

---

१ पृ० ३७, ३८ बम्बई संस्करण।
तु० 'हठयोग प्रदीपिका' में चतुर्थोपदेश का श्लोक ४४-४६।

२ गोमांसं भक्षयेनित्यं पिबेत अमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहंमन्ये चेतरे कुलघातकाः॥
गोशब्देनोदित जिह्वातत्प्रवेंशोहि तालुनि।
गोमासं भक्षणं ततु महापातक नाशनम्॥
जिह्वा प्रवेशा संभूता वह्निनोत्पादितः खलु।
चन्द्रात् स्रवति यः सारः सस्यादमरवारुणी॥ —गोरक्ष पद्धति ३७-३९
तथा हठयोग प्रदीपिका ३. ४७-४८-४९

३ दिन का मोहिनी रात का बाघिनी पलक पलक लहु चुसे।
दुनिया सब बौरा हो के घर घर बाघिनी पोसे॥ —कश्चित्

तुलनीय— नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के संग॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और॥
नैनों काजर लाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथों मेंहदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस॥ —कबीर

४ गुरु जी ऐसा काम ना कीजै।
जामें अमी महारस छीजै॥

नहीं रहती। कबीर, दादू आदि ने कभी सहज समाधि लगाने की सलाह दी है, कभी सहज सुख पाने की व्यग्रता प्रकट की है, कभी शून्य सरोवर में स्नान करने का महत्व बताया है, कभी सहज शून्य के द्वार पर खड़ा होकर मुनियों के भाग्य पर तरस खाई है। कबीर दास ने तो एक स्थान पर बड़ी व्याकुलता से पुकारा है कि ऐसा कोई सन्त है जो सहज सुख उत्पन्न करा सके? सिर्फ उसी प्रकार एक बून्द उस राम रस को दे सके, जिस प्रकार कलाली चपक भरकर मादक रस दिया करती है। मैं सारा जप-तप उसे दलाली में देने को प्रस्तुत हूं।

है कोउ संत सहज सुख उपजै
जाको जप तप दऊं दलाली।
एक बून्द भरि दइ राम रस
ज्यों भरि देइ कलाली।।

सहज शब्द की दीर्घ परम्परा है। नाना जाति के साधकों की चित्त-गंगा में स्नान करता हुआ यह शब्द कबीर के हृदय में राम रस के रूप में आविर्भूत हुआ है। इसकी दीर्घ यात्रा की कहानी मनोरंजक भी है और सन्त साहित्य के समझने में सहायक भी। भक्तप्रवर, दादूदयाल ने अपने गुरुदेव को सम्बोधन करके प्रश्न किया है—'कौण सहज कहु, कौन समाध, कौण भगति कहु कौण अराध।' और उत्तर दिलाया है—

आपा गर्व गुमान तजि मद मच्छर अहंकार।
गहै गरीबी बंदगी सेवा सिरजन हार।।

यहां 'सहज' गरीबी ग्रहण करके बंदगी करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैसे तो 'सहज' शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमति न त्येजत्'

अर्थात् सहज कर्म को सदोष होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए। आगे चलकर सातवीं शताब्दी के बाद के कौलों, शाक्तों और बौद्धों के साहित्य में इस शब्द का बड़ा व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। वज्रयानी सिद्धों का 'सहज' बहुत कुछ उपनिषद् के ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय और अचिन्त्य गुणरूप बन गया है।'[1] सातवीं से चौदहवीं शताब्दी तक इस शब्द का साधना-जगत् में व्यापक प्रभाव रहा है।

---

१ तस्मात् सहजं जगत् सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।
स्वरूपमेवं निर्वाणं विशुद्धाकार चेतसः।।

'सहज' शब्द का व्यवहार क्यों होने लगा? जैसे-जैसे धर्म साधना में आडम्बर प्रधान वाह्याचारों का प्रभाव बढ़ता गया, कृच्छाचार को सिद्धिसोपान समझा जाने लगा, तीर्थ, व्रत, होम, यज्ञ, लुंचन, मुंचन, तंत्र, मंत्र का प्रभाव बढ़ने लगा वैसे

'सहज' का सर्वमान्य अर्थ

वैसे भी धर्मों के वास्तविक भक्तों के चित्त में प्रतिक्रिया हुई। इस समूची प्रतिक्रिया को यह 'सहज' शब्द सूचित करता है। परन्तु वाह्याडंबर और कृच्छाचार का विरोध इसका अभावात्मक पक्ष है। इसका भावात्मक पक्ष यह है कि भगवान् को प्राप्त करने के लिए उसे तीर्थों में, क्रियाओं में और घटाटोपपूर्ण आचारों में नहीं, अपने अन्तर में देखना चाहिए। यह मनुष्य का शरीर ही सब तीर्थों का निवास है। इसी में सब ब्रह्माण्ड निहित है, इसी में परम प्राप्तव्य का वास है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर ही सब साधनाओं का उत्तम साधन है। फिर एक बार जो इस तथ्य को समझ लेता है, उसके लिए न योग की जरूरत होती है, न वैराग्य की, न प्राणायाम की, न कृच्छ-साधना की। वह सहज भाव में रहकर उस परम तत्त्व को पा लेता है, जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है।

सहज मत का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का यह शरीर ही सब कुछ है। 'जोइ जोइ पिंडे सोइ ब्रह्माण्डे', 'ब्रह्माण्डे प्यस्ति यत् किंचित् तत् पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा'। इस सिद्धान्त को सभीने स्वीकार किया है। परन्तु इसी मूल सिद्धान्त को

पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है

स्वीकार करने के फलस्वरूप सहज मत की दर्जनों व्याख्याएं और कई रूपान्तर हो गए हैं। सरहपा नामक बौद्ध सिद्ध ने यह बताया है कि इसी शरीर में सरस्वती है, इसी में यमुना है, इसी में गंगा है और समुद्र है। इसी में प्रयाग है, इसी में वाराणसी है, इसी में चन्द्रमा और सूर्य है। इसी में सब क्षेत्र है, सब सिद्धपीठ हैं, सारे उपपीठ हैं, मैं इसी महातीर्थ में घूमता रहता हूँ—मैंने इस देह के समान शुभ-तीर्थ नहीं देखा।[1]

कबीर ने इसी स्वर में गाया था—

> यहि घट अंतर बाग बगीचे यहि में सिरजन हारा।
> यहि घट अंतर सात समुंद एही में नौलख तारा।। इत्यादि

ऐसी युक्तियां संतों के साहित्य में भरी पड़ी हैं।

इस शरीर की पांच वस्तुएं मध्ययुग के साधकों को बहुत शक्तिशाली दिखी हैं—मन, प्राण, वाक, शुक्र और कुण्डलिनी। इन पांच बातों के आश्रय करके मोटे तौर पर (१) राजयोग मूलक साधनाएं, (२) हठयोग मूलक साधनाएं, (३) मंत्र जप, (४) उर्ध्वरेतस् साधना, सहजो-

---

१ एत्थु से सरसुह जमुना एत्थु से गंगा साअरु।
एत्थु पआग बराणसि एत्थु से चंद दिवाअस।।
एत्थु पीठ उपपीठ एत्थु महं भमइ परिट्ठओ।
देह सरिस तित्थ महं सुह आराण न दिट्ठयो।।

लिका साधना, सोमसिद्धान्ती साधना, कपालवनिता, युगनद्ध मूर्ति, नीलाम्बरी साधना, रसेश्वर सिद्धान्त, सहजिया वैष्णव साधना इत्यादि तथा (५) कुण्डलिनी योग मूलक साधनाएं प्रचलित हुई हैं।

कौलमत में सहज साधना

बौद्धमत में सहज साधना का प्रवेश कौल मत के द्वारा ही हुआ। 'कौल ज्ञान निर्णय' के अनुसार मत्स्येद्रनाथ कौलज्ञान के प्रथम प्रवर्त्तक हैं। 'तंत्रालोक' की टीका में सकुल कुल शास्त्र का अवतारक कहा गया है। आदि युग में जो कौल ज्ञान था, वह द्वितीय अर्थात् त्रेता युग में 'महत्कौल' नाम से परिचित हुआ और तृतीय अर्थात् द्वापर में 'सिद्धामृत' नाम से और इस कलिकाल में 'मत्स्योदर कौल' नाम से प्रकट हुआ है। दन्त कथाओं से यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ अपना असली मत छोड़कर कदली देश की स्त्रियों की माया में फंस गये थे। ये कदली स्त्रियां योगिनी थीं। वह शास्त्र कामरूप की योगिनियों के घर-घर में विद्यमान था।[1] और मत्स्येन्द्रनाथ उसी कामरूपी स्त्रियों के घर जाकर अनायास लब्ध शास्त्र का सार संकलन कर रहे थे। कामरूप की योगिनियों के माया-जाल से गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था, यह भी दन्तकथाओं से स्पष्ट है। वह सिद्ध मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था, देवी अर्थात् शक्ति उसकी प्रतिद्वंद्विनी थीं और उसमें स्त्री-संग पूर्णरूपेण वर्जित था। गोरक्षनाथ ने कामरूप से मत्स्येन्द्रनाथ को उद्धार करके इसी मत में प्रतिष्ठित किया था। कौल ज्ञान सिद्धि परक विद्या है और यद्यपि इस शास्त्र में अद्वैत भाव की चर्चा है; पर मुख्यतः यह उन अधिकारियों के लिए लिखा गया है जो कुल और अकुल-—शक्ति और शिव—-के भेद को भूल नहीं सके हैं। इसके विपरीत 'अकुल वीर तंत्र' का अधिकारी वह है जिसे अद्वैतज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ गया है कि कुल और अकुल में कोई भेद नहीं है, शक्ति और शिव अविछिन्न भाव मे विराज रहे हैं। यह निश्चित है कि 'अकुल वीर तंत्र' में प्रतिपादित साधना वास्तविक सहज साधना है। इसी को कभी अवधूत मार्ग कभी सिद्ध मार्ग और कभी सहज मार्ग कहा गया है।

बौद्ध सिद्धों की कई बातों से 'कौलज्ञान निर्णय' की कई बातें मिलती हैं—-(१) सहज पर जोर देना, (२) वाह्याचार का विरोध, (३) कुलक्षेत्र और पीठों का वर्णन, (४) वज्रीकरण का प्रयोग, (५) पंचपवित्र आदि पारिभाषिक शब्द।[2] पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप से योग परक था और पंच मकारों या पंच पवित्रों की व्याख्या उसमें सदा रूपक में हुआ करती थी। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौल मार्ग की चर्चा की है, वह निश्चय ही शाक्त मत था, बौद्ध नहीं।' अकुल वीर तंत्र में बौद्धों को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र बताया

---

१ तस्य मध्ये इमं नाथ सारभूतं समुद्धृतं।
कामरूपे इदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे॥ **२२.१०**

२ देखिए डा० पी० सी० बागची की 'कौलज्ञान निर्णय' की भूमिका।

गया है।[१] इसी 'अकुल वीर तंत्र' से कौल मत की सहज साधना विवृत्त हुई है। इसलिए कौल सहज साधना निश्चित रूप से बौद्ध-साधना से भिन्न है।

कुलतंत्र शब्द द्वैत परक है और अकुल तंत्र अद्वैत परक और भेद विरोधी सहज परक। कौल लोगों के मत से 'कुल' का अर्थ है शक्ति और अकुल का 'शिव'। कुल से अकुल का सम्बन्ध स्थापन ही कौल मार्ग है।[२] इसलिए कुल और अकुल को मिलाकर समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और 'कुल' और 'अकुल' का सामरस (समरस होना) ही कौल ज्ञान है। शिव का नाम अकुल होना उचित ही है, क्योंकि उनका कोई कुल गोत्र नहीं है, आदि-अन्त नहीं है।[३] शिव की सिस्टक्षा—अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। शक्ति शिव की क्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्बन्ध है, वही शिव और शक्ति का सम्बन्ध है।[४] 'सिद्ध सिद्धान्त संग्रह' के चतुर्थ उपदेश में कहा गया है कि शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्महीन और निरंग है। इसीलिए उन्हें अकुल कहा जाता है। चूंकि शक्ति सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत् रूपी प्रपंच की प्रवर्तिका है, इसलिए उसे 'कुल' (वंश) कहते हैं।[५] शक्ति के विना शिव कुछ भी करने में असमर्थ हैं।[६] इकार

कुल और अकुल

---

१ विकल्प वहुलाः स मिथ्यावादा निरर्थकः।
न ते मुचन्ति संसारे अकुल वीर विवर्जितः॥ —अकुल वीर तंत्र।

२ कुल शक्तिरिव प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुले कुलस्य संबंधः कौलमित्यभिधीयते॥

—सौभरिय भाष्कर पृ० ५३

३ वर्ण गोत्रादिराहित्यादेक एवाकुलंमतम्।
अनन्तत्वादखंडत्वादद्वपत्वादनाशनात्॥
निर्धर्मत्वाद् कुलं स्यान्निरंन्तरम्॥ —सिद्ध सिद्धान्त संग्रह पृ० ४।

४ शिवस्यामान्तरे शक्तिः शक्ते रम्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रं चन्द्रिकयोरिव॥

५ कुलस्य सामरस्येति सृष्टि हेतुः प्रकाशम्।
सा चापरंपराशक्ति राज्ञेशस्यापरं कुलम्॥
प्रपंचास्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।

—सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, सं० ४-१२-१३।

६ शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुंशक्तो न किंचन।
शिव स्वशक्तिसहितो सभासाद् भासको भवेद्॥

—सि० सि० सं० ४।१६।

शक्ति का वाचक है और शिव में से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है।[1] इसलिए शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति के उपासक शाक्त ही कौल है। यह मत बौद्धसाधना से मूलतः भिन्न है। इस साधना में लक्ष्य हैं अखण्ड, अद्वय और अविनश्वर शिव और बौद्धसाधना का लक्ष्य है नैरात्म्य भाव। जिस प्रकार वृक्ष के विना छाया नहीं रह सकती, अग्नि के विना धूम नहीं रह सकता, उसी प्रकार शिव शक्ति आविच्छेय है, एक के विना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती।[2]

कौल मार्ग का अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु अत्यन्त शक्तिशाली उपस्थापन 'कौलोपनिपद्' में दिया हुआ है। आरम्भ में कहा गया है कि ब्रह्म का विचार हो जाने के वाद ब्रह्मशक्ति (धर्म) की जिज्ञासा होती है। ज्ञान और बुद्धि ये दोनों ही धर्म (शक्ति) के स्वरूप हैं, जिनमें एकमात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। योग और मोक्ष दोनों ही ज्ञान हैं। अधर्म का कारण अज्ञान है, पर यह अज्ञान भी ज्ञान से अभिन्न है। प्रपंच (शब्द स्पर्श, रस, गन्ध, रूप) ही ईश्वर है और अनित्य भी नित्य है क्योंकि वह भी ब्रह्म-शक्ति का रूप ही है। मतलव यह है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति में कोई भेद नहीं है। जीव के पांच बन्धन है—(१) अनात्मा में आत्मबुद्धि (२) आत्मा में अनात्म बुद्धि (३) जीवों में परस्पर भेद-ज्ञान (४) उपास्य और उपासक में भेद-बुद्धि (५) चैतन्य अर्थात् परं ब्रह्म से आत्मा को पृथक् समझने की बुद्धि।

ये पांचों बन्धन भी ज्ञान रूप ही हैं, क्योंकि ये सभी ब्रह्म-शक्ति के विलास हैं। इन्हीं बन्धनों के कारण मनुष्य जन्म-मरण के चक्रों में पड़ता है। इसी देह में मोक्ष है। ज्ञान यह है कि समस्त इन्द्रियों में नयन प्रधान है, अर्थात् आत्मा। सभी कुछ शांभवी (शक्ति) का रूप है। इस मार्ग के साधक के लिए वेद नहीं है। मंत्र-सिद्धि के पूर्व वेदादित्याग करना चाहिए। अपना रहस्य शिष्टभिन्न किसीको भी नहीं बताना चाहिए। भीतर से शाक्त, बाहर से शैव और लोक में वैष्णव होकर रहना चाहिए—यही आचार है।[3] आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। लोक-निन्दा वर्जनीय है। अध्यात्म यह है—व्रताचरण न करे, नियम पूर्वक न रहे। नियम मोक्ष का बाधक है। किसी कौल सम्प्रदाय की स्थापना नहीं करनी चाहिए। सबमें समता की बुद्धि रखना ऐसा करनेवाला ही मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। संक्षेप में यही सहज साधना है। सब प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त, सब प्रकार के टंटे से अलिप्त स्पष्ट ही 'कौलोपनिषद्' और 'अकुल

---

१ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विर्वाजतः।

—देवी भागवत का कवच

२ न शिवेन विनाशक्तिर्नशक्तिरहितः शिवः।
अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निर्धूमो यथा प्रिय।
न वृक्षरहिता छाया नच्छायारहितो द्रुमः॥ —१७ ८-९

१ अन्तः शाक्ताः बहिर्शैवाः समामध्ये च वैष्णवाः।
नाना रूप धरा कौला विचरन्ति महीतले॥

वीर तंत्र' सहज साधना को सब प्रकार के दिखावे से मुक्त और आन्तरिक शक्ति पर आधारित मानते हैं।

स्पष्ट है कि इस समूचे जगत्-प्रपंच का कारण शिव और शक्ति का पृथक्-पृथक् हो जाना ही है और इस प्रपंच की समाप्ति दोनों के मिलन में है। जबतक शिव और शक्ति समरस नहीं हो जाते, तबतक जीव प्रपंचग्रस्त है। इसलिए इनका समरस ही प्रधान लक्ष्य है। इस सामरस्य के अनेक रूप हैं। विविध सहजमत इसी सामरास्य को प्राप्त करने के उपाय अपने अपने ढंग से बताते हैं।

शाक्ततंत्रों में कुण्डलिनी योग साधना का बहुत उल्लेख है। कौल और नाथ मत में भी कुण्डलिनी-योग की खूब चर्चा है। साधक का प्रधान कर्त्तव्य जीव-शक्ति कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करना है। शक्ति ही महा कुण्डलिनी रूप से जगत् में व्याप्त है,

कुण्डलिनी योग की साधना

मनुष्य के शरीर में वह कुण्डलिनी रूप से संस्थित है। कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणतः तीन अवस्थाओं में रहते हैं—जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न। इन तीनों अवस्थाओं में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है।

पीठ में स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहाँ एक 'स्वयम् लिङ्ग' है, जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। इसे 'अग्निचक्र' कहते हैं। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयम् लिङ्ग को साढ़े तीन

चक्र भेदन की प्रक्रिया

वलयों या वृत्तों में लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलों का एक कमल है, जिसे 'मूलाधार चक्र' कहते हैं। फिर उसके ऊपर नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' है, जो छः दलों के कमल के आकार का है और उसके भी ऊपर, हृदय के पास 'अनाहत चक्र' है। ये दोनों क्रमशः दश और बारह दलों क पद्म के आकार के हैं। इसके भी ऊपर कण्ठ के पास 'विशुद्धाख्य' चक्र जो सोलह दल के पद्म के आकार का है। और भी ऊपर जाकर भ्रूमध्य में 'आज्ञा' नामक चक्र है जिसके सिर्फ दो ही दल हैं। ये ही षट्चक्र हैं। इन चक्रों को क्रमशः पार करती हुई उद्बुद्ध कुण्डलिनी शक्ति सबसे ऊपरवाले सातवें चक्र (सहस्रार) में परम शिव से मिलती है। इस चक्र में सहस्रदल होने के कारण इसे 'सहस्रार' कहते हैं और परम शिव का निवास होने के कारण 'कैलाश' भी कहते हैं[1]। इस प्रकार सहस्रार में परम शिव, हृत्पद्ममें जीवात्मा और मूलाधारमें कुण्डलिनी विराजमान हैं। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए

---

१ अत ऊर्ध्वं दिव्य रूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्त देहस्य वा तिष्ठति सर्वदा॥
कैलाशोनाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥

—शिव संहिता ५, १५१-५२

कुण्डलिनी जीवशक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगाकर मेरुदण्ड की मध्य स्थिता नाड़ी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार में स्थित परम शिव तक उत्तोलित करना ही कौल साधक का कर्तव्य है। वहीं शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही परम आनन्द है।[१] जब यह आनन्द प्राप्त हो जाता है, तब साधक के लिए कुछ भी करने को नहीं रह जाता।[२]

पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव

प्रत्येक मनुष्य इस साधना के लिए समान भाव से विकसित नहीं है। कुछ साधक ऐसे होते हैं, जिनमें सांसारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह रूपी पाश या पगहे में बँधे हुए जीवों को 'पशु' कहते हैं। और शास्त्रों में ऐसे जीवों के लिए अलग ढङ्ग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते हैं, जो अद्वैत ज्ञान का एक उथला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग में उत्साहित हो जाते हैं। और प्रयत्नपूर्वक मोह-पाश को छिन्न कर डालते हैं। इन्हें **'वीर'** कहा जाता है। यह साधक क्रमशः अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त में उपास्य देवता के साथ अपने-आपकी एकात्मता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है, वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन प्रकार के हुए —पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। दिव्य भाव के साधक की साधना 'सहज' कही जाती है। तन्त्रशास्त्र में दिव्य साधक की साधना का नाम ही 'कौलाचार' है।

सात प्रकार के आचार

तन्त्रशास्त्रों में सात प्रकार क आचार बताये गये हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमें जो वेदाचार है, उसमें वैदिक का कर्म यज्ञयागादि विहित है। तंत्र के मत से यह सबसे निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, पवित्र भाव से व्रत उपावास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है। (३) शैवाचार में यज्ञ नियम, ध्यान, धारणा, समाधि और शिव शक्ति की उपासना तथा (४) दक्षिणाचार में उपर्युक्त तीनों आचारों के नियमों का पालन करते हुए रात्रि काल में भांग आदि का सेवन करके इस मंत्र का जप करना विहित है। परन्तु ये चारों ही आचार पशुभाव के साधक के लिए ही विहित हैं। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिए हैं। (५) वामाचार में आत्मा को वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना विहित है। 'सिद्धान्ताचार' में मनको अधिकाधिक शुद्ध करके यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से संसार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती है। ब्रह्म से लेकर ढेले तक में कुछ भी ऐसा नहीं है, जो परम शिव से भिन्न हो। इन सब में श्रेष्ठ है कौलाचार इसमें कोई भी नियम नहीं है। इस आचार के साधक साधना की

---

१ समरसानन्द रूपेण एकाकारं चराचरे।
यं च तातं स्वदेहस्थमकुलवीरं महाद्भुतम्॥

—अकुलवीर तंत्र ११५।

२ देखिये—नाथ सम्प्रदाय पृ० ७३।

सर्वोच्च अवस्था में उपनीत हो गए होते हैं और जैसा कि 'भावचूड़ामणि' में शिव जी ने कहा है—कर्दम और चन्दन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में तथा स्वर्ण और तृण में लेश मात्र भी भेदबुद्धि नहीं रखते।[1]

इस प्रकार यह साधना भी अन्ततक अकुल वीर तंत्र की सहज साधना के समान बन जाती है।[2]

बौद्ध और नाथ मत में जालन्धर नाथ और कान्हूपा या कानपा (कृष्णपाद) समान भाव से समादृत संत हैं। कानुपा ने अपनेको कापालिक कहा है और अपने गुरु को जालंधर पाद का शिष्य बताया है। कृष्णपाद ने अपने दोहों में महासुख की आवास भूमि कंकाल दण्ड रूप मेरुगिरि के शिखर को कहा है और 'मेखला टीका' में इस मेरुगिरि का नाम 'जालंधर' बताया गया है। अनुमानतः मेखला टीका कृष्णपाद की शिष्या मेखला योगिनी की लिखी हुई है। जो हो, कृष्णपाद के मन में जालंधर पाद के प्रति कितनी भक्ति थी, वह इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाती है। जिस कापालिक मत को जालंधर पाद और कृष्णपाद इतना बहुमान दे गये हैं, वह शैव कापालक मार्ग था या बौद्ध बज्रयानी—यह प्रश्न निरर्थक है। वस्तुतः उन दिनों इन तांत्रिक मार्गों में बहुत नैकटच का भाव था। भवभूति के 'मालती माधव' नामक प्रकरण से मालूम होता है है कि सौदामिनी नामक बौद्ध भिक्षुणी श्री पर्वत पर कापालिक साधना सीखने गई थी। यह कापालिक साधना निश्चित रूप से शैव साधना थी। श्री पर्वत उन दिनों का प्रसिद्ध तांत्रिक पीठ था, वहां बौद्ध, शैव, शाक्त सभी प्रकार की तांत्रिक साधनाएं एक दूसरी की बगल में पनप रही थीं। वाणभट्ट ने कादम्बरी में और हर्षचरित में श्री पर्वत को शाक्त तंत्र की साधना के पीठ के रूप में लिखा है। 'चर्याचर्य विनिश्चय' की टीका में दौमोड़ीपाद का श्लोक उद्धृत है, जिसमें बताया गया है कि 'कापालिक' किसे कहते हैं। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही वज्रधर है। जगत् की जो कोई भी स्त्री 'कपालवनिता' है और प्राणी के भीतर स्थित 'सोऽहं' रूप आत्मा ही हेरुक भगवान् की मूर्ति है, जो हमसे अभिन्न है। (१) श्री पद्म और (२) इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा पृथ्वी प्रभृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को दहन करनेवाला (३) मदन ये ही तीन रत्न हैं। इनको यथा गौरव ध्यान करता हुआ योगीश्वर परमसिद्धि को प्राप्त करता है।[3] कपालवनिता रूप स्त्री

कापालिक मत में सहज साधना

---

१ **कर्दये चन्दने भिन्नं पुत्रो शत्रो तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथा वै कांचने तृणे।
भेदो यस्य लेशोऽपि स कौलः परिकीर्तितः॥**

२ **दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ४।**

३ **म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री का पाठ इस प्रकार है—**

**प्राणी वज्रधरः कपालवनितातुल्योजगत् स्त्रीजनः।
सोऽहं हैररुक मूर्त्तिरेष भगवान् योनः प्रभिन्नांऽपिच॥**

जन्म साध्य होने के कारण यह साधना 'कापालिक' कही जाती है और इसी के साधक 'कापालिक' कहे जाते हैं। बज्रयानी लोग बौद्धधर्म के प्रसिद्ध तीन तंत्र (बुद्ध, धर्म और संघ) के स्थान में बज्र, पद्म और मदन को तीन रत्न मानते हैं। कापालिक साधना में स्त्री की सहायता आवश्यक थी। आधुनिक नाथ मार्ग में 'बज्रोली'[1] नामक जो मुद्रा पाई जाती है, उसमें ही स्त्री का होना

श्री पद्मसदनं च णेकुदहनं कुर्वन, यथागौरवात्।
सतत् सर्वमतीन्दुयैक मनसा योगीश्वर सिद्धयति।।

१ 'बज्रोली', 'अमरोली', और 'सहजोली' मुद्राओं का विवरण 'हठयोग प्रदीपिका' उपदेश ३ में निम्नलिखित प्रकार से है--

बज्रोली

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुंचनमभ्यसेत्।
पुरुषोम्यथवा नारी बज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात्।।
चलतः शस्तनालेन फूत्कारं बज्रकंदरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीता वयुसंचारकारणात्।।
नारी भगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिंदुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्।।
एवं संरसयेद् बिन्दू मृत्युंजयति योगवित्।। --ह० प्र० ३.८५-८८।

सहजोली

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्याभेद एकतः।
जरा सुभस्मनिक्षिप्य दग्धगोमयसंभवम्।।
बज्रोली मैथुनाद्बूर्ध्वं स्त्रीपुंसो स्वांगलेपनम्।
आसीनयोः सुखेनैव मुक्त व्यापारयोः क्षणाद्।।
सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभि सदा।
अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिदः।। --ह० प्र० ३.९२-९४

अमरोली

पित्तोल्वणत्वात्प्रथमांबुधारां विहाय निःसारतयांत्यधारा।
निष्कल शीतलमध्यधाराकापालिके खण्डमतेऽमरोली।।
अमरी यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिन दिने।
बज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगभरोलेति कथ्यते।।
अभ्यासानिःसृतां चांद्रीं विभूत्या सहमिश्रयेत्।
धारयेदुत्तमांगेषु दिक दृष्टिः प्रजापते।। --ह० प्र० ३.९६-९८

परम आवश्यक माना गया है। मालती माधव का कापालिक अघोरघंट अपनी शिष्या कपाल-कुण्डला के साथ योग-साधन करता था। सब मिलाकर ऐसा लगता है कि क्या शैव और क्या बौद्ध दोनों कापालिक साधनाओं में स्त्री की सहायता आवश्यक थी।[1]

'मालती माधव' से इतना स्पष्ट है कि (१) भवभूति का जाना हुआ कापालिक मत परवर्ती नाथ पंथियों के समान नाड़ियों और चक्रों में विश्वास करता था, (२) शिव और जीव की अभिन्नता में आस्था रखता था और (३) योग द्वारा चित्त के चांचल्य को रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार होता है, यह मानता था और (४) शक्ति युक्त शिव की प्रभविष्णुता में विश्वास रखता था। मालती माधव में आये हुए 'पंचामृत' का असली अर्थ है—शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की प्रक्रिया से शरीर को वज्रवत् बनाया जा सकता है, अणिमादिक सिद्धियां पाई जा सकती हैं। वज्रयानी साधकों में तथा कौलमार्गी तांत्रिकों में भी यह विधि है। नाथमार्ग में जो वज्रबोली साधना है, उसे इस साधना का भग्नावशेष समझना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि अन्यान्य तांत्रिकों की भांति कापालिक लोग भी विश्वास करते थे कि परम शिव ज्ञेय हैं, उपास्य हैं, उनकी शक्ति और तद्युक्त ऊपर या सगुण शिव। इसी बात को लक्ष्य करके 'देवी भागवत' में कहा गया है कि कुण्डलिनी अर्थात् शक्ति से रहित शिव भी शव के समान (अर्थात् निष्क्रिय हैं)—'शिवोऽपिशवतां याति कुण्डलिनीविवर्जितः' और इसी भाव को ध्यान में रखकर शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' में कहा है कि शिव यदि शक्ति से युक्त हों तभी कुछ करने में समर्थ हैं, नहीं तो वे हिल ही नहीं सकते।[2] तांत्रिक लोगों का मत है कि परम शिव के न रूप है, न गुण और इसीलिए उनका स्वरूप-लक्षण नहीं बतलाया जा सकता। जगत् के जितने भी पदार्थ हैं, वे उससे भिन्न हैं और केवल 'नेति-नेति' कहा जा सकता है। निर्गुण शिव (पर शिव) केवल जाने जा सकत हैं, उपासना के विषय नहीं

अमरोली आदि मुद्राएं समाधि के सिद्ध होने पर ही सिद्ध होती हैं। जब अन्तःकरण रूप चित्त ध्यान करने योग्य वस्तु के आकारवृत्ति-प्रवाह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्माकार हो जाता हैं और प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् इस प्रकार जब चित्त सम हो जाता है तभी अमरोली, बज्रोली, सहजोली मुद्राएं भली प्रकार हो जाती हैं। जिसने प्राण और चित्त को नहीं जीता, उसको सिद्ध नहीं होती। इसी पर हठयोग प्रदीपिका उ० ४ श्लो० १४ यों है—

चित्तेसमत्वमापन्ने वायो ब्रजति मध्यमे।
तदामरोली बज्रोली सहजोली प्रजापते॥

१ क्षीर चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी —ह० प्र० ३. ८४

२ शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितं।
न च देवं देवी न खलु कुशस्त्रः स्पन्दितुमपि॥

हैं। शिव केवल ज्ञेय हैं, उपास्य तो शक्ति है। इस उक्ति की उपासना के बहाने भवभूति ने शक्ति के क्रीड़न और ताण्डव का बड़ा शक्तिशाली वर्णन किया है। शक्तियों से वेष्ठित 'शक्तिनाथ' की महिमा वर्णन करने के कारण यह अनुमान असंगत नहीं जान पड़ता कि कापालिक लोग भी परमशिव को निष्क्रिय निरंजन होने के कारण केवल ज्ञेय मानते थे।' 'मालती माधव'की टीका में और 'कर्पूर मंजरी' में सोमसिद्धान्तियों की चर्चा आती है। ये 'उमयासहितो रुद्रः' को 'सोम' कहते और इसी प्रकार की हर-पार्वती के मिथुन रूप की उपासना करते थे। बज्रयानी और शैव-दोनों प्रकार की कापालिक साधना में भोग मूलक योग-साधना की महिमा स्वीकार की गई है। यहां सामरस्य स्त्री-पुरुष के स्थूल शरीर के मिलने से उत्पन्न माना गया है। इस प्रकार सहज मत का सामरस्य इन साधनाओं को स्थूलशरीर-मिलन के रूप में प्रकट हुआ है। परन्तु यह समझना भूल है कि स्थूल मिलन ही इस साधना का यथार्थ रूप है। स्थूल मिलन पंच पवित्र के आकर्षण और ऊर्ध्वचालन का साधन है, जिससे शरीर बज्र के समान बन जाता है और मन अचंचल हो जाता है।'[1]

वज्रयान में और कापालिक मत में सहजानंद या महासुख

महायान बौद्धों की परवर्ती शाखा वाले यान में सबसे बड़े सुख को 'सहजानन्द' कहा गया है। इसे ही 'महासुख' भी कहा गया है। एक ऐसा समय गया है जब सहजयानी और बज्रयानी साधकशून्य को निषेधात्मक न मानकर विधात्मक और धनात्मक रूप में समझने लगे थे। इसी भाव के बताने के लिए वे 'सुखराज' या 'महासुख' शब्द का व्यवहार करते थे। ये साधक चार प्रकार के आनन्द मानते थे—प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द। सबसे श्रेष्ठ आनन्द सहजानन्द है यही सुखराज है, यही महासुख है। इसे किसी शब्द से नहीं समझाया जा सकता। यह अनुभवैकगम्य है। इसमें इन्द्रियबोध लुप्त हो जाता है, आत्मभाव या अस्मिता विलुप्त हो जाती है, 'केवल' रूप में अवस्थिति होती है।[2]

---

१ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८६।

२ सरह पाद ने इसी भाव को बताने के लिए कहा है—

> इन्द्रिअजत्थ विलअ गउ णड्डिउ अप्प सहावा।
> सो हले सहजन ततु फुड़ पुच्छहि गुरु पावा॥

सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध भी इस सुखराज या महासुख की व्याख्या करते समय मौन रह गये, क्योंकि वह वाणी से परे था—

> जयति सुखराज एव कारणरहितः सदोदितो नगताम्।
> यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञः॥
> —नउपाद की सेकोदेश की टीका में सरहपाद का वचन

अर्थात् जय हो इस कारणरहित सुखराज की जो जगत् के नाशवान चंचल पदार्थों में एक मात्र स्थिर वस्तु है और सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध को भी इसकी व्याख्या करते समय वचन-दरिद्र हो जाना पड़ा था।

सो यह 'सुखराज' ही सार है, यही शून्यावस्था है क्योंकि इसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है, न इसमें अपनेका ज्ञान रहता है, न पराये का। न यह जन्म है न मोक्ष, न भव न निर्माण।[1]

समस्त बौद्ध, बज्रयानी और सहजयानी साधक मानते हैं कि दो प्रकार के सत्य होते हैं—(१) लोक संवृत्ति सत्य और लौकिक सत्य और (२) पारमार्थिक सत्य अर्थात् वास्तविक सत्य। लोक में बोधि का अर्थ है स्थूल शारीरिक शुक्र जब कि परमार्थिक सत्य में वह ज्ञात रूप चित्त है। इसी प्रकार पद्म और वज्र के सांवृत्तिक अर्थ स्त्री और पुरुष के जननेन्द्रिय है परन्तु पारमार्थिक अथवा वास्तविक अर्थ आध्यात्मिक है। जो साधक साधना मार्ग में अग्रसर होने की इच्छा रखता है उसके लिए चित्त को वश में करना परम आवश्यक है। इस चित्त में यदि कामनाओं के उपभोग न करने के कारण क्षोभ हुआ तो साधना मिट्टी में मिल जायगी। यही सोचकर अनंग वज्र ने कहा था कि इस प्रकार प्रवृत्त होना चाहिए जिससे चित्त क्षुभित न हो, यदि चित्त रत्न संक्षुब्ध हो गया तो कभी सिद्धि नहीं मिल सकती[2]। फिर यह विक्षोभ दमन कैसे किया जाय? वासनाओं के दवाने से वे मरती नहीं, केवल और भी अन्तस्तल में जाकर छिप जाती हैं। अवसर पाते ही वे उद्‌बुद्ध हो जाती हैं और साधक को दबोच लेती हैं। इसीलिए उनको दबाना ठीक नहीं। उचित पंथ यह है कि समस्त कामनाओं का उपभोग किया जाय तभी शीघ्र चित का संक्षोभ दूर होगा और सच्ची सिद्धि प्राप्त होगी।[3] इस प्रकार कामोपभोग का साधना-क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इस साधना की पृष्ठभूमि शून्यवाद था। शून्यता और समस्त अभावों और अभावों से मुक्त निःस्वभावता ही साधक का चरम लक्ष्य है। कामनाओं के उपभोग के लिए स्त्री की आवश्यकता है, इसलिए बज्रयान में पांच बुद्धों और अनेक बोधिसत्वों की शक्ति की कल्पना की गई है। सिद्धि प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता है इसलिए जो बुद्ध सिद्ध हो गये हैं उनके भी गुरु हैं। यह गुरु शून्यता ही है। जैसे गुड़ का धर्म माधुर्य है और अग्नि का धर्म है उष्णता, उसी प्रकार समस्त

बौद्ध मत में सहज साधना का प्रवेश

---

१ इसी अपूर्व महासुखराज को सरहपाद ने इस प्रकार कहा है—

आइ ण अन्त ण मन्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, गउ पर णउ अप्पाण॥

—ज० सि० ले० पृ० १३

दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८९

२ तथा तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुभ्यते मनः।
संक्षुब्धे चित्तरत्ने तु सिद्धिर्नैव कदाचन॥

३ दुष्करैर्नियमैस्त्रीव्रैः सेव्यमानो न सिद्धयति।
सर्व कामोपभोगैस्तु सेव्यंश्यांशु सिद्धति॥

धर्मों का धर्म, समस्त स्वभावों का स्वभाव शून्यता है।[1] शून्यता का मूर्त रूप ही वज्रसत्व है। वज्रसत्व, वज्रधर, वज्रपाणि, तथागत इसी शून्य के नाम हैं। यही वज्रधर समस्त बुद्धों के गुरु हैं।[2] इस मानव शरीर का प्रधान आधार उसकी रीढ़ या मेरूदण्ड है। सो, इस मेरुदण्ड के भीतर तीन नाड़ियों से होता हुआ प्राण वायु संचारित होता है। बाईं नासिका से 'ललना' और दाहिनी नासिका से 'रसना' नामक प्राणवायु की वहन करनेवाली नाड़ियाँ चलती हैं, जिनमें पहली प्रज्ञा-चन्द्र है और दूसरी, उपाय सूर्य। प्रज्ञा और उपाय नाथ पंथियों की इच्छा और क्रियाशक्ति की समशील है। मध्यवर्ती नाड़ी 'अवधूती' है जो नाथ पंथियों की सुषुम्ना की समशीला है। इस नाड़ी से जब प्राणवायु उर्ध्वगति को प्राप्त होता है तब ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नहीं रहता। इसीलिए अवधूती नाड़ी को ग्राह्य-ग्राहक वर्जित कहा जाता है।[3] मेरुगिरि के शिखर पर महासुख का आवास है जहां एक चौसठ दलों का कमल है। यह कमल चार मृणालों पर स्थित है, प्रत्येक मृणाल के चार क्रम हैं और प्रत्येक क्रम के चार-चार दल हैं। इस प्रकार यह (४ × ४ × ४) चौंसठ दलों का कमल है, जहां वज्रधर योगी इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का।[4] इन चार मृणालों के दलों को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य का आवास है, उसीका नाम 'उष्णीश कमल' है, यहीं डाकिनी जालात्मक जालंधर गिरि नामक महा मेरुगिरि का शिखर है, यहीं महासुख का आवास है।[5] इसी गिरि शिखर पर

---

१ गुडे मधुरता चाग्नेरुष्णत्वंप्रकृतिर्यथा।
शून्यता सर्वधर्माणां तथा प्रकृतिरिष्यते॥

२ इस विषय में विशेष विवरण के लिए देखिये 'विश्वभारती पत्रिका', खंड ४, अंक १ में प्रकाशित भदन्त शान्ति भिक्षु का लेख।

३ हे व्रज में सरोरुह पाद ने कहा है—

ललना प्रज्ञा स्वभावेन रसनोपायसंस्थिता।
अवधूती मध्यदेशेतु ग्राह्य ग्राहक वर्जिता॥

४ ललना रसना रवि शशि तुड़िया वेन विपासे।
चउपमर चउक्रम चउमृणालथिउ महासुहवासे॥५॥
एवं काल वीअलउकुसुमिम अरविन्दए।
महुअ रुए सुर अवीर जिंघयम अरन्दए॥

—बौद्धगान ओ दोहा पृ० १२४

५ शून्यातिशून्यं महाशून्य सर्वशून्यमितिचतुः शून्य रूपेण पत्र चतुष्टयं चतुरादि स्वरूपेण चतुर्मृणालसंस्थिता कुत्रेत्याह। महासुखं वसति अस्मिन्निति महासुखवासे उष्णीष कमलं तत्र सर्व शून्यालयो डाकिनी जालात्मकं जालंधराभिधानं मेरुगिरि शिखरनिसर्वेः।

—पृ० १२४

पहुंचने पर योगी स्वयं वज्रधर कहा जाता है, यहीं वह सहजानन्द रूप महासुख को अनुभव करता है।[1] पहले जो चार प्रकार के आनन्द बताये गये हैं उनमें प्रथम आनन्द कायात्मक है अर्थात् शारीरिक आनन्द है, दूसरे और तीसरे वाचात्मक और मानसात्मक हैं। अंतिम आनन्द ज्ञानात्मक है और इसी लिए सहजानन्द कहा जाता है। इसी आनन्द से महासुख की अनुभूति होती है। संक्षेप में तात्पर्य यह है कि सहज मत के विभिन्न साधकों ने (१) शरीर को सब प्रकार के साधना का साधन माना है। (२) शिव और शक्ति के मिलन या सामरस्य को कभी (क) प्रज्ञा-उपाय के योग से, (ख) कभी स्थूल शरीर मिलन से (ग) कभी कुण्डलिनी रूपी शक्ति के साथ शून्य चक्र या सहस्रसार स्थित शिव के मिलन के रूप में (घ) कभी पंच पवित्रों के आकर्षण योग से और (ङ) कभी मंत्र-जप आदि से साध्य समझा है।

(३) सबने ऊपरी दिखावे, पूजापाठ, ध्यान-धारणा, और विधि-विधान का विरोध किया है; पर अन्ततक चलकर सब साधनाओं ने बहुत जटिल रूप धारण किया है।

(४) यद्यपि सभी साधनाओं ने शरीर में ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास किया है और वैराग्य तथा कृच्छ्राचार की आलोचना की है पर प्रेममूलक साधना उन्हें नहीं प्राप्त हो सकी। वे सिद्धि, मुक्ति और निर्वाण के चक्कर में ही पड़े रहे। प्रेम भक्ति से दूर ही बने रहे।

सातवीं से ११वीं-१२वीं शताब्दी तक के साहित्य में यद्यपि सहज साधना नाना अर्थों में व्यवहृत हुई है, परन्तु उसका मूल अर्थ बराबर याद रखा गया है। वह मूल अर्थ यह है—

(१) वाह्याडंबर और कृच्छ्राचार से परम सत्य का साक्षात्कार नहीं होता।

(२) परम प्राप्तव्य मनुष्य के शरीर में ही है।

(३) परम प्राप्तव्य का स्वरूप अनिर्वचनीय है, केवल गुरु ही उसे बता सकते हैं।

(४) स्त्री-त्याग, वैराग्य और कृच्छ्रसाधना मुक्ति के लिए आवश्यक नहीं है।

नाना साधनाओं के संसर्ग से इस मूल अर्थ के कई प्रकार के परिवर्धन हुए हैं। विशेष रूप से शरीर को ही सिद्ध सोपान मानने के सिद्धान्त ने योगमूलक और भोगपरक साधना पद्धतियों को बल दिया है। ११वीं-१२वीं शताब्दी के अन्त में इन वाह्याचार और आडम्बर विरोधी साधनाओं ने भी घोर तंत्र-मंत्र-अभिचार और रहस्यात्मक जटिलरूपों में आत्मप्रकाश किया। इसके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। प्रतिक्रिया का प्रथम तीव्र रूप नाथ साधकों में दिखाई देता है। उन्होंने बौद्धों, सौममार्गियों और शाक्त साधकों पर कसके प्रहार किया। पुरानी साधनाओं से जो बातें किसी प्रकार सरकती हुई उनके मार्ग में आ गई थीं, उनका रूपकात्मक अर्थ किया और दृढ़ता के साथ ब्रह्मचर्य, वाक्संयम और शुद्ध चित्त का समर्थन किया। गोरखनाथ ने कहा है—

---

१ एहु सो गिरिवर कहिग्र मनि एहु सो महासुह पाव।
एत्थुरे निरुगा सहज रवगुन हइ महासुह जाव॥२६॥

इंद्री का लड़वड़ा जिह्वा का फूहड़ा।
गोरख कहे ये परत चूहड़ा।।
काछ का जती मुप का सती।
सो सत्पुरुष उत्तमो कथी।।

गोरक्ष पूर्व सहज मार्गियों में दोनों ही बातें बढ़ गई थीं। परन्तु गोरखनाथ का हठ योग सहज साधना का सहायक नहीं था। वह सिद्धि प्राप्त करने का मार्ग मात्र रह गया था। उसमें भी परम प्राप्तव्य की प्राप्ति के प्रयास से विकट साधना उत्तर भारत में व्याप्त हो गई थी। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि सहज मार्ग की विभिन्न साधना-धाराओं में एक बहुत बड़ी कमी थी। वे वाह्याचार मूलक धर्म साधना का विरोध अवश्य करते और शरीर में ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास करते थे; पर इन समूची साधनाओं में प्रेम को कोई स्थान नहीं है। प्रेम के विना भक्ति हो नहीं सकती। और मध्ययुग का यह समूचा कायायोग मूलक सहज मार्ग भक्ति से शून्य है। चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण से भक्ति की प्रेम प्रधान धर्मसाधना उत्तर में पूर्ण रूप से परिचित हो गई थी। इसी समय ईरान के सूफी साधकों की मधुर भाव की साधना भी धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगी। नाथ सिद्धों ने सहज साधना को श्री सुन्दरी साधना के दलदल से निकाल लिया था। पारन्तु उसमें वास्तविक प्रेम मूलक सहज साधना का स्वर दक्षिण के आचार्यों और पश्चिम के सूफी साधकों के समर्थ के कारण प्रधान हो गया। कबीर ने सहज साधना की जो नई व्याख्या की, उसमें सहज जीवन पर जोर था—

सहज सहज सब कोइ कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजैं विषया तजी सहज कही जै सोइ।।
सहज सहज सब कोइ कहै सहज न जानै कोइ।
जिन सहजैं हरिजू मिलैं सहज कहीजै सोई।

उन्होंने नाथ पंथियों के घटाटोप प्रधान समाधि के स्थान पर सहज समाधि ग्रहण करने की सलाह दी। सहज समाधि—जो अन्तरतर के परम प्रेममय 'आराध्य' को पहचान लेने के बाद अनायास सिद्ध हो गई है, जो अहेतु आत्मसमर्पण का फल है!

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से उपजी दिन दिन अधिक चली।
जहं जहं डोलौं सोइ परिकरमा जो कुछ करौं से सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत पूजों और न देवा।
कहूँ सो नाम सुनूं सो सुमिरन खांव पियों सो पूजा।
गिरह उजार एक सम लेखौं भाव न राखौं दूजा।
आंख न मूंदों, कान न रूंधो तनिक कष्ट नहिं धारो।
खुले नयन पहिचानौं हंसि हंसि सुन्दर रूप निहारौं।।

सबद निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहूं न छूटै ऐसी ताड़ी लागी।
कह कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि भाई।
दु:ख सुख से कोउ परे परम पद ओहि पद रहा समाई।

पूर्ववर्ती सहज साधनाओं में अंतरस्थित परम प्राप्तव्य को भाव-निरपेक्ष रूप में ग्रहण करने का प्रयास था, इसीलिए उसमें शुष्कता आ गई और बहक जाने की सम्भावना बनी रही। इस साधना में भावगृहीत मधुर रूप को पाने का प्रयास था इसलिए इसमें स्थिरता और सरसता दोनों बनी रही। इस परम प्रेममय अन्तरस्थित देवता को पाने के बाद मोह, ममता और आसक्ति अनायास चली जाती है, इसीलिए यह सच्ची सहज साधना है। कबीर ने कहा है—

सहजहिं सहजहिं सब गए सुत वित कामिनी काम।
एक्यैक ह्वै रमि रह्या दास कबीरा राम।।

ऐसा भक्त अपनेको पतिव्रता सती से तुलनीय मानने लगता है—सती जो सिन्दूर की महिमा और गौरव ही जानती है। सिन्दूर को काजल से नहीं बदला जा सकता, राम को भी काम से नहीं बदला जा सकता—

कबीर रेख संदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमिया रमि रह्या दूजा नहीं समाया।।

यही सच्ची सहज साधना है। इस मार्ग का साधक परिपूर्ण प्रेम का आनन्द पाता है। दादू ने कहा है—

दादू सुमिरण सहज का दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सों खेलैं सदा वसन्त।।

सो, यह प्रेम भक्ति मूलक मार्ग ही सहज मार्ग है। यही मधुर भाव की साधना है। इसमें अखण्डानन्द सन्दोह परम प्रिय का प्रेम सहज ही प्राप्य है, वह अन्तर की स्वाभाविक व्याकुलता के मार्ग से अनायास ही, सहज भाव से आ जाता है। भक्तवर दादू दयाल ने बड़ी मीठी भाषा में इस तत्त्व को समझाया है—

पीव की प्रीति तो पाइये जो सिर होवे भाग।
यों तो अनत न जाइसी रहसी चरननि लागि।
अनते मन निवारिया रे मोंहि एकै सेती काज,
अनत गए दुख उपजै मोहि एकैहि सेती राज रे।।
साइं सो सहजो रमौ रें और नहिं आन देव।
तहां मन विलंबिया जहां अलख अभेव रे।।
चरन कंवल चित्त लाइयाँ रे भौंरे ही ले भाव।
दादू जन अचेत हैं सहजैं ही लूं आव रे।

इस प्रकार सहजमत की सर्वाधिक हृदयग्राही और सरस परिणति संत साहित्य की सहज भक्ति साधना में हुई है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'मध्यकालीन धर्म साधना'[1] में एक ऐसे सम्प्रदाय की चर्चा की है, जिनका साहित्य अब मिलता नहीं; परन्तु जो कभी बहुत प्रख्यात रहा है, वह है नीलपटों या नीलाम्बरों का सम्प्रदाय। यों लोग अत्यन्त निचली श्रेणी के भोग परक धर्म का प्रचार करते थे। खाओ, पियो, और मौज करो—यही इनका आदर्श था। पुरुष और स्त्री के जोड़े नग्न होकर एक ही नीले वस्त्र में लिपटे रहते थे। द्विवेदी जी ने अपने उसी प्रबंध में एक स्थान पर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—राजा भोज की कन्या ने ऐसे ही एक जोड़े से धर्म विषयक प्रश्न किया जिस पर 'दर्शनी' ने उपदेश दिया—

पिव खाव च वामलोचने यदतीतं वरगामि तन्नते।
नहि भीरु गतं निवर्तते सुमदय मात्रमिदं कलेवरम्॥

खाओ, पियो, मौज करो। जो वीत गया सो कभी लौट नहीं सकता। अगर तुमने तप किया और कष्ट उठाया तो वह तुम्हारे लिए बिल्कुल वेकार है, क्योंकि वह जो गया सो गया। असल वात यह है कि यह शरीर सिर्फ जड़ तत्त्वों का संघातमात्र है, इसके आगे कुछ भी नहीं है।

राजा भोज को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने इस संप्रदाय का उच्छेद कर दिया। खोज-खोज कर नीलपटों के सभी जोड़े समाप्त कर दिये गये। इसमें चार्वाकियों और सहजियों का अपूर्व सम्मिश्रण दीखता है।

(घ) वैष्णव सहजिया

प्रेम की परकीया रति

बौद्ध सहजिया साधना के क्रम-विकास में हम यह देख आये हैं कि किस प्रकार प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा का सम्मिलन ही महासुख की अवस्था है। यह प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा तांत्रिकों का शिवशक्ति ही नामान्तर भेद से है तथा उष्णीश कमल में 'अवधूतिक का' मिलन तंत्र के अनुसार सुषुम्ना का सहस्रार में प्रविष्ट होकर शिवशक्ति सामरस्य है। यह प्रज्ञा और उपाय,शिव और शक्ति,राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व है, प्रस्थान भेद से, साधना शैली के भेद से तथा अधिकार भेद से एक ही मूलतत्त्व को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित किया गया है। वैष्णव सहजियों ने प्रेम में परकीया भाव ही लक्ष्य माना। मानवप्रेम के द्वारा ही दिव्यप्रेम की परिकल्पना हुई। प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहां लोक और वेद की शृंखला को तोड़कर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है, वहीं वह आदर्श है। विवाहिता पत्नी के प्रति चिर सहवास, प्रगाढ़ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्टप्राय हो जाता है। उसमें

---

१ सहज साधना का यह अंश 'नाथ संप्रदाय' के आधार पर लिखा गया है।

उतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कंठा, आदि का भाव नहीं रहता, या जितना परकी प्रेम में होता है। स्वकीय में प्रेम कर्त्तव्य प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रंग में फीका और रस में उदास हो जाता है। संसार में देखा जाता है कि परकीया में ही प्रेम अपनी तीव्र उत्कंठा, रहस्यमयता और प्रखर आकर्षण के कारण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जो लोकलाज और कुलकानि को तिलांजलि दे देता है। वैष्णव सहजियों ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना।[1] किम्बदन्ती है कि स्वयं श्री चैतन्य देव ने सार्वभौम की कन्या 'साठी' के संग सहज साधना की।[2] इतना ही नहीं, प्रायः सभी वैष्णव भक्त कवियों ने किसी-न-किसी कुमारिका के संग में सहज साधना की। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास को तो छोड़ ही दीजिये, रूप गोस्वामी ने मीरा के साथ, रघुनाथ भट्ट ने करमा बाई के साथ, सनातन गोस्वामी ने लक्ष्मी हीरा के साथ, लोकनाथ गोस्वामी ने चण्डालिनी कन्या के संग, कृष्णदास गोस्वामी ने ब्रजदेवी पिंगला के साथ, जीव गोस्वामी ने श्यामा नाइन के साथ, रघुनाथ गोस्वामी ने राधाकुण्ड पर मीराबाई के साथ, गोपाल भट्ट गोस्वामी ने गौरीप्रिया के साथ और राय रामानन्द ने देवकन्या के साथ सहज साधना सम्पन्न की।

'आनन्द भैरव' में सहज साधना का उल्लेख

'आनन्द भैरव' में संकेततः यह उल्लेख है कि स्वयं शिव विभिन्न शक्तियों के साथ कुचनीस देश में सहज साधना की और बौद्धसहजिया कहते हैं कि स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपनी प्रिया गोपा के साथ सहज साधना की। परकीया भाव में यह सहज साधना क्या है, इस पर हम आगे विचार करेंगे।

पालों के पतन के पश्चात् सेनों के शासन-काल में बौद्धधर्म का पतन और वैष्णव का उत्थान हो रहा था। राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे जयदेव। इनका आविर्भाव बारहवीं शताब्दी में उत्तर काल में हुआ। मिथिला कोकिल विद्यापति, जो चण्डीदास के समकालीन थे, राधाकृष्ण के प्रेम पूरक गीतों के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। किम्बदन्ती है कि उन दिनों वैष्णवों की बड़ी-बड़ी सभाओं में स्वकीया भाव और परकीया भाव को लेकर प्रचण्ड शास्त्रार्थ हुआ करते थे और अन्ततः स्वकीया पक्ष की ही हरबार हार हो जाती थी। वे अपनी हार को केवल मौखिक रूप में स्वीकार ही नहीं करते थे, अपितु लिखकर पर पक्ष को दे भी देते थे।

यहां परकीया रति में यह सहज उपासना क्या है, इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। यह भूल न जाना चाहिए कि यह साधना का मार्ग है भोग का नहीं—यहां भोग को भी उन्नीत पर साधना का दिव्य मंगलमय रूप देना होता है। सहज साधना में मिथुन सुख को जीतकर उसे अपना वशवर्ती 'दास' बना लेना होता है और फिर उसे दिव्य बनाकर परात्पर प्रेमानन्द विलास

---

१ बंग साहित्य परिचय, खण्ड २, पृ० १६५०।

२ चै० च० मध्यलीला, अ० १५

अकिंचन दास—'विवर्त विलास'

का साधन बना लिया जाता है। कृष्ण ही हैं रस और राधा है रति, कृष्ण है मदन, राधा है मादन। शिव शक्ति की तरह, प्रज्ञा उपाय की तरह राधा और कृष्ण का लीला विलास एवं आनन्दोल्लास ही साधक का चरम लक्ष्य है। इसे चरितार्थ करने के लिए उसे यह साधना द्वारा अनुभव करना होता है कि यावत् पुरुष और स्त्री कृष्ण और राधा के व्यक्त रूप हैं और इनका प्रेम और सम्मिलन ही सहजियों की चरम स्थिति है। प्रेम की यह दिव्यधारा अखण्ड भाव से तैलधारावत् विश्व के कण-कण में प्रवाहित हो रही है और इसे साधना के द्वारा उद्घाटित किया जाता है।

अब प्रस्तुत विषय है कि दिव्य प्रेम की यह अजस्र धारा कैसे उद्घाटित होती है और मानव प्रेम का दिव्यीकरण (Divinisation) किस प्रकार होता है। परात्पर तत्त्व की हम तीन रूपों में भावना कर सकते हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्[1]। भगवान् रूप में कृष्ण की तीन शक्तियां हैं—स्वरूपा शक्ति, जीव शक्ति या तटस्था शक्ति, और माया शक्ति। भगवान् की स्वरूपा शक्ति में तीन तत्त्व निहित हैं—सत्, चित् और आनन्द। सत्, चित् और आनन्द का ही दूसरा नाम संधिनी शक्ति, संवित शक्ति, और ह्लादिनी शक्ति है। राधा ही यह ह्लादिनी शक्ति है।

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्

भगवान् में ही भोक्ता और भोग्या दोनों भाव सन्निहित हैं। भोग्या के बिना भोक्ता की स्थिति या आनन्दोल्लास संभव भी कैसे है? राधा चिर भोग्या और कृष्ण चिर भोक्ता हैं—मूल में एक, पर लीलाविलास के लिए दो। यह लीला भी तीन प्रकार की होती है—प्रातिभासिक, मायिक, व्यावहारिक। इसका यथास्थान हम विवरण प्रस्तुत करेंगे। अभी यह ध्यान रहे कि लीला भोग नहीं है। विन्दु का जब ऊर्ध्व गमन होता है, तब वह लीला है और अधोगमन होता है, तब वह भोग है। लीला और भोग के बीच का यह असामान्य भेद भूल जाने से ही लीला के हृदयंगम में कठिनाई उपस्थित होती है।

भोक्ता भोग्या

यह लीला वन वृन्दावन, मन वृन्दावन और नित्य वृन्दावन में होती रहती है। वन वृन्दावन में होती है लीला की आन्तरिक लीला और नित्य वृन्दावन में जिसे नित्य देश या गुप्त चन्द्रपुर कहते हैं राधा और कृष्ण की नित्य, दिव्य मनोहारिणी, प्रेम लीला और रास-विलास होता रहता है। यही 'सहज है'। प्रेम साधना से जब प्रेममय प्रभु के प्रेम का एक कण मिल जाता है, तभी साधक इस नित्य लीला में दिव्य भाव में और सिद्ध देह से प्रवेश पा सकता है। भाव देह और सिद्ध देह क्या है, इसकी चर्चा हम यथास्थान आगे करेंगे।

वन वृन्दावन, मन वृन्दावन, नित्य वृन्दावन

---

१ वदन्ति तत् तत्वविदः तत्त्वं मज् ज्ञानयद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति उच्यते।

—भागवत—१.२.११.

वैष्णव सहजियों ने नित्य वृन्दावन की नित्य लीला को माना, पर उनकी मान्यता यह है कि नित्य वृन्दावन की राधा कृष्ण की नित्य लीला केवल वन-वृन्दावन की प्रकट लीला के रूप में ही अवतरित नहीं होती अपितु प्रत्येक पुरुष में कृष्ण और प्रत्येक स्त्री में राधा का अवतार होता है और यह स्त्री-पुरुष के मिलन के रूप में राधा और कृष्ण की लीला चलती रहती है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो वास्तविक सत्व है वह कृष्ण ही है और यही मनुष्य का वास्तविक 'स्वरूप' है और उसका बहिर्मुखी जीवन तथा उसके शरीरिक स्थूल कार्य-व्यापार उसका 'रूप' है। और ठीक इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री आन्तरिक रूपमें वस्तुतः राधा ही है जो उसका वास्तविक स्वरूप है और उसा वाह्यतः जीवन व्यापार उसका रूप है। परन्तु इस रूप के अन्दर ही वह स्वरूप रहता है, अतएव प्रत्येक पुरुप और प्रत्येक स्त्री के रूपमें और कोई नहीं केवल कृष्ण और राधा का ही लीला-विलास चल रहा है।[1] राधा कृष्ण की यह रूप-लीला और स्वरूप-लीला ही क्रमशः प्राकृत लीला और अप्राकृत लीला के रूप में मानी गई है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष को कृष्ण और प्रत्येक स्त्री को राधा रूप में देखने और अनुभव या भावना करने की यह प्रणाली सहजियों की नई नहीं है। हम देख आये हैं कि तंत्रों ने प्रत्येक पुरुप को शिव और प्रत्येक स्त्री को शक्ति रूप में तथा बौद्ध दर्शन ने प्रत्येक पुरुप को उपाय और प्रत्येक स्त्री को प्रज्ञा के रूप में भावना करने का उपदेश किया है।

स्वरूप लीला और रूप लीला

ऊपर हम कह आये हैं कि कृष्ण ही हैं रस और राधा है रति, कृष्ण ही हैं काम और राधा हैं मादन। कृष्ण काम या कन्दर्प रूप में जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं—'नाम समेतं कृतसंकेतं वादयत मृदु वेणुम्'। राधा है मादन जो भोक्ता को आनन्द विलास की प्रदात्री हैं। रस और रति, काम और मादन के बीच जो दिव्य प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है वही 'सहज' है।

'सहज'

पुरुप का कृष्ण रूप में और स्त्री का राधा रूप में अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहते हैं। निरन्तर शुद्ध चिन्तन और शुद्ध भावना के द्वारा अपने अन्दर के सारे मल-आवरण आदि विकारों को नष्ट कर अपने अन्दर के पशु का बलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुप में कृष्ण की और स्त्री में राधा की भावना दृढ़ करे। इस प्रकार भावना दृढ़ होते-होते जब पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे, तब उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरुष का पार्थिव प्रेम न होकर राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है। प्रेम की यह दिव्य अनुभूति ही सहज की अनुभूति है।

आरोप साधना

---

१ दे० रति विलास पद्धति—ह० लि० क० वि०, सं० ५६४ पृ० १३ अ।
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के Obscure Religious Cults, से उद्धृत।

ऊपर हम कह आये हैं कि मनुष्य का वाह्य जीवन 'रूप' है और आन्तरिक या आध्यात्मिक जीवन जो शुद्ध 'कृष्णत्व' या 'राधात्व' की स्थिति है 'स्वरूप' है। रूप को इस स्वरूप की प्राप्ति होनी चाहिए तभी हमारे वास्तविक, आध्यात्मिक जीवन का शुभारंभ है। स्मरण रखने की बात यह है कि रूप पर स्वरूप के आरोप का अर्थ रूप की सुप्ति नहीं हैं, प्रत्युत् रूप के एक-एक कण को स्वरूप के रसबोध से सराबोर करना पड़ता है। यह मानव शरीर तथा मानव-जीवन व्यर्थ या हेय नहीं है। सहजियों ने इसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। मानवीय सौन्दर्य की मादकता में ही साधक को दिव्य सौन्दर्य की झलमल ज्योति का प्रतिबिंब मिलता है। दिव्य सौन्दर्य तथा दिव्य प्रेम का अर्थ यह कदापि नहीं है कि मानवी सौन्दर्य और मानवी प्रेम का तिरस्कार किया जाय। मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य की शृंखला को स्वीकार करते हुए, उसके भौतिक आकर्षण और नशा को मानते हुए ही साधक मन का निग्रह सफलता पूर्वक कर सकता है और परम दिव्य आनन्द और दिव्य सौन्दर्य की ओर साधना द्वारा अग्रसर हो सकता है। अभिप्राय यह कि जैसे पारा या गंधक शोधा जाता है, उसी प्रकार इस लौकिक मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य को शोध कर दिव्य प्रेम और सौन्दर्य की संसिद्धि होती है जो अपने-आपमें निरन्तर, अपरिमेय और अनिर्वचनीय है। यह दिव्य प्रेम मानवी प्रेम की परिणति है अथवा यों कहा जाय कि दिव्य प्रेम का जन्म मानवी प्रेम के गर्भ से होता है, ठीक जैसे कीचड़ से कमल का। जहाँ ठेठ वैष्णवों ने 'निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा' को काम और 'कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा' को प्रेम की संज्ञा दी है, वहाँ वैष्णव सहजियों ने इस भेद को मिटा दिया है। वे कहते हैं कि दिव्यीकरण के अनन्तर निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा और कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा में कोई अन्तर नहीं रहता——निजेन्द्रिय तर्पण और कृष्णेन्द्रिय तर्पण एक ही वस्तु है। स्पष्ट शब्दों में, उनकी मान्यता है कि प्रेम का जन्म काम से होता है। काम के विना प्रेम हो नहीं सकता, अस्तु, काम को निर्वीज करने की, उच्छिन्न करने की कतई आवश्यकता नहीं है। सहजियों की दृष्टि में भगवान् के चरणों में भक्त की प्रीति का नाम 'प्रेम' नहीं है। प्रेम है राधा और कृष्ण की प्रगाढ़ प्रीति, जो रूप में स्वरूप के आरोप द्वारा प्रत्येक स्त्री और पुरुष में उपलभ्य है। इसी में पुरुष और स्त्री शरीर की चरितार्थता है। इसीलिए यह शरीर और यह जीवन हेय नहीं है।[1] मनुष्यत्व ही देवत्व की जननी है। प्रेम से ही मनुष्य देवता बन जाता है, इसीलिए मनुष्य

आरोप तत्त्व

---

१ चण्डीदास का एक गीत है——

शुन हे मानुष भाइ
सबेर उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नय।

तथा च——

मानुष देवेर सार जार प्रेम जगते प्रचा
जगतेर श्रेष्ठं मानुष जार बलि
प्रेम प्रीति रस मानुष करे केलि॥ ——सहजिया गान २७

ही सर्वश्रेष्ठ हुआ, क्योंकि उसी में परात्पर दिव्य प्रेम का अनन्तरस-सागर लहरें मारता है। इस प्रकार मनुष्य से परे देव अथवा भगवान् की सत्ता को सहजिया नहीं मानते। राधा और कृष्ण को भी देवी-देवता रूप में ये नहीं पूजते। इनकी मान्यता यह है कि मानव शरीर में ही राधा और कृष्ण की उपलब्धि हो सकती है। दिव्य दृष्टि से देखने पर रूप और स्वरूप में ऐसी अभिन्न अविभेद्य एकता और सघनता है कि इन्हें पृथक किया नहीं जा सकता। ऐसी दृष्टि खुलने पर मानव और देव में कोई भेद नहीं रह जाता। रूप में स्वरूप उसी प्रकार परिव्याप्त है जैसे पुष्प में सुगंधि। स्वरूप की उपलब्धि रूप के द्वारा ही होती है, इसलिए पूज्य हुआ रूप अर्थात् मानव शरीर। मनुष्य सदा किसी प्रेम में तड़पता रहता है। यह जलन क्यों है और किसके लिए है, वह समझ नहीं पाता। यह जलन और यह तड़प 'प्रेमा' के लिए है, हृदय की रानी के लिए, प्राणों की प्राण के लिए है। दिव्य प्रेम के द्वारा ही पुरुष और स्त्री दिव्यत्व को प्राप्त होते हैं, परन्तु मानवी प्रेम के द्वारा ही पुरुष-स्त्री में पावन प्रेम का उदय होता है, जिसमें वे अपने कृष्णत्व और राधात्व की उपलब्धि करते हैं।

आरोप सहित प्रेम से ही साधक वृन्दावन में प्रवेश पाता है, स्वरूप का रूप पर आरोप किए बिना मात्र रूप की उपासना सीधे नरक को ले जानेवाली है। सहज साधना का साधक सामान्य

रति और रस

रस का मनुष्य नहीं होता, न वह राग मनुष्य होता है, वह तो अयोनि मनुष्य होता है और क्रमशः सहज मनुष्य और नित्य मनुष्य की स्थिति लाभ करता है। इसी प्रकार सामान्य स्त्री इस साधना में प्रवेश नहीं पा सकती। यह साधना 'विशेष रति' के द्वारा राधात्व प्राप्त करने पर ही संभव है। अभिप्राय यह कि विशुद्ध रस को प्राप्त मनुष्य अपने कृष्णत्व के द्वारा और विशुद्ध रति को प्राप्त स्त्री अपने राधात्व के द्वारा ही सहज साधना में प्रवेश पाते हैं। 'उज्ज्वल नीलमणि' में श्री जीव गोस्वामी ने रति के तीन भेद माने हैं—समर्था, समञ्जसा और साधारणी। समर्था में नायिका नायक को सुख प्रदान करने के लिए ही नायक से मिलती है। वह निःशेष आत्मदान के द्वारा अपने प्रियतम को परम आनन्द देना चाहती है। राधा ही समर्था के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। समंजसा रति में प्रिया प्रीतम की समान सुख कामना होती है जैसे रुक्मिणी आदि। साधारणी रति में नायिका स्वसुखेच्छया नायक से मिलती है जैसे कुब्जा। सहजियों ने रति के इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है और वे मानते हैं कि एकमात्र समर्था रति ही सहज साधना के लिए वरेण्य है।

प्रेमसाधना की सिद्धि के लिए सहजियों में बड़े ही कठोर नियम एवं कृच्छ साधना की विधि है। वास्तविक प्रेम संपादन के लिए यह आवश्यक है कि साधक शव हो जाय अर्थात् उसके

प्रेम सिद्धि

अन्दर की सारी निम्न वृत्तियाँ और पशु भाव समूल नष्ट हो जाय, जिससे उसपर दिव्य वृत्तियाँ और दिव्य भाव अपना पूरा रंग डाल सकें। उसका रूप स्वरूप की ज्योति और रस से ओतप्रोत हो। सारांश यह कि पुरुष अपने पुरुषत्वाभिमान का परित्याग कर जो उसका वास्तविक नारी

स्वभाव है उसे प्राप्त कर ले तब इस साधना में पैर रखे। इस साधना की कठिनाई को व्यक्त करने के लिए सिद्धों ने कई ऊलटवासियाँ कही हैं--समुद्र में स्नान पर रंचमात्र भी भींगता नहीं, साँप के आगे मेढ़क का नृत्य, मकरी के तार से हाथी बाँधना इत्यादि। सहजियों ने प्रेमसाधना में साधक की तीन कोटियाँ मानी हैं--प्रवर्त, साधक, और सिद्ध। इनके लिए पंचाश्रय है--नाम, मंत्र, भाव, प्रेम और रस। प्रवर्त स्थिति के साधक के लिए नाम और मंत्र, साधक स्थिति के लिए, भाव और सिद्ध स्थिति के लिए प्रेम तथा रस। अभिप्राय यह कि सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर ही साधक प्रेम और रस की साधना का अधिकारी होता है। सिद्धि के लिए शरीर और मन दोनों का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। सबल शरीर के बिना सहज साधना असंभव है। इसलिए प्रेम साधना में कायसाधना भी एक अत्यन्त प्रमुख अंग है। वह 'तत्त्व' है इस देह में ही अतएव देह की उपेक्षा कर के उस तत्त्व की प्राप्ति कठिन क्या असंभव है। जो इस भाण्ड (शरीर) को जान जाता है वह ब्रह्माड को जान जाता है। चैत्त रूप ही सहज रूप है और वह शरीर के भिन्न कमलों में निवास करता है। राधा और कृष्ण का सारा रहस्य इस शरीर के भीतर ही जाना जा सकता है। प्रेम की साधना में द्वैत का सर्वथा निरसन हो जाता है दो शरीर एक आत्मा--एक शरीर एक आत्मा, दो का एक में सर्वथा विलयन। प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम में जब सर्वथा घुल कर 'एकमेक' हो जाते हैं, तभी इस साधना की सिद्धि मानी जा सकती है। चण्डीदास ने गाया है--

पीरिति उपरे पीरित वइसह
ताहार उपरे भाव
भावरे उपरे भावरे वसति
ताहार उपरे लाभ ।।
प्रमेरे माझारे पुलकेर स्थान
पुलक उपरे धारा
धारार ऊपरे धारर वसति
ए सुख बुझाये कारा ।।
मृत्तिका उपरे जलेर बसति
ताहार उपरे ढेउ
ताहार उपरे पीरीति बसति
ताहा को जानाय केउ ।। --चण्डीदास

जब साधक के हृदय में वास्तविक प्रेम का उदय होता है तब प्रेमास्पद प्रेम का एक प्रतीक मात्र बन जाता है और सारा विश्व अपनी अनन्त गरिमा, रहस्य तथा अपरिमेय सौन्दर्य के साथ प्रेमास्पद के शरीर में ही घनीभूत होकर स्फुटित हो जाता है, इतना ही नहीं, वह प्रेमास्पद ही परम सत्य परम शिव और परम सुन्दर का प्रतीक हो जाता है। प्रेम के ऐसे दिव्य आवेश में चण्डीदास ने 'रामी' को संबोधित करते हुए गाया है--

तुमि हउ पितृ मातृ, तुमि वेदमाता गायत्री ।
तुमि से मंत्र तुमि से तंत्र
तुमि से उपासना रस ।

अर्थात् तुम्हीं हो मेरी माता, पिता, तुम्हीं हो वेदमाता गायत्री
तुम्हीं से हैं सारे तंत्र-मंत्र और तुम्हीं हो उपासना रस का मूल उत्स ।

प्रेम साधना में यही है आनन्द की वह स्थिति, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद् ने ब्रह्म से अभिन्न कहा है तथा यह माना है कि इसीसे सबकी उत्पत्ति हुई, इसीमे सबका पोषण होता है तथा इसी में सबका अभिसंवेश होता है ।[1]

---

१ आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।

—तै० उ० ३.६

चौथा अध्याय

सिद्ध देह और लीला-प्रवेश

यह स्मरण रखना होगा कि इस भौतिक स्थूल देह, विषयासक्त मन, बहिर्मुखी बुद्धि तथा मलिन अन्तःकरण से भगवान की मधुर लीला में प्रवेश नहीं होता। वैधी भक्ति के एकादश

प्रवेशाधिकार

अंगों—शरणापत्ति, गुरुसेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चना, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन के साधन से जब शरीर, इन्द्रियों और मन के द्वारा पूर्णतः एक मात्र प्रभु की उपासना[1] होने लगती है तब वह वैधी साधन भक्ति कहलाती है। वैधी साधना का क्या स्वरूप है इसका प्रकरण यथास्थान आगे आयगा। अभी यहाँ इतना अभीष्ट है कि वैधी साधना को सांगोपांग सम्पन्न कर चुकने के अनन्तर ही साधक का रागानुगा भक्ति में प्रवेश होता है। 'रागानुगा' के अनन्तर है रागात्मिका भक्ति जो मधुर रसमयी है और जिसमें केवल व्रज की गोप-कन्याओं का प्रवेश है। इन ब्रजवासिनी गोप-कन्याओं की प्रीतिमयी भक्ति का जिनके द्वारा अनुगमन होता हो वही है रागानुगा।[2] ब्रजभाव की प्राप्ति के लोभ का ही नाम है 'रागानुगा'।[3] ब्रजभाव की लिप्सा से व्रजलोकानुसारतः व्रज सेवन से रागानुगा की उपलब्धि होती है। इस प्रकार की साधना में सखी भाव या राधा भाव में स्थित होकर उसी प्रकार की लीला, वेश और स्वभाव का आचरण करते हुए आनन्दोल्लास में मग्न रहना चाहिए। पहले हम कह आये हैं कि रागानुगा में स्मरण ही मुख्य साधन है।[4] स्मरण की प्रगाढ़ता मे ही इसमें विशेष सफलता मिलती है।

---

१ 'कायषीकान्तकरणानां उपासना'

२ विराजन्ती अभिव्यक्तं व्रजवासी जनादिषु
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

—जीव गोस्वामी।

३ विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है—
व्रजलीला परिकरास्था शृंगारादि भावमाधुर्ये श्रुते इदं ममापि भूयात्
इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्तयापेक्षा न स्यात्॥

४ 'रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यताम्।

इसीसे भावयोग द्वारा साधक का भगवान् से मिलन होता है और इसे ही 'आंतर मिलन'[१] (Mystic Union with the Beloved) कहा जाता है।[१] भाव की तीव्रता में साधक केवल वृन्दावन लीला का साक्षात्कार नहीं करता, अपितु इसमें सखी भाव से प्रवेश कर इस लीला-विलास का आस्वादन भी करता है।[२] रागानुगा भक्ति का आदर्श है व्रजवासियों की रागात्मिका भक्ति की उपलब्धि। रागात्मिका के कई रूप हैं—(१) कामजन्य जैसे गोपियों का, (२) द्वेष जन्य जैसे कंस का, (३) भयजन्य जैसे शिशुपाल का, (४) स्नेहजन्य जैसे यादवों का। रागात्मिका में सिद्ध देह से नित्य धाम में लीलास्वादन होता है। दीक्षा में अष्ट सखियों में से किसी एक की लाइन में मंजरी के द्वारा प्रवेश होता है। रागात्मिका में मंजरी ही गुरु है। सिद्ध देह की अभिप्राप्ति परे मंजरी के द्वारा ही सखी देह प्राप्त होता है। सखी देह का कायव्यूह ही श्री राधा जी हैं। रागात्मिका के दो भेद हैं—(१) कामरूपा (२) संबंधरूपा। कामरूपा का अर्थ है संभोग-तृष्णा। यह संभोगतृष्णा एक मात्र श्री कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए है—'कृष्ण सौख्यर्थमेव केवलं उद्यमः' और इसकी परिणति व्रजदेवियों की प्रीति में होती है। 'कामानुगा' का भाव है 'केलितात्पर्यवती संभोगेच्छा' केलि के लिए संभोगेच्छा। कुब्जा की रति कामप्राया है, कामरूप नहीं।

---

१ As the little water drop poured into a large measure of wine seems to lose its own nature entirely and to take on both these taste and colour of the wine, or as the iron heated red-hot loses its own appearance and glows like fire, or as air filled with sunlight is transformed with the same brightness so that it does not so much apear to be illuminated as to be itself lighx, so must all human feeling towards the Holy one be self dissolved in unspeakable wise and wholly transfused into the will of God.—D. Diligendo Deo C. 10

२ विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने 'रागवर्त्मचन्द्रिका' में रागानुगा का बड़े विस्तार से वर्णन किया है और उदाहरण स्वरूप यह बतलाया है कि महाप्रभु श्री चैतन्य देव का जब अवतार हुआ तब उनके साथ ही कई गोपियाँ उनके सखा के रूप में अवतीर्ण हुईं, उदाहरणार्थ—

रूप मंजरी	—	रूपगोस्वामी के रूप में
लावण्य मंजरी	—	सनातन गोस्वामी के रूप में
रति मंजरी	—	रघुनाथदास के रूप में
गुण मंजरी	—	गोपाल भट्ट के रूप में
विलास मंजरी	—	जीव गोस्वामी के रूप में
रस मंजरी	—	रघुनाथ भटट के रूप में

संबंध रूपा रति में माता, पिता या मित्र के रूप में श्रीकृष्ण से संबध होता है—जैसे नन्द, यशोदा, गोप।

भावभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति के परिपाक से होती है। यह कृष्ण-कृपा वा कृष्ण-भक्त कृपा से प्राप्त होती है। इसीलिए इसके तीन भेद किये गये हैं—साधनाभिनिवेशजा, (२) कृष्णप्रसादजा (३) कृष्णभक्तप्रसादजा। भाव भक्ति में अभी भाव रसदशा तक नहीं पहुँचा है। परन्तु भावभक्ति किसी वाह्य प्रयत्न से साधित नहीं होती। शुद्ध सत्व विशेष से ही इसकी स्फूर्ति होती है और प्रेम की प्रथम छवि है—'प्रेम्णः प्रथम छविरूपः'। भावभक्ति से 'रुचि' के द्वारा चित्त मसृण हो जाता है। यह 'रुचि' ही भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा जगाती है और परिणाम यह होता है कि अनुभावों का स्फुरण होने लगता है—जैसे शान्ति, अव्यर्थकालता, विरक्ति, मान-शून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामगान में रुचि, भगवद्‌गुण-व्याख्या में आसक्ति, भगवान् के वासस्थल में प्रीति।

भावभक्ति

भावभक्ति के परिपाक से उत्पन्न होती है प्रेमाभक्ति। भाव जब सान्द्रात्मा-प्रेम की स्थिति में पहुँच जाता है तब प्रेमाभक्ति का उदय होता है। इसमें हृदय सर्वथैव सम्यक् प्रकारेण मसृण हो जाता है और अनन्य ममता का आविर्भाव होता है। यह साधना भक्ति से हो, रागानुगा से हो या भावभक्ति से हो, परन्तु होता है भगवत्प्रसाद से ही। यह प्रसाद 'केवल' निर्हेतुक हो सकता है या माहात्म्य ज्ञान से हो सकता है। इसमें 'केवल' प्रसाद रागानुगा से प्राप्त होता है और माहात्म्य ज्ञानजन्य प्रसाद वैधी मार्ग से होता है। इसका क्रमविकास यों होता है—श्रद्धा, साधुसंग, भजन क्रिया, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा रुचि, आसक्ति, भाव और अन्त में प्रेम।[1]

प्रेमाभक्ति

प्रेम के मूल में है 'इच्छा'—भक्त की इच्छा भगवान् से मिलने की ओर उधर भगवान् की इच्छा भक्त से मिलने की। भक्त के मन में मिलन की इच्छा उठते ही भगवान् के मन में भी मिलन की इच्छा जाग्रत हो जाती है। उनकी इच्छा सर्वसमर्थ हैं और उसी के द्वारा मिलन संभव होता है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से परे यह प्रेम ही पंचम पुरुषार्थ माना गया है। कारण यह है कि मधुर भाव के विना अखण्ड और संकोचहीन मिलन असंभव है।

प्रेम ही परम पुरुषार्थ

---

१ आदौ श्रद्धा ततः संगस्ततोऽथभजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठारुचि स्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

—भक्तिरसामृत सिन्धु

व्रजभाव अथवा सखी भाव में प्रवेश करने के पूर्व दो बातें आवश्यक हैं---उपासक परि-स्मृति और उपास्य परिस्मृति। उपासक परिस्मृति में ग्यारह भाव हैं। (१) संबंध, (२) वयस, (३) नाम, (४) रूप, (५) यूथ, (६) वेश, (७) आज्ञा, (८) वास, (९) सेवा, (१०) पराकाष्ठा श्वास एवं (११) पाल्यदासी भाव। इनमें संबंध-भाव ही प्राप्ति की आधारशिला है। सम्बन्धकाल में श्रीकृष्ण के प्रति जिसका जो भाव होता है तदनुरूप ही उसका चरम लाभ होता है।

सखी भाव में प्रवेश

कृष्ण से प्रभु भाव से संबंध करने पर साधक उनका दास हो जाता है, सखा भाव से सम्बन्ध करने पर उनका सखा, पुत्रभाव से संबंध करने पर उनका पिता-माता, स्वकीय पति भाव से सम्बन्ध करने पर वनिता हो जाता है। व्रज में शान्त रस तो है नहीं, दास्य भी संकुचित है। उपासक की स्वाभाविक रुचि के अनुसार ही सम्बन्ध स्थापित होता है जिनका श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रीत्व भाव से परकीया रस में रुचि है वे व्रजवनेश्वरी के अनुगत होकर रसास्वादन करते हैं। वह ऐसा मानते हैं कि मैं श्री राधिका की परिचारिका हूं और श्रीराधारानी मेरी जीवनेश्वरी हैं। सुतरां राधावल्लभ ही हमारे प्राणेश्वर हैं। यह तो सम्बन्ध भाव के संबंध में हुआ।

संबंध-भाव

अब 'वयस' के संबंध में यह निवेदन है कि श्रीकृष्ण के साथ हमारा जो भी सम्बन्ध है उससे एक अपूर्व स्वरूप का उदय होगा---यह स्वरूप है व्रजललना-स्वरूप। उसमें सेवा के उपयुक्त स्वरूप की अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु, किशोरवयस् ही वास्तविक वयस है। दस वर्ष से सोलह वर्ष तक 'किशोर' है। सोलह वर्ष की अवस्था ही वयःसंधि है। व्रजललनाएँ नित्य किशोरी हैं कारण कि उनमें बाल्य, पौगण्ड, एवं वृद्धावस्था का आविर्भाव कदापि नहीं होता। इसलिए इस रस का साधक अपनेको किशोरी रूप में भावना करें।[1]

वयस्

इसके अनन्तर है नाम भाव। व्रजरानी की परिचारिका की परिचारिका का सम्बन्ध ज्ञात होते ही सखी रूप का जो नाम है, वही साधक का नाम हो जाता है। साधक की रुचि देखकर गुरु जो नाम दे दें, वही साधक का नित्य नाम है। नाम द्वारा ही साधक व्रजललनाओं के समीप 'मनोरम' होता है। उसकी रुचि के अनुसार प्रिया, लता, अली, सखी, कला आदि नाम उसे प्राप्त होते हैं।

नाम

---

१ आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥

---सनत्कुमार तंत्र

'रूप' के सम्बन्ध में लक्ष करने की बात यह है कि रूप-यौवन-सम्पन्न किशोरी हो जाने पर रुचि के अनुसार ही गुरुदेव सिद्ध रूप का निर्णय करते हैं। अचिन्त्य चिन्मय रूप विशिष्ट हुए विना श्री राधारानी की परिचारिका कौन हो सकता है? किस 'यूथ' में साधक का सखी रूप में वरण हुआ है, यह जानने के लिए यह जानना होगा कि श्रीमती राधिका ही यूथेश्वरी हैं। राधिका की अष्ट सखियों में से किसी एक के यूथ में रहना होगा। ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि किसी सखी के यूथ में सम्मिलित होकर उसी की आज्ञा से श्रीराधामाधव की सेवा की जाती है।

रूप

चन्द्रावली आदि सखियाँ राधामाधव के लीला सम्पादन के लिए निरन्तर यत्नवती रहती हैं और विपक्ष-पक्ष होकर रसवृष्टि करने के लिए वही वह भाव ग्रहण करती हैं। वस्तुतः स्वयं श्रीराधिकाजी ही यूथेश्वरी हैं और श्रीकृष्ण की विचित्र लीला की अभिमानिनी हैं। जिनकी जो सेवा है उनका वही 'अभिमान' है। जो सेवा मिली है, उस सेवा के उपयोग नानाविध गुणों को धारण करने का आदेश गुरुदेव देते हैं।

यह आज्ञा दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। करुणामयी सखी जो नित्य सेवा की आज्ञा दें उसे निरपेक्ष होकर अष्टकाल में जहाँ जो आवश्यक हो, निर्भ्रान्त होकर करना उचित है। बीच-बीच में समय और प्रयोजन के अनुसार भी सेवा मिलती रहती है।

व्रज के किस ग्राम में वास होना चाहिए, गोपी होकर कहाँ जन्म हुआ, किस गाँव में विवाह हुआ, किस कुण्ड के पास किस कुंज में रहना आदि के संबंध में गुरुदेव का आदेश होता है।

वास

'सेवा' में जो यूथेश्वरी की आज्ञा हो वही करना होता है, जो श्रीराधिकाजी की ही सेवा में लीन रहती है। कृष्ण यदि ऐसी सखी के प्रति रति का प्रकाश करें तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि राधिका जी की दासी को ऐसा करना अनुचित है। राधिका की अनुमति के विना कृष्ण-सेवा स्वतन्त्र होकर नहीं करना चाहिए। इसी का नाम है सेवा। श्री राधा की अष्टकाली सेवा ही दासी के लिए कर्त्तव्य है। 'पाल्यदासी' का अर्थ है—जो गाढ़ प्रेमरस से परिलुप्त होकर प्रियता द्वारा प्रागल्भ्य लाभ कर लेती है अर्थात् 'धृष्ट' हो जाती है और प्रति दिन क्रम से प्राणप्रिय राधाकृष्ण का लीला-विहार कराती है और वैदग्ध क्रम से अपनी सखी श्री राधिका के रसपूर्वक मान की शिक्षा देती हैं। वही श्री ललिता अपना पाल्यदासी बना ले, यही साधक की कामना होती है।[1]

सेवा

---

१ सान्द्रप्रेमरसैःप्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयोः
प्राणप्रेष्ठ वयस्ययोरनुदिनं लीलाभिसंगंक्रमैः।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षां रसैः।
येऽयं कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मां गणैः॥ —व्रजविलासस्तव श्लोक २९

सेवा में ताम्बूलरचना, चरणमर्दन, पयःदान, अभिसारादि कार्य के द्वारा श्री राधा जी को नित्यतुष्ट रखना ही मुख्य है।

श्री राधाकृष्ण के प्रणय ललित कौतुक की पात्री बनना, संगीत वाद्य के द्वारा उनका मनोरंजन करना यह भी सेवा में सम्मिलित है। राधिका के शृंगार की पुष्टि के लिए सपत्नी भाव में स्थित सौभाग्य, गर्व, विभ्रम प्रभृति गुणों की गुणवती के साथ श्री कृष्ण कुछ क्षणों के लिए क्रीड़ा करते हैं, यह सौभाग्य केवल चन्द्रावली जी को प्राप्त है।

यह सिद्ध देह न तो अस्थि-मांस-रक्तमय जड़ देह है और न सांख्य प्रोक्त सूक्ष्म और कारण देह ही है। यह है दिव्यानन्द चिन्मय रस प्रतिभावित नित्य शुद्ध सुचारु समुज्ज्वल परम सुन्दरतम सच्चिदानन्दमय रस विग्रह। वैष्णव साधना के क्षेत्र में इस सच्चिदानन्दरसमय मूर्ति को 'मंजरी' कहते हैं। ये सखियों की अनुमति के अनुसार श्री राधामाधव की सेवा में नियुक्त रहती हैं और परमानन्द का अनुभव करती हैं। इनका यह देह नित्य शुद्ध, नित्य सुन्दर, नित्य मधुर, नित्य नव सुषमा सम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल रहता है। इन पर देश-काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस मार्ग में साधना की परिपक्व स्थिति में इस सिद्ध देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पाँच भौतिक देह छूट जाती है, पर यह सच्चिदानन्द रसविग्रहमयी ब्रज सुन्दरियाँ भगवान के प्रेमधाम में स्फूर्ति प्राप्त करके श्री युगल स्वरूप की सेवा में नित्य नियुक्त रहती हैं।

सिद्ध देह क्या है ?

इस साधना के क्षेत्र में तथा भगवान् श्री राधामाधव के प्रेमधाम में भगवान् श्री वृन्दावनेश्वर तथा श्री वृन्दावनेश्वरी, उनकी अष्ट सखी और अष्ट मंजरियों के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय तथा सखी और मंजरियों की दिशा और उनकी सेवा इस प्रकार मानी गई है।

अष्ट सखी, अष्ट मंजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र का रंग	वयस	सेवा
	श्री नन्दनन्दन श्यामसुन्दर	इन्द्रनील मणि	नीला	वर्ष मास दिवस १५ ६ ७	
	श्री मती राधिका रासेश्वरी	तपाया स्वर्ण	पीला	१४ २ १५	
			सखी		
उत्तर	श्री ललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४ ३ १२	तांबूल
ईशान कोण	श्री विशाखा	बिजली	तारावर्ण	१४ २ १५	वस्त्रादि
पूर्व	श्री चित्रा	काश्मीर	कांच वर्ण	१४ १ ४	चित्र
अग्निकोण	श्री इन्दुलेखा	हरिताल	दाडिमपुष्प	१४ २ १२	अमृतासन
दक्षिणनैऋत्य	श्री चम्पकलता	चम्पापुष्प	चीलवर्ण	१४ २ १४	चंवर

कोण	श्री रंग देवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४	२	८	चन्दन
पश्चिम	श्री तुंगविद्या	काश्मीर	पाण्डुवर्ण	१४	२	२०	गानवाद्य
वायव्य कोण	श्री सुदेवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४	२	८	जल

मंजरी

उत्तर	श्री रूप मंजरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१३	६	०	तांबूल
ईशानकोण	श्री मंजुलीला मंजरी	तप्तस्वर्ण	किंशुक पुष्प	१३	६	७	वस्त्र
पूर्व	श्री रस मंजरी	चंपा पुष्प	हंसवर्ण	१३	वर्ष		चित्र
अग्निकोण	श्री रति मंजरी	विजली	तारावर्ण	१३	२	०	चरणसेवा
दक्षिण	श्री गुण मंजरी	बिजली	जवापुष्प	१३	२	२७	जल
नैऋत्यकोण	श्री विलास मंजरी	स्वर्ण केतकी	भ्रमरवर्ण	१३	०	२६	अंजन सिंदूर
पश्चिम	श्री लवंग मंजरी	बिजली	तारावर्ण	१३	६	१	माला
वायव्यकोण	श्री कस्तूरी मंजरी	स्वर्ण वर्ग	कांचवर्ण	१३	वर्ष		चन्दन

इन सखियों और मञ्जरियों के नाम, सेवा आदि में व्यतिक्रम भी माना जाता है। जैसे श्री सुदेवी जी के देह का वर्ण उद्दीप्त स्वर्ण के समान भी माना गया है—'प्रोत्तप्त शुद्ध कनकच्छवि चारुदेहाम्'। प्रधान अष्ट मञ्जरियों के नाम में भी अन्तर माना गया है। उपर्युक्त सूची के स्थान पर ये नाम भी मिलते हैं—

(१) श्री अनङ्ग मञ्जरी, (२) श्री मधुमती मञ्जरी, (३) श्री विमला मञ्जरी, (४) श्री श्यामलता मञ्जरी, (५) श्री पालिका मञ्जरी, (६) श्री मञ्जुला मञ्जरी, (७) श्री धन्या मञ्जरी, (८) श्री तारका मञ्जरी। इनमें से प्रत्येक के अनुगत दो-दो मञ्जरियाँ अथवा प्रिय नर्म सखियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं—(१)श्री लवङ्ग मञ्जरी, (२) श्री रूप मञ्जरी, (३) श्री रस मञ्जरी, (४) श्री गुण मञ्जरी, (५) श्री रति मञ्जरी, (६)श्री मृदु मञ्जरी, (७)श्री लीला मञ्जरी, (८)श्री विलास मंजरी, क(९)श्री विलास मञ्जरी, ख(१०) श्री केलि मञ्जरी, (११)श्री कुन्द मञ्जरी, (१२) श्री मदन मञ्जरी, (१३) श्री अशोक मञ्जरी, (१४) श्री मञ्जुलीला मञ्जरी, (१५) श्री सुधा मञ्जरी, (१६) श्री पद्म मञ्जरी। प्रधान अष्ट सखियों का क्रम भी कहीं-कहीं ऐसा माना गया है—श्री रंग देवी, श्री सुदेवी, श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री चित्रा, श्री तुंग विद्या, श्री इन्दु लेखा, अथवा श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री इन्दु लेखा, श्री तुंग विद्या, श्री रङ्गदेवी, श्री सुदेवी, श्री चित्रा। सखियों एवं मञ्जरियों की संख्या इतनी ही नहीं है। ये तो मुख्य आठ-आठ हैं। सिद्ध देह में मञ्जरियों की स्फूर्ति और तद्रूपता प्राप्त हो जाती है।

कुछ और सखियों और मंजरियों के नाम

यह परमगोपनीय साधन राज्य का विषय है। यह स्मरण रहे कि इस राजमार्ग में रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये आठ स्तर माने गये हैं। इनमें रति प्रथम है और यह रति तभी मानी जाती है जब कि इस लोक और परलोक के समस्त भोगों से तथा मोक्ष से भी सर्वथा विरति होकर केवल भगवच्चरणाविन्द में ही रति हो गई हो। साधक के चित्त में केवल एक ही भावना दृढ़ होकर बद्धमूल हो जाय कि इस लोक में, परलोक में सर्वत्र सर्वदा और सर्वथा एक मात्र श्रीकृष्ण ही मेरे हैं और श्रीकृष्ण के सिवा मेरा और कोई भी, कुछ भी, किसी काल में भी, नहीं है। अतएव यहाँ दूसरी वस्तु मात्र तथा तत्त्व का अभाव हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या और असूया आदि दोषों के लिए तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। ये तो साधक देह में ही समाप्त हो जाते हैं। सिद्ध देह में तो सत्य निरन्तर श्रीकृष्णानुभव के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नहीं। अस्तु,

ऊपर हम कह आये हैं कि इस भौतिक देह से लीला में प्रवेश नहीं हो सकता, उसके लिए चाहिए भाव देह और सिद्ध देह। नाथ साधना, बौद्ध साधना, रसेश्वर साधना, ईसाई और सूफी साधना में इस सिद्ध देह की चर्चा है, हाँ, प्रक्रिया और लक्ष्य में भेद है। अस्तु, देह दो प्रकार का है—साधक देह और सिद्ध देह। साधक देह से साधन होता है और सिद्ध देह से रस का संवेदन और लीला का आस्वादन।[1] साधक देह भी मातृगर्भ से उत्पन्न प्राकृत देह नहीं है। कुछ लोग भाव देह और सिद्ध देह में भेद मानते हैं और कुछ लोग अभेद। सामान्यत: पहले साधक देह को प्राप्त करना चाहिए, फिर सिद्ध देह को या पहले भावदेह, तब सिद्ध देह। व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर युक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न महात्माओं ने भिन्न-भिन्न ढङ्ग से किया है, पर भेद-अंश हटाकर देखने पर यह पता चलेगा कि कोई भेद नहीं है।

साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह

सबसे पहले है प्राकृत देह। इसके तीन भेद—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। किसी-किसी मत में इस कारण देह को महाकारण देह में परिवर्तन करना ही साधना का लक्ष्य है। कुछ लोगों की मान्यता है कि कारण देह शुद्ध है, इसे ही भाव देह बना देना चाहिए। सांख्य कारण देह नहीं मानता। कारण देह आनन्दात्मक है, पर है अज्ञानात्मक। कारण की निवृत्ति होने पर ही महा कारण का आविर्भाव होता है। उपासना, योगाभ्यास या नाम साधन के द्वारा 'स्वभाव' की प्राप्ति के लिए चेष्टा होनी चाहिए। गुरुकृपा का आश्रय लेकर किसी भी साधना का अवलम्बन कर के अविद्या माया से निवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्र-साधना, जपादि वैध कर्म से 'स्वभाव' की प्राप्ति होती है।

प्राकृतदेह और उसके भेद : स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारण देह : महाकारणदेह

---

१ **सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्रहि।
तद्भावलिप्सुना कार्या ब्रजलोकानुसारतः॥** **—संकल्प कल्पद्रुम**

'स्वभाव' का अर्थ स्पष्ट रूप में जानना यहाँ प्रसङ्गतः आवश्यक है। स्वभाव का अर्थ है प्रत्येक जीव का वैशिष्ट्य। प्रत्येक जीव अपना वैशिष्ट्य लेकर आता है। यह वैशिष्ट्य ही है उसका 'स्व-भाव' अथवा भाव। स्वभाव की प्राप्ति से अपने स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। ज्ञानमार्ग से जो सम्बन्ध भगवान् से है उसका परिणाम 'एकता' की प्राप्ति है, पर भक्तिमार्ग में साधन करनेवाले को 'भेद' की प्राप्ति होती है—वैशिष्ट्य या स्वभाव के कारण। उपनिषद् कहते हैं—'परंज्योतिं संपद्य ब्रह्मणा सह एकीभूत्वा स्वभावो प्राप्तिः'[1] अर्थात् परं ज्योति का सम्पादन कर साधक ब्रह्म के साथ 'एकता' प्राप्त कर लेता है और तब उसे स्वभाव की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान के द्वारा निज स्वभाव खुल जाता है। प्रकाश सब वस्तु को अपना स्वरूप प्रदान कर देता है, यही उसका धर्म है। अन्धकार में सब एकाकार हो जाता है। आवृत स्वभाव को ज्ञान अनावृत कर देता है। भगवान् के साथ जो सम्बन्ध होता है वह स्वभाव को लेकर ही। स्वरूप जाने बिना भगवान् से सम्बन्ध क्या?

'स्वभाव'

भाव देह का अर्थ है स्वभाव-देह स्वरूप देह, जिससे जीव चित्स्वरूप में भगवान् से खेलता है। भावदेह ही भक्तिदेह है, चन्द्रमा की भाँति शीतल ज्ञान-देह प्राप्त होने पर पतन हो सकता है यद्यपि ज्ञान तब भी रहता है पर रहता है अज्ञान से आवृत। परन्तु भाव-देह से भगवत्प्रीति का ही सम्पादन होता है और वह नष्ट नहीं होता। भाव देह की प्राप्ति के पूर्व परभाव की निवृत्ति' हो जाना चाहिए। अविद्या के हट जाने पर ही स्वभाव खुल जाता है। स्वभाव साकार है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग है। गुरु का प्रयोजन यही है कि वे बाहरी आवरण हटाकर शिष्य के 'स्वभाव' को खोल देते हैं। विधि-निषेध तक ही गुरु का प्रयोजन है। अविद्या-माया का आवरण हटते ही गुरु का प्रयोजन शेष नहीं रह जाता। भावमार्ग गुरुगम्य नहीं है। भाव-देह प्राप्त हो जाने पर स्वभाव ही 'गुरु', स्वभाव ही शास्त्र तथा स्वभाव का निर्देश ही विधि-निषेध होता है। बाहर से कोई नियन्त्रण करनेवाला नहीं रहता। गंभीर आन्तर राज्य की नीरवता में बाह्य जगत की किसी भी वस्तु का कोई स्थान नहीं होता। तथापि वहाँ की कोई शक्ति अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर भक्त को परिचालित करती है, इसी को स्वभाव कहते हैं।

भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह

शिशु को जिस प्रकार शिक्षा नहीं दी जाती कि वह किस प्रकार माँ को पुकारे अथवा माँ के साथ व्यवहार करे—वह अपने स्वभाव के द्वारा ही नियमित होता है, ठीक उसी प्रकार जो भक्त भाव देह में शिशु है उसे मातृ-भक्ति सिखानी नहीं पड़ती, वह स्वभाव की सन्तान है, स्वभाव ही उसे परिचालित करता है। वह अपने-आप जो करेगा वही उसका भजन है। रागात्मिका

'स्वभाव'

---

१ छान्दोग्य

भक्ति में वाह्य शास्त्र या वाह्य नियमावली की आवश्यकता नहीं होती। स्वभाव प्राप्ति के बाद इच्छा का प्रतिभात नहीं होता। स्वभाव प्राप्ति के बाद आत्म द्विधाकरण (सेल्फ डुप्लिकेशन) की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भाव का विकास ही प्रेम है। भाव-साधना करते-करते स्वभावतः ही प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। जबतक प्रेम उदय नहीं होता, तबतक भगवान् का अपरोक्ष दर्शन नहीं हो सकता। भाव के उदय के साथ आश्रय तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है; परन्तु जबतक प्रेम का उदय नहीं होता, तब तक विषयतत्त्व का आविर्भाव नहीं हो सकता। अस्तु, प्रेम की अवस्था ही पूर्णता की अवस्था है।

भाव और प्रेम

कमल के विकास के लिए जिस प्रकार एक ओर जलपूर्ण सरोवर और उसके साथ पृथिवी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दूसरी ओर ज्योतिर्युक्त तेजोमण्डल तथा उसके साथ आकाश भी आवश्यक होता है। नीचे रस और ऊपर रवि-किरण, इन दोनों का एक साथ संयोग होने पर कमल स्फुटित होता है अन्यथा स्फुटित नहीं हो सकता। भाव के विकास के लिए भी उसी प्रकार एक ओर लक्ष्योन्मेष रूप और दूसरी ओर रसोद्गम का मूल कारण स्थायी भाव आवश्यक होता है।

रस और ज्योति

खेचरी भांड या अमृत भांड से लक्ष्योन्मेष के साथ-साथ अमृत-क्षरण प्रारम्भ हो जाता है। भाव-सरोवर में पहले भाव-कलिका के रूप में प्रकट होता है, पश्चात् सूर्य की किरणें उसे प्रेम-कमल के रूप में विकसित कर देती हैं। भाव देह, फिर प्रेम देह, फिर सिद्ध देह। भाव देह विरह का देह है, प्रेम देह मिलन का और सिद्ध देह में न विरह है, न मिलन, वहाँ है नित्य अखण्ड लीला-स्वादन।[1]

भाव देह, प्रेम देह, सिद्ध देह

भगवान् निरन्तर स्वयं अपने साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। वे नित्य हैं, इसलिए उनकी लीला भी नित्य है। अज्ञान की क्रिया के रहने पर इस नित्य लीला की कल्पना नहीं की जा सकती। पहले अद्वैत वोध में स्थित प्राप्त करना आवश्यक है, तब दिखाई देता है कि एक ही नाना रूपों में सजकर अपने साथ आप ही सर्वदा–क्रीड़ा कर रहे हैं। उपनिषद् के शब्दों में यही है उनकी आत्म रति, आत्म-क्रीड़ा, आत्म-मिथुन, आत्मरमण।[2] अनन्त प्रकारों में वह एक ही द्वितीय बनते हैं

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए—म० म० पं० गोपीनाथ कविराज का 'भक्ति रहस्य' शीर्षक लेख 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अंक पृ० ४३६-४४४

२ प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-४

एवं अनुरूप रस का आस्वादन करते हैं। भोक्ता वे हैं; भोग्य वे हैं और भोग भी वे ही हैं—द्वितीय के लिए स्थान नहीं है; फिर भी अनन्त प्रकारों से द्वितीय का स्वाँग उन्होंने रच रखा है। यह कृत्रिम द्वितीय वस्तुतः 'एकमेवाद्वितीयम्' है। अद्वैत की एक दिशा है, वह लीलातीत, निरञ्जन, निष्क्रिय है। पृथक् रूप से शक्ति की वहाँ सत्ता ही नहीं है। सब शक्तियाँ वहाँ तिरोहित हैं। उस समय वे अपने भाव में आप ही मगन हैं, सुषुप्त हैं। उसकी दूसरी एक दिशा है। वह निरन्तर लीलामय और सक्रिय है। दोनों ही नित्य और दोनों ही सत्य हैं। भगवान् अनन्त शक्ति-सम्पन्न है, इसी कारण उनकी अनन्त लीलाएँ हैं। उनकी सभी लीलाएँ स्वरूपतः चिन्मय, आनन्दमय और अप्राकृत हैं। वे एक होकर भी अनन्त हैं। इसीलिए उनकी क्रीड़ाओं की इयत्ता नहीं है। रसरूप से एक होने पर भी वे अनन्त हैं। इसीलिए उनके रसास्वादन के वैचित्र्य का भी अन्त नहीं है। स्मरण रखना होगा कि भगवान् की इस नित्य लीला में संकोच नहीं है, विभाग नहीं है, द्वन्द्व नहीं है, अज्ञान नहीं है। जिसका प्रतीत होता है वह भी लीला का ही अङ्ग है। इस कारण वह भी चिन्मय, अप्राकृत और आनन्दमय है। लीला केवल अभिनय मात्र है। रसास्वादन के बहाने से रङ्गमञ्च में उसका आयोजन होता है। वे स्वयं अपने साथ आप क्रीड़ा कर रहे हैं। यह नित्य लीला है। यह सब चिन्मय राज्य का व्यापार है। वहाँ का आभास, विभाग भी चिन्मय है क्योंकि अप्राकृत है। निमित्त भी वे ही हैं उपादान भी वे ही हैं। कर्ता वे हैं, कर्म वे हैं, करण वे हैं, केवल यही नहीं क्रिया भी वे हैं, एक चैतन्य रूपी वे विविध स्वाँग बनाकर नाना प्रकारों से क्रीड़ा करते हैं, अपने साथ आप ही। और सब क्रीड़ाओं के मध्य में भी वे लीलातीत रूप से अपनी क्रीड़ा को स्वयं ही देखते हैं। लीला करते भी वे हैं, देखते भी वे हैं, अपनी क्रीड़ा के अतीत भी वे हैं।[१] वे विश्वसीत हैं, विश्वमय हैं, परमानन्दमय घनीभूत प्रकाश स्वरूप हैं, सब कुछ उनमें अभिन्न रूप से स्फुरित हो रहा है, उनसे पृथक् कोई ज्ञाता नहीं है, ज्ञान नहीं है—सब ज्ञान वे हैं, सम्पूर्ण ज्ञेय भी वे हैं। एक मात्र वे ही अनन्त विचित्रताओं के साथ सर्वदा और सर्वत्र खेलते और खेलाते प्रतिभासमान हो रहे हैं। यही उनकी नित्य लीला है।[२]

---

१ तस्य पुनर्विश्वोत्तीर्ण विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघनस्य एवंविध मेवाखिलं अभेदेनैव स्फुरित न तु वस्तुतः अन्यं किंचित् ग्राह्यं ग्राहकं वा, अपितु स एवं यूत्थं। नानावैचित्र्यसहस्रैः स्फुरति।

—शक्ति सूत्र

२ देखिये आनन्दवार्ता।

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

हमारे देश के अति प्राचीन काल से किसी-न-किसी प्रकार में अवतारवाद प्रचलित है। ख्रीस्तीय धर्म समाज में भी (डिसेण्ट ऑव गॉड ऐज़ मैन) अर्थात् नर के रूप में भगवत्सत्ता का अवतरण होता है—यह सिद्धान्त प्रचलित है। इस्लाम धर्म में भी प्रकारान्तर से अवतारवाद नहीं है सो बात नहीं है। बौद्धों में, विशेषतः त्रिकायवादी महायानी बौद्धों में निर्माणकाय के रूप में अवतारवाद ने स्थान ग्रहण किया है। इससे सिद्ध होता है कि एक प्रकार से प्रत्येक धर्म में अवतारवाद-तत्त्व स्वीकृत हुआ है।

सभी धर्मसाधनाओं में अवतार-तत्त्व

वैष्णव पुराणों तथा शास्त्रों के आधार पर भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार माने गये हैं और वे निम्नलिखित हैं—
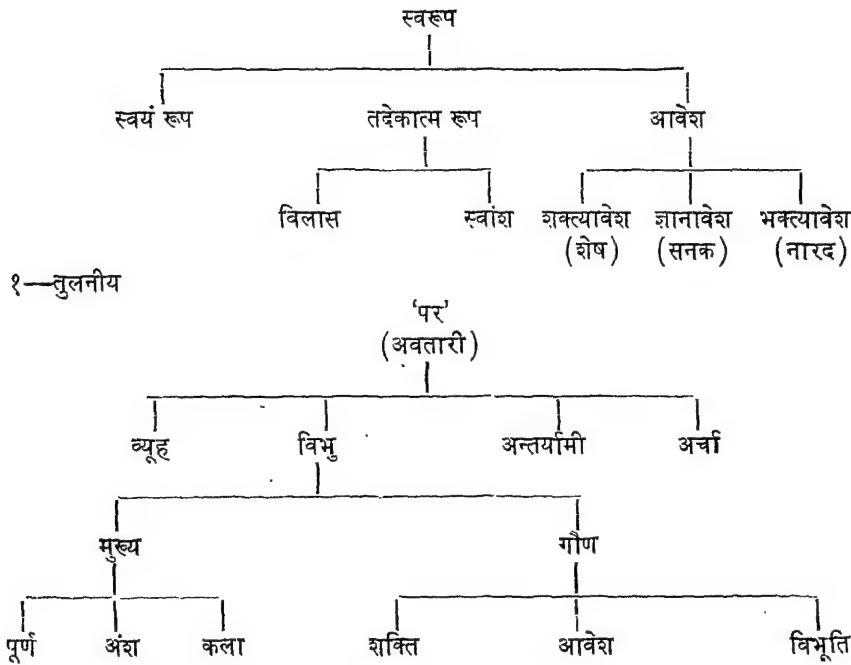
यदि किसी जीव में विशेष ज्ञान-शक्ति अथवा क्रियाशक्ति अथवा युगपत् दोनों का सञ्चार देखा जाय तो उसे आवेशावतार कहते हैं। उदाहरणार्थ--भक्तिशक्ति के अवतार श्री वेदव्यास जी, क्रियाशक्ति के अवतार पृथु जी एवं ज्ञानशक्ति के अवतार सनकादिक हुए।

अवतार के और भी भेद हैं--पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार। पुरुषावतार के तीन भेद हैं--प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष और तृतीय पुरुष। इन तीनों में जो महत्तत्त्व का स्रष्टा

अवतार के भेद

पुरुषावतर

कारणार्णवशायी, प्रकृति का अन्तर्यामी प्रथम पुरुष है, वह परव्योमस्थ संकर्षण का अंश है। जो समष्टि विराट् का अन्तर्यामी गर्भोदशायी एवं ब्रह्मा का भी रचयिता द्वितीय पुरुष है, वह परव्योमस्थ प्रद्युम्नजी का अंशावतार है और व्यष्टि विराट् का अन्तर्यामी क्षीरोदशायी जो तृतीय पुरुष है, वह परव्योमस्थ अनिरुद्ध का अंश है।

सत्त्वगुण के द्वारा उत्पन्न पालन करनेवाले क्षीरोदनाथ विष्णु ही हैं। रजोगुण के

गुणावतार

द्वारा गर्भोदशायी की नाभि से उत्पन्न सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। तमोगुण से सृष्टि के संहारकर्ता शिव का अवतार होता है। किन्तु जो सदाशिव हैं, वे निर्गुण एवं स्वयंरूप विलास विशेष हैं, अतः वे गुणावतार शिव के अंशी हैं।

सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल

लीलावतार

देव, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृश्णिगर्भ, ऋषभदेव, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, रघुनाथ, व्यास, बलदेव, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि प्रभृति लीलावतार कहे जाते हैं। प्रत्यक कल्प में यह सब-के-सब अवतीर्ण होते हैं, अतः इनको कल्पावतार भी कहा जाता है।

चौदह मन्वन्तर अवतारों के नाम हैं--यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित,

मन्वन्तरावतार

वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विश्वक्सेन, धर्मसेतु, सुदामा, योगेश्वर, बृहद्भानु।

युगावतार

सतयुग, त्रेता आदि चारों युगों में क्रम से शुक्ल, रक्त श्याम और कृष्ण ये चार युगावतार होते हैं।

पूर्वोक्त इन सब प्रकार के अवतारों में कोई आवेश, कोई प्राभव, कोई वैभव, कोई परावस्थ नाम से अभिहित होते हैं। सनकादि, नारद और पृथु आदि 'आवेशावतार' हैं। मोहिनी, धन्वन्तरि, हंस, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, शुक्ल प्रभृति प्राभव हैं। प्राभव की अपेक्षा जो अधिक शक्ति के प्रकाशक हैं, उनको 'वैभवावतार' कहते हैं--वे हैं मत्स्य, कूर्म, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्णिगर्भ, बलभद्र, यज्ञ आदि। वैभवों की अपेक्षा भी जो अधिक शक्ति के प्रकाशक हैं उन्हें 'परावस्थ' कहते हैं। वे हैं--नृसिंह, श्रीराम, श्रीकृष्ण।

गोस्वामीजी ने भी इसे अपने 'राम-चरितमानस' में ज्यों-का-त्यों ले लिया है और कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म अभिमानी राक्षसों की अभिवृद्धि होती है तब-तब भगवान् मनुज रूप धारण करते हैं।[१]

परन्तु यह तो अवतार का सामान्य हेतु है। विशेष हेतु है––भक्तों में प्रेमानन्द का विस्तार करना और विशुद्ध भक्ति का प्रचार करना तथा अपने भक्तों को लीला-रसास्वादन का सुख प्रदान करना।[२]

अवतार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, परन्तु उनके तीन मुख्य भेद हैं––

अवतारों के भेद प्रभेद

(१) पुरुषावतार––प्रथम अवतार है जो निर्गुण होते हुए भी सगुण साकार हो जाता है। पुरुषावातार के तीन स्तर हैं––

क––यज्ञतत्व के सृष्टिकर्ता अर्थात् संकर्षण कारणोदकशायी। इन्हें प्रथम पुरुष कहते हैं।

ख––अण्डसंस्थित अर्थात् प्रद्युम्न, गुणोदकशायी। ये निखिल ब्रह्माण्ड अर्थात् समस्त सृष्टि के अन्तर्यामी हैं। इन्हें द्वितीय पुरुष कहते हैं।

ग––सर्वभूतस्थित अर्थात् अनिरुद्ध, क्षीरोदकशायी अर्थात् व्यष्टि के अन्तर्यामी। इन्हें तृतीय पुरुष कहते हैं।

---

१ हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहिं सयानी।।
जब जब होइ धरम के हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहिं बिप्रधेनु सुरधरनी।।
तब तब प्रभुधरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।

सोई जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं।।

––श्रीरामचरितमानस बा० कां० दो० १२१

अपने जन के लिए ही भगवान् अवतार लेते हैं, यह गोस्वामी जी स्वतः स्वीकार करते हैं। अपने जन के लिए का सीधा अर्थ है––अपने जन की रक्षा करने के लिए, उसको प्यार देने के लिए, उसका प्यार पाने के लिए।

२ समुत्कण्ठितानां साधकानां प्रेमानन्दविस्तारणं विशुद्ध भक्ति प्रचारणंच––लघु भागवतामृत।
स्वलीलाकीर्त्तिविस्तारात् भक्तेष्वनुजिघृक्षया। अस्य जन्मादि लीलानां प्राकटचेहेतुरुत्तमः ।।

––ब्रह्माण्डपुराण

इसका अर्थ यह है कि प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है। संयोग के बाद पुरुष की यह बुद्धि होती है कि मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ। इसी बुद्धि को महत्तत्त्व कहते हैं। जो पुरुष इस बुद्धि के कर्ता हैं, वे ही प्रथम पुरुष हैं। फिर समष्टि रूपा सृष्टि के जो अन्तर्यामी हैं वे हैं द्वितीय पुरुष। जब सृष्टि विन्यास हो चुका होता है और एक बहुत हो चुका होता है और अब उसमें पृथक्त्व या अहंकार भाव का उदय हो चुका होता है। इसी पृथक्त्व के अन्तर्यामी भगवान् को तृतीय पुरुष कहते हैं।[1] इस प्रकार—

प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष

संकर्षण अहंकार के अधिष्ठातृ देवता
वासुदेव चित्त के अधिष्ठातृ दवता
प्रद्युम्न बुद्धि के अधिष्ठातृ देवता
अनिरुद्ध मानस के अधिष्ठातृ देवता

(२) गुणावतार—गुणावतार गुणानुसार अवतार हैं जैसे सत्त्वगुण से युक्त अवतार विष्णु, रजोगुण से युक्त अवतार ब्रह्मा और तमोगुण से युक्त अवतार शिव हैं।

(३) लीलावतार—श्रीमद्भागवत में इनकी संख्या २४ है—(१) चतुःसन (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) इनका ज्ञान और भक्ति के प्रचार के लिए अवतार हुआ है। (२) नारद (सात्वत तन्त्र के रचयिता), (३) वराह (चतुष्पाद, कुछ के मतानुसार द्विपाद भी), (४) मत्स्य, (५) यज्ञ, (६) नरनारायण, (७) कपिल, (८) दत्तात्रेय, (९) हयशीर्ष, (१०) हंस, (११) ध्रुवप्रिय अथवा पृश्णिगर्भ, (१२) ऋषभ, (१३) पृथु, (१४) नृसिंह, (१५) कूर्म, (१६) धन्वन्तरि, (१७) मोहिनी, (१८) वामन, (१९) परशुराम, (२०) राघवेन्द्र, (२१) व्यास, (२२) बलराम और कृष्ण, (२३) बुद्ध और (२४) कल्कि। इनके अतिरिक्त कल्पावतार भी हैं जो प्रति कल्प में आते हैं।

मनवन्तर अवतार

प्रत्येक १४ मन्वन्तरों पर एक अवतार होता है जो इन्द्र के शत्रुओं का संहार करके देवताओं का मित्र हो जाता है। वे हैं क्रमशः—(१) यज्ञ, (२) विभु, (३) सत्यसेन, (४) हरि, (५) वैकुण्ठ, (६) अजित, (७) वामन, (८) सार्वभौम, (९) ऋषभ, (१०) विष्वक्सेन, (११) धर्मसेतु, (१२) सुधामन्, (१३) योगेश्वर, (१४) बृहद्भानु। इनमें हरि, वैकुण्ठ, अजित और वामन प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ और मुख्य अवतार हैं।

---

१ दे० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती विरचिता 'भागवतामृतकणिका'।

चारों युगों में एक-एक युगावतार होते हैं। सत्ययुग में शुक्लवर्ण के, त्रेता में रक्तवर्ण के, द्वापर में श्याम वर्ण के और कलिकाल में कृष्णवर्ण के। आवेश, प्राभव, वैभव और परत्व भेद से प्रत्येक कल्प में ये अवतार चार प्रकार के हो जाते हैं। अंशावतार के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, नारद, पृथु आदि औपचारिक अंशावतार हैं। भगवान् इनमें प्रवेश कर अवतार कोटि तक पहुँचा देते हैं। यह उत्क्रमण (Ascent) का मार्ग हुआ। प्राभव और वैभवावतार में मोहिनी, हंस, शुक्ल आदि हैं जो अपना कार्य समाप्त कर अन्तर्हित हो गये। इनके दूसरे प्रकार में धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, कपिल आदि शास्त्रकार हैं। वैभव अवतार में कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयशीर्ष, पृष्णिगर्भ, बलराम आदि १४ मन्वन्तर अवतार हैं। इन अवतारों के अपने-अपने विशिष्ट लोक भी हैं, जैसे कूर्म का महातल, मत्स्य का रसातल, नर-नारायण का वदरी, द्विपाद वराह का महलोक, चतुष्पाद वराह का पाताल, हयशीर्ष का तलातल, पृश्निगर्भ का ब्रह्मा के जनलोक के ऊपर, बलराम का श्रीकृष्ण के साथ उन्हीं के लोक में—वैकुण्ठ का स्वर्गलोक, अजित का ध्रुव लोक, त्रिविक्रम का तपोलोक और वामन का भुव लोक। परन्तु ये सभी अवतार परव्योम या महा वैकुण्ठ के नीचे वाले लोकों में ही रहते हैं।[1]

युगावतार

परवस्था का अर्थ है सम्पूर्णावस्था। इस अवस्था में अवतार षडैश्वर्य सम्पन्न एवं पूर्णतम होते हैं। ये हैं नृसिंह, राम और कृष्ण। राम अयोध्या और महावैकुण्ठ में रहते हैं। पद्मपुराण के अनुसार राम = नारायण, लक्ष्मण = शेष, भरत = चक्रसुदर्शन, शत्रुघ्न = पाँचजन्य। पुराणों के अनुसार कृष्ण चार स्थानों में रहते हैं। ब्रज, मथुरा, द्वारिका और गोलोक। भगवान् की सोलह कलाएँ उनकी सोलह शक्तियाँ हैं। उनके नाम हैं—श्री, भू, कीर्ति, इला, लीला, कान्ति विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईषाना और अनुग्रहा।

पूर्णावतार

अवतार तत्त्व के मूल में यह सिद्धान्त है कि एक रूप में अपने नित्यलोक में नित्य विहार होता है तथा दूसरे रूप में जगत्प्रवृत्ति होती है।[2] ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका सारांश यह है कि (१) परमात्मा एक होते हुए भी अपने को अनेक रूपों में प्रकट कर सकते हैं। उनके सभी रूप पूर्ण, सत्य, सनातन और केवलैक-बुद्धिगम्य हैं।

अवतार तत्त्व का मूल सिद्धान्त

---

१ दे० विष्णुधर्मोत्तर, भागवतपुराण, पद्मपुराण।

२ द्रष्टव्यः—

अहं वहामीह गति तदीयां
रूपद्वयं नित्यमतोऽस्य विष्णोः।

(२) अवतार नित्यरूप है, मायिक नहीं।

(३) सभी अवतार सच्चिदानन्द-विग्रह हैं—उसमें परात्पर ज्ञान, परात्पर सत्ता और परात्पर आनन्द का समवाय है और मोक्ष देनेवाले हैं।

(४) कुछ अवतार मनुष्य रूप में होते हैं और कुछ में मानुषी चेष्टा होती है।

(५) अवतारों का 'मानुषी तनु' भी दिव्य है और उसमें अपूर्णता का लेश भी नहीं होता।

(६) 'मानुषी तनुमाश्रित' होने पर भी अवतार में दिव्य शक्तियाँ और दिव्य पूर्णत्व है और इसलिए अतिमर्त्य लीला में पूर्णतः समर्थ हैं।

(७) कुछ अवतार भूतकाल में हुए, परन्तु नित्य होने के कारण वे आज भी पूज्य ही हैं। प्रत्येक अवतार की विशिष्ट देह-लीला होती है और उनका अपना विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) अवतार भगवान् के अंश हैं—इस अर्थ में कि इस धरातल पर आने के साथ ही वे अपने दिव्य अथ च पूर्ण रूप में अपने निज धाम में विराजमान रहते हैं।

(९) अवतार का मुख्य हेतु है—विश्व का कल्याण तथा प्रेम का आस्वादन और भक्ति का प्रचार।

वैसे तो अवतारों की संख्या अनेक हैं ; परन्तु इनमें दस अवतार ही मुख्य हैं और इनमें भी राम और कृष्ण की प्रधानता है। ये दोनों ही विष्णु के अवतार हैं और इनका महत्त्व परम प्राचीन एवं अत्यन्त व्यापक है। इसमें मुख्य हेतु इनकी 'मानवीयता' ही है। मानवीय रस की प्रचुरता के कारण ही राम और कृष्ण की उपासना बहुत ही पुरानी और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है।

मानवीय रस

रामावतार का महत्त्व भी बहुत अधिक रहा है। भगवान् रामचन्द्र सदा दुष्टदमनकारी और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित हुए हैं। १५वीं शताब्दी के परवर्ती साहित्य में राम के लीला-गान की प्रथा चली, परन्तु इस लीला में भी भगवान् श्री रामचन्द्र का दुष्ट दमनकारी और सन्त-हितकारी रूप ही मुख्यतः लक्ष्य रहा, उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप कथमपि म्लान नहीं हुआ, परन्तु शनैः-शनैः १६वीं शताब्दी के बाद के साहित्य में भगवान् राम का चरित्र भी भक्तों के लीला-विहार का साधन बनता और माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत होता गया। यहाँ तक कि १८वीं शताब्दी के बाद के राम-साहित्य में प्रणय–विलास और रासलीला का अत्यन्त विशद एवं व्यापक विन्यास हुआ और प्रेमी भक्तों की एक धारा-सी छूट पड़ी जो भगवान् राम की परम प्रेमास्पद, परम प्रिय-तम के रूप में उपासना करने लगे और इस प्रकार रामावत सम्प्रदाय में भी, कृष्ण भक्ति शाखा

एकेन नित्यं नियतो विहार-
स्तथा द्वितीयेन जगत्प्रवृत्तिः। —हंसविलासे, ४७ उल्लासे।

श्रृणुतेऽहं प्रवक्ष्यामि विष्णोः रूपं द्विधामतम्।
नित्यं विहार एकेन चान्येन सृष्टि रेव हि॥

—आदि पुराण १०।१६

की भाँति, मधुर भाव की उपासना का रूप खुल कर उन्मुक्त एवं उद्दाम रूप में, सामने आया। मानवी तनु का आश्रय लेने के कारण भगवान् की मानवी लीला का रसास्वादन सहज रूप में किया जा सकता है और मनुष्य की भाँति ही मिलन-विरह, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आविर्भाव और अन्तर्धान के कारण मानव-मन को इन लीलाओं ने विशेष रूप से मोहित किया और रस-सिक्त किया है और फलस्वरूप हमारा ९९ प्रतिशत काव्य साहित्य इन्हीं दो अवतारों को लेकर रचा गया है।

भगवान् राम की लीला में माधुर्यभाव का प्रवेश क्यों और कैसे हुआ ? इसका विचार हम आगे करेंगे; परन्तु इस सम्बन्ध में ध्यान रहे कि यहाँ माधुर्य में भी पूरी मर्यादा है। अस्तु

अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद

बहुत-से लोग अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद का ही समर्थन करते हैं। पहले जल-जन्तु (मत्स्यादि) फिर जल-थल में रहनेवाले (कच्छपादि) फिर केवल स्थलवासी (वराहादि) फिर अर्ध पशु, अर्ध मनुष्य (नृसिंह) फिर मनुष्य का लघु रूप (वामन) फिर दर्पमय क्षत्रियत्व (परशुराम) और बाद में मनुष्यत्व का पूर्ण विकास और हमें राम-कृष्ण तथा बुद्ध के मानव अवतारों के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अर्थों में भी दशावतारों का वर्णन है।[1] अवतारों में श्रीकृष्ण की पूजा सबसे प्राचीन मानी गई है। जैकोबी का कथन है कि पहले इनकी पूजा एक जातीय वीर पुरुष (नेशनल हीरो) के रूप में होती थी। उसके बाद वैदिक काल के अन्त में कृष्ण आभीरों के एक जातीय देवता के रूप में पूजे जाने लगे। गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण[2] जो पहले अलग-अलग थे, अब एक ही व्यक्तित्व में केन्द्रित हो कर पाञ्चरात्र धर्म के प्रधान आराध्य देव बन गये। महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य में[3] कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने कृष्ण का उल्लेख केवल एक वीर क्षत्रिय के रूप में ही नहीं, वरन् दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष के रूप में किया है[4]।

बूलर के मतानुसार जैन धर्म के बहुत पहले ही (ई० पू० आठवीं शताब्दी) में इस धर्म का उदय हो चुका था। तैत्तरीय अरण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषद् में (छठी सदी ईसा पूर्व) कृष्ण का उल्लेख आ चुका है।[5] चौथी शताब्दी में मेगास्थनीज ने इन्हीं का हरि कृष्ण (Heracles)

---

१ द्रष्टव्य--पुरान्स इन दि लाइट आव माडर्न साईन्स। पृ० २०९-२१३

२ The Early History of the Vaisnava Sect. D.Hemchandra Ray Choudhury: Chapters on Vaisnavism and Vasudeva. The Life of Krishna Vasudeva Pages 10-118

३ महाभाष्य--५, ३, ९५।

४ महाभाष्य--४, ३, ९८।

५ तद्वैतद्धोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोस्वोवाचापियास एव स बभूव, छां० ३, १७, ६।

के नाम से अभिहित किया है, और ये शूरसेन देश में पूजित थे जहाँ कि मथुरा नगरी (Methora) बसी है और जहाँ से यमुना नदी (Gaboras) बहती है। भाण्डारकर ने स्पष्टतः श्रीकृष्ण से सात्वत जाति का सम्बन्ध होने से इस धर्म का नाम 'सात्वत धर्म' माना है।[1] यह सात्वत धर्म ही 'भागवत् धर्म' कहलाया। 'भागवत' का अर्थ है भगवान् का भक्त। ई० पू० १४० में तक्षशिला में ग्रीक सम्राट् अन्तियल्किदास (Antialkidas) का प्रतिनिधि हिलियोगस और भागभद्र तथा विदिशा के राजा अपने नाम के साथ 'भागवत' उपाधि का व्यवहार करते थे। इनके द्वारा भगवान् वासुदेव के मन्दिर तथा गरुड़ध्वज स्थापित करने का उल्लेख उस समय के बैसनगर के लेखों में मिलता है।[2] तीसरी से पाँचवीं शताब्दी तक गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के उपासक थे। इन्हीं के समय श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्रीविष्णु पुराण आदि की रचना मानी जाती है। अपनी मुद्राओं एवं ताम्रपत्रों में वे अपने नाम के सामने 'परम भागवत्' उपाधि बड़े गर्व के साथ लिखते थे। मालव, मगध, कन्नौज, गौड़, तथा गुर्जर में इस धर्म का विशेष प्रचार हुआ। भगवद्गीता के समय श्रीकृष्ण वासुदेव की 'परम पुरुष' के रूप में उपासना हो रही थी। घोसुण्डी में मिले हुए शिलालेखों में वासुदेव और संकर्पण के लिए 'पूजा शिला' और 'नारायण वाटिका' निर्माण करने का उल्लेख है।[3] इससे प्रकट होता है कि उस समय पाँचरात्र पद्धति स्थापित हो चली थी जिसमें वासुदेव के चतुर्व्यूहों की पूजा प्रचलित थी। अब भागवत धर्म ही 'पाँचरात्र' के नाम से पुकारा जाने लगा था। पाँचरात्र का सामान्यतः अर्थ है 'पुरुष' द्वारा पाँच रात्रियों तक यज्ञ आचार। तदनन्तर 'पुरुप' और 'विष्णु' एक हो गये और तब श्रीकृष्ण वासुदेव और नारायण से एक रूप होकर भागवत धर्म या पाँचरात्र के प्रधान आराध्य देव बन गये। मैकनिकल ने 'इण्डियन थेइज्मि' नामक अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६५ पर लिखा है कि श्रीकृष्ण पूजा का प्रभाव बौद्धधर्म एवं जैनधर्म पर अत्यन्त स्पष्ट है।

राम कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में बहुत लोगों को सन्देह है। अवश्य ही राम भक्ति कृष्ण भक्ति की अपेक्षा आधुनिक है।[4] ऋग्वेद में राजा 'इक्ष्वाकु' का नाम आया है। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी 'इक्ष्वाकु' शब्द एक बार आया है।[5] वैदिक साहित्य में 'दशरथ' का बस एक बार उल्लेख मात्र मिलता है। ऋग्वेद की एक दानस्तुति में अन्य राजाओं के साथ-

---

१ भाण्डारकर—इण्डियन एण्टीक्वैरी।

२ देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजो कारितो हिलिउडोरेन भागवतेन दिवसपुत्रेण तखसीलकेन।
—इपिग्राफिया इण्डिका वोल्युम० १०

३ जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७७ पार्ट १ पृ० ७८।

४ यस्यै इक्ष्वाकुरूप व्रते रैवानमारय्येधते (जिनकी सेवा में प्रतापवान् और धनवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।)

५ त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं १९.३९.९

साथ दशरथ की भी प्रशंसा की गई है।[1] परन्तु 'राम' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद में एक प्रतापी राजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] इसी प्रकार वैदिक साहित्य में सीता का नाम दो स्थलों पर उपयुक्त हुआ है। समस्त वैदिक साहित्य में सीता ऋषि की अधिष्ठात्री देवी है। तैत्तरीय ब्राह्मण में 'सीता सावित्री' सूर्य की पुत्री है।[3] सीता का उल्लेख ऋग्वेद की एक ऋचा में हुआ है—

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषा न यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥

ऋ० अ० ३, अनु० ८.४.८.

यहाँ सीता के साथ इन्द्र शब्द आया है। कुछ लोगों का अनुमान है कि इन्द्र का ही नाम राम था। गृह्य सूत्रों में राम और सीता का जहाँ - जहाँ उल्लेख है वहाँ सीता हल से बनी हुई पंक्तियों का नाम है और राम पानी बरसानेवाले इन्द्र देवता का नाम है। सीता इन्द्र की भार्या है।[4] अभिप्राय यह कि ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जिनमें सीता की देवी रूप में प्रार्थना की है। यथा—

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथाः नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैदेवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाम्याववृत स्वोर्जस्वती घृतवष्तिवमाना॥[5]

हे सीते! हम तेरी वन्दना करते हैं। सौभाग्यवती! अपनी कृपा दृष्टि से हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तू हमारे लिए हिताकांक्षिणी होवे और जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देने वाली होवे। घी और मधु से सानी हुई सीता विश्व में देवताओं और मरुतों से अनुमोदित होवे।

---

१ चत्वारिंशद्दशरथश्च क्षोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति। —ऋग्वेद १.१२६.४

२ प्र वहुशीमे वृपवाने वने प्रण्ये वोचमसुरे ये युक्तवाय पंचशतास्मयु यथा मघवत्सु विश्राव्येषाम्। —ऋग्वेद १०.९३ १४

३ तैत्तिरीय ५.२.५.५।

४ यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवतिकर्मणाम्।
इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा।
—पारस्कर्य गृह्यसूत्र ११, १७, ३

इन्द्र पत्नी सीता का मैं आह्वान करता हूँ जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के कार्यों की विभूति निहित है। वह सीता सब कार्यों में मेरी सहायता किया करे।

५ अथर्ववेद १७, ८, ६।

हे सीते ! ओजस्विनी और घी से सींची हुई, तू दूध के साथ हमारे पास विद्यमान रह। महाभारत में राम-कथा विद्यमान है। द्रोणपर्व में सीता का उल्लेख कृषि की अधिष्ठात्री देवी एवं सब बीजों को उत्पन्न करनेवाली के रूप में हुआ है।[1] हरिवंश में दुर्गा की एक स्तुति है जिसमें कहा गया है, 'तू कृषकों के लिए सीता है यथा प्राणियों के लिए धरणी।'[2] श्रीमद्भागवत् पुराण तथा श्री विष्णु पुराण में राम-कथा है, परन्तु उसका सम्यक् सुव्यवस्थित रूप श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में ही मिलता है; फिर भी, यहाँ, सीता अयोनिजा हैं और उनका पृथ्वी में ही तिरोधान हो जाता है जो वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित है।

रामोपासना का क्रम-विकास

अब हम यहाँ यह देखना चाहते हैं कि रामोपासना का क्रमविकास किस प्रकार हुआ तथा किस-किस काल में किस-किस भाव की मुख्यता रही है? भगवान के साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावों में किसी भी भाव से युक्त या संबंधित होने पर उस भाव की रसात्मक अनुभूति का नाम 'भक्ति' है। दूसरे शब्दों में यह भगवान के प्रति 'परमप्रेम' एवं 'परानुरक्ति' है। भक्ति भक्त और भगवान् के बीच मधुर लीला-विलास है। भक्त के हृदय में भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय में भक्त के लिए जो वासना, रति या वेदना है उसी का नाम है भक्ति। यह वेदना अथवा मिलन की वासना भगवान में भी है और भक्त में भी। अस्तु, जब एकान्त में भक्त और भगवान् परस्पर लाड़ लड़ाते हैं और हृदय से हृदय लगाकर प्राण से प्राण मिलाकर दो 'एक' हो जाते हैं और फिर आनन्द-विलास के लिए दो हो जाते हैं उसे ही सामान्य भाषा में भक्ति कहते हैं। यह कहना कठिन है कि भक्त और भगवान में कौन है प्रेमी और कौन है प्रेमास्पद। दोनों ही परस्पर प्रेमी और प्रेमास्पद हैं, दोनों ही के हृदय में विरह की व्यथा है मिलन की तीव्र अभिलाषा है और विरह का यह एक निमिष सहस्र कल्पों की तरह दीर्घ लगता है।

परमात्मा से ही यह सृष्टि विस्तार है। मूलतः वही एक है, उसकी इच्छा हुई अनेक हो जाऊँ। उसकी इसी वासना से यह सारा प्रपंच विस्तार हो गया।[3] अस्तु, एक से दो हुआ और

---

१ **मद्राजस्य शल्पस्यध्वनाग्रे भिशिखामिव।**
सौवर्णी प्रतिपश्याम सीताभप्रतिमां शुभाम्॥
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष।
सर्वबीजविरुढेव यथा सीता श्रिया वृता॥ —महाभारत, द्रोण पर्व, ७.१०५.१८-१९

२ **कर्षकाणां च सीतेति**
भूतानां धरणीति च। हरिवंश २.३.१४

३ **स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति।** —बृहदारण्यक ४, ३

दो से अनेक। परन्तु अनेक के मन-प्राण में पुनः अपने उद्गम उसी 'एक' से मिलने और मिलकर सर्वथा मिल जाने, उसी में समा जाने की लालसा अत्यन्त उत्कट और अदम्य है और यही है जीव-जीवन की एकमात्र साध। 'हंस' की 'परम हंस' से मिल कर कुरैल करने की अदम्य लालसा ही जीव को यहाँ, इस मिट्टी की काया में, बेचैन किये रहती है। अस्तु।

उपासना तत्त्व का आदि हेतु

आर्य जाति ने आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में 'ईशावास्यमिदं सर्व' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म', 'नेहनानास्ति किंचन', 'वासुदेवः सर्वमिति' 'तत्वमसि' की दिव्य भावना को ग्रहण किया और मंत्रकाल में भी इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, वायु आदिदेवों में एक ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया।[1] यह निर्विवाद है कि 'सुख' के लिए ही उपासना का आरम्भ हुआ। वह सुख प्रारंभ में तो लौकिक 'अभ्युदय' को दृष्टि में रखता था, तदनन्तर उसमें पारलौकिक 'निःश्रेयस्' भी आ गया। दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की अभिप्राप्ति ही उपासना की प्रेरक भावना रही है। धीरे-धीरे इसमें लोकोपकार अथवा लोकहित की भावना भी सम्मिलित हो गई और यज्ञयाग का प्रवर्तन हुआ। अस्तु, सुख का 'लोभ', दुःख का 'भय' और स्वामी के उपकार के प्रति 'कृतज्ञता' का भाव ही पूजा का कारण हुआ। इसीलिए आरम्भ में हृदय पक्ष का पूज्य के साथ पूरा योग नहीं था।[2] लोभ, भय और कृतज्ञता के साथ-साथ विशिष्ट मानव हृदय में मनन और भावुकता की भी प्रवृत्ति विद्यमान थी और इसी का परिणाम है ऋग्वेद का पुरुषसूक्त। भगवान् को 'सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद्' के भव्य एवं दिव्य रूप में पाकर मानव हृदय के आनन्दोल्लास का कुछ वार-पार न था।[3]

ऋग्वेद का यह विराट् 'पुरुष' ही 'सगुण' परमेश्वर नारायण' (नरसमष्टि का आश्रय) रूप में गृहीत हुआ। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एवं आनन्द आदि रूपों में जिस अव्यक्त ब्रह्म की उपासना होती थी[4] उसी के सहज सान्निध्य का लोभ या उत्कण्ठा, उसके मनोहारी हृदयाकर्षक रूप नारायण के नराकार रूप में हुई। बाहर और भीतर समानरूप से भगवान् की व्यापक सत्ता का अनुभव भक्ति मार्ग की प्रधान विशेषता है।

---

१ इंद्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिकस्स सुपर्जो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ —ऋग्वेद १-२, १६४-६६

२ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० ९।

३ तुलनीय—जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया॥—भागवत १, ३, १

४ अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनोब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
—तैतिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली

ऊपर कहा गया कि उपनिषदों में बोधिवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनों ही सम्मिलित हैं अर्थात् ज्ञान और उपासना, बुद्धितत्त्व और हृदयतत्त्व दोनों का मूल है।[1] जहाँ से हृदयतत्त्व को विशेष प्रधानता मिलने लगी, वहीं से भक्ति मार्ग का आरम्भ मानना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व में नारायणीयोपाख्यान में वासुदेव की उपासना इस लोक में कैसे चली और भागवत-धर्म का उदय कैसे हुआ, स्पष्ट वर्णन मिलता है। महाभारतकार ने भीष्म से कहलाया है कि भागवत धर्म के आदि प्रवर्त्तक मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ तथा स्वायंभुव मनु थे। फिर यह विद्या वृहस्पति को प्राप्त हुई और वृहस्पति से राजा बसु को मिली। राजा बसु ने अहिंसक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् श्री हरि ने आकर अपना भाग लिया। परन्तु भगवान् के दर्शन केवल बसु उपरिचर को हुए। वृहस्पति इस पर अप्रसन्न हुए तो प्रजापति के पुत्रों ने समझाया कि बिना भक्ति के भगवान् का दर्शन नहीं हो सकता।

भागवत धर्म

इस नारायणीयोपाख्यान से कई बातें स्पष्ट सामने आती हैं। मुख्यतः यह कि भागवत धर्म का मार्ग लोककल्याण पक्ष को लेकर चला हुआ प्रवृत्ति मार्ग था। दूसरा यह कि ब्रह्म का सगुण रूप इस मार्ग में उपासना के लिए गृहीत हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति लोक रक्षा, पालन और रंजन करनेवाले के रूप में हुई होती है और उसी में निर्गुण-सगुण, व्यक्त-अव्यक्त, मूर्त-अमूर्त सब अन्त-र्भूत हैं। वही नारायण वासुदेव हरि है। ईश्वर के स्वरूप पर मन का आकर्षित होना या लुभाना ही भगवत्प्रेम या भक्ति है। यह प्रेम या भक्ति निर्हेतुक होती है।[2] अस्तु।

इस नारायणी-उपाख्यान से यह भी स्पष्ट है कि महाभारत के समय में नारायण या नारा-कृति भगवान् की गूढ़ भक्ति एक विशेष सम्प्रदाय में परम्परा द्वारा प्रचलित थी। वही नारायण वासुदेव कृष्ण के रूप में इस काव्य में प्रकट हुआ और चूँकि नारायणी धर्म के इस पक्ष का प्रवर्तन सात्वतों-यादवों के बीच विशेष रूप में हुआ, इसी से इसे 'सात्वत धर्म' भी कहते हैं। अभिप्राय यह कि प्राचीन नारायणीय धर्म के अनेक पक्ष थे, जो 'नारायण' रूप में उपासना करते थे अथवा नरसिंह, वामन, दाशरथि राम की एकान्त उपासना ले कर चले। भगवान् राम की उपासना का आरम्भ कब से और कहां से हुआ है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ भी कहना कठिन है; पर यह निर्विवाद है कि रामोपासना के आदि प्रवर्तक शिव हैं। स्वयं वाल्मीकि को भी नारद ने भगवान् विष्णु के अवतार के रूप में रामोपासना की विधि बतलाई।[3] इसका प्रचार पहले से भी दक्षिण भारत में विशेष रूप में से था। पुरातत्त्व के विद्वानों के मत से रामायण का निर्माणकाल ईसवी

---

१ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २०
दे० इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथीक्स —'भक्ति' 'भक्तिमार्ग' अध्याय

२ अहेतुव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे। —भागवत

३ पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः।
—बा० कां० वाल्मीकिय रामायण

सन् के पूर्व छठी शती से चौथी शती के मानते हैं। इस समय रामोपासना का प्रचार विशेष रूप में था। इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। ईसवी सन् के दूसरी शती में मौर्यवंश के अनन्तर इस देश में सुंग वंश का आधिपत्य हुआ और इसमें वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई, रामायण महाभारत का प्रचार विशेष रूप में हुआ और राम-कृष्ण अवतार रूप में विशेषतः पूजित हुए। 'रामपूर्वतापनी' से भी यह सिद्ध होता है कि इसी समय से रामोपासना का विशेष प्रचार रहा।

'युद्धकांड' के पैंतीसवें अध्याय में रावण के वध हो जाने पर सीता की अग्नि परीक्षा देखकर देवता कहते हैं—

> कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः।
> उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने
> कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे।।

अगस्त्य सुतीक्ष्ण संवाद में भी रामोपासना का वर्णन है। वायुपुराण में रामावतार का वर्णन है। रघुवंश के दसवें सर्ग में कालिदास ने 'सोऽहं दाशरथि भूत्वा' के द्वारा राम के परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है। ई० स० १०१४ में इसका विशेष विस्तार हुआ। भवभूति ने भी राम को परमोपास्य देवता के रूप में माना है।

रामोपासना वैदिकी है या तांत्रिकी, यह प्रश्न भी कम गंभीर नहीं है। 'मंत्र रामायण' में नीलकण्ठ ने वैदिक मंत्रों के उद्धरण देकर रामचरित का प्रतिपादन किया है। 'राम तापनी' उपनिषद् के उपक्रम में राम का महाविष्णु का अवतार माना है।[1] अस्तु, यह वैदिकी है यह कहा जा सकता है। श्रुतियों में अनेक स्थानों पर राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में कल्पना है। 'नारद पांचरात्र' में तथा 'शारदा तिलक' में रामोपासना का वर्णन है, अतएव यह तांत्रिक उपासना भी है। अतएव रामोपासना न केवल वैदिकी है और न केवल तांत्रिकी, वरंच वैदिकी तांत्रिकी दोनों ही हैं। सन ईसवी की सातवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति ने बड़ा जोर पकड़ा। यही अलवार वैष्णवों का समय है। भाण्डारकर का कथन है कि यद्यपि ईसवी सन् के प्रारंभ से ही राम विष्णु के अवतार माने गये थे तथापि उनकी विशेष रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग ही प्रारंभ हुई।[2] डा० भाण्डारकर के मत से रामभक्ति की विशेष प्रतिष्ठा भले ही ग्यारहवीं शताब्दी में हुई हो, परन्तु बीजरूप में यह आलवार भक्तों के स्तोत्रों में पाई जाती है। अतः इसका उत्पत्तिकाल कम-से-कम सातवीं शताब्दी माना जाना चाहिए। आलवारों की संख्या १२ है। इनमें कुलशेखर आलवार की रचनाओं में प्रौढ़ रामभक्ति का प्राचीनतम निरूपण सुरक्षित है। इन्हीं आलवार वैष्णवों की परम्परा में सुविख्यात वैष्णवाचार्य श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव

रामोपासना : वैदिकी या तांत्रिकी?

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।

२ दे० डा० भाण्डारकर : वैष्णविज्म-शैविज्म।

हुआ। यह निर्विवाद है कि आलवार भक्तों ने भगवान् कृष्ण की ही प्रेमभक्ति के गीत गाये और इनमें 'अन्दाल' नाम की एक महिला भक्त मुख्य हैं, जो एक स्थान पर कहती हैं—'अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसीको अपना पति नहीं बना सकती।'[1] परन्तु कतिपय आलवार भक्तों में राम के प्रति भी बड़े ही कोमल और मर्मस्पर्शी भक्ति अंकित है। इनमें कुलशेखर आलवार मुख्य हैं। श्री शठकोपाचार्य की 'सहस्र गीति' में भगवान राम के प्रति एक बड़ी ही मधुर भावमयी प्रार्थना है, जिसका भावार्थ यह है, हे प्रभो, आप का वियोग-कष्ट मन में इतना बढ़ गया है कि शरीर को लाह की तरह गलाकर पतला कर दिया है। हाय! आप इतने निर्दयी बन बैठे कि इसकी खबर भी नहीं लेते। आपने राक्षसों की पुरी लंका को समूल नाश करके शरणागतरक्षक की प्रसिद्धि पाई है परन्तु आपकी इस निर्दयता को आज क्या करूं? फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि कृष्णावतार की उपासना रामावतार की अपेक्षा पुरानी और व्यापक है। आरम्भ में तो भगवान् श्री कृष्ण का दुष्टदलनकारी रूप ही मुख्य था, परन्तु आगे चलकर उनका मधुर रूप ही भक्तों के हृदय में विशेष रमा। भागवत में भगवान् माधुर्य-विभूति की प्रधानता दी गई, ऐश्वर्य, शक्ति, शील इत्यादि लोकरक्षा द्वारा होनेवाली विभूतियों को गौण स्थान प्राप्त हुआ। महाभारत में प्रतिष्ठित श्री कृष्ण के शील और सौन्दर्य पर मुग्ध भक्त उनके ज्वलन्त तेज और ऐश्वर्य से स्तंभित और महत्त्व से प्रभावित होकर थोड़ा दूर हटा हुआ भक्ति की दिव्य अनुभूति में लीन होता था। भागवत ने कृष्ण की वह मधुर मूर्ति सामने रखी, जो प्यार करने योग्य हुई। उस ढंग का प्यार जिस ढंग के प्यार की प्रेरणा से माता-पिता अपने बच्चे को दुलारते-पुचकारते हैं, उस ढंग का प्यार जिस ढंग के प्यार की उमंग में प्रेमिका अपने प्रियतम का ललककर आलिंगन करती है।[2] भागवत ने भगवान् को प्यार करने के लिए भक्तों के बीच खड़ा कर दिया।[3] इस सम्बन्ध में प्रसंगतः कृष्णोपनिषद् की वे पंक्तियाँ ध्यान में रखने योग्य हैं।[4]

---

१ क्लेशादियं मनसि हन्त! विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लंकान्तु राक्षसपुरीं नितरां प्रणश्य
प्रख्यातमान किल भवान् किमु तेऽद्य कुर्याम्॥ —सहस्र गीति २, १, ४, ३

२ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णाः मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्। —भागवत ६, ११, २६

३ आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २७-२८।

४ श्री महाविष्णु सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वांगसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवधमवतारान्वै गण्यन्ते यूयं गोपिका भूत्वा मामालिंगथ अन्ये येऽवतारास्तेहि गोपा न स्त्रीं च नो कुरु। अन्योन्यविग्रहं धार्य तवांगस्पर्शनादिह। शश्वत्स्पर्शीयतास्माकं गृह्णीमोऽवतारान्वयम्। —कृष्णोपनिषद् १

भगवान् राम का सौम्य मनोहर रूप देखकर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनियों ने आलिंगन करना चाहा, इसी पर भगवान् राम ने कहा कि कृष्णावतार में प्रकट होकर आप लोग गोपी रूप में प्रकट होंगे तब आपको मेरा अंग-संग मिलेगा। रामावतार में तो भक्तों ने भगवान् का चरणामृत ही पाया था, कृष्णावतार में भक्तों को भगवान् का अधरामृत पीने का सौभाग्य मिला। अस्तु,

रामभक्ति धारा में मर्यादा की मुख्यता शरणागति : एकमात्र साधन

रामभक्ति की धारा में 'मर्यादा' की ही मुख्यता है तथा प्रपत्ति अथवा शरणागति ही मुख्य साधना है। यह शरणागति छः प्रकार की होती है —

(१) आनुकूल्यस्य संकल्प—भगवान के सदा अनुकूल बने रहने का संकल्प, भगवान् का अकिंचन दास तथा सेवक बने रहने का दृढ़ निश्चय।

(२) प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्—भगवान् के प्रतिकूल भाव, भावना तथा चर्चा से सदा परांगमुख रहना। भगवान् में उलटी मति करनेवाली जो कुछ भी वस्तु हो, उसका दृढ़तापूर्वक परित्याग।

(३) रक्षिष्यतीतिविश्वास—भगवान् सदा सदैव एवं सर्वथैव अवश्यमेव हमारी रक्षा करेंगे ही—इसमें सुदृढ़ विश्वास।

(४) गोप्तृत्ववरणम्—भगवान् को ही, एकमात्र भगवान् को ही अनन्य भाव से अपने गोप्ता या रक्षक रूप में वरण करना।

(५) आत्मनिक्षेपः आत्मसमर्पण—अपने-आपको तथा अपना सब कुछ समस्त कर्म, धर्म, आचरण आदि भगवान के चरणों में अर्पित कर देना।

(६) कार्पण्यम्ः—स्वामी की अपार अहैतुकी कृपा एवं अपनी अपात्रता का स्मरण कर दैन्य भाव की स्फूर्ति—

राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।।

अथवा

राम सुस्वामि कुसेवक मोसों।
निज दिसि देखि दयानिधि पोसो।।

तुलनीय—पद्मपुराण, उत्तरकांड, ६४-६५।

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन् सुविग्रहम्।।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुदभूताश्च गोकुले।
हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्।।

शरणागत भक्त के लिए भगवत्सेवा के अतिरिक्त और कुछ कार्य रह नहीं जाता। भगवान् की पूजा अर्चा में ही उसका सारा जीवन लगता है। इसके लिए वैष्णव शास्त्रों में समय के पाँच विभाग किये गये हैं जिन्हें 'पंचकाल' कहते हैं। वे हैं—(१) अभिगमन—मनसा-वाचा-कर्मणा जप ध्यान अर्चन के द्वारा भगवान् के प्रति अभिमुख होना। (२) उपादान—पूजा के लिए पुष्प, अर्घ्य, नैवेद्य आदि सामग्री का संग्रह करना। (३) इज्या—आगम शास्त्रों के नियमों के अनुसार भगवान् की विधिवत् अर्चना। (४) अध्याय—वैष्णव ग्रन्थों का परिशीलन। (५) योग-भगवान के साथ किसी भाव से युक्त होकर उसी स्थिति में निरन्तर निवास। इस प्रकार वैष्णव उपासना के अनकानेक भेद-प्रभेद हैं और इसी के आधार पर वैष्णवों के प्रधान पाँच भेद माने जाते हैं—यती, एकांती, वैखानस, कर्म सात्वत और शिखी [1]।

वैष्णवों का पंचकाल

परन्तु यह प्रकरण प्रसंग से बाहर जा रहा है। अभीष्ट इतना ही है कि रामभक्ति की साधना आरम्भ से ही 'मर्यादा' को केन्द्र में रखकर चली और दास्य भाव ही मुख्य भाव रहा और शरणागति ही एकमात्र साधन। राम-भक्ति की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए हम ऊपर कह आये हैं कि पहले-पहल आलवार भक्तों में ही इसका बीजरूप में दर्शन होता है। वस्तुतः शतपथ ब्राह्मण के नारायण ही राम रूप में अवतरित हुए और लक्ष्मी ही सीता रूप में।[2] यद्यपि गोस्वामी जी ने सीता जी का वर्णन करते हुए कहा है कि अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी इनसे ही निकली हैं और ये ही आदि शक्ति हैं, पर वस्तुतः सीता जी महालक्ष्मी की अवतार हैं और श्री सम्प्रदाय में इसी प्रकार महाविष्णु और महालक्ष्मी की उपासना प्रचलित है। आलवारों ने नारायण, विष्णु, हरि, वासुदेव, राम आदि सम्बोधनों में अपने इष्ट का स्मरण किया है। कुलशेखर आलवार ने प्रार्थना करते हुए कहा है, यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्री का सबके सामने तिरस्कार करे, तो भी वह उसका परित्याग नहीं कर सकती। इस प्रकार तुम चाहे कितना भी दुतकारो, मैं तुम्हारे उभय चरणों को छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की बात भी नहीं सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो, परन्तु हे राम ! मुझे तो केवल तुम्हारा ही और तुम्हारी कृपा का ही आलम्बन

---

१ जराख्य संहिता, पटल २२ श्लोक ६५-७५।

२ रा शक्तिरिति विख्याता मः शिवः परिकीर्तितः।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म राम रामेति गीयते॥
रा शब्दो विश्व वचनो मश्चापीश्वर-वाचकः।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन राम : प्रकीर्तितः।
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।
रमायां रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः॥
रा चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

है। मेरी अभिलाषा के एक मात्र विषय तुम्हीं हो। जो तुम्हें चाहता है उसे त्रिभुवन की सम्पति से कोई मतलब नहीं।

हे भगवान् ! मैं धर्म, धन, कामोपभोग आदि की आशा नहीं रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होता हो सो हो जाय; पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरों में भी आपके चरणारविन्द युगल में मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे[1]।

ऊपर के उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट हैं कि (१) भगवान् राम की उपासना सातवीं शताब्दी के आस-पास इस देश में आरम्भ हो गई थी तथा (२) आरम्भ से ही इसमें दास्य भाव के साथ-साथ दाम्पत्य भाव या मधुर भाव का सन्निवेश हो गया था।

दास्य और मधुर का सन्निवेश

और सच तो यह है कि किसी भी उपासना-पद्धति में किसी एक विभावशेष की प्रधानता रहती है; परन्तु अन्य भाव भी उसमें स्वतः स्फूर्त होते रहते हैं। जहाँ दास्य है वहाँ वात्सल्य माधुर्य भी है, जहाँ माधुर्य है वहाँ भी दास्य, सख्य वात्सल्य है ही। ये भाव ऐसे घुले-मिले होते है कि इन्हें अलग अलग करना कठिन क्या असम्भव है, हाँ अलवत्ता किसी भी उपासना में किसी एक ही भाव की प्रधानता रहती है और शेष भाव उसी एक भाव में अन्तर्भुक्त अथवा अनुस्यूत होते हैं।

आगे चलकर रामभक्ति पर भागवत पुराण का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा। वैष्णव पुराणों में पाद्म, वैष्णव, भागवत और ब्रह्मवैवर्त मुख्य हें। विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण स्वामी रामानुजाचार्य ने दिया है और एक प्रकार से विष्णु पुराण श्री सम्प्रदाय में आधार ग्रन्थ के रूप में मान्य है। परन्तु इन सभी

भागवत पुराण का प्रभाव

पुराणों में श्रीमद्भागवत का प्रभाव बहुत ही व्यापक और हृदय-ग्राह्य हुआ। इसने रामावत और और कृष्णावत दोनों ही सम्प्रदायों पर अपनी अमिट छाप डाली। इसका मुख्य हेतु है—इसकी प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन, वह भी अत्यन्त

---

१ प्रसिद्ध आलवार संत श्री शठकोप मुनि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सहस्र-गीति' में आम्रभ में ही, लिखते हैं—

दीनात्वियं भ्रमवशाहि दिवानिशं चा-
प्यश्रुप्रवाह - भरितास्त्यसितायताक्षी।
लंकां प्रणश्य किल कण्टक - दुष्प्रभुत्वं
प्राध्वंसयो ऽ द्य परिपाहि कटाक्षमस्याः॥२.४.१०

यह बड़ी दीन है। यह भोलेपन में आकर दिन-रात अपने कजरीले नेत्रों से आँसू की धाराएं बहा कर उनको नष्ट कर रही है। आपने लंका को नष्ट कर के उसके दुष्ट राजा रावण को सपरिवार नष्ट कर दिया था। दयालो ! इस विचारी के नेत्री की तो कृपा कर रक्षा कीजिए।

ऐसे भगवान् राम के प्रति विरह-निवेदन के कुछ और पद 'सहस्रगीति' में हैं।

ललित रसमयी शैली में। वल्लभ सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय तो स्पष्टतः ही भागवत से प्रभावित एवं अनुप्राणित हैं और यहाँ तक कि उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्-गीता की तरह प्रस्थानत्रयी के साथ ही साथ श्रीमद्भागवत भी इन संप्रदायों में उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में समादृत है। किसी ने यह अफवाह उड़ा दी कि भागवत वोपदेव की रचना है और यह बात अफवाह की तरह फैल भी गई; परन्तु बाद में स्वस्थ शान्त अनाविल चित्त से अनुसंधान करने पर पता चला कि यह स्वयं भगवान् व्यास की रचना है और 'समाधि भाषा' में लिखी गई है[1]। इसमें नारायण धर्म को ही गायत्री अथवा ब्रह्मविद्या माना गया है। इसी कारण इसे विविध पुराणों ने गायत्री का भाष्य माना है।[2] भारतीय जीवन एवं साधनाओं पर श्रीमद्भावगत का प्रभाव बहुत ही व्यापक, गंभीर एवं चिरस्थायी है। यहाँ तक कि रामावत संप्रदाय भी उससे प्रभावित हुए बिना न रहा और यहाँ भी मर्यादा के साथ-साथ लीला-विलास का प्रवेश हुआ और तदनुसार अनेक ऐसे संहिता ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिनमें भगवान् राम की सहस्त्र-सहस्र सखियों के साथ नाना प्रकार के क्रीड़ा-विहार के बड़े ही भव्य एवं मनोहारी वर्णन अत्यन्त काव्यमयी भाषा में मिलते हैं।

(१) 'शिवसंहिता'—एक विहंगम दृष्टि

ऐश्वर्य के श्रवण के बाद ही माधुर्य का स्फुरण होता है। भक्त के लिए पहले भगवद् ऐश्वर्य श्रवण करना चाहिए और जब ईश्वर भाव का अनुभव हो जाय तब माधुर्य में प्रवेश संभव है। ऐश्वर्य ज्ञान से भक्ति होगी; पर पूरी भक्ति नहीं होगी जब तक माधुर्य भाव न हो। माधुर्य ज्ञान के बिना पूरी भक्ति हो नहीं सकती। अगस्त्य ज्ञान-भक्ति के अधिकारी हैं; परन्तु हनुमान केवल भक्ति के अधिकारी हैं और इनका माधुर्य चरित के ऊपर ही अवलंब है। अगस्त्य में ऐश्वर्य माधुर्य दोनों है; पर हनुमान में केवल माधुर्य।

ऐश्वर्य और माधुर्य

रामायण कथा सुनते-सुनते चित्त निर्मल हो जाने पर ही गुप्त लीला में अधिकार होता है। पूर्ण रामायण के वक्ता केवल चतुर्भुज ब्रह्मा हैं, शेष उच्छिष्ट हैं। सब नाम राम-नाम में निहित हैं।

माधुर्य अधिकार

सब देश, स्च काल में जितने जीवात्मा हैं, वे सब भगवान् के ही अनुजीवी हैं। पुरुष एक मात्र प्रभु रामचन्द्र हैं, शेष सब स्त्री हैं। इसी कारण एक ही काल में एक प्रभु ही सबमें रमण कर सकते हैं। भगवान में रमण करने की जितनी शक्ति, सामर्थ्य है, उतना जगत्रय में धारण करने की शक्ति ही नहीं है। एक भगवान् ही सभी स्त्रियों के पति हैं, भर्ता हैं। जार-बुद्धि से सेवन करने

भाव प्रकाशन

---

१ वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तत् चतुष्टयम्।। —श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

२ अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः।। —गरुड़ पुराण

पर भी प्रभु की प्रीति प्राप्त होती है। भागवान् का सौन्दर्य माधुर्य, यौवनारम्भ, सौगन्ध, सुकुमारता, लावण्य, परम कान्ति, सौशील्य, वल, सौहार्द, सौलभ्य, परम वात्सल्य, स्वभावतः सदा प्रसन्न रहना ये सब गुण ही भक्तों के चित्त को हरनेवाले हैं। विमुग्ध वालाओं के लिए तो उनका नित्य किशोर, सर्वरसभोक्ता, रसिकेन्द्र युवराज नित्य ही पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला रूप स्फुरित रहता है। भगवान् के चरणों की सेवा के अतिरिक्त शेष सब विपत्ति है। एक मात्र भगवान् श्री राम ही भोक्ता हैं, शेष सब उनका भोग्य है। यद्यपि श्री भगवान् राम आनन्द स्वरूप हैं, स्वयं ईश्वर हैं और सदा अपने ही आनन्द में मग्न रहते हैं, फिर भी उनके जो परम अनुरागी हैं, वे अनुराग युक्त हो कर उनकी आराधना करते और भोग अर्पण करते हैं, उसे प्रभु श्री राम परम आह्लाद से ग्रहण करते हैं।

भगवान् राम और भगवती सीता दोनों रस के एक मूर्तिमान् विग्रह हैं—लीला के लिए ही एक से दो हुए हैं।

क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति तथा उपासना-शक्ति वेद की ये तीन प्रमात्मिका शक्तियाँ हैं। इनमें कैकयी क्रिया-शक्ति, सुमित्रा उपासना-शक्ति है और कौसल्या ज्ञान-शक्ति है। इन तीनों शक्तियों से युक्त वेद स्वरूप चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी हैं।

स्वरूप प्रकाशन

क्रिया में स्वभावतः कुछ कलह, उपासना में प्रीति और ज्ञान में नित्य निर्हेतुक निर्मल आत्मसुख मिलता है। कैकेयी रूपी क्रिया से धर्म का जन्म होता है, भरत जी धर्मस्वरूप हैं। भक्त में रत होने के कारण तथा विश्व का भरण-पोषण करने के कारण इनका नाम भरत हुआ। सुमित्रा रूपी उपासना शक्ति से लक्ष्मण जी सख्य भाव के आचार्य हुए। भगवान् श्री राम कौसल्या रूपी ज्ञान से कल्याण स्वरूप तथा विश्व को आनन्द देनेवाले हुए। शत्रुघ्न जी शत्रुओं को विनाश करनेवाले तथा अर्थ के अध्यक्ष हैं। शस्त्र और शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हैं।

शत्रुघ्न जी का गौर शरीर तडित सुवर्ण वर्ण का है और उन्हें कुसुम रंग का वस्त्र विशेष प्रिय है। अरुण कमल दल के समान उनके नेत्र हैं और उनके शब्द दुंदुभी की तरह हैं। लक्ष्मण जी कर्पुर के पुट के समान गौरांग, अरुण कमल समान नेत्र और नीलाम्बर को धारण करते हैं। श्री भरत लालजी नीलरत्न के समान श्याम, पीताम्बर धारण करने वाले सबके मन को हरने वाले हैं। वे श्री भगवान राम के गृह, आराम, वाद्यादिकों के राजा और भगवान् की सब क्रीड़ाओं में महाप्रवीण हैं।

कोटिकंदर्पलावण्य सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सर्वलोक में रमण करनेवाले एवं रमाने वाले, मोक्ष के भर्ता हैं। आप ही श्रृंगार रस के देवता हैं और सब कामिनियों में अतिशय कामोन्माद बढ़ानेवाले आप ही हैं।

जगत के प्राणभूत श्रीराम जी की भी प्राणेश्वरी श्री जनकनन्दिनी जी हैं। आप पतिव्रता शिरोमणि हैं।

श्रीराम जी की सेवा करनेवालों के दो भेद हैं—पुरुषवर्ग, नारीवर्ग। सभी दिव्य हैं

एक रस एक आकारवाले हैं। अपने गुणों से श्री सीताराम जी का आराधना करना ही इन सबों का साधन है। बाहर के कार्य में पुरुषवर्ग सदा स्थित रहते हैं और भीतर आनन्दवर्धक विहारादि कार्यों में देवीगण सदा संलग्न हैं। भगवान राम रस स्वरूप हैं––रसो वै सः।

राम सीता के विना और सीता राम के विना क्षणमात्र भी नहीं रह सकते ––'रामो न सीतया शून्यः सीता रामं विना न हि'।

श्रृंगार रस किसी फल का साधन स्वरूप नहीं है। यह नित्य सिद्ध स्वरूप है। दम्पति मिल गये और मैथुनोद्भूत आनन्द को प्राप्त हुए, यही श्रृंगार है, ऐसा मानना महा भ्रान्ति है।

श्रृंगार साधना का स्वरूप प्रकाश

जिस श्रृंगार रस को बड़े-बड़े सिद्ध शिव, सनकादिक उपासना कर आनन्द समुद्र, में निमग्न रहते हैं, वह श्रृंगार दिव्य और नित्य सिद्ध है। प्रिया प्रियतम श्री सीताराम जी नित्य इच्छा रूप हैं नित्य नाना प्रकार के केलिभेदों से श्रृंगार रस के सुखानन्द प्रवाह के तरंग बढ़ाया करते हैं। यह सच्चिदानन्द आत्मास्वरूप श्रृंगार रस का अवतार श्रृंगार रस के हर्ष और उत्कर्ष के बढ़ाने में स्त्री ही प्रधान है और यह आनन्द-भोग्य भी हम सबको स्त्री ही रूप से है।

सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी भगवान् राम प्रेमपिपासा से व्याकुल रहते हैं और नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से अपने भक्तों में प्रीति का सम्पादन करते रहते हैं। राम के परम भक्त वाह्य कार्य में पुरुष हैं; पर आभ्यन्तर कार्य में सभी देवी हैं। वास्तव में एक रस ही खंडित होकर सखा सखी रूप में प्रस्फुटित हो गया है। अभ्यन्तर कार्य में प्रेरणा करनेवाली प्रेरिणी है जानकी। स्वामिनी जानकी हैं, इसलिए सभी उनकी इच्छा का अनुसरण करते हैं, स्वयं रामचन्द्र भी इनकी इच्छा के वशवर्ती हैं। राम जानकी में सामरस्य है। स्वरूप एक ही हो तो रस न हो। इनका स्वरूप ही श्रृंगार है। वहाँ भोक्ता भोग्य नहीं––एक ही लीला में दो हो जाता है–– लीला में और लीला के रसास्वादन के लिए। यह अद्वैत में द्वैत है–– एक में ही दो का या एक ही का दो में खेल है। एक आत्मा दो शरीर।

"रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये स्वयं यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते।।"

रसिक भक्त दिव्य अनेक गुणाश्रय रूप श्री राम जी में रमण करते हैं और उन भक्तों में श्रीराम जी भी स्वयं रमते हैं। इसी हेतु 'राम' कहे जाते हैं। जैसे समुद्र जलमय और मधु मिष्ठ-

राम शब्द का अर्थ

मय है, बाहर-भीतर रसमय है––वैसे ही भगवान् राम रसमय रसस्वरूप हैं। स्वयं रस ही रस है स्त्रियों को कौन कहे, अपने रूपौदार्य के कारण पुरुषों को भी यह अभिलाषा होती है कि हम स्त्री होकर इनके साथ आलिंगनादि सुख को प्राप्त करें।[1]

---

१ 'पुंसामपि रामं पश्यतां स्त्रीभूत्वाऽहमनुभवे राममित्यभिलाषो भवति।

'राम' शब्द ही रस राजत्व का बोधक है। शृंगाररस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

श्री राम सीता का नित्य का रासस्थल अयोध्या है। यही भुक्ति क्षेत्र भी है, और मुक्ति क्षेत्र भी है। द्वारका, मथुरा आदि अयोध्या के ही अंशभूत हैं। अशोक वाटिका में श्री सीताराम जी नित्य रास लीला करते हैं। यह अशोक वन ही रस रूप है।

पारमार्थिक तत्त्व

अयोध्या, नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुर, अपराजिता इत्यादि नाम अयोध्या जी के हैं। पहले दिव्य धाम का ध्यान फिर शृंगार रस की सर्वस्व मूर्ति तथा एकमात्र भोक्ता भगवान् राम का ध्यान करे और पुनः रासरचना करे।

(२) लोमश—संहिता की दृष्टि में

इस शृंगार राज्य में प्रवेश पाने के लिए श्री विदेहराज कुमारी जी की अंतरंग सखियों की कृपापूर्ण दृष्टि अनिवार्य है। यहाँ किसी साधना या अनुष्ठान स प्रवेश ही नहीं हो सकता। अस्तु इन अंतरंग सखियों में मुख्य हैं—चन्द्रकला, विमला, सुभगा,

शृंगार राज्य में प्रवेश

मदनकला, चारूशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगंधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वंशध्वजा, चित्रलेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली। ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी हैं।

इन सोलहों में चन्द्रकला, चारुशीला, मदनकला और सुभगा मुख्य हैं और इनमें चन्द्रकला जी सर्वश्रेष्ठ हैं। वाह्य कार्यों में जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतंत्र सर्वाधिकार है, अंतरंग लीलाओं में उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता में सर्वश्रेष्ठ

चार मुख्य सखियाँ

हैं। जिस प्रकार ललिता जी राधा-कृष्ण का मिलन संघटन करती हैं, उसी प्रकार चन्द्रकला सीता-राम का मिलन संघटन करती हैं और इनका यहाँ ठीक वही स्थान है जो ललिता का वहाँ है।

लोमश संहिता में चन्द्रकला जी का ही प्रसंग मुख्य है और फिर श्री अयोध्या जी के प्रमोद वन में रासलीला का भव्य वर्णन है। श्री चन्द्रकला जी रासरस की आचार्या हैं और उन्हीं की कृपा से साधक अपने सिद्ध देह से इस लीला में प्रवेश पाता है। इस संहिता के अ० २० श्लोक

क्रीडा सम्पद्यते यैस्तु गुणै नैत्रगुणैःशुभैः
ज्ञेयोऽस्मिन्सततं 'राम' इत्याहुर्मुनयोमलाः।
यत्रास रामो रसरंगमूर्त्ती रासः सनाम्नोप्पथ केलिभेदः
रामाभिरामो रमणीश रामो रा शब्द रामो रसराजरामः

'राम' शब्द ही रसराजत्व का बोधक है। शृंगार रस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

१८६वें से १८६ तक रासनृत्य पर संचालित संगीत का बड़ा ही मनोहारी विन्यास हुआ है। यहां रास का प्रकरण ज्यों-का-त्यों श्रीमद्भागवत के रास पंचाध्यायी के आधार पर है और स्पष्टतः उसी से प्रभावित है। यहाँ भी इस महारास के समय गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य गंधर्व, देवादिक सभी के सभी अपनी सुधबुध खोकर अपने-आप में न रहे, अचेत हो गये और इनके हृदय को महारास ने अपनी ओर खींच लिया। प्रिया-प्रियतम के दिव्य मिलन का एक दृश्य बड़ा ही मनोहारी है।[1]

(३) श्री हनुमत्संहिता—एक विहंगम दृष्टि

श्री हनुमत्संहिता में 'प्रेमामृत महोत्सव' का बड़ा ही भव्य वर्णन है। अगस्त्य और हनुमान का संवाद है। जानकी-प्रेम-लंपट रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया तथा असंख्य रूपयौवन-शालिनी सखियों के साथ सरयूतट पधारते है और प्रेमामृतरसावेश में हास्य, लास्य, कटाक्ष तथा मनोहर चाटुकारों से परस्पर प्रसन्न करते हुए कदंब वन में माध्वीक रस का पान करते हैं और फिर माधवी कुंज में पधारते हैं, तत्पश्चात् हरिचन्दन वन में और तब अशोकवन में। यह अशोकवन पुरुषों को नहीं दिखाई पड़ सकता, केवल स्त्री भावापन्न साधकों को ही उपलब्ध होता है।[2] इस प्रकार कोटिकंदर्पलावण्य भगवान् रामचन्द्र हास्य, लास्य, कटाक्ष मे जानकी का मोदन और मादन करते हुए एक वन में से दूसरे वन में विचरण कर रहे हैं। ऐसी कमनीय किशोर मूर्त्ति को देखकर उन सखियों के मन में रमण की अभिलाषा जगती है और भगवान् उन्हें नाना प्रकार से तृप्त करते हैं।[3] जैसे नक्षत्रों से घिरा चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही सखियों से घिरे रामचन्द्र। नाना प्रकार के लास्य नृत्यादि से सखियों के चित्त को आह्लादादि प्रदान करते हुए भगवान् उनके अधरामृत का पान

---

१ इत्युक्त्वा तं तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिंग्य बाहुभ्यां चुचुम्बाधरमाधुरीम्॥
हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमब्जकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिया वक्षसि संगमतो सुखमापमहोत्सवजन्यमता॥

—अ० २२, श्लोक १३६

२ पुंसामगोचरं स्थानं केवलं प्रेमदायकम्।
नारीभावसमायुक्तास्तेषां दृश्यं भवेद् ध्रुवं॥

—ह० सं० २-४३

३ आलोलपाणिचरणा स्मित दृग्विभंगी।
विभ्रच्चलद्वलयकंकणनूपुरादीन्॥
आश्लिष्टकंठकुचको जनकात्मजायाः
रामो रराज भवनाटक नाट्यवेशः॥ ह० सं० ४-१७
सरसनिकषे प्रेमजलैः परिपूर्णं स्वर्णग्याः।
विकसिताननकमलं पिबति यत्र मधुव्रतो राम :॥ ४-५१

करते हैं। इसके पश्चात् जल-क्रीड़ा होती है। इसके अनन्तर भगवान राम सीता के साथ एक परम दिव्य परम मनोहर कुंज मण्डप में विराजते हैं। चारों ओर पोडस कमल दल की भाँति वेदी है जिसपर सोलह मुख्य सखियाँ हैं—उनके नाम हैं—कांचनी, चित्रा, चित्ररेखा, सुधामुखी, कमला, चन्द्रकला, चन्द्रानना, वरा, माधुर्यशालिनी, विशदाक्षी, सुदंशका, उज्जला, हंसिनी, कर्पूरांगी, वरारोहा, प्रशंसी। (५-१७) ये तो मुख्य सखियाँ हैं; परन्तु उस पद्म के उपदलों पर शोभना, शुभदा, शांता, संतोषा, सुखदा, चारुस्मिता, चारुरूपा, चारुलोचना, हैमा, क्षेमा, प्रेमदात्री, माधवी, कामदा, मोहिनी, लीला आदि सखियां विराजमान हैं और बीच में कर्णिकार पर भगवान् राम और भगवती सीता। सभी सखियों के हाथ में एक-एक वाद्य यंत्र है। किसी के हाथ में वीणा है तो किसी के हाथ में वेणु, किसी के हाथ में मृदंग तो किसी के हाथ में मंजीर। भगवान् का यह नित्य दिव्य विहार देखकर सभी मुग्ध हैं, आनन्दमग्न हैं। इस प्रकार साकेत में परम रास सम्पन्न हुआ। यह चिर गोपनीय रहस्य है।[1] रहस्य लक्ष्य करने की बात यह है कि यहाँ सीता अपने ही शरीर से १०८ सखियों की सृष्टि करती हैं और इनके साथ भगवान् राम कृष्ण की भांति उतने ही उतने रूप धारण कर लेते हैं।

अर्थ-पंचक

अगस्त्य जी ने पुनः हनुमान जी से पूछा कि इस भाव में प्रवेश कैसे हो। इसपर हनुमान जी कहते हैं कि श्री राम से प्रीति सम्बन्ध होने पर ही इस भाव की प्राप्ति होती है और यह सम्बन्ध कोई गुरु ही करा सकता है। इसके अनन्तर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव के भेदोपभेद तथा इनके विभावादि का सविशेष विवरण है। श्री हनुमान जी ने कहा है कि यह सम्बन्ध ही सहजानन्द प्रदान करनेवाला है और इसे प्राप्त कर ही जीव की भगवान् में अचला अव्यभिचारिणी भक्ति होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य की वही व्याख्या है जो परम्परामुक्त है।[2] इस संसार में देखा जाता है कि सम्बन्ध से कितनी प्रगल्भता आ जाती है तो भगवान्

---

१ गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा। ७-५

२ श्रीमद्रघुपतिं साक्षात् ब्रह्म सर्वपरात्परं।
ज्ञात्वा भजति यो नित्यं सर्व शान्तरसाश्रयः॥
श्री रामं करुणासिंधुं भक्तसंरक्षणं परे।
बुद्ध्वा भजति यो नित्यं स वै दास्य रसाश्रयः॥
श्री रघुनन्दनं मित्रं प्रेमपात्रं विबुध्य च -
स्नेहेन रमते नित्यं स हि सख्यः रसाश्रयः॥
बालं सौन्दर्यसहितं कोमलांगं प्रमोददं।
सर्वदा जीवनं मत्वा स वै वात्सल्यसंज्ञकः॥
मधुरं मनोहरं रामं पतिं संबन्धपूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया॥ —६. २३-२७

से जिनका संबंध हो गया उनका फिर कहना क्या ? स्थूल, कारण, सूक्ष्म इन तीनों देहों के विनाश हो जाने पर गुरुमुख से संबंध की योग्यता प्राप्त होती है। सबसे पहले अपनी (दिव्य) वास्तविक जननी और जनक का पता लगता है, आचार्य का पता लगता है, तब 'सेवा' मिलती है। तब इन पांच रसों में जिस रस का अधिकार होता है उसके अनुरूप दिव्य नाम तथा दिव्यस्वरूप मिलता है यही 'अर्थ पंचक' है।

गुरु में ईश्वर बुद्धि रखते हुए 'अमायया' तथा 'अनुवृत्या' उसका सेवन करे। भगवान् की कृपा का अवलम्बन लेकर अपना सर्वस्व उन्हीं के चरणों में समर्पित कर प्रारब्धभोग समाप्त कर साधक सूर्यमण्डल को भेद कर 'विरजा' में स्नान करता है। यहां वह वासना सहित अपने दोनों देहों का परित्याग कर 'विरज' हो जाता है। अत्यन्त प्रबल वेग से वह 'विरजा' पार साकेत में प्रवेश करता है और राजमार्ग से सप्तावरणसंयुत, नानारत्नमय दिव्य श्री रामभवन में प्रवेश करता है। अपनी भावना के अनुसार वह प्रभु श्री राम को प्राप्त कर समस्त आनन्द को प्राप्त होता है, स्वयं परानन्दमय हो जाता है। इस संहिता के अन्तिम अध्याय में रस का प्रकरण है और उसका सांगोपांग विन्यास है।

उज्ज्वल भक्ति रस

इसमें उज्जवल भक्ति रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि माधुर्यसिंधु कमनीय किशोरमूर्ति श्री रामचन्द्र ही विषयालम्बन हैं, प्रेयसीगण आश्रयालम्बन हैं, सौशील्य, माधुर्य, कमनीय किशोरत्व, प्रियवचनत्व, भूषणालंकार, वसन्त, कोकिलाकूजन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है, कटाक्ष, स्मित, भ्रूविक्षेप, आदि अनुभाव हैं, रोमांच, वैवर्ण्य, प्रस्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव हैं और आलस्य, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है और प्रियता रति स्थायी भाव है।

ऊपर हमने 'शिव संहिता' 'लोमश संहिता' एवं 'हनुमत्संहिता' का संक्षिप्त उल्लेख इस लिए किया है कि हम यह अनुभव करें कि रामभक्ति में शृंगारोपासना हाल की नयी उद्भावना-नहीं है। अपितु इसका आरम्भ बहुत पहले हो चुका था। इन संहिताओं के निर्माण का काल-निर्णय वस्तुतः बहुत ही जटिल समस्या है। परन्तु ये उतनी 'आधुनिक' नहीं है जितनी समझी जाती है। और तो और, स्वयं वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में अशोकवन में राम सीता के विहार का वर्णन मिलता है।[१] वस्तुतः ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी से ही राम और सीता के पूर्वानुराग का चित्रण होने लगा[२] और महावीर चरित, जानकी हरण, प्रसन्न राघव तथा हनुमन्नाटक में राम सीता के विलास का बहुत ही व्यापक एवं सांगोपांग वर्णन मिलता है, यहाँ तक कि कुछ लोगों की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुंच गया है।

इन संहिताओं तथा चरितों के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थों में 'सत्योपाख्यान' एवं 'वृहद् कौशल खण्ड' आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, जिनमें भगवान् राम और भगवती सीता के नाना

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४२।

२ दे० रामकथा पृ० ४८३, अनु० ६१९।

विध लीला विलास का बड़ा ही भव्य वर्णन है। सत्योपाख्यान में[1] भगवान् का सीता के साथ वन विहार तथा जलक्रीड़ा का बड़ा ही रसीला वर्णन है तथा होलिका में राम और सीता का प्रणय विहार एवं पुनः सीता की मानलीला (क्रोध) का चित्रण है। 'आनन्द रामायण' के विलास काण्ड में राम-सीता की जलक्रीड़ा एवं वन-विहार का वर्णन है।[2] इसी खण्ड में राम द्वारा सोलह हजार कामपीड़िता देवियों को गोपी रूप में अगं-संग का आश्वासन मिलता है;[3] तथा एक दासी को पीकदान के अभाव में अपना हाथ बढ़ाने पर तथा तांबूल रस पीने पर अगले जन्म में राधा बनकर अधरामृत पान का आश्वासन मिलता है।[4] इसी प्रकार 'महारामायण' में राम की रासक्रीड़ाओं का बड़ा ही मधुर मनोहारी वर्णन है।[5] कामिल बुल्के ने 'चित्रकूट माहात्म्य'[6] शीर्षक एक हस्त-लिखित पुस्तक की चर्चा की है, जिसमें ऐसा वर्णन मिलता है कि चित्रकूट के सांतानक वन में एक सरोवर है, जिसके मध्य में एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका पर रामसीता और उनकी सखियों के साथ नित्य रासक्रीड़ा करते हैं।

श्रृंगारी रामभक्ति का आधार ग्रंथ: वृहत् कौशल खण्ड

श्रृंगारी रामभक्ति का आधार ग्रन्थ 'वृहत्कौशल खण्ड' अभी-अभी दो खंडों में प्रकाशित हुआ है परन्तु है 'प्राइवेट सर्क्युलेशन' के लिए। श्री हनुमत् निवास अयोध्या के महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से मुझे इसकी जो प्रति प्राप्ति हुई है, उसके अध्ययन से रामभक्ति में मधुरोपासना के अनेक परम गोपनीय रहस्यों का उद्‌घाटन होता है। इसमें राम लीला पूर्णतः कृष्णलीला प्रतीत होती है। अपने विवाह के पूर्व राम अपने सखाओं के साथ, पुनः गोपकन्याओं के साथ, फिर देव कन्याओं के साथ, फिर राज-कन्याओं के साथ रासलीला करते हैं। इसके अनन्तर देव कन्याओं के साथ परिहास एवं उपालंभ का विषय है। इसके पश्चात् श्री मैथिली जी के पूर्वराग एवं विप्रलंभ का प्रकरण है और इसी के पश्चात् है विवाह रहस्य-प्रकरण। विवाहोत्तर देवकन्या, गंधर्वकन्या, राजकन्या, साध्यसुता, गुह्यकदेव कन्या, यक्षकन्या, नागकन्या के साथ रास का वर्णन है। यह समस्त ग्रन्थ जो ३०७२ श्लोकों में समाप्त होता है पूरा-का-पूरा रास का ही प्रसंग है और रासविलास के नाना प्रकरणों का इतना मनोमुग्धकारी वर्णन है कि काव्य और रहस्य का इतना सुन्दर सम्मिश्रण एवं मणिकांचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। अवश्य ही रामावत भक्ति-धारा की श्रृंगारी शाखा पर श्री हनुमत्संहिता तथा वृहद्कौशलखण्ड का ही विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है और

---

१ दे० सत्योपाख्यान उत्तरार्ध, अध्याय २०, २७।

२ दे० सर्ग २, ६।

३ तु० कृष्णोपनिषद्, पद्मपुराण।

४ दे० आनन्द रामायण ७, १९, २९।

५ दे० महारामायण अ० ५२।

६ दे० रामकथा पृष्ठ १७१।

इस सम्प्रदाय में इन ग्रन्थों का वेदवत् आदर होता है तथा अष्टयाम में इनका विधिवत् पाठ होता है।

अभिप्राय यह है कि ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक साधना और साहित्य के क्षेत्र में माधुर्य भक्ति का ज्वार उमड़ रहा था और परम गोपनीय होते हुए भी इसमें कृष्ण भक्ति शाखा की तरह माधुर्य साधना का पूरा-पूरा सन्निवेश हो गया था।

गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक

गीता में हम जिसे 'रामः शस्त्रभृतामहं' का दर्शन कर आये थे वे 'जानक्या सह संप्रीतः क्रीड़ारसविलम्पटः' तथा 'महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम्' हो चुके थे और प्रेमी भक्तों के बीच उनका यह रूप ही विशेष प्रिय हुआ। हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे कि साहित्य और साधना के क्षेत्र में इस मर्यादा-प्रधान साधना का रूप माधुर्य प्रधान कैसे चुपचाप हो गया। यहाँ लक्ष्य करने की एक और बात है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस का प्रणयन करते समय अपने चारों ओर फैले हुए इस माधुर्योपासना के प्रचुर साहित्य को अवश्य देखा होगा और कुछ साहित्यकारों की यह भी मान्यता है कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदास की उपासना भी ऊपर-ऊपर दास्य भाव की, पर अन्दर-अन्दर मधुर भाव की ही थी।[1]

श्री ब्रजनिधि[2] का कथन है—

रंग की बरखा करी बहु जीव सन्मुख करि लिए,
जनकनन्दिनी राम छवि में भिजै दोनों जन-हिए।
बस निरन्तर रहत जिनके नाथ रघुवर-जानकी,
ते दास तुलसी करहु मोपर दया दंपति दान की।।
सुन्दर सिया राम की जोरी, बारों तिहि पर काम करोरी।
दोउ मिलि रंग महल में सोहैं, सब सखियन के मन को मोहैं।।
सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
करौ सेवन रुचिर रुचि सों सुजस की बानी कहौ।
दास यह तब अनन्य तापर रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्हरी कृपा करि अपनी करी।।

'ब्रजनिधि' ने 'तुलसीदास' नामका 'रहस्य' खोलते हुए कहा है—

जैजै श्री तुलसी तरु जंगम राजई।
आनंद वन के माँहि प्रगट छवि छाजई।।
कविता मंजरि सुन्दर साजै।
राम भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै।

१ दे० चन्द्रवली पाण्डेय—तुलसी की गुह्य साधना, 'नया समाज' सितंबर १९५३।

२ ब्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा, काशी पृ० २७५-२७६ पद—८९, ९०, ९१, ८६, ८७।

रमि रहे रघुनाथ अलि है सरस सोंधो पाइ कै।
अलि ही अमित महिमा निहारी कहौं कैसे गाइ कै।।
तुलसी सु वृन्दा सखी कौ निज नाम तें वृन्दा सखी।
दास तुलसी नाम की यह रहसि मैं मन में लखी।।

'रामचरित मानस' में तो सीता-राम की जोड़ी को छवि और शृंगार की एकला कहकर गोस्वामी जी चुप हो गये हैं; परन्तु 'गीतावली' में उनका आन्तरिक रूप कुछ-कुछ अनावृत हुआ, जब वे सीताराम तथा उर्मिला लक्ष्मण के 'केलिगृह' का वर्णन करते हैं—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परस्पर लखन सुलोचन कोने।
सुखमासागर सिंगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूप प्रेम-परिमिति न परत कहि, विथकि रही मति मौने।
सोभा सील सनेह सोहावनै समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए तुलसीदास हूं के होने।[1]

'केलिगृह' का दर्शन किसी 'सखी' को ही मिल सकता है। तुसली के इस गुह्य रूप का, जो उनकी अत्यन्त अंतरंग साधना का वास्तविक रूप था, दर्शन 'गीतावली' के निम्न लिखित पद में होता है—

माई! मन के मोहन जोहन-जोग जोही।
थोरी ही बयस, गोरे सांवरे सलोने लोने,
लोयन ललित बिधुवदन बटोही।।१।।
सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमन जुत,
जैसिये लसति नव पल्लव खोहीं।
किये मुनि वेषु वीर, धरे धनु तन तीर,
सोहैं मग, को हैं लखि परै न मोही।।२।।
सोभा को सांचो संवारि रूप जातरूप।
ढारि नारि बिरची बिरंचि संग सोही।
राजत रुचिर तनु, सुन्दर स्रम के कन,
चाहै चकचौंधी लागे, कहौं का तोही?।।३।।
सनेह सिथिल सुनि बचन सकल सिय,
चितइ अधिक हित सहित ओही।
तुलसी मनहुं प्रभु कृपा की मूरति फेरि,
हेरिके हरषि किये लियो है मोही।।४।।[2]

१ गीतावली, बालकांड, १०५।
२ गीतावली, अयोध्याकांड, पद २०।

इसके ठीक पहले वाले पद में गोस्वामी जी ने अपना 'रूप' स्वयं प्रकट कर दिया है—

सखिहि मुसिख दई प्रेममगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी,
न जाने कहाँ तें आई है कौन की कोही ।।१।।[1]

यह 'ओही' स्वयं तुलसी ही हे और वही हे मानस के 'तापस' भी। 'गीतावली' में शृंगार के कई ऐसे पद हैं जो सिद्ध करते हैं कि गोस्वामी जी का वाह्य (साधक) रूप मर्यादावादी दास्य भाव का था, परन्तु आन्तरिक गुह्य (सिद्ध) रूप लीला विलासी सखी भाव का था।

फटिक सिला मृदु विसाल, संकुल सुर तरु तमाल,
ललित लताजाल हरति छवि वितान की।
मंदाकिन तटनि तीर मंजुल मृग विहग भीर
धीर मुनिगिरा गंभीर सामगान की।।
मधुकर पिक बरहि मुखर सुंदर गिरि निरझर झर
जलकन घन छाँह छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिविध बाउ
जनु बिहार वाटिका नृप पंचवान की।।
विरचित तहँ परन साल, अति विचित्र लषनलाल
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवदल रचित सयन
प्यास परस्पर पियूष प्रेमपान की।
सिय अंग लिखैं धातुराग सुमननि भूषन विभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधान की।
माधुरी विलास हास गावत जस तुलसीदास
बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की।। अ० कां० पद ४४।

था

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन, वेनुवीन-धुनि डारे गायक सरस राग रागे।
स्यामल सलोने गात आलस बस जँभात पिया प्रेमरस पागे।।
उनींदे लोचन चारु मुख सुखमासिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे
सहज सुहाई छवि, उपमान लहै कवि मुदित विलोकन लागे।
तुलसी दास निसिबासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे।।

---

१ वही पद १९।

इस प्रकार रामोपासना का प्रादुर्भाव 'दास्य'––सेवक-सेव्य भाव में हुआ तथा 'मर्यादा' ही इसकी मुख्य प्रेरणा एवं आधारशिला रही। परन्तु क्रमशः दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य माधुर्य में परिणत होता गया और आज लगभग चार सौ वर्षों से रामभक्ति की माधुर्य धारा उत्तर भारत में प्रवाहित हो रही है; आरम्भ में तो गुप्त गोदावरी की भाँति अप्रकट रूप में परन्तु शनैः शनैः व्यक्त एवं प्रकट रूप में हाँ, अलवत्ता यह स्वीकार करना होगा कि कृष्णभक्ति-शाखा की तरह इसमें 'सखी भाव' अत्यत उन्मुक्त रूप में व्यक्त नहीं हो पाया है। यहाँ सखी भाव में भी मर्यादा की मुख्यता रही है। लक्ष्य करने की बात यह है कि आज अयोध्या में अधिकांश मन्दिर 'कुंज' और 'वन' नाम से अभिहित हैं और श्री कनक भवन के अतिरिक्त भी जितने मुख्य स्थान हैं, वहाँ भी युगलमूर्ति की 'मधुर उपासना' चल रही है। यहाँ के अधिकांश साधु संत एवं साधक या तो कोई 'लता' है, या 'प्रिया', या 'अली' या 'सखी'। संभव है यह आरम्भ की कठोर 'मर्यादाओं' एवं नियमों' की प्रतिक्रिया ही हो––जैसा अभिनव मनोविज्ञान के पंडित कहेंगे, परन्तु इसका अनुशीलन हम आगे किसी अध्याय में प्रस्तुत करेंगे और उसमें हम दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि किन-किन प्रभावों के कारण रामभक्ति में माधुर्य का सन्निवेश हुआ है और आज उसका वास्तविक रूप क्या है, उसकी वहिरंग एवं अंतरंग साधना में क्या सम्बन्ध है तथा उसके सिद्धान्त पक्ष एवं साधना ने साहित्य को जिस सीमा तक प्रभावित किया है और करता जा रहा है।

यहाँ अवश्य ही लक्ष्य करने की वात यह है रामावत सम्प्रदाय के साहित्य में मधुर भाव का सन्निवेश या विकास केवल कृष्णभक्ति के अनुकरण पर नहीं हुआ है जैसा अधिकांश सुधी समालोचकों एवं मान्य विद्वानों का मत है। वहाँ स्वयं दास्य प्रस्फुटित होकर माधुर्य में पर्यवसित हुआ है और संभव है, उस पर उस समय की अन्य साधना पद्धतियों––कृष्णायत सखी सम्प्रदाय, वैष्णव सहजिया एवं वौद्ध सहजिया, तथा काश्मीर शैव और 'रसेश्वर' दर्शन का प्रकारांतर से कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओं में क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या वौद्ध, मधुर भाव की उपासना का ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण हैं। प्रभाव जो कुछ और जैसा कुछ भी हो, रामावत मधुर उपासना अपने-आपमें से प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित––पुष्पित स्वतंत्र साधनाशैली के रूप में ही इस उत्तरा खण्ड में छा गई थी और फिर भी 'मर्यादा' की मुख्यता के कारण इसे खुलकर खेलने का अवकाश नहीं मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य रूप में ही बनी रही और आज भी वह परम गुह्य ही है।

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक परम्परा

भगवान् राम की मधुर भाव में उपासना करनेवाले भक्तों को 'रसिक' कहते हैं। यहाँ इस साधना में 'रसिक' शब्द इसी भाव में रूढ़ हो गया है।[1] और इसीलिए यह सम्प्रदाय 'रसिक सम्प्रदाय' कहलाता है। रसिक सम्प्रदाय की परम्परा परम प्राचीन है। इसके आकर ग्रन्थों से पता चलता है कि इसके आदि प्रवर्त्तक श्री हनुमान जी हैं, जिनका आत्म सम्बन्धी नाम श्री चारुशीला जी है। इस संप्रदाय में व्यास, शुकदेव, वशिष्ठ, पाराशर—आदि ऋषि-मुनि भी आते हैं। अभी-अभी स्वामी श्री सियालाल शरण जी महाराज 'श्री प्रेमलता जी' का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस संप्रदाय की परम्परा दी हुई है, वह इस प्रकार है—

नाम	रसिक साधना का नाम
श्री हनुमान जी	श्री चारुशीला जी
श्री ब्रह्मा जी	श्री विश्वमोहनी जी
श्री वशिष्ठ जी	श्री ब्रह्मचारिणी जी
श्री पराशर जी	श्री पापमोचना जी
श्री व्यास जी	श्री व्यासेश्वरी जी
श्री शुकदेव जी	श्री सुनीता जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	श्री पुनीता जी
श्री गंगाधराचार्य जी	श्री गांधर्वी जी
श्री सदाचार्य जी	श्री सुदर्शना जी
श्री रामेश्वराचार्य जी	श्री रामअली जी
श्री द्वारानन्द जी	श्री द्वारावती जी
श्री देवानन्द जी	श्री देवा अली जी

१—श्री रामस्य माधुर्यरीत्यापि बहुस्त्री वल्लभत्वंसिद्धैः सर्व स्त्री स्वामिन्या श्री जानक्या तद्विरो धाश्रवणाच्च। ऐश्वर्यरीत्यातु श्री रामस्य सर्व चिदचिच्छेशित्वेन सर्वजीवभोक्तृत्वोपपत्या सर्वजीवभर्तृत्वनिष्पतेः ये भर्तृ भार्याभावेन श्री रामं भजते त्वेषामेव रसिकत्वमुपपद्यते।

—श्री हारिदासकृत भाष्य पृ० १६३

—श्री रामस्तवराज

श्री श्यामानन्द जी	श्री श्यामा अली जी
श्री श्रुतानन्द जी	श्री श्रुता अली जी
श्री चिदानन्द जी	श्री चिदा अली जी
श्री पूर्णानन्द जी	श्री पूर्णा अली जी
श्री श्रियानन्द जी	श्री श्रियाअली जी
श्री हरियानन्द जी	श्री हरिसहचरी जी
श्री राघवानन्द जी	श्री राघवा अली जी
श्री रामानन्द जी	श्री रामानन्ददायिनी जी
श्री सुरसुरानन्द जी	श्री सुरेश्वरी जी
श्री माधवानन्द जी	श्री माधवी अली जी
श्री गरीवानन्द जी	श्री गर्वहारिणी जी
श्री लक्ष्मीदास जी	श्री सुलक्षणा जी
श्री गोपालदास जी	श्री गोपाअली जी
श्री नरहरिदास जी	श्री नारायणी जी
श्री तुलसीदास जी	श्री तुलसी सहचरी जी
श्री केवल कूवा राम जी	श्री कृपा अली जी
श्री चिन्तामणिदास जी	श्री चिन्तामणि जी
श्री दामोदरदास जी	श्री मोददायका जी
श्री हृदयराम जी	श्री उल्लासिनी जी
श्री मौजीराम जी	श्री स्वच्छन्दा जी
श्री हरिभजन दास जी	श्री हरिलता जी
श्री कृपाराम जी	श्री करुणाअली जी
श्री रतनदास जी	श्री रत्नावली जी
श्री नृपतिदास जी	श्री नीतिलता जी
श्री शंकरदास जी	श्री सुशीला जी
श्री जीवाराम जी	श्री युगलप्रिया जी
श्री युगलानन्यशरण जी	श्री हेमलता जी
श्री जानकीवरशरण जी	श्री प्रीतिलता जी
श्री रामवल्लभाशरण जी	श्री युगलविहारिणी जी
श्री सियालाल शरण जी	श्री प्रेमलता जी

पुरातत्त्वानुसंधायिनी समिति अयोध्या ने संवत् १९७७ में मंत्रराज की परम्परा पर खूब अच्छी तरह जम कर विचार किया था तथा उस समय तक की प्रचलित भिन्न-भिन्न परम्पराओं की आठ सूचियाँ दी हैं।

आजकल के महानुभावों ने जो शुद्धता पूर्वक 'निजगुरु' नामक पुस्तक में परम्परा छपवाई है उसका क्रम इस प्रकार से है—

(१)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री शठकोप जी
५ श्री नाथमुनि जी	६ श्री पुण्डरीकाक्ष जी
७ श्री राममिश्र जी	८ श्री यामुनाचार्य जी
९ श्री महापूर्णाचार्य्य जी	१० श्री रामानुज स्वामी जी
११ श्री गोविन्दाचार्य जी	१२ श्री पराशर भट्ट जी
१३ श्री वेदान्ती जी	१४ श्री कलिवैरी जी
१५ श्री कृष्णपाद जी	१६ श्री लोकाचार्य जी
१७ श्री शैलेश जी	१८ श्री वरवर मुनि जी
१९ श्री पुरुपोत्तमाचार्य जी	२० श्री गंगाधराचार्य जी
२१ श्री सदाचार्य जी	२२ श्री रामेश्वराचार्य जी
२३ श्री द्वारानन्द जी	२४ श्री देवानन्द जी
२५ श्री श्यामानन्द जी	२६ श्री श्रुतानन्द जी
२७ श्री चिदानन्द जी	२८ श्री पूर्णानन्द जी
२९ श्री श्रियानन्द जी	३० श्री हर्यानन्द जी
३१ श्री राघवानन्द जी	३२ श्री रामानन्द जी
३३ श्री अनन्तानन्द जी	३४ श्री कृष्णदास पयहारी जी
३५ श्री अग्रदास जी इत्यादि।	

डाक्टर ग्रियर्सन की एक सूची का अनुवाद इण्डियन प्रेस इलाहाबाद में छपे हुए रामायण में छपा है, वह इस प्रकार है—

(२)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी
३ श्री श्रीधर मुनि	४ श्री सेनापति मुनि
५ श्री कर्मसूनु मुनि	६ श्री सैन्यनाथ मुनि
७ श्री श्रीनाथ मुनि	८ श्री पुण्डरीक
९ श्री राम मिश्र	१० श्री परांकुश
११ श्री यामुनाचार्य	१२ श्री रामानुज स्वामी
१३ श्री शठकोपाचार्य	१४ श्री कूरेशाचार्य
१५ श्री लोकाचार्य	१६ श्री पराशराचार्य

१७ श्री वाकाचार्य
१८ श्री लोकाचार्य
१९ श्री देवाधिपाचार्य
२० श्री शैलेशाचार्य (लोकाचार्य) ?
२१ श्री पुरुषोत्तमाचार्य
२२ श्री गंगाधरानन्द
२३ श्री रामेश्वरानन्द
२४ श्री द्वारानन्द
२५ श्री देवानन्द
२६ श्री श्यामानन्द
२७ श्री श्रुतानन्द
२८ श्री नित्यानन्द
२९ श्री पूर्णानन्द
३० श्री हर्यानन्द
३१ श्री श्रियानन्द
३२ श्री हरिवर्यानन्द
३३ श्री राघवानन्द
३४ श्री रामानन्द
३५ श्री सुरसुरानन्द
३६ श्री माधवानन्द
३७ श्री गरीवानन्द
३८ श्री लक्ष्मीदास

(३)

उक्त डाक्टर साहेब को एक और सूची पटना से मिली है वह प्रायः इसके समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नहीं दी है और कहीं-कहीं नामों में कुछ अन्तर है तथा कोई-कोई नाम नहीं है जैसे नं० १३, १५ का नाम ही नहीं है। नं० १७ श्री वाकाचार्य के स्थान पर श्री मद्यतीन्द्राचार्य है। नं० २३ श्री रामेश्वरानन्द के स्थान पर श्री राममिश्र, नं० २७ श्री गरीवानन्द के स्थान पर श्री गरीब दास है। नं० ३१ का नाम नहीं है।

एक सूची श्री तपसी जी की छावनी अयोध्या से प्राचीन हस्तलिखित मिली है। वह इस प्रकार है—

(४)

अथ[१] प्रनावलि लिख्यते। प्रथम ब्रह्म, ब्रह्म के मूल, मूल के प्रकृति, प्रकृति के बीज ओंकार, बीज ओंकार के महातत्व महातत्व के आदिमूल नारायण आदिमूल नारायण के महालक्ष्मी महालक्ष्मी के ईक्षारूप ईक्षास्वरूप के विश्वकर्ण, विश्वकरण के उज्जासमुनि, उज्जासमुनि के जोतिमुनि, जोतिमुनि के लोकमुनि, लोकमुनि के प्रगटमुनि, प्रगटमुनि के गंभीर मुनि, गंभीर मुनि के दीर्घमुनि, दीर्घमुनि के अचलमुनि, अचलमुनि के प्रकाशमुनि, प्रकाशमुनि के नारदमुनि के कोष्ठमुनि, कोष्ठमुनि के कृपालमुनि, कृपालमुनि के गोपालमुनि, गोपालमुनि के वैराग्यमुनि, वैराग्यमुनि के त्यागमुनि, त्यागमुनि के श्रोत्रानन्द, श्रोत्रानन्द के अच्युतानन्द, अच्युतानन्द के पूर्णानन्द, पूर्णानन्द के दयानन्द, दयानन्द के श्रियानन्द, श्रियानन्द के हरियानन्द, हरियानन्द के राघवानन्द, राघवानंद के श्री स्वामी रामानन्द स्वामी रामानन्द के अनन्तानन्द, अनन्तानन्द के कृष्णदास जी कृष्णदास पयहारी जी के स्वामी अग्रदास जी इत्यादि।

---

१ शुद्धाशुद्ध जैसा लिखा था वैसी ही नकल कर दी गई है।

(५)

जन्मस्थान के श्रीयुत रघुवरशरण जी ने 'रहस्यत्र' में जो परम्परा लिखी है, वह इस प्रकार है—

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री वोपदेव जी
५ श्री शठकोप जी	६ श्री नाथमुनि
७ श्री पुण्डरीकाक्ष	८ श्री राममिश्र जी
९ श्री यामुन मुनि	१० श्री परांकंश जी के ५ शिष्य
११ श्रुतदेव, श्रुतप्राज्ञ, श्रुतधामा, श्रुतोदधि पंचम श्री रामानुज स्वामी	१२ श्री कूरेश जी
१३ श्री पराशर भट्ट जी	१४ श्री लोकाचार्य
१५ श्री देवाधिपाचार्य	१६ श्री शैलेश जी
१७ श्री वरवर मुनि	१८ श्री पुरुषोत्तम जी
१९ श्री गंगाधर जी	२० श्री सदाचार्य्य जी
२१ श्री रामेश्वर जी	२२ श्री द्वारानन्द जी
२३ श्री देवानन्द जी	२४ श्री श्यामानन्द जी
२५ श्री श्रुतानन्द जी	२६ श्री चिदानन्द जी
२७ श्री पूर्णानन्द जी	२८ श्री श्रियानन्द जी
२९ श्री हर्यानन्द जी	३० श्री राघवानन्द जी
३१ श्री रामानन्द जी	

उपरोक्त परम्परा श्लोकबद्ध है। इसको कितने ही विद्वान् मानते हैं। परन्तु इसकी व्यवस्था इस तरह की है कि श्रीनारायण से लेकर वरवर मुनि तक जो परम्परा गद्दीस्थ आचारी लोगों के पास है, उसमें श्री वोपदेव जी का नामोनिशान नहीं है। नहीं मालूम इसमें वोपदेव जी कैसे लिखे गये। और महापूर्णाचार्य के शिष्य श्री रामानुज स्वामी प्रख्यात है तो इसमें परांकुश दास जी के शिष्य दूसरे चार श्रुतदेव, श्रुतप्रज्ञ इत्यादि पंचम शिष्य श्री रामानुज स्वामी कैसे लिखे गये। और श्री रामानन्द स्वामी जी के पीछे ७१ वर्ष के बाद श्री वरवर मुनि का जन्म है। सो वरवर मुनि श्री रामानन्द स्वामी के पूर्व १४ वीं पीढ़ी के गुरु कैसे लिखे गये हैं। इस पर विद्वानों को विचारना चाहिए।

वोपदेव जी को छोड़कर इस तरह की परम्परा 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' में भी लिखी है।

(६)

भाटों के पास जो परम्परा है उसकी नकल इस प्रकार प्राप्त हुई है—

१ श्री आदिसून
२ श्री महासुन
३ श्री निर्गुण
४ श्री निराकार
५ श्री बीजओंकार
६ श्री आदि मूलनारायण
७ श्री महालक्ष्मी
८ श्री विष्वक्सेन
९ श्री ईक्षास्वरूप
१० श्री उजासमुनि
११ श्री जोतमुनि
१२ श्री लोकमुनि
१३ श्री प्रगट मुनि
१४ श्री गम्भीरमुनि
१५ श्री धीरजमुनि
१६ श्री प्रलोकसमुनि
१७ श्री पुहुपदेव मुनि
१८ श्री रामेमुनि
१९ श्री महापुरना मुनि
२० श्री विद्याधर मुनि
२१ श्री सरवन मुनि
२२ श्री जज्ञासमुनि
२३ श्री रामानुज मुनि
२४ श्री सूर्य्यप्रकाश मुनि
२५ श्री सूतधाम मुनि
२६ श्री सूतपीपा मुनि
२७ श्री मंगल मुनि
२८ श्री श्रेष्ठगोप मुनि
३० श्री पद्मविलोचन

इति मुनि पदवी समाप्त।

३१ श्री पद्माचार्य्य	१	३२ श्री कदमाचार्य्य	२
३३ श्री देवाचार्य्य	३	३४ श्री दीपाचार्य्य	४
३५ श्री ऋषियाचार्य्य	५	३६ श्री वंशीधराचार्य्य	५
३७ श्री कृपालचार्य्य	७	३८ श्री सुखाचार्य्य	८
३९ श्री विषनाचार्य्य	९	४० श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य	१०
४१ श्री नरोत्तमाचार्य्य	११	४२ श्री श्यामाचार्य्य	१२
४३ श्री पूर्णाचार्य्य	१३	४४ श्री गंगाधराचार्य्य	१४
४५ श्री धराचार्य्य	१५		

इति आचार्य्य पदवी समाप्त।

४६ श्री दोयानन्द	१	४७ श्री देवानन्द	२
४८ श्री सेवानन्द	३	४९ श्री सुसेतानन्द	४
५० श्री अचेतानन्द	५	५१ श्री श्यामानन्द	६
५२ श्री पूर्णानन्द	७		

५३	श्री दरियानन्द	८	५४	श्री सीयानन्द	९
५५	श्री हरियानन्द	१०	५६	श्री राघवानन्द	११
५७	श्री रामानन्द	१२	५८	श्री अनन्तानन्द	१३

इति नन्द पदवी समाप्त।

५९	श्री पैहारी कृष्णदास जी	१	६०	श्री अग्रदास जी	२

(७)

मौजे सतमलपुर, पो० समस्तीपुर जिला दरभंगा के रहनेवाले श्री रसिकविहारी शरण जी ने अपने 'मन्त्रराज परम्परा' नामक ग्रन्थ में लिखकर परम्परा का निर्देश किया है। पुस्तक छपी है जो देखना चाहे मंगाकर देख लें। वह उपर्युक्त पाचों प्रकार की परम्परा से विलक्षण है। क्योंकि उसमें लिखा है कि श्री रामजी ने मन्त्रराज को श्री जानकी जी को दिया। उन्होंने महाशम्भु जी को दिया। महाशम्भु जी ने विष्णु जी को दिया इत्यादि।

इस प्रकार से हमारे सम्मुख ७ प्रकार की परम्परा-सूचियाँ उपस्थित हैं। इनमें जितनी भिन्नता या भेद है, उसे देखा जा सकता है।

इस परम्परा से यह बात मालूम होती है कि श्रीरामानन्द स्वामी जी महाराज श्री रामानुज स्वामी के परिवार में से नहीं हैं।

यह परम्परा श्रीमन्नारायण से शुरू नहीं होती है; किन्तु श्रीराम जी से इसका आरम्भ होता है। जैसे कि—

(८)

१	सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी महाराज	२	श्री जानकी जी
३	श्री हनुमान जी	४	श्री ब्रह्मा जी
५	श्री वशिष्ठ जी	६	श्री पराशर जी
७	श्री व्यास जी	८	श्री शुकदेव जी
९	श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य जी	१०	श्री गंगाधराचार्य जी
११	श्री सदाचार्य जी	१२	श्री रामेश्वराचार्य जी
१३	श्री द्वारानंद जी	१४	श्री देवानंद जी
१५	श्री श्यामानन्द जी	१६	श्री श्रुतानन्द जी
१७	श्री चिदानन्द जी	१८	श्री पूर्णानन्द जी
१९	श्री श्रियानन्द जी	२०	श्री हर्य्यानन्द जी
२१	श्री राघवानन्द जी	२२	श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज

श्री राम जी से श्री रामानन्द जी के मन्त्रराज आता है। इस अग्रस्वामी जी की परम्परा का मेल सदाशिव संहिता के इस श्लोक से भली भाँति मिल जाता है—

राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम्।

अर्थात् श्री राम जी द्वारा कथित इस राममन्त्र को श्री जानकी जी ने प्रख्यात किया। इसको तुम राजमार्ग जानो। इसके अतिरिक्त एक बात और है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' इस निरुक्त वचन के अनुसार ऋषि वह होता है जो मन्त्र के अर्थ पर विचार और प्रचार करता है। राममन्त्र का ऋषि जानकी लिखा हुआ है। 'हारीत स्मृति' में भी लिखा है कि "ऊँ अस्य श्रीरामषडक्षर मन्त्रराजस्य श्री जानकी ऋषिः।" ऐसे ही समस्त पटलों में भी छपा हुआ है। इससे भी विदित होता है कि श्री की भी श्री परात्परा शक्ति श्री जानकी जी को ही श्रीरामजी से इन मन्त्रराज का उपदेश प्राप्त हुआ है।

इस परम्परा में आगे चलकर लिखा है कि श्रीजानकी जी ने श्री हनुमान जी को उपदेश दिया।

और 'श्रीरामविजय सुधाकर' में हमारे पूर्वाचार्य्य श्री मधुराचार्य्य जी लिख गये हैं—'सीता-शिष्यं गुरोर्गुरुम्।' इससे स्पष्ट हो गया कि श्रीहनुमान् जी श्रीजानकी जी के शिष्य हैं।

पुनः श्री हनुमान् जी ने श्रीराममंत्र का उपदेश ब्रह्मा जी को दिया। प्रमाण 'सदाशिव संहिता—'

योऽयं महाविभूतिस्थो हनुमान् रामतत्परः।
सऽप्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मंत्रराजं षडक्षरम्॥

पुनः अथर्वण—'श्री रामतापनी' का प्रमाण—

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥

अर्थात् श्रीराम जी शिव जी से कहते हैं कि हे शंकर! हमारी नित्य विभूति से पहले तुमको तथा ब्रह्मा को हमारा मंत्र प्राप्त हुआ। अतएव तुम्हारी तथा ब्रह्मा की दो राममंत्र की परम्परा पृथ्वीतल में प्रचारित हुई है। जो कोई इन दोनों परम्पराओं में से किसी में भी दीक्षित होकर राममंत्र का अभ्यास करेगा वह जीते जी सिद्धि को प्राप्त होकर संसार समुद्र से तर जायगा।

अनन्तर ब्रह्मा, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, शुकदेव द्वारा क्रमशः इस भूलोक में मंत्रराज का प्रचार हुआ। प्रमाण, 'अगस्त्य संहिता'—

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः।
वशिष्ठोपि स्वपौत्राय दत्तवान्मंत्रमुत्तमम्॥
पराशराव रामस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
स वेदव्यास मुनये ददावित्थं गुरुक्रमः॥
वेदव्यास मुखेनात्र मंत्रौ भूमौ प्रकाशितः।
वेदव्यासो महातेजाः शिष्येभ्यः समुपादिशत॥

११ श्री सदाचार्य
१२ श्री सोमेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानन्दाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानन्दाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्री श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्री जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री योगानन्द जी
२४ श्री मयानन्द जी
२५ श्री तुलसीदास भागवती जी
२६ श्री नयनूराम जी
२७ श्रीखाम चौगानी जी
२८ श्री उधोमयदानी जी
२९ श्री खेमदास जी
३० श्री रामदास जी
३१ श्री लक्ष्मणदास जी
३२ श्री देवादास जी
३३ श्री भगवानदास जी
३४ श्री बालकृष्णदास जी
३५ श्री वेणीदास जी
३६ श्री श्रवणदास जी
३७ श्री रामवचनदास जी
३८ श्री रामवल्लभाशरण जी।

श्री 'विश्वंभरोपनिषद्' की टीका (पं० श्री सरयूदास जी कृत) में गुरु-परम्परा इस प्रकार है---

१ श्री रामजी महाराज
२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान् जी
४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ट जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव कुी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
१० श्री गंगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी
१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानन्द जी
१४ श्री देवानन्द जी
१५ श्री श्यामानन्द जी
१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी
१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी
२० श्री हरियानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी
२२ श्री रामानन्द जी
२३ श्री अनन्तानन्द जी
२४ श्री गैंसदास जी
२५ श्री खेमदास जी
२६ श्री पूर्णवैराठी (बैरागी) जी
२७ श्री गुजारदास जी
२८ श्री कृष्णदास जी
२९ श्री गोपालदास जी
३० श्री दामोदरदास जी
३१ श्री लक्ष्मीदास जी
३२ श्री आनन्दराम जी

३३ श्री तुलसीदास जी
३४ श्री विष्णुदास जी
३५ श्री हरिभजनदास जी
३६ श्री महादास जी निर्वाणी
३७ श्री अयोध्यादास जी
३८ श्री जानकीदास जी
३९ श्री मणिरामदास जी
४० श्री सरयूदास जी

श्री 'सीतोपनिपद्' में स्वामी श्रीरामानन्द जी तक की गुरु-परंपरा इस प्रकार है—

१ सर्वेश्वर श्रीसीता रामचन्द्र जी महाराज
२ श्री हनुमान जी
३ श्री ब्रह्मा जी
४ श्री वशिष्ट जी
५ श्री पराशर जी
६ श्री व्यास जी
७ श्री शुकदेव जी
८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
९ श्री गंगाधराचार्य जी
१० श्री सदाचार्य जी
११ श्री रामेश्वराचार्य जी
१२ श्री द्वारकानन्द जी
१३ श्री देवानन्द जी
१४ श्री श्यामानन्द जी
१५ श्री श्रुतानन्द जी
१६ श्री चिदानन्द जी
१७ श्री पूर्णानन्द जी
१८ श्री श्रियानन्द जी
१९ श्री हर्यानन्द जी
२० श्री राघवानन्द जी
२१ श्री श्री रामानन्द स्वामी जी महाराज

श्री स्वामी रामचरणदास जी 'करुणासिंधु' के 'श्री रामनवरत्न सार संग्रह' में गुरु-परम्परा का प्रकरण इस प्रकार है—

१ श्री राम जी
२ श्री सीताजी
३ श्री हनुमान जी
४ श्री ब्रह्मदेव जी
५ श्री वसिष्ठ जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य
१० श्री गंगाधराचार्य
११ श्री सदाचार्य
१२ श्री रामेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानंदाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानंदाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्रीजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री अनंतानंदाचार्य
२४ श्री कृष्णाचार्य
२५ श्री अग्रस्वामी जी
२६ श्री रामभगवान जी
२७ श्री लक्ष्मणदास जी
२८ श्री मस्तराम जी

२९ श्री लक्ष्मीराम	३० श्री नन्दलाल जी
३१ श्री चरणदास जी	३२ श्री हरिदास जी
३३ श्री रामप्रसाद जी दीनबन्धु	३५ श्री रघुनाथ प्रसाद जी
३५ श्री रामचरणजी करुणा सिन्धु	३६ श्री सीताराम सेवक जी
३७ श्री जानकीवरशरण जी	३८ श्री लक्ष्मणशरण जी

श्री मथुरादास जी महाराज ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कल्याण कल्पद्रुम' में गुरुपरम्परा श्लोक-बद्ध दी है, जो इस प्रकार है—

परधाम्नि स्थितोरामः पुण्डरीकायतेक्षणः।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ॥१॥
श्रियः श्रीरपिलोकानां दुःखोद्धरणहेतवे।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामांघ्रिसेविने॥२॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो हनुमानेन मायया।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम्॥४॥
मन्त्रराज जपं कृत्वा धाता निर्मातृतांगतः।
त्रयोसारमिमं धातुर्वशिष्ठो लब्धावान्परम्॥५॥
पराशरो वशिष्ठाश्च मुद्रा संस्कार संयुतम्।
मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह॥६॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवती सुतः।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपवृंहणम्॥७॥
व्यासोऽपि बहु शिष्येषु मन्वानो शुभ योग्यताम्।
परमहं सवर्याय शुकदेवाय दत्तवान्॥८॥
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः।
नरोत्तमस्तु[1] तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः॥९॥
स चापि परमाचार्य्यो गंगाधराय सूरये।
मन्त्राणां परमं तत्वं राममत्रं प्रदत्तवान्॥१०॥
गंगाधरात्सदाचार्य्यस्ततो रामेश्वरो यतिः।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽ भवत्॥११॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत्।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽ भवत्॥१२॥

---

१ इनका दूसरा नाम है श्रीस्वामी १०८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्यजी।

पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान्।
हय्र्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवकः ॥१३॥
हय्र्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्दः स्वयं हरिः ॥१४॥
रामानन्दस्य सर्वज्ञ शिरोरत्नस्य धीमतः।
अनन्तानन्द इत्याख्यः सच्छिष्यः सद्गुणाश्रयः ॥१५॥
अनन्तानन्दमाचार्य्यं गयादास उपेत्य च।
मन्त्ररत्नं समादाय लक्ष्मीदासाय दत्तवान् ॥१६॥
श्रीमन्माधवदासस्तु तस्माल्लेभे षड्क्षरम्।
द्वारः प्रवर्तकः खोजी ततो मन्त्रं गृहीतवान् ॥१७॥
दत्तवान् क्षेमदासाय श्री खोजीजी महामुनिः।
श्रीनारायणदासश्च ततः प्राप्त षडक्षरम् ॥१८॥
भक्तराजो महाधीमान् श्रीमन्त्रं करुणालयः।
ददौ नृसिंहदासाय रामदासाय सोपि च ॥१९॥
हरिदासस्ततो लब्ध्वा कृपारामाय धीमते।
मन्त्ररत्नं पर प्रेम्णा दत्तवान् करुणानिधिः॥२०॥
स च श्रीकृष्णदासाय महामन्त्रं प्रदत्तवान्।
श्रीमत्सन्तोषदासस्तु ततो लेभे हि तं मनुम्॥२१॥
ततो रघुनाथदासः पूर्णदासस्ततस्तुतम्।
प्रगृह्य ब्रह्मदासाय प्रददौ काष्ठधारिणे ॥२२॥
स च भगवान्दासाय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्।
रामगलोलादासाय स ददौ करुणानिधिः ॥२३॥
स श्रीनृसिंहदासाय कमल्दासाय सो पि च।
दत्तवान्मत्ररत्नं तत्सर्वजीव हिऽतावहम्॥२४॥
श्री मान्वज्रांगदासस्तु तदीय परिचर्य्यया।
राममन्त्रमुपादाय कार्तार्थ्यं समुपेयिवान् ॥२५॥
यः पठेच्छ्रद्धयानित्यं पूर्वाचार्य्यपरम्पराम्।
मन्त्रराज रतिं प्राप्य सद्यो रामपदं व्रजेत ॥२६॥

श्री कान्तशरण ने 'प्रपत्तिरहस्य' में श्री अग्रस्वामी की दी हुई परंपरा का उल्लेख करते हुए उसे अद्यतन रूप दिया है जो इस प्रकार है—

रामानन्दमहं वन्दे वेद-वेदान्त-पारगम्।
राम-मंत्रप्रदातारं सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥

शुभासने समासीनमनन्तानन्दमच्युतम् ।
कृष्णदासो नमस्कृत्य पप्रच्छ गुरुसन्ततिम् ॥२॥

कृष्णदास उवाच—

भगवन् यमिनां श्रेष्ठ प्रपन्नोऽस्मि दयां कुरु ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं सर्वां पूर्वेषां सत्परम्पराम् ॥३॥
मन्त्रराजश्च केनादौ प्रोक्तः कस्मै पुरा विभो ।
कथं च भुवि विख्यातो मन्त्रो यं मोक्षदायकः ॥४॥
कृष्णदासवचः श्रुत्वा ऽनन्तानन्दो दयानिधिः।
उवाच श्रूयतां सौम्य वक्ष्यामि तद्यथाक्रमम् ॥५॥
परधाम्निस्थितो रामः पुण्डरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्ठो जानक्यै तारकं ददौ ॥६॥
श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्रं सदा रामांघ्रिसेविने ॥७॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥८॥
मन्त्रराजजपं कृत्वा धाता निर्मातृतां गतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्वसिष्ठो लब्धवान्परम् ॥९॥
पराशरो वसिष्ठाश्च मुद्रासंस्कार-संयुतम् ।
मन्त्रराजं परं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥१०॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृहणम् ॥११॥
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्वानः शुभयोग्यताम् ।
परमहंसवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥१२॥
शुकदेव-कृपापात्रो ब्रह्मचर्यव्रतेस्थितः ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ॥१३॥
स चापि परमाचार्यो गंगाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्वं राममन्त्रप्रशास्तवान् ॥१४॥
गंगाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वरानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽभवत् ॥१५॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽभवत् ॥१६॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दांघ्रिसेवकः ॥१७॥

हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्दः स्वयं हरिः॥१८॥

यहां तक की परम्परा श्री अग्रस्वामि कृत श्लोकबद्ध है। इसके आगे कई शाखाएँ हुई हैं उनमें मैं अपनी परम्परा आगे लिखते हैं—

तस्मात्सुरसुराख्यस्तु ततो माधवसंज्ञकः।
गरीवाख्यस्ततः प्राप्तो लक्ष्मीदासस्ततः परम्॥१९॥
तस्माद्गोपालदासस्तु नरहरिदासस्ततः।
श्री मान्केवलरामश्च ततः प्राप्त पञ्चक्षरः॥२०॥[1]
श्री दामोदरदासाख्यः शिष्यस्तस्य महामतेः।
साधुसेवी दयायुक्त सदाचारेषु निष्ठितः॥२१॥
तस्माद् हृदयरामस्तु विरक्तश्च गुणालयः।
कृपारामोपि वै तस्माद्रत्नदासस्ततो ऽभवत्॥२२॥
तस्मान्नृपतिदासस्तु रामभक्तो नसूयकः।
तस्माच्छंकरदासो हि राम-नाम-प्रकाशकः॥२३॥
तस्माज्जातो महाराजो जीवारामेतिसंज्ञकः।
शुभस्थाने चिराणाख्ये राजत रसिकाग्रणी॥२४॥
तस्य सम्बन्ध सम्भूत महाराजः प्रतापवान्।
साकेताख्य पुरे रम्ये विरराज महाप्रभुः॥२५॥
सीतारामौ प्रददतुः तस्य नाम विलक्षणम्।
युगलानन्यशरणाख्यं विदितं पृथिवीतले॥२६॥
तस्यानन्तकल्याणगुणाख्यातो विलक्षणः।
स्वभावं तस्य सौशील्यं कारुण्यं कट्वर्जितम्॥२७॥
सौन्दर्यं तस्य लावण्यं माधुर्य रसवर्द्धनम्।
तस्मिन्नेव प्रकाशन्ते यथा सीतापते गुणाः॥२८॥

---

१ श्री केवल राम (कूवा)जी का जन्म सं० १५४५ में हुआ है। उन्होंने १८० वर्ष तक की आयु प्राप्त कर जीवों का उद्धार किया है। सं० १७२५ में उनकी परधाम यात्रा हुई है। उनकी शुभ जीवनी उनके समकालीन गुरुभाई श्री रघुनाथदास जी ने उत्तम रीतिसे संस्कृत में लिखी है। उसके बीच बीच में दोहे भी हैं। उसमें श्री नरहरिदासजी के प्रथम शिष्य श्री केवल राम (कूवा)जी हैं और द्वितीय शिष्य श्री गोस्वामी तुलसीदासजी लिखे गए हैं, तथा—'द्वितीये नरहरिदास के, भये जो तुलसीदास। रामायण शुचि ग्रंथ रचि, जग में कियो प्रकास।' उक्त जीवनी 'फीथड़ा' गादी में वर्तमान है, जिन्हें विशेष जानना हो, वें उसे देखें।

प्रवक्तुं नाप्यलं कोऽपि तस्य महात्म्यमुत्तमम्।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः २९॥
तस्य शिष्यो महाप्राज्ञो रसिकः सर्वधर्मवित्।
जानकीवरशरणः प्रख्यातो जगतीतले ॥३०॥
सदा गुरुपदेशेषु नैष्ठिको बहुसाधुषु।
वक्ता बृहस्पतिः साक्षात्सहिष्णुत्वे मही समः ॥३१॥
सीतारामरसानां च वर्द्धको भेददायकः।
छेदकः संशयानां च रसराजप्रवर्द्धकः ॥३२॥
दयितः सर्वभूतानां राममन्त्रप्रदायकः।
गुरुवाक्यस्य तत्वज्ञः वासः श्रीसरयूतटे ॥३३॥
लक्ष्मरणाख्यप्रकोटे तु सीतारामस्य सन्निधौ।
गुरुसन्निकटे तत्र क्षेत्रवासे च सुष्टुधीः ॥३४॥
तस्य शिष्यो गुर्रुनिष्ठ कविः काव्यविशारदः।
नाम श्री रामवल्लभाशरणो रामसेवकः ॥३५॥
सद्गुरुसदने रम्ये शोभिते सरयूतटे।
तस्मिन्वसनि वै धीरो गान-विद्या-विचक्षणः ॥३६॥
तस्य शिष्यः समीपस्थः श्रीकान्तशरणो लघुः।
श्री सद्गुरुकुटीरस्थो रामनाम-परायणः ॥३७॥
सीतानाथसमारम्भा रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥३८॥

अर्थात् प्रथम श्रीरामजी ने श्री जानकी जी को षडक्षर मन्त्रराज प्रदान किया है, फिर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को दिया है—ऐसा ही क्रम जानना चाहिए—

१ अनन्त श्री राम जी	२ अनन्त श्री जानकी जी
३ ,, श्री हनूमान जी	४ ,, श्री ब्रह्मा जी
५ ,, श्री वसिष्ठ जी	६ ,, श्री पराशर जी
७ ,, श्री व्यास जी	८ ,, श्री शुकदेव जी
९ ,, श्री पुरुषोत्तमाचार्य	१० ,, श्री गंगाधराचार्य जी
११ ,, श्री सदाचार्य जी	१२ ,, श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ ,, श्री द्वारानन्द जी	१४ ,, श्री देवानन्द जी
१५ ,, श्री श्यामानन्द जी	१६ ,, श्री श्रुतानन्द जी
१७ ,, श्री चिदानन्द जी	१८ ,, श्री पूर्णानन्द जी
१९ ,, श्री श्रियानन्द जी	२० ,, श्री हर्यानंद जी

२१	,, श्री राघवानन्द ची	२२	,, श्री स्वामी रामानन्द जी
२३	,, श्री सुरसुरानन्द जी	२४	,, श्री माधवानन्द जी
२५	,, श्री गरीबानन्द जी	२६	,, श्री लक्ष्मीदास जी
२७	,, श्री गोपालदास जी	२८	,, श्री नरहरिदास जी
२९	,, श्री केवलराम कूबा जी	३०	,, श्री दामोदरदास जी
३१	,, श्री हृदयराम जी	३२	,, श्री कृपाराम जी
३३	,, श्री रत्नदास जी	३४	,, श्री नृपति दास जी
३५	,, श्री शंकरदास जी	३६	,, श्री जीवाराम जी (युगलप्रिय शरण जी)
३७	,, श्री युगलानन्यशरण जी	३८	,, श्री जानकीवर शरण जी
३९	,, श्री रामवल्लभाशरण जी	४०	,, श्री कान्तशरण जी

श्री रूपकला जी (श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) ने श्री भक्तमाल के 'भक्ति सुधा स्वाद तिलक' में अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—

१ श्री सीताराम जी	२ श्री हनुमंत जी
३ श्री राघवानन्दाचार्य स्वामीजी	४ श्री भगवान् रामानन्द जी
५ श्री भगवान् रामानन्द जी	६ श्री सुरसुरानन्द जी
७ श्री बलियानन्द जी	८ श्री सेउरिया स्वामी जी
९ श्री बिहारीदास जी	१० श्री रामदास जी
११ श्री बिनोदानन्द जी	१२ श्री धरनीदास जी
१३ श्री करुणानिधान जी	१४ श्री केवल राम जी
१५ श्री रामप्रसादीदास जी	१६ श्री रामसेवकदास जी परसा
१७ स्वामी श्री रामचरणदास जी 'करुणासिंधु'	१८ श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी

इस परम्परा में चौथा और पांचवां दोनों ही नाम भगवान् रामानन्द जी का है। यह कहना कठिन है कि यह दो व्यक्तियों के सम्बन्ध में है या भूल से एक ही व्यक्ति के दो बार नाम आ गया है। जो हो श्री रूपकला जी की गुरु-परम्परा से तथा श्री प्रेमलता जी की गुरु-परम्परा से रसिक सम्प्रदाय के प्रायः सभी रामोपासकों का परिचय मिल जाता है।

परन्तु इस रस साधना की एक प्रमुख धारा छूटी ही जा रही है जिसकी परम्परा का ज्ञान परमावश्यक है और वह है जयपुर में गालवाश्रम (गलता गद्दी) की परम्परा। रामोपासक रसिक सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि स्वामी रामानन्द तो इस भाव के उपासक थे ही, उनके पूर्ववर्ती गुरुओं को भी मधुरभाव की साधना प्रिय थी और इस प्रकार वे श्री हनुमान जी से जिनका मधुर भाव का नाम श्री चारुशीला जी है, अपनी परम्परा का आरम्भ मानते हैं। एक बात यहां लक्ष्य

करने की यह है कि गलता (गालवाश्रम) पहले नाथी सिद्धों के हाथ में था उस पर रामानन्दी वैष्णवों के अधिकार होने के बाद मधुर भाव की उपासना अधिक व्यापक हुई है। इस श्रेणी के भक्तों का विश्वास है कि श्री सिद्ध नाभादास जी और उनके गुरु अग्रदास तथा अग्रदास के गुरुभाई श्री कील्ह स्वामी जी मधुर रस के रसिक थे। मधुर रस का रसिक अपने में श्री रामचन्द्र की प्रिया, सखी, श्री जानकी जी की सखी या दासी का अभिमान करता है और या तो श्री जानकी जी के सुख में सुख मानता है या श्री रामचन्द्र जी की प्रीति का पात्र बन कर जीवन धन्य करता है। शृंगार रसाश्रया मधुरभक्ति में भक्त 'कंदर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति' मधुर मनोहर भगवान् रामचन्द्र को पतिरूप में भजता है।[1]

इस भाव के रसिक भक्तों का विश्वास है कि श्री अग्रदास जी इसी भाव के साधक थे। उनका साधना का नाम 'अग्रअली' था। श्री रूपकला जी ने अपने 'भक्तमाल' के 'भक्ति सुधास्वाद तिलक' में बताया है कि श्री अग्रदास जी शृंगार रस के आचार्य श्री 'अग्रअली' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपका 'अष्टयाम', 'ध्यान मंजरी', कुंडलियां, पदावली आपके मधुर भाव को व्यक्त करती हैं।[2]

श्री रूपकला जी के उपर्युक्त तिलक में श्री अग्रस्वामी की गुरु-परम्परा यों है—

भगवान् रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
श्री कृष्णदास जी पयहारी
|
श्री अग्रदेव जी
|
स्वामी श्री नाभादास जी

किम्वदन्ती है कि श्री जानकी जी महारानी ने कृपा कर के श्री अग्रस्वामी को दर्शन दिया और आप अपनी इच्छा से शरीर त्याग कर श्री साकेत को पधारे। अस्तु। श्री अनन्तानन्द जी की पूरी शिष्य-परम्परा मधुरोपासक है। स्वामी श्री हरियानन्द आचार्य भी मधुरोपासक संत थे। श्री युगलप्रिया जी ने अपने 'रसिक भक्तमाल' में आपका परिचय यों दिया है—

> चरण कमल बन्दौं कृपालु हरियानन्द स्वामी।
> सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥
> बालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य रसालय।
> दरसी रहसि 'अनादि' पूर्व रसिकन की चालय॥

---

१ मधुरं मनोहरं रामं पतिसंबंध पूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया॥ —श्री हनुमत्संहिता

२ देखिये भक्तमाल का भक्तिसुधा स्वाद तिलक पृ० ३१२-३१४।

नित सदाचार में रसिकता
अति अद्‌भुत गति जानिये।
जानकिवल्लभ कृपा सहि
शिष प्रतिशिष्य बखानिये।।

ऊपर के पद में 'दशधा अनुगामी' का अर्थ है मधुरोपासक। अभिप्राय यह है कि स्वामी श्री अनन्तानन्द जी की पूरी परम्परा मधुरोपासक है। इसी परम्परा में श्री 'बालअली' हुए, जिनका 'नेह प्रकाश', 'ध्यान मंजरी' आदि ग्रन्थ इस परम्परा के प्रमुख आकर ग्रन्थ के रूप में समादृत हैं। जो हो, मधुर भाव के रामोपासक रसिक भक्तों का दावा है कि स्वामी अग्रदास जी स्वामी कीलदास जी अपने गुरु श्री कृष्णदास पयहारी के समान मधुरोपासक थे। अस्तु।

इस परम्परा के परम प्रभावशाली आचार्य एवं साधक श्री मधुराचार्य जी हुए। कील स्वामी के शिष्य छोटे कृष्णदास जी, कृष्णदास जी के विष्णुदास जी, विष्णुदास जी के नारायण मुनि, नारायण मुनि के हृदय देव और हृदयदेव के शिष्य स्वामी रामप्रपन्न जी या मधुराचार्य जो हुए। रामानन्दीय मधुरासोपासक भक्तों में मधुराचार्य जी का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लगभग वही जो गौड़ीय वैष्णवों में श्री जीव गोस्वामी पाद का है। जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् संदर्भात्मक विशाल भक्ति-ग्रन्थ का निर्माण कर गौड़ीय साधना का दर्शन पक्ष परिपुष्ट किया उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने छः संदर्भों का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिनमें केवल दो ही संदर्भ—(१)श्री सुन्दर मणि संदर्भ तथा(२)श्री वैदिक मणि संदर्भ प्रकाशित हुए हैं। श्री मधुराचार्य जी का लिखा एक और ग्रन्थ 'श्री रामतत्त्व प्रकाश' अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में राम रसिकोपासना को बड़े ही उत्तम ढंग से शास्त्रादि के पुष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया गया है। इसमें श्री राम का परत्व, श्री शुकदेव आदि ऋषियों का श्री रामोपासकत्व तथा श्री सीताराम की नित्य दिव्य लीलाओं का वड़ा ही भव्य एवं मनोहारी वर्णन है। इनके अतिरिक्त आपके लिखे मुख्य ग्रन्थों में 'श्री भगवद्‌गुण-दर्पण' तथा 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' का इस सम्प्रदाय में विशेष सम्मान है। श्री मधुराचार्य जी के ग्रन्थों का रसिकोपासना में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे आकर ग्रन्थ की भाँति पूजे जाते हैं तथा प्रमाण में प्रस्तुत किये जाते हैं।

जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने अपने पक्ष के स्थापन के लिए श्रीमद्‌भागवत का आधार लिया है, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य अपने पक्ष के स्थापन के लिए वाल्मीकीय रामायण का आधार लिया है। भले ही, अनेक स्थलों पर इनकी व्याख्या से आज का सुधी-समाज सहमत न हो; परन्तु श्री मधुराचार्य ने अपने पांडित्य एवं तर्क के बल पर अपने मत का जो स्थापन किया है, वह साहित्य और दर्शन के विद्यार्थी के लिए अनुशीलन की वस्तु है; क्योंकि इन ग्रन्थों ने परवर्ती 'रसिक' भक्तों को बहुत प्रेरणा दी है। 'श्री सुंदर मणि संदर्भ' की भूमिका में श्री पुरुषोत्तम शरण जी ने श्री मधुराचार्य जी की जो परम्परा दी है, वह इस प्रकार है—

माधुर्य रसमूर्ति श्री राम जी
|
आदि शक्ति श्री जानकी जी
|
अनन्य सेवी श्री हनुमान जी
|
श्री ब्रह्मा जी
|
श्री वसिष्ठ जी
|
श्री पराशर जी
|
श्री व्यास जी
|
श्री शुकदेव जी
|
श्री पुरुषोत्तमाचार्य
|
श्री गंगाधराचार्य
|
यती श्री रामेश्वराचार्य
|
श्री द्वारानन्द जी
|
श्री देवानन्द जी
|
श्री श्यामानन्द जी
|
श्री श्रुतानन्द जी
|
श्री चिदानन्द जी
|
श्री पूर्णानन्द जी
|
श्री श्रियानन्द जी
|
श्री हर्यानन्द जी
|
स्वामी श्री रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
पयहारी श्रीकृष्णदास जी महाराज

(१) श्री कीलस्वामी
|
छोटे श्री कृष्णदास
|
श्री विष्णुदास
|
रसिकेन्द्र श्री नारायण श्रमुनीन्द्र
|
श्री हृदय देव स्वामी
|
मधुर रस विजयशिरोमणि श्री मधुराचार्य जी महाराज

(२) श्री अग्रस्वामी
|
श्री नाभा स्वामी
|
श्री प्रियादास

श्री मधुराचार्य जी के सम्बन्ध में चिरान के महन्त श्री जीवाराम जी (श्री युगल प्रिया) ने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में लिखा है—

मधुराचारज मधुर सरस शृंगार उपासी।
रंगमहल रसकेलि कुंज मानसी खवासी॥
निमिकुल जन्य उदार सुखद संबंध प्रतापी।
पहारी रसिकेन्द्र कृपमाधुर्य अयापी॥
द्वादस वार्षिक रास रस लीला करि बहु सुख दिये।
विपुल ग्रन्थ रच रसिकता राम रास पद्धति किये॥

कहते हैं, आपने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की एक लाख श्लोकों में मधुरसाश्रयी टीका लिखी थी, जो अब अप्राप्य ही है। आपने बारह वर्ष तक श्री रामरासोत्सव का संकल्प किया और स्वयं उसमें दिव्य अली रूप में भली भाँति श्री ललीलाल जू का लाड़ लड़ाया। श्री अग्र-स्वामी की शृंगार रस पर एक कुंडलिया है जो इस रस के उपासकों के गले का हार है और जिसमें इस रस की महिमा और मर्यादा का वर्णन है, जो इस प्रकार है—

रस शृंगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि सोइ अधिकारी जग में॥
कंचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन में।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनंदा॥
नहिं अग्र सम संत के सरलायक जग माहि।
रस शृंगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि॥

इस तरह ऐतिहासिक कालक्रम से देखने पर पता चलता है कि सोलहवीं सदी से रामो-पासना में मधुर भाव की विवृत्ति स्पष्ट रूप में मिलने लगती है। इसके पूर्व का साहित्य अभी उपलब्ध नहीं है। इस सम्प्रदाय को विद्वानों की घोर उपेक्षा अथवा तिरस्कार का शिकार होना पड़ा है और यही कारण है कि इसका बहुत-कुछ विकृत रूप ही हमारे सामने आया है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि इस साधना का स्वस्थ सबल एवं सुग्राह्य रूप है ही नहीं। इसका साहित्य अपने-आप-में सर्वथा सम्पन्न एवं अनुभव तथा प्रतिभा के प्रकाश से पूर्ण है। इस रसिक संप्रदाय की साधना और पंच संस्कार का प्रसंग हम यथास्थान प्रस्तुत करेंगे। यहाँ प्रसंगतः इतना संकेत से लिखना आवश्यक है कि—

१—इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' है।
२—श्री लक्ष्मी जी आचार्य हैं
३—श्री हनुमान जी देवता हैं

४—श्री विश्वामित्र जी ऋषि हैं
५—श्री रामेश्वर जी धाम है
६—श्री अयोध्या जी धर्मशाला है
७—श्री चित्रकूट सुख विलास है
८—श्री रामानन्दी वैष्णव है
९—श्री दिगम्बर अखाड़ा है
१०—श्री कूवा जी का द्वारा है
११—श्री सीता जी इष्ट हैं
१२—मुख्य रस शृंगार है
१३—अनन्त शाखा है
१४—उर्ध्वपुण्ड्र तिलक है
१५—श्री धनुष क्षेत्र है
१६—श्री गुरुद्वारा अयोध्या जी है।[१]

अब हम अगले दो अध्यायों में रामावत मधुर उपासना के साहित्य का स्वरूप निर्देश प्रस्तुत करेंगे—पहले संस्कृत ग्रन्थों के फिर हिन्दी के।

---

१ देखिये—श्री 'प्रेमलता' जी का जीवनचरित्र पृ० १०।।

सातवाँ अध्याय

रसिक परंपरा का साहित्य

(१)

संस्कृत में

रामोपासना की रसिक परम्परा साहित्य, साधना एवं दर्शन की दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एवं इतस्ततः है। अवश्य ही इसको एक सुव्यवस्थित रूप नहीं मिला है और इसका अधिकांश साहित्य बिखरा हुआ, समृद्ध और उपेक्षित रहा है। इसका मुख्य कारण, जैसा पहले कहा जा चुका है, यह रहा है कि इस सम्प्रदाय का समूचा साहित्य एक बहुत छोटी परिधि की सीमा में सिमट कर रह गया है तथा दूसरा कारण यह है कि इसके प्रति विद्वानों का आदर भाव नहीं रहा है। वे इस सम्प्रदाय तथा इसकी साधना को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते रहे हैं। एक और कारण भी है। विज्ञान के नये-नये अनुसंधानों, बौद्धिक जागृति तथा देश में राजनीतिक आन्दोलनों एवं उथल-पुथल के कारण भी लोगों की दृष्टि इस ओर नहीं गई। बहुधा इसका अत्यन्त विकृत रूप ही देखने को मिला जिसके प्रति हेय भावना घृणा का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इसी कारण हम इसके स्वस्थ रूप से भी अपरिचित रह जायँ, यह हमारा अभाग्य होगा।

किसी भी वस्तु के दो पक्ष होते हैं। शुक्ल और कृष्ण—यों देखा जाय तो क्या ईसाई धर्मसाधना, क्या सूफी साधना, क्या बौद्ध साधना और क्या कृष्ण-भक्ति की मधुर साधना में कम विकार आये ? और तो और अभी हम अपनी आँखों गांधीवादी साधना का भयंकर पतन देख रहे हैं। सर्वोदयी इस पर यदि हम यह निर्णय कर बैठें कि ये सब-की-सब साधनाएं क्षयग्रस्त जीवन की प्रतीक हैं या मानव-मन की अस्वस्थता के लक्षण हैं तो हमारा निर्णय सही माना जायेगा ? यही बात रामावत सम्प्रदाय की मधुर उपासना के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उसका एक स्वस्थ सबल पक्ष है और अस्वस्थ दुर्बल पक्ष भी। हम तो यहाँ साहित्य, साधना और सिद्धान्त की दृष्टि से उसके सबल स्वस्थ पक्ष का ही अनुशीलन करेंगे। उसके विकारों को देख कर उससे भाग खड़ा होना और उसके सही रूप से अपरिचित रह जाना साहित्य के अध्येता को शोभा नहीं देता। अस्तु।

रामोपासना की मधुर साधना का साहित्य संस्कृत में परम समृद्ध और विपुल है। उसमें कतिपय प्रमुख ग्रन्थों की ही चर्चा की जा सकेगी। सब से पहले हम उसके उपनिषद् भाग को लेते हैं—

उपनिषद्

१. **श्री रामतापनीयोपनिषद्**—यह अथर्व वेद से लिया गया है। इसमें कुल ७५ मंत्र हैं। आरम्भ में भगवान् राम का परत्व सिद्ध किया गया है[1] और यह दिखलाया गया है कि यह समस्त जगत राममय है, अतः सत्य है। फिर जीवात्मा परमात्मा का क्या-क्या सम्बन्ध हो सकता है, उसका निर्देश है। सेव्य-सेवक, आधार-आधय, नियाम्य-नियामक, शेष-शेषी, व्याप्य-व्यापक, शरीर-शरीरी, पिता-पुत्र, भर्तृ-भार्या—इन नव सम्बन्धों से परमात्मा-जीवात्मा सम्वन्धित है। जैसे समस्त वृक्ष अपने बीज में स्थित हैं वैसे ही ब्रह्मादिस्थावरपर्यन्त चर-अचर सम्पूर्ण जगत् राम बीज में स्थित है।[2] वह श्री राम अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता से सदा आश्लिष्ट संयुक्त हैं।[3] इसके अनन्तर तांत्रिक साधना के आश्रय पर आसनासीन रामपंचायतन का आसन इस प्रकार स्थिर किया गया है—
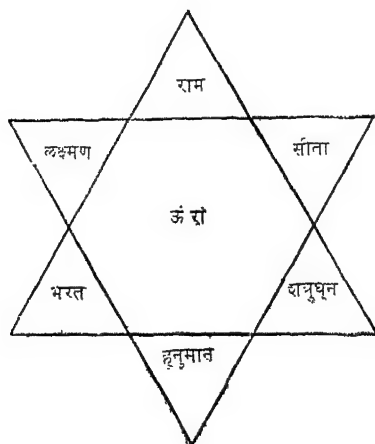
दो त्रिकोणों की यह पद्धति अवश्यमेव तांत्रिक साधना का प्रभाव सूचित करती है क्योंकि वहाँ त्रिकोण योनि मुद्रा का प्रतीक माना जाता है। इस दो त्रिकोण के परस्पर संयोजन को देखते हुए यह स्वीकार करणा पड़ता है कि रामावत मधुर उपासना में तंत्र का भी

---

१ रामं सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥ सं० सं०

२ यथैव बटबीजस्थः प्राकृतश्च महाप्रभुः।
तथैव राम–बीजस्थं जगद्देतच्चराचरम्॥

३ हेमामया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः॥

यत्किंचित प्रभाव है। षडक्षर मंत्र की महिमा बतलाते हुए ऋषि कहते हैं कि चूँकि यह गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि संसार के समस्त महान् भयों से मनुष्य को तार देता है, इसलिए इसे 'तारक मंत्र' कहते हैं।[1]

इस प्रकार इस उपनिषद् की प्रथम कंडिका में बृहस्पति जी के प्रश्नोत्तर में याज्ञवल्क्य ने तारक ब्रह्म का निर्देश किया, द्वितीय कंडिका में तारक ब्रह्म का स्वरूप तथा प्रणव एवं तारक की एकता तथा तृतीय कंडिका में तारक ब्रह्म का अर्थ, वाच्च-वाचक की एकता और उपासना का स्वरूप वर्णन किया। अन्त में भगवान् राम ने शिव को प्रसन्न होकर षडक्षर मंत्रराज प्रदान किया जिसके कारण भगवान् शिव काशी में मुक्ति का सदाव्रत चलाते हैं।

२. **श्री विश्वंभरोनिषद्**—यह रामोपासना की मधुर उपासना के आकर ग्रन्थों में सर्वसम्मान्य है। यह भी अथर्व वेद का अंग माना गया है। 'श्री रामतत्त्व प्रकाशिका' टीका सहित यह अयोध्या मे प्रकाशित हुआ है। इसमें भक्ति के प्रधान आचार्य शाण्डिल्य मुनि ने महाशंभु से प्रश्न किया है—

(१)- सब देवों में श्रेष्ठ, सगुण-निर्गुण मे परे वाणी मन-बुद्धि से अगोचर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सर्वेश्वर कौन हैं?

(२) वह मंत्र कौन है जिसके द्वारा जीव संसार से मुक्त होकर भगवान् के साथ सायुज्य लाभ करता है?

इसके उत्तर में महाशंभु ने भगवान् राम को ही निर्गुण-सगुण ब्रह्म से परे बतलाया है और कहा है कि वे अयोध्या में केवल रासलीला ही करते हैं।[2] उनके अनेक मंत्र हैं; पर उनमें भी तीन मंत्र अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—(१) रां रामाय नमः (२) श्रीमद्रारामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्रायनमः और (३) ॐ नमः सीतारामाभ्याम्। श्री राम जी ही सबके कारण हैं। उनके दो स्वरूप हैं—१—परिछिन्न और २—अपरिच्छिन्न। परिच्छिन्न स्वरूप से श्री राम जी साकेत लोक में स्त्रियों के समूह में रहकर केवल रासलीला करते हैं और अपरिच्छिन्न स्वरूप संसार की उत्पत्ति का कारण है। उनके दाहिने अंग से क्षीर-समुद्रवासी अष्टभुजी भूमा पुरुष हुए हैं, बायें अंग से रमा वैकुण्ठवासी हुए हैं, हृदय से परनारायण हुए हैं और चरणों से बद्रीवन निवासी नरनारायण हुए हैं। उनके श्रृंगार से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हुए हैं। सभी अवतार भगवान्

---

१ गर्भ-जन्म-जरामरण-संसार महद्भयात् संतार्यतीति तस्मादुच्यते तारकमिति।

—रा० ता० उ० २-३

२ सर्वावतर लीला च करोति सगुणो यः अयोध्यायां स्वयं रासमेव करोति सः सगुण-निर्गुणाभ्यां परस्वयपरमपुरुषस्य दाशरथेर्मन्त्रस्य नाद-विन्दु वाङमनसोरगौचरौ तस्य मंत्राश्चानन्तास्तेषु षट्शत वरियांसस्तेषु च त्रयो मन्त्रा अतिश्रेष्ठानः।

—विश्वंभरोपनिषद् ५

रामचन्द्र की चरण-रेखाओं से उत्पन्न होते हैं।[1] परात्पर श्री राम नाम से ही नारायण आदि सब नाम उत्पन्न होते हैं।[2] अन्त में श्री अयोध्या जी में रत्न-मण्डप में श्री जानकी जी सहित भगवान् श्रीराम का मंगलमय ध्यान है जहाँ सभी देवता और देवियाँ सामने हाथ जोड़े खड़े हैं।

३. **श्री सीतोपनिषद्**—अनन्त श्री श्री सीतारामपदकंजमकरन्दमधुमधुप श्री स्वामी सीतारामीय परमहंस परिव्राजकाचार्य युगलविनोद विहारी शरण कृत तत्त्वबोधिनी टीका सहित ओंकार प्रेस प्रयाग से संवत् १९२४ में मुद्रित तथा सियावल्लभशरण श्री जानकी कुण्ड युगल विनोद कुंज चित्रकूट से प्रकाशित यह छोटा सा उपनिषद् ग्रन्थ रत्न भगवती सीता का परत्व सिद्ध करता है और उन्हें ही आदि शक्ति महा महेश्वरी के रूप में प्रतिष्ठित करता है जिनके अंशमात्र

---

१ सर्वे अवताराः श्री रामचन्द्रचरणेरेखाभ्यः समुद्भवन्ति तथा अन्त कोटि विष्णवश्चचतुर्व्यूहश्च समुद्भवन्ति एवमयपराजितेश्वरमपरिमिताः परनारायणादयः अष्टभुजा नारायणादयश्चानन्लकोटि संख्यकाः बद्धांजलिपुराः सर्वकालं समुपासक्ता।

—वि० उ० ८

२ तुलनीयः—

विष्णुर्नारायणः कृष्णो वासुदेवो हरिः स्मृतः।
ब्रह्म विश्वंभरोऽनन्तो विश्वरूपकुलानिधिः॥
कल्मषघ्नो दयामूर्तिः सर्वगः सर्तसेवितः।
परमेश्वरनामा संतिउनि नेकानि पार्वति॥
एकादश महास्वच्छं उच्चारान्मोक्षदायकम्।
नाम्नामेव च सर्वेषां राम नाम प्रकाशकः॥

—महारामायण सर्ग ५१

तथा च

भानुकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटि प्रमोदकम्।
इन्द्रकोटि सदा मोदं वसुकोटि वसप्रदम्॥
विष्णु कोटि प्रतीपालं ब्रह्मकोटि निसर्जनम्।
रुद्र कोटि प्रमदं वै मातु कोटि विनाशनम्॥
भैरव कोटि संहारं मृत्युकोटि विभक्षणम्।
यम कोटि राधर्ष कालकोटि प्रधावकम्॥
गंधर्व कोटि संगीतं गण कोटि गणेश्वरम्॥
काम कोटिकला नाथं दुर्गाकोटि विमोहनम्॥
सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्देकदायकम्।
कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखण्डनम्॥

—सदाशिव-संहिता ५-७-१२

से अगणित महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, उमा, राधा, तारा, दुर्गा आदि निकली हैं।[1] सृष्टि, स्थिति और लय की नियामिका श्री जानकी जी हैं और भगवान राम भी आप के ही संकेत पर चलते हैं। भगवती सीता ही इच्छा शक्ति, कृपाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति रूपों में हैं। इच्छा शक्ति के तीनभेद हैं—(१) श्री (भद्र रुक्मिणी), (२) भूमि (प्रभाव रूपिणी), (३) नीला (चन्द्र-सूर्य-अग्नि-स्वरूपा) इन्ही तीन शक्तियों के प्रतीक स्वरूप श्री से रुक्मिणी, भूमि से सत्य-भामा, नीला से राधा।[2] चन्द्र-स्वरूप होकर ओषधियों को उत्पन्न करती हैं, अमृत स्वरूपिणी होकर देवताओं को अत्युत्तम फल से संतृप्त करती हुई मनुष्यों को अन्न, पशुओं को तृण तथा समस्त जीवों को उनके योग्य आहार द्वारा सबका पोषण करती हैं। श्री सीता ही दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्रमा के रूप में चर-अचर को प्रकाशित करती हैं और इस प्रकार वे ही कालचक्र की मूल प्रवर्तिका हैं। अग्नि रूप में वे ही जठराग्नि, दावाग्नि, वाड़वाग्नि, काष्ठ में विद्यमान अग्नि, देवताओं के मुख में विद्यमान अग्नि आदि हैं।

श्री रूप में वे ही लक्ष्मी हैं, भूमि रूप में भूः भुवः स्वः आदि चौदहों लोकों की आधार-आधेय प्रणव-स्वरूपिणी हैं और नीलारूप में विद्युत् समूहों से परिपूर्ण सभी ओषधियों, वनस्पतियों एवं प्राणिमात्र के प्राणों को पोसती हैं। क्रिया-शक्ति के स्वरूप परमात्मा के मुख से नाद हुआ, नाद से विन्दु और विन्दु से ओंकार। ओंकार से परे श्रीराम। श्रीराम से चारों वेद, इनकी शाखा-प्रशाखा, उपनिषद्, कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि। यह क्रिया शक्ति साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप है।

अब साक्षात् शक्ति के सम्बन्ध में कहते हैं। यह साक्षात् शक्ति श्री भगवान् के स्मरणमात्र से रूप के आविर्भाव, तिरोभाव, अनुग्रह, निग्रह, शान्ति, तेज, सदा भगवान की सहचरी, निमेष-उन्मेष से सृष्टि स्थिति संहार करनेवाली सर्वसमर्था है।

इच्छा शक्ति प्रलय की अवस्था में भगवान् के दक्षिण वक्षस्थल में श्रीवत्स स्वरूप होकर विश्राम करती है। इसी प्रकार क्रिया और साक्षात् शक्तियाँ भी भगवान् के हृदय में जाकर सो जाती हैं।

---

१ हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांशसमुद्भूतः कृष्णो भवति द्वापरे॥
—भुशुंडि रामायण में नारद के प्रति ब्रह्मा का वचन।
सीतोपनिषद् की उक्त टीका के पृ० ६ से उद्धृत।

२ सीतायाश्च त्रिविधांशाः श्री भूनीलादिभेदतः।
श्री भवेद् रुक्मिणी भूः स्यात् सत्यभामा दृढव्रता॥
नीलास्याद् राधिका देवी सर्वलोकैक पूजिता।
—ब्रह्माण्ड पुराण से उपर्युक्त सीतोपनिषद् की टीका पृ० ६ पर उद्धृत।

४. **श्री मैथिली महोपनिषद्**—श्री वाल्मीकि संहिता के पाँचवे अध्याय में १८ वें श्लोक के अनन्तर एक छोटा-सा 'श्री मैथिली महोपनिषद्' है जिसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन तापों से मुक्ति के लिए 'ॐ राम' यह तीन अक्षरों का मंत्र आया है और इसमें परम प्राप्तव्य, परम ज्ञेय भगवान् राम ही बताये गये हैं।[1] इसके अन्त में मंत्र-परम्परा है जो यथापूर्व है।

५. **श्री रामरहस्योपनिषद्**—वैष्णव धर्म-प्रलेखक पं० सरयूदास जी ने अपनी 'साकेत सुषमा'[2] में श्री राम रहस्योपनिषद् का एक उद्धरण दिया है जिसका अभिप्राय है कि अनन्त वैकुण्ठों का परम कारण श्री साकेतपुरी है।[3]

संहिता ग्रन्थ

रामोपासना में मधुर उपासना को लेकर अनेक संहिताओं का निर्माण हुआ है। इन संहिताओं का कालनिर्णय इस प्रकार विवाद-ग्रस्त है कि क्या अन्तः साक्ष्य और क्या बहिःसाक्ष्य से किसी निर्णय पर पहुँचना बहुत कठिन है। ओटो श्रेडर ने संहिताओं की प्रामाणिकता के पक्ष में जो उदाहरण दिये हैं, उनमें इन संहिताओं से दो-एक के ही नाम मिलते हैं। परन्तु इसी आधार पर इन्हें श्रेडर का परवर्ती मानना भी भूल है। कारण यह है कि इन संहिताओं का प्रचार-प्रसार अत्यन्त सीमित क्षेत्र में रहा है और इनमें से कुछ तो अबतक भी अत्यन्त गोपनीय रूप में रसिक सम्प्रदाय के अन्दर-ही-अन्दर चलती हैं और बाहर की हवा उन्हें लगने नहीं दी जाती।[4] परन्तु मेरे देखने में इस सम्प्रदाय की लगभग बीस संहिताएं आई हैं जिनमें रसिक परम्परा की साधना का बड़ा ही भव्य विन्यास हुआ है। अस्तु, साहित्य, साधना एवं सिद्धान्त-संस्थापन की दृष्टि से इन संहिताओं का विशेष महत्त्व स्वीकार करना पड़ता है और इनके भीतर से साधना का जो स्रोत अखण्ड रूप से प्रवाहित होता आ रहा है, वह अनेकानेक मधुर रस के उपासकों के लिए परम आश्रय एवं आनन्द का कारण रहा है। इस सम्प्रदाय में मान्य संहिता ग्रन्थों की सूची इतनी विशाल एवं

---

१ परात्परतरो निखिल गुणकरो जगतादिकारणभमिततेजोराशिर्ब्रह्मादि देवैरप्युपास्यः श्री भगवान् दाशरथिरेव प्राद्योदाशरथिरेव प्राद्यः। सकलजगत् कारणवीजं भक्तवत्सलः स एव भगवान् ज्ञेयः स एव भगवान् ज्ञेयः।

२ सत्यनाम प्रेस, मैदागिन काशी से सं० १९८२ में मुद्रित।

३ याऽयोध्यापूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलधारा मूलप्रकृतेः परातत्सद् ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोषा तस्यां नित्यमेव सीतारामयोः विहारस्थलमस्तीति।

—अथर्वणे उत्तरार्धे श्री रामरहस्योपनिषद् उत्तरखण्डे।

४ उदाहरणार्थ—श्री हनुमत्संहिता, श्री शिवसंहिता, श्री लोमश संहिता।

व्यापक है कि यह संभव नहीं कि उनका विस्तार से विवेचन हो सके, फिर भी यह ध्यान तो रहेगा ही कि कोई विशेष महत्त्व की उपयोगी वस्तु छूट न जाय। अस्तु।

१. **श्री हनुमत्संहिता**—श्री हनुमत्संहिता की चर्चा पहले भी आ चुकी है। श्री लक्ष्मी-नारायण प्रेस, मुरादाबाद में सन् १९०१ में पत्राकार छपी प्रति प्राप्त है। इसमें हनुमान अगस्त्य का संवाद है और भगवान् राम की रासलीला तथा जल-विहार का बड़े ही विस्तार से एवं परम मनोहर शैली में वर्णन हुआ है। सीता सभी सखियों की कायव्यूह हैं; क्योंकि सीता के शरीर से ही १८१०८ सखियों की सृष्टि होती है जिनके साथ भगवान् राम उतने ही शरीर धारण कर रास करते हैं। इसमें कुल ६० श्लोक हैं। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में रस-प्रकरण है जिसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रस के आश्रय विषय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का संक्षेप में विवरण है—जो रस-शास्त्र की दृष्टि से पूर्णतः परिपक्व है।

२. **श्रीशिवसंहिता**—श्री शिवसंहिता बीस अध्यायों का एक विशाल ग्रन्थ है जिसे महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से शिवहर स्टेट की श्री सिया किशोरी सहचरी जी ने प्रकाशित कराया है। इसमें आरम्भ में शिव-पार्वती-संवाद में पुनः अगस्त्य हनुमान के संवाद में साधु समागम की महिमा, श्रीराम के अनेक गुणों और विभूतियों का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन और पुनः वन-केलि का वर्णन आया है। रास-विलास के प्रसंग में ठीक वैसा ही भव्य मनोहारी, वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवत के रासपंचाध्यायी में मिलता है। नदी-नद सब स्तब्ध हो जहाँ के तहाँ रुक गये। पशु-पक्षी-कीट-पतंग सब ब्रह्मानन्द में मग्न हो आत्म-विभोर हो गये। आकाश में देवताओं के विमान इस दृश्य को देखने के लिए छा गये। यहाँ तक कि इस दृश्य को देखकर शिव का हृदय भी विमोहित हो गया और वे अपना तांडव नृत्य भूल गये।[1] रासविलास के अनन्तर

---

१ तु०—कास्त्र्यंग ते कलपदामृत वेणुनाद।
सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्॥
त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं।
यद्गोमृगद्विजगणः पुलकान्य विभ्रन्॥

तुम्हारे मधुर स्वन् वेणुनिनाद को सुनकर और त्रैलोक्यमोहन रूप को देखकर कौन स्त्री कुलधर्म नहीं छोड़ देगी, जिनसे गायें, मृग और पक्षी भी पुलक-कंटकित हो जाते हैं।

नद्यो निष्पंदवे गाश्च पशवश्च सरीसृपाः।
निश्चेष्टा अभवन्सर्वे मुक्ता इव निरामयाः॥
नो चेलुः किंचिदाकाशे विमानानि दिवौकसाम्।
मोक्षो योगसमाधीनां शिवताण्डवविद्रुतः॥ —शि० सं० ११, १०।

'मान' का प्रकरण है और फिर 'मनुहार' का प्रसंग। इसके बाद है कदली वन में सीता-राम का प्रेम-प्रसंग। सस्वरूप प्रकाशन के प्रसंग में यह स्पष्ट आया है कि रसिक भक्त दिव्य गुणों से सम्पन्न श्रीराम जी में रमण करते हैं और उन भक्तों में स्वयं श्रीराम जी रमण करते हैं।[1] सूक्ष्म अन्तः-दृष्टि खुलने पर सारा ब्रह्माण्ड ही अयोध्या-सा प्रतीत होने लगता है और वहाँ अशोकवन में रम्य रसस्थान में नित्यलीला विहार में मग्न श्री सीताराम के दर्शन होते हैं।[2]

३. **श्री लोमश संहिता**—श्री लोमश संहिता की पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। एक खंडित प्रति मिली है जिसमें केवल १५ वें अध्याय से लेकर २२ वें अध्याय तक कुल आठ अध्याय प्राप्त हैं। इसमें परमश्रेष्ठ मुनि पिप्पलाद तथा लोमश जी का संवाद है। कोटि कन्दर्पलावण्य रस-मूर्ति भगवान् श्रीराम का सीता जी के साथ और सीता जी की अनेक सखियों के साथ नानाविध रास-विलास का वर्णन है। यूथेश्वरियों में चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगन्धा, लक्ष्मणा, श्यामला, हंसी, सुगमा, वंशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, और इन्दिरावली जी ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियाँ हैं। इनमें चन्द्रकला की प्रमुखता है। वाह्य कार्यों में जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतन्त्र सर्वाधिकार है, अन्तरंग लीलाओं में उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता में श्रेष्ठ हैं। चन्दकलाजी श्री सीता-राम की संयोगलीला संघटित करती हैं। रास के समय का बड़ा ही भव्य संगीतमय वर्णन पढ़ते ही बनता है—छन्द के माधुर्य एवं ताल पर ध्यान बरबस खिंच जाता है—

अखण्डरासमण्डले सखीसमूहकल्पिते
रराज राजनन्दनी विमोहयन् जगत्त्रयम्।
प्रकामकामकामुको मनोजमंत्रभाविता
रणन्सुवल्लकी भृशं सुधासुधारया तदा।।
क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे क्वचित्क्वचिल्लतान्तरे
क्वचित्क्वचित्कुचान्तरे प्रविश्य राजनन्दनः।
प्रदीपयन्मनोभवं प्रदर्शयन्स्वलाघवं
कलाकुतूहलं मुहुः प्रकामकामशास्त्रजम्।।

लो० सं० २०.१८७-१८९

---

१ रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये।
स्वयं यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते।। —शि० सं० १८, ५

२ सर्वमेततदयोध्यैव सूक्ष्मदृष्टिसमर्पणे।
तत्राशोकवनं रम्यं रसस्थानं हि केवलम्।।
तन्मध्ये जानकी-रामौ नित्यं लीला रतौ स्थितौ।
सहितो वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैः।। —शिव० सं० २०. १३-१४

और अन्त में युगल मिलन महोत्सव का एक दृश्य है—

हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमब्यकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिय वक्षसि संगमतो सुखमाद्य महोत्सवजन्यमहो।

लो० सं० २२.१३६।

इस संहिता के अन्तिम भाग में ऋषि ने वारंबार मना किया है कि जो लोग रूक्षज्ञानी हैं, शुष्क हृदय हैं, महामूढ़ता-वश कुतर्क करनेवाले और रस खण्डन करनेवाले हैं, निन्दक हैं, रस की कथा में लौकिक विषय वासना की दुर्गन्ध लाते हैं, ऐसे पुण्यहीनों को रास-रहस्य की यह कथा और चरित्र कभी नहीं सुनाना चाहिए।

४. **श्री बृहद् ब्रह्म संहिता**—इस दस अध्यायों में समाप्त बृहत् संहिता वैष्णवों की मधुर साधना का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमें राधा-कृष्ण और सीता-राम दोनों की युगल उपासना का विधान है। आरम्भ के पाँच अध्यायों में वैष्णव-साधना का सामान्य विधान प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय में राधाकृष्ण की उपासना का कामबीज एवं कामकीलक और फिर तांत्रिक शैली पर युगलोपासना की प्रक्रिया है। ठीक इसी के पश्चात्, सातवें अध्याय में श्री रामावतार का हेतु तथा पुनः षडक्षरात्मक, श्रीराम मंत्र की महिमा का वर्णन है। 'श्री रामः शरणं मम' पर इस अध्याय में अनेक श्लोक हैं। यहाँ भगवान् राम का एक बड़ा ही भव्य ध्यान है।' आगे के शेष अध्यायों में वैष्णवाचार एकादशी, ऊर्ध्व पुण्ड्र-धारण आदि का व्याख्यान है।

५. **श्री अगस्त्य-संहिता**—श्री अगस्त्य संहिता, जैन प्रेस, लखनऊ से सन् १८९८ में पत्राकार तैंतीस अध्यायों और १३१ पृष्ठों में छपी मिलती है। यह श्री वैष्णवों की परम प्रामाणिक संहिताओं में परमादरणीय है। अगस्त्य और सुतीक्ष्ण का संवाद है। आरम्भ में वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा है, फिर भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न राममंत्र का न्यास, विनियोग, कीलक, बीज आदि के साथ उल्लेख है। इसके अनन्तर इक्कीसवें अध्याय तक ब्रह्मविद्या का निरूपण है।'[२]

**१ श्यामं वारिजपत्रनेत्रमनिसं प्रज्ञानमूर्ति हरिम्।
विद्युद्दीप्तपिशंग रम्यवसनं भास्वत्किरीटोज्ज्वलम्॥
कर्णालम्बित हेमकुण्डललसद् भ्रूवल्लिमत्यद्भुतं।
श्रीमन्तं भगवन्तमिन्दुसहितं श्री जानकीशं स्मरेत्॥**

—बृहद् ब्रह्म संहिता, अ० ७ श्लोक ५९

२ **पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे।
प्रकाशते स्वयं साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः॥
राम एव परं ज्योतिः सच्चिदानन्द लक्षणम्।
इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं नैवाति वर्तयेत्।]
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्नविद्यते॥**

—अं० सं० २४, १, २

इसके बाद के अध्याय में हृदय-कमल में सीताराम की आश्लिष्ट युगल मूर्ति का मंगलमय ध्यान है—

मेघजीमूतसंकाशं विद्युत्वर्णांवरावृतम् ।
संतप्तकाञ्चनप्रख्यां सीतामागतां पुनः ।।
अन्योन्याश्लिष्टहृद्वाहुनेत्रं पश्यन्तमादरात् ।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे च चलालकम् ।।
स्पृशंतं च तनोत्संगैः परिहासैर्मुहुर्मुहुः ।
विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणैकपरायणम् ।
सर्वं रूपोज्वलद्वन्द्वं योषितपुरुषयोरिव ।
श्री रामसीतयोः सर्वं संपत्करविधायकम् ।।

इसके अनन्तर षडक्षरमंत्र की महिमा एवं यन्त्रकवचादि का विस्तार से वर्णन है और तत्पश्चात् षोडशोपचार पूजन का विधान है। इसमें लक्ष्य करने की एक बात है। भगवान् राम का जहाँ-जहाँ ध्यान आया है, वहाँ सीता से आश्लिष्ट आलिंगित मूर्ति का ही वर्णन है।

६. **श्री बाल्मीकि संहिता**—श्री वाल्मीकि संहिता पत्राकार आदर्श प्रिंटिंग प्रेस अहमदाबाद (गुजरात) सं० १९७८ वि० में छपी प्राप्त है। श्री रामानन्दीय वैष्णवों में इस संहिता को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं और देखने से प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत नवीन है। जो हो, आरम्भ में वृहस्पति सभी मुनियों के सम्मुख श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का व्याख्यान करते हैं, फिर राममंत्र की महिमा कहते हैं और उसकी गुरु परम्परा बताते हैं जो अन्यत्र दी हुई परम्परा के अनुरूप ही है[1]। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवों के लक्षण एवं कुलकृत्य का वर्णन है, दीक्षा संस्कार कण्ठी धारण आदि वैष्णवाचारों का वर्णन है। इस संहिता में लक्ष्य करने योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र के भेद-प्रभेद में भगवान् राम का श्री हनुमान के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त श्री नहीं धारण करते और सीता जी

---

१ इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया ।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्री सीतां जनकात्मजाम् ।।
तारकं मंत्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः ।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम् ।।
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियां वरम् ।
तस्माल्लेभे वसिष्ठर्षि क्रमादस्मादवातरत ।।
भूमौ हि राममंत्रो यं योगिनां सुखदः शिवः ।
एवं त्वयं समादाय मंत्रराजपरंपरा ।
भूमौ प्रचलिता नित्या सर्वलोकसुखप्रदा ।। —वां० सं० ६, ३२

के भक्त वीच में बिन्दु श्री लगाते हैं[1]। इसके अन्त में भी 'श्री रामः शरणं मम' मंत्र की महिमा का वर्णन है।

अब हम उन संहिताओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनकी चर्चा रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक सन्तों ने साम्प्रदायिक आकार ग्रन्थों के भाष्य में मतस्थापन के लिए उद्धृत किया है।

७. **श्री शुक संहिता**—'उपासना त्रय सिद्धान्त' के पृष्ठ १२२ से १४३ पर उद्धृत। आरम्भ में गोलोक विहार भगवान् कृष्ण एवं राधारानी के रास-विलास का वर्णन है, फिर 'लीला' रहस्य का वर्णन है जिसमें राधा और कृष्ण दोनों ही परम देवाधिदेव भगवान् राम के शरीर में प्रवेश कर गये। ये राम पुरुषोत्तम मात्र नहीं हैं, वे सनातन परब्रह्म हैं।[2]

एकबार चित्रकूट पर्वत में क्रीड़ा करते हुए भगवान् राम को मृगया में रत एवं श्रान्त देखकर श्री जानकी जी ने कहा—आप पसीना-पसीना हो रहे हैं तथा सूर्य भी तप रहा है, थोड़ा विश्राम कीजिए। इस प्रस्ताव पर प्रिया-प्रियतम श्री सीताराम जी दिव्य माधुरी कुंज में प्रवेश कर गये जो कामद गिरि के कंदरान्तर शोभित हैं। उस माधुरी कुंज की शोभा और सुगन्ध का क्या कहना? वहाँ सुन्दर पुष्पों की शोभा पर दर्शन, स्पर्शन, आलाप, प्रियासंग के वाद सीताजी ने प्रस्ताव किया कि हम लोगों ने इस माधुरी कुंज में वहुत सुख पाया; परन्तु राधा-कृष्ण रूप में भी हमारा लीला-विलास चलता रहे तो क्या?[3]

इसपर भगवान् श्रीराम ने बड़े प्रेम से कहा—प्रिये! तुम्हारा ही अंश वृंदावनेश्वरी राधा हैं और मेरे ही अंश गोपेन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं।[4] ऐसा कहकर भगवान राम ने वहीं पर दिव्य वृन्दावन दिखलाया, जिसमें नित्य यमुना, नित्य गोवर्धन, भिन्न-भिन्न वन, उपवन एवं विहार-स्थली, श्री राधिका जी के सहित श्री कृष्णचन्द्र जी रासरस में उन्मत्त हैं। इस प्रकार युगल सरकार के नृत्य को दिखाकर श्रीराम जी ने सीता जी से कहा, प्रिये! तुम्हारा और मेरा स्वरूप यह दोनों प्रिया-प्रियतम श्री राधाकृष्ण लीलामय हैं। और सम्पूर्ण विश्व के प्यारे हैं। इतना कहते ही राधा-कृष्णात्मक दोनों स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूप में नमस्कार पूर्वक लीन हो गये—

---

१ मदनुरागिणो भक्ता धारयन्ती च न श्रियम्।
सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये बिन्दुं श्रियंशुभाम्॥ —वा० सं० ४, २३

२ न वै स पुरुषः कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तमः।
श्री राम संज्ञितं धाम परं ब्रह्म सनातनम्॥

३ आवां प्रिय निकुंजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम्।
कश्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविवव्रजे॥

४ त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
मदंश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनन्दनः॥

राधा जी सीता जी में समा गई, कृष्ण जी राम जी में। तब भगवान् राम और सीता का दिव्य रास विहार हुआ।[1] यह नित्य रास-विलास आज के दिव्य चित्रकूट में सदा होता रहता है। कृष्ण-भक्तों के लिए जैसे वृन्दावन है, रामभक्तों के लिए वैसा ही चित्रकूट है। भगवान् कृष्ण भगवान् राम में प्रविष्ट होकर तल्लीन हो जाते हैं।[2] श्रीराम जी के रास में कोटि-कोटि ब्रह्मा कोटि-कोटि ब्रह्माणी,कोटि-कोटि विष्णु और कोटि-कोटि लक्ष्मी, कोटि-कोटि शिव और कोटि-कोटि पार्वती प्रादुर्भूत हुए तथा सब-के-सब गोपिका-भाव को प्राप्त हो गये और अपनी स्वामिनी (श्री सीता जी) के साथ रासमण्डल में नृत्य करने लगे। उसी समय ६० हजार दण्डकारण्यवासी ऋषि भी गोपिका भाव को प्राप्त होकर श्री जू के साथ रासमण्डल में प्रकाश करने लगे। काल और श्रुतियां भी गोपीभाव में रासमण्डल में सम्मिलित हुईं और छः महीने की वह पूर्णिमा की रात्रि हो गई और

---

१ प्रिये तव ममासौ च द्वाविमौ सह दंपती।
माधुर्यलीलाकलिका ललितौ विश्ववल्लभौ॥
ततस्तद्युगलं श्रीमद्राधाकृष्णात्मकं महत्।
सीतारामात्मकं युग्मं प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥
ततः प्रवृत्तिं रामश्च सीतारासप्रधानकः।
गोपीजनकरोद्भूतमृदंगानककाटलः॥
मिथः सहचरीवृन्दकरतालविराजितः।
झर्झरशंखभेर्यादिवादित्रविततध्वनिः॥
युगलानुनया नंदी युगलो वयदीपितः।
मिथो युगलनाट्यैक्य तुष्टाऽखिलसखीजनाः॥
श्रीराममुरलीनाद वर्द्धितानि स कौतुकः।
सीताऽकल्पस्वरालापमुद्धत्सहचरीगणाः॥
कामोत्साहप्रदात्वाप चुंबनात्पिंगनादिभिः।
नर्मस्पर्शैः नर्म हासैः भावैश्च बहुरूपकैः।
अनेकैर्मधुरालापैर्भूषितश्च महोत्सवः॥

—शुक संहिता प्रथम अध्याय

२ एवं नन्दात्मजः कृष्णस्वविंतारसमापनम्।
रामं प्रविशति श्यामं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
सोऽद्यापि क्रीडति गिरौ चित्रकूटे मनोहरे।
नित्यं वृन्दावने एव माधुरीकुंजमध्यगे॥
एवं कृष्णो विशद्रामे पूर्णस्वानन्दविग्रहे।
दृष्टो रामः परं तत्त्वं यत्र चापि न गोचरः॥

—शुक संहिता, प्रथम अध्याय, तृतीय पाद

चित्रकूट में रासलीला होती रही। इस दिव्य चित्रकूट का निर्माण श्रीराम जी ने श्री सीता जी की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए किए था।[1] फिर यहाँ प्रश्न यह उठाया गया है कि श्री सीता जी की अभिलाषा पूरी करने के लिए श्रीराम जी ने गोलोक का निर्माण क्यों और कैसे किया? इसपर श्री शुकदेव जी का समाधान है—'कल्प के आरम्भ में भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने अपनी इच्छा की प्रेरणामात्र से तीनों लोक अपने शरीर से उत्पन्न किये तहाँ प्रथम अमोघ वैष्णवी वीर्य तेजयुक्त इच्छा से जल प्रकट कर उसमें छोड़ दिया। वह वैष्णवी वीर्य कोटि-कोटि सूर्यों के प्रकाश के समान प्रकाशित सुवर्ण कान्तिवाला एक गोलाकार अंड हो गया, उस अण्ड में से सर्वलोकों को रचनेवाले हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा रूप से प्रकट हुए। उसी से चराचर प्रकट हुआ, उसी में चैतन्य स्थापन कर कोटि-कोटि ब्रह्मांड रचना किया।[2]

---

१ तत्र रासे प्रादुरासीद् ब्रह्माणी ब्रह्मकोटयः।
वैष्णवी विष्णु कोटयश्च रुद्राणि रुद्रकोटयः॥
सर्वाश्च देवतास्तत्र गोपिका भावभाविताः।
रासमण्डलमध्यस्था ननतुः स्वामिना सह॥
तथा षष्टिसहस्त्राणि दण्डकारण्ययोगिनाम्।
गोपीभावं समासाद्य रेजुः श्रीसहमण्डले॥
श्रुतयश्चैव कालश्च रासमण्डलमध्यगा।
गोपीरूपधरा रेजुर्महिः सौभाग्यभूषिताः॥
सीता च सुंदरी यत्र सर्वलीलाधिदेवता।
चित्रकूटाद्रिके रम्ये यद्वृन्दावनमद्भुतम्॥
गोलोको यं सस्वात्र दृश्यते प्रणतस्तव।
सीताभिलाषसंभूत्यै श्री रामेण विनिर्मितिः॥

२ कल्पादौ भगवान्रामः स्वेच्छामात्रेण चेदितः।
त्रैलोक्यं कृतवान् चांगादाविर्भावं प्रदर्शयन्॥
अमोघयुक्तवान् बीजमंशु सप्ताणऽविषु सः।
हिरण्यगर्भसंकाशः सूर्यकोटिसमं प्रभः॥
ततश्चराचरस्यादौ तत्त्वसृष्टिं विनिर्ममे।
तेषु चैतन्यमाधाय ब्रह्माण्डं संजघटा सः॥
उच्चवाचानि भूतानि रचयामास विश्वकृत।
महीं रचितवान् देवः सप्तसागरसंवृताम्॥
पर्वतान्विविधानुरम्यान्देवगन्धर्वभोगवान्।
सरांसि रम्यरूपाणि राजहंसाश्मयाणि च॥

इस महान रचना पर भी सीता जी को हार्दिक आह्लाद नहीं हुआ और उन्होंने रासोल्लास के लिए एक नवीन रचना का आग्रह किया। इसी पर श्रीराम जी ने सब लोकों के ऊपर अपने लोक साकेत के अंश से गोलोक का निर्माण किया जहाँ सबकुछ अयोध्या का प्रतिविम्ब है।[1] वह प्रतिविम्बरूप में कैसा हुआ, इसका वर्णन करते हैं। श्री सरयू जी यमुना वन गईं, गोवर्धन मणि पर्वत बन गया, कल्पवृक्ष वंशीवट वना, दशरथ नन्द हुए, कौसल्या यशोदा हुईं, लीला के सब परिकर गोप हुए, जानकी जी राधा हुईं, अशोकवन की देवी वृन्दा देवी हुई, उनके साथ श्रीराम जी राधाकृष्ण हो वंशीनाद में निपुण, परम कौतुकी नित्य रास विलासादि की, सुन्दर लीला करने लगे। इस नूतन स्थान को देखकर जानकीजी का चित्त रम गया और वे श्री राम जी के साथ इस सच्चिदानन्द रूप में वहुत दिन तक काम-केलि विहार करती रहीं।[2]

उत्फुल्लकमलामोद वारीणिरुचिराणि च।
मेरु रचितवाँस्तत्र स्थानानि त्रिदिवौकसाम्॥
एवं कृत्वा जगत्सर्वं सदैवासुरमानुषम्॥
देवानामपुराणां च मनुष्याणां च सौख्यदम्।
वासं प्रकटयामास गृहारामादिशोभितम्॥

१ एवमभ्युदितो राम प्रियया साभिलाषया।
सर्वेषां चैव लोकानामुपरिस्थानमद्भुतम्॥
गोलोकं कल्पयामास प्रादुर्भाव्यस्वलोकतः।
अयोध्यायाः प्रतिकृतिर्यत्रसर्वापि दृश्यते॥

२ यमुनायाः परिणता सरयू सरसा सरित्।
अभूदगोवर्धनत्वेन दिवि रत्नमयोगिरिः॥
प्रमोदवनं अत्रासीद्दिव्यं वृन्दावनं वनम्।
पारिजाततरुजीतो वंशीवटतर्रुहि सः॥
ते च रासविलासाद्याः प्रादुरासुः समंततः।
आभीरो सुरिवनो नाम रामधात्री पतिः पुरा॥
स एव समभून्नंदो मांगल्या च यशोदिका।
त एव गोपीगोपाद्याः लीलापरिकराश्च ते॥
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत्।
अशोकवनगा तत्र ह्यथ वृन्दावनेश्वरी॥
तया सह बभौ रामो वंशीवादन कौतुकी।
नित्यरासविलासादि कुर्वाणः सुमनोहरम्॥
गोलोकमखिलं वीक्ष्य लीलापरिकरान्वितम्।
सद्यः प्रसन्नहृदया प्रोवाच निजवल्लभम्।

८. **श्री वसिष्ठ संहिता**—इस संहिता का नामोल्लेख एवं विषय विवरण 'उपासना-त्रय सिद्धान्त' में आया है । इसमें दिव्य अयोध्या का वर्णन है। इसके ३६ वें अध्याय में लिखा है कि सर्वोपरि वैकुंठ है, वैकुण्ठ से भी परे गोलोक है, गोलोक के मध्य में साकेत लोक है, साकेत लोक के पूर्व मिथिला है, दक्षिण में चित्रकूट है, पश्चिम में वृन्दावन है, उत्तर में महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदों के सहित श्रीमन्नारायण रहते हैं। यही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारों के कारण हैं और ये ही श्री रामचरित के मुख्याचार्य हैं।

साकेत लोक सप्तावरणों के भीतर है। इन आवरणों का सविशेष वर्णन ही इस संहिता का मुख्य विषय है।[1] दिव्य अयोध्या तथा उसके सप्तावरणों का विवरण यथास्थान 'धामतत्त्व' में आयेगा। इसके भीतर बारह वन हैं—शृंगारवन, विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदंबवन, कामवन,नागकेसरवन। उस प्रमोदवन के चारों ओर पर्वत हैं, शृंगार पर्वत, मणिपर्वत, लीलापर्वत, मुक्ता पर्वत। इन चारों पर्वत पर चार शक्तियाँ निवास करती हैं।

दृष्ट्वैदमद्भुतं स्थानं संपूर्णा मे मनोरथा।
अयोध्यायाः प्रतिकृतिः क्वचित्तावत्ततोधिकाम्॥
आवां अत्रैव रंस्यावः सुचिरं कामकेलिभिः।
अतीव सुन्दरे स्थाने सच्चिदानन्द मन्दिरे॥
एवमुक्तस्तया सार्द्धं रेमे वृन्दावने प्रभुः।
यथा गायन्ति मुनयो महाभावविभूषिताः॥

—शुक संहिता, प्रथम अध्याय चतुर्थ पाद

१ सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोर्ध्वं प्रकृतिमण्डलात्।
विरजायाः परे पारे कुण्डं यत्परं परम्॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदिंद्रियगोचरम्।
तन्मध्ये रामधामस्ति साकेतं यत्परात्परम्॥
परान्नारायणाश्चैवकृष्णात्परतरादपि॥
यो वै परतमः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट्॥
यस्यानंतावताराश्च कला अंशविभूतयः।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशाः परं ब्रह्मस्वरूपमाः॥
सीतया सह रामस्य लीलारसविवर्द्धनः।
चिद्रूपा कांचनी भूमिः समारत्नै विचित्रिता॥
वाङ्मनोगोचरातीतं प्रमोदारण्यसंज्ञकम्।
रामस्याति प्रियं धाम नित्यलीलारसास्पदम्॥

परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदि कारण हैं। ब्रह्माविष्णु महेश आदि जिनके अंश के आवेश हैं। वे राम श्रीसीता जी के साथ दिव्य प्रमोदवन में नित्य विहार करते हैं।[१]

९. सदाशिव संहिता—स्वामी रामचरण दास 'करुणासिंधु' ने श्री रामनवरत्न सार संग्रह–ग्रन्थ तैयार किया था, जो पं० रामवल्लभा शरण जी की लिखी रत्नप्रभा टीका सहित सं० १९८५ में गोकुल प्रेस अयोध्या में मुद्रित हुआ। इसमें कई स्थानों पर नाम-महिमा के सम्बन्ध में सदाशिव संहिता का उल्लेख है।[२] इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एवं उसके सप्त आवरणों का विशेष विस्तार से वर्णन कर साकेत विहारी भगवान राम और भगवती सीता का बड़ा ही भव्य ध्यान है।[३]

१०. श्री महाशंभु संहिता—श्री रामनवरत्न के पृष्ठ ११ पर महाशंभु संहिता के दो श्लोक उद्धृत हैं जो जानकी जी ने श्री रामचन्द्र के प्रति कहे हैं। यहाँ 'राम' नाम की महिमा का विषय है। श्री जानकी जी कहती हैं कि कोई प्रणव को श्रेष्ठ कहते हैं, कोई और मंत्र को; परन्तु प्रणव या अन्य बीज मंत्र भी रकार मकार से ही सिद्ध होते हैं। राम मंत्र का प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकाल से 'राम' के नाम की थाह नहीं पा रहे हैं तो औरों की क्या कथा ?[४]

---

१ तुलनीयः—

यस्यांशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरापि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च। स एव कार्यकारणयोः परःपरमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव। स श्री रामःसविता सर्वेषामीश्वरःयमेवैष वृणुते स पुमानस्तु यमेवदस्माद्भूर्भुवः स्वः त्रिगुणमयो बभूव इतीमं नरहरिःस्तौतीमं महाविष्णुः, स्तौतीमं विष्णुः स्तौतीमं महाशंभुः, स्तौतीमं द्वैतं मण्डलं तपति यत्पुरुषं दक्षिणाक्षं मण्डलो वै मण्डलाचार्यः मण्डलस्थमिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्।

——श्री रामोपासना, पृ० १६३ पर उद्धृत

२ **सर्वसौभाग्यनिलयं सर्वानन्दैकनायकम्।**
कौसल्यानन्दनं रामं वंदेऽहं भवखण्डनम्॥

श्री रामनवरत्न, पृ० १९, लक्ष्मण का वेदों के प्रति कथन

३ **स्निग्धमिन्दीवरश्यामं कोटीन्दुललितद्युतिम्।**
चिद्रूपं परमोदारं जानकीप्रेमविह्वलम्॥
दोर्दण्डचण्डलोछण्डं शरच्चन्द्रं महाभुजम्।
सीतालिंगितवामांकं कामरूपं रसोत्तमम्॥
तरुणारुणसंकाशं विकचांबुजपादकम्॥

४ **प्रणवं केचिदाहुर्वै वीजं श्रेष्ठं तथापरे।**
तत्तु ते नाम वर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम्॥

११. हिरण्यगर्भ संहिता:—श्री रामनवरत्न के उक्त संस्करण के पृष्ठ ४१ पर हिरण्यगर्भ संहिता का उल्लेख है और अगस्त्य जी ने सुतीक्ष्ण जी से कहा है कि अद्वैत आनन्द शुद्ध चैतन्य सात्वैकलक्षण श्री रामचन्द्र जी सब के भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्ड में प्रकाशित हो रहे हैं।[1]

१२. महा सदाशिव संहिता—श्री रामनवरत्न के उक्त संस्करण के पृष्ठ ५७-५९ तक महा सदाशिव संहिता का उल्लेख है जिसमें यह कहा गया है कि नाना प्रकार के मंत्रों, नामों, चिह्नों में भरमना और भटकना व्यर्थ है। सबसे श्रेष्ठ श्री रामनाम है जिसके परमाचार्य श्री हनुमान जी हैं, शेष सभी नाम श्री रामनाम के अंश-मात्र हैं; परम धाम श्री रामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्री मैथिली जी के सहित श्रीराम जी का मंत्र, श्री हनुमान जी को महान् गुरु तथा श्री सीताराम जी के प्रति सखी भाव यही सदा मुक्ति देनेवाला है।[2]

१३—ब्रह्म संहिता—श्री रामनवरत्न में पृष्ठ २६ पर ब्रह्मसंहिता का एक ही श्लोक उद्धृत है—

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशानृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

भगवान् राम जी पूर्णावतार पूर्ण ब्रह्म हैं, कृष्ण, नृसिंहादि अवतार अंश हैं, श्री राघव स्वयं भगवान् हैं।

१४, १५, १६, १७. पुराण संहिता, आलमंदार संहिता, बृहत्सदाशिव संहिता, तथा सनत्कुमार संहिता श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं के संबंध में होते हुए भी श्री सीताराम की मधुर उपासना को हृदयंगम करने के लिए परम उपयोगी हैं।[3]

रामेति नाममात्रस्य प्रभावमतिदुर्गमम्।
मृगयन्ति तु यद्वेदाः कुतो मंत्रस्य ते प्रभो॥

1 अद्वैतानन्दचैतन्यं शुद्धसत्त्वैकलक्षणम्।
बहिरंतः सुतीक्ष्णोऽत्र रामचन्द्रः प्रकाशते॥

2 श्री राममंत्रस्यांशानि मंत्राण्यन्यानि विद्धि च।
हनुमताचार्येणाहो रामधाम सतां पदम्॥
श्री जानक्याः पतिं सर्वे भजस्व मंगलायनम्।
राममंत्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शशुभिरे भुवि॥
आद्याचार्यहनुमंतं त्यक्त्वाहृयन्यमुपासते।
क्लिश्यंति चैव ते मुग्धा मूलगा पल्लवाश्रिताः॥
श्री मैथिल्याश्च मंत्रं हि श्री गुरुं मारुतं महत्।
सखीभावं दंपतीष्टं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥

3 इन चारों संहिताओं का बहुत ही सुन्दर तथा शुद्ध संस्करण चौखंभा-संस्कृत-सिरीज, विद्याविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ है, जो परम संग्रहणीय है।

स्तवराज और गीति

१. **श्री रामस्तवराज**—इसकी एक प्रति सनत्कुमार संहिता से संकलित श्री हरिदास कृत भाष्य से समलंकृत श्री सीताराम मुद्रणालय अयोध्या में वि० संवत् १९८६ में मुद्रित उपलब्ध है। एक और प्रति रसरामममणि श्री सीतारामशरण जी के भाष्य से भूषित वि० सं० १९५८ में बम्बई से प्रकाशित प्राप्त है। पहली टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं वैष्णव साधना के आकर-ग्रन्थों के प्रमाणों से परिपुष्ट है। यह स्तवराज कुल ९९ श्लोकों का है और राम का परात्परत्व, श्री रामनाम की महिमा तथा श्री सीताराम का युगल ध्यान का विषय ही इसमें आया है। इस स्तवराज के सनत्कुमार ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीराम देवता हैं, श्रीसीता बीज हैं और श्री हनुमान जी शक्ति हैं। आरम्भ में ध्यान के दो श्लोक (११, १२) हैं।[1]

अन्त में भी ध्यान के दो श्लोक हैं।[2] भाष्यकार श्री हरिदास ने शास्त्रों के वचनों द्वारा अनेक स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि राम का रूप ही ऐसा है कि जो भी देख ले, वह मुग्ध हो जाय और इसी पक्ष में दण्डकारण्य के मुनियों का प्रसंग प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि राम का रूप देखकर जब तपस्वी पुरुषों की यह स्थिति है तब स्त्रियों की क्या कही जाय।[3] ऐसा रमणीय है राम का रूप। श्री हरिदास ने बड़े ढंग से एक स्थान पर, ५२ वें श्लोक का भाष्य करते हुए कहा है कि जैसे पिता द्वारा कन्यादान के अनन्तर वह कन्या अपने पति की भार्या हो जाती है और अपने पिता

---

१ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्ये षड्दल पद्म नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम्॥

२ वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं च सान्द्रं परम्।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९५

रामं रत्नकिरीट कुण्डलयुतं केयूरहारान्वितम्।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम्॥
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा।
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संसेव्यमानं प्रभुम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९६

३ पुंसामपि स्त्रीभावेन श्री रामभजनमुपपद्यते किमुत स्त्रीणाम्?
न रामरूपादीनां केवलं स्त्रीपुरुषाणामेव दृष्टिचित्तापहारकत्वमुपपद्यते, किन्तु स्थावरजंगमात्मकस्य सर्वं जगतोऽपि।
—श्री रामस्तवराज भाष्यम्, श्री हरिदासकृत, पृ० ६८

का गोत्र छोड़कर पति के गोत्र में सम्मिलित हो जाती है, उसी प्रकार सद्गुरु की कृपा से जीव भगवान् श्रीराम का प्रपन्न होकर अपने माता-पिता का गोत्र छोड़कर अच्युत भगवान् राम के गोत्र में चला जाता है।[1]

लक्ष्य करने की बात यह है कि रामस्तवराज के भाष्यकार श्री हरिदास संभवतः गालवाश्रम के श्री मधुराचार्य के शिष्य श्री स्वामी हर्याचार्य ही हैं।

२. **श्री जानकी स्तवराज**—जैसे रामस्तवराज सनत्कुमार संहिता से लिया गया है, वैसे ही श्री जानकी स्तवराज अगस्त्य संहिता से संकलित है। इसमें कुल ६९ श्लोक हैं। यह संवत् १९८५ में वेंकटेश पुस्तकालय, अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। आरम्भ के ४५ श्लोकों में भगवती सीता का नखशिख ध्यान बड़ी ही भव्य एवं उदात्त कवित्वमयी शैली में हुआ है। श्री जानकी जी के अंग-प्रत्यंग का ऐसा मनोहारी वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। उनके तलवों की लाली क्या है कि भक्तों का अनुराग ही पुंजीभूत होकर चरणों में लिप्त है। मस्तक पर लाल बिन्दी भी भक्तों की प्रीति का प्रतीक है। जो श्री रामजी को प्रसन्न करना चाहते हैं, उनके लिए यह सर्वथैव अनिवार्य है कि श्रीसीता जी चरणों का सेवन करें और उनमें रति हो।[2]

श्री जानकी गीत

श्री जानकी गीत रसिक रामोपासकों का परम प्रिय ग्रन्थ है। इसका प्रणयन श्री गालवाश्रम (गलता गद्दी) के पीठाधीश्वर, स्वामी श्री हर्याचार्य ने किया और अब संवत् २००९ में श्री सीतारामशरण जी की 'रसबोधिनी' टीका सहित श्री हनुमत्प्रेस, अयोध्या से मुद्रित हुई है। यह ग्रन्थ राममधुररसोपासकों में उसी स्थान का अधिकारी है जो कृष्णमधुरोपासकों में 'गीत-गोविन्द' और 'राधा-विनोद' को प्राप्त है। बड़े ही रसभरे छंदों में पूरे छह सर्गों में यह समाप्त है। श्री हर्याचार्य श्री मधुराचार्य के पट्टशिष्य थे। इस ग्रन्थ में उनका मधुररसप्लावित हृदय,

---

१ किन्तु संकल्पयितृसमर्पिता कन्या यथा स्वपतेर्भार्या भवति स्वपितुर्गोत्रं विहाय स्वपतिगोत्रीया च भवति, तथैव सकृद् गुरुसमर्पितो यो जीवः श्री रामस्य प्रपन्नो भवति स्वपितुर्गोत्रं विहायाच्युतगोत्रश्च भवतीति।

—श्री हरिदासकृत श्री रामस्तवराजभाष्यम्, पृ० १९९

२ यावन्न ते सरसिजद्युतिहारि न स्याद्रतिस्तरुनवांकुरखंडितांशे।
तावत्कथं तरुणिमौलिमणेर्जनानां ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ४९

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे ध्यायन्ति ये चरणपंकजयुग्ममंतः।
वांछंति विघ्नशतशो ह्यनिवार्यमाणां भक्तिं भवाब्धितरणाय कृपापयोधेः॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ५१

अगाध पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्वशक्ति, संगीत की अलौकिक प्रतिभा का एक साथ दर्शन होता है। मंगलाचरण का ही श्लोक मधुरोपासना का दिव्य संकेत है—

नवरागभरा चिताप्तवृत्तेः
सरयूकुंजगृहेपु राघवस्य।
जनकात्मजया समं समन्ताद्
विजयन्ते रति केलयोऽनवद्याः॥

—भावार्थ यह कि नितनूतन प्रीतिराग से परिपूर्ण श्री राघव जी श्री श्री जानकी जी के साथ श्री सरयू कुंजगृहों में होने वाली सच्चिदानन्दमयी केलियाँ निरन्तर विजय को प्राप्त हों।[1] श्री चन्द्रकला जी द्वारा वसन्त की वन शोभा का वर्णन सुनकर श्री जानकी जी तुरन्त उस शोभा को देखना चाहती हैं; परन्तु चन्द्रकला जी वन की शोभा के साथ-साथ वहाँ अन्य सखियों के साथ राम की क्रीड़ा का वर्णन करने लगती हैं।[2] अब जानकी जी इस पर प्रणयक्रोध से भर जाती हैं। इस प्रकार मान-विधान में प्रथम सर्ग समाप्त होता है।

अब श्री जानकी जी के हृदय में भगवान् 'राम' से मिलन के लिए उत्कंठा जगती है और श्री चन्द्रकला जी से वे अपना विरह निवेदन करती हैं। उन्हें यह आशंका है कि किसी अन्य भाग्य-शालिनी नायिका के साथ रामचन्द्र एकान्त विहार कर रहे हैं। प्रणय-कलह एवं विरह-पीड़ा से खिन्न जानकी के म्लान हृदय का करुण चित्रण दूसरे सर्ग में है।

---

१ तुलनीय :

हेमामया द्विभुजया सर्वालंकारयभूषिता
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः॥ —रा० पू० ता० उ०

अर्थात् स्वर्ण की कान्ति के सदृश गौर वर्णवाली, सभी आभूषणों से भूषित चिद्रूपा, कमल धारण करनेवाली श्री जानकी जी से आलिंगित श्री रामचन्द्र जी आलिंगनजन्य आनन्द से पुष्ट हैं।

२ क्रीडति रघुमणिरिह मधुसमये
पश्य कृशोदरि भूपतितनये।
जानकि हे वर्द्धितयौवन मानमये॥
कापि विचुम्बति तं कुलबाला,
गायति काचिदभ्रं धृतताला
कामपि सोऽपि करोति सहासां।
कलयति कांचन कामविकाशाम्॥
हरिर्वणितमिदमनुरघुवीर
निवसतु चेतसि सरस गभीरम्॥

तीसरे सर्ग में श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी की कोपशान्ति का उपाय सोच ही रहे हैं कि श्री चन्द्रकला जी आ जाती हैं। चौथे सर्ग में श्री चन्द्रकला जी भगवान् रामचन्द्र जी से श्री जानकी जी की ओर से मनुहार करती हैं और ऐसा करते हुए श्री जानकी का विरह-विदग्ध एवं विभ्रान्त चित्त का एक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती हैं। इस पर श्री रामचन्द्र जी दोनों हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं कि यह वसन्त का समय है और इस समय सीता जी का मान करना उचित नहीं है। इतना ही नहीं, श्री जानकी जी का मान शमन करने के लिए श्री रामचन्द्र जी ने उनके चरणों में प्रणाम करते हुए उन्हें नाना प्रकार से प्रसन्न किया।[1]

पांचवें सर्ग में मानलीला का शमन हो चुका होता है और प्रिया-प्रियतम को धूलिधूसरित देखकर सखियाँ जलक्रीड़ा का प्रस्ताव उपस्थित करती हैं और सीताराम नाना प्रकार की जल-क्रीड़ाओं में मग्न हैं। यह जलक्रीड़ा बड़ी देर तक चलती है और इसमें अन्य सखियाँ भी सम्मि-लित हैं। इसके अनन्तर भोजन होता है और तब श्री किशोरी जी के साथ श्री कोशलराजकिशोर जी सुखपूर्वक सिंहासन पर विराजमान हैं। इसके अनन्तर रास शुरू होती है दो-दो सखियों के बीच एक-एक राम। बीच में सीताराम। नित्य निकुंजविहारिणी दिव्य वस्त्रधारिणी श्री किशोरी जी ने रासरस की उमंग में भरकर इषत् हास्यमय रसभरे कटाक्ष से प्राणवल्लभ को देखा। श्री प्रिया जी तथा प्रियतम जी रासमण्डल से निकल-निकल कर नृत्य करते हैं और पुनः मण्डल में यथास्थान आ जाते हैं। यहीं पाँचवाँ सर्ग समाप्त होता है।

छठें सर्ग में रास-नृत्य के अनन्तर रासकेलि का प्रसंग है। श्रीराम जी के अंग की जैसी मेघ-कान्ति है उसी रंग की साड़ी श्री जानकी जी ने धारण किया है और श्री जानकी जी के अंग की जैसी विद्युत कान्ति है उसी रंग की धोती श्री राम जी ने पहनी है। इसी सर्ग में साम्प्रयोगिकी लीला का भी निरूपण है।[2] इस प्रकार इस युगल मिलन में श्री जानकी-गीत की परिणति है।

---

१ प्रणम्य पादौ जनकात्मजायाः
प्रसादनं कुर्वति रामचन्द्रे।
द्विपस्तथा प्रांशु जगर्ज वक्ष-
स्तटीं यथासौ सहसाऽस्य भेजे॥

—जानकीगीतम् ४, ३

२ रासस्य जानुपरिसेवितसन्नितम्बा,
वक्षस्युपाहितकुचास्यभुजोपधाना।
कण्ठे समर्पितभुजा वदने धृतास्या,
श्री जानकीकुसुमचापधृतापि शेते॥

—श्री जानकीगीतम् ६, १

श्री सहस्रगीति

श्री सहस्रगीति श्री-सम्प्रदाय के प्रथमाचार्य प्रपन्नजनकूटस्थ श्री शठकोप मुनि द्वारा रचित मधुरोपासना का परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। शठकोप मुनि दक्षिण के आलवार भक्तों में प्रमुख थे। आलवारों की उपासना मुख्यतः मधुर भाव की ही है, यद्यपि उसमें दास्य भाव भी मिला हुआ है। ये आलवार कुल बारह हुए, इनमें शठकोप, कुलशेखर और अन्दाल का नाम अधिक विख्यात है। सहस्रगीति में अधिकांश पद नारायण, कृष्ण, गोविन्द, हरि, माधव को संबोधित कर लिखे गये हैं, परन्तु मधुर-भाव से ओतप्रोत दो-एक पद श्री राम को संबोधित करके भी लिखे मिलते हैं।[1] जो हो, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मधुरोपासक साधकों के गले का हार है और वे बड़े ही भाव से इसका अनुशीलन करते हैं।

यह सातवीं शती का ग्रन्थ माना जाता है। इसमें १० शतक है और प्रत्येक शतक में १० दशक हैं, प्रत्येक दशक में ११ गाथाएँ हैं। केवल द्वितीय शतक के सातवें दशक में १३ और पंचम शतक के छठें दशक में २२ गाथाएँ हैं। इस प्रकार दश शतक और सौ दशक तथा ११११ गाथाओं में यह ग्रन्थ पूरा हुआ है। संक्षेपतः इस ग्रन्थ का विषय-विवेचन इस प्रकार है—

प्रथम शतक में—भगवत्कैङ्कर्य ही परम पुरुषार्थ है।
द्वितीय शतक में—ईश्वर ही परम भोग्य रूप है।
तृतीय शतक में—अर्चावतार की स्तुति एवं सेवा ही कल्याण का हेतु है।
चतुर्थ शतक में—भगवच्चरण-युगल ही प्राणियों के सर्वविध रक्षक हैं।
पंचम शतक में—नारायण ही जीवों के लिए मोक्षदाता हैं।
षष्ठ शतक में—लक्ष्मी जी की शरण लेकर भगवत्शरण होना चाहिए।
सप्तम शतक में–सांसारिक सुख ईश्वर-प्राप्ति के विरोधी हैं।
अष्टम शतक में—संसार के विषय, अहं, मम के त्याग का उपाय।

---

१ क्लेशादियं मनसि ह वा! विभाति चाग्नौ
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लंकान्तु राक्षसपुरीं नितरां प्रणाश्य
प्रख्यातिमान् किल भवान् किमु ते प्रकुर्याम्॥

—सहस्रगीति, शतक २, श्लोक ३

तथा च—

बीनात्विमं भ्रमवशा हि दिवानिशं चा-
प्यश्रुप्रवाहभरिता स्तिमितायताक्षी।
लंकां प्रणाश्य किल कण्टकदुष्प्रभुत्वं
प्रध्वंसयाद्य परिपाहि कटाक्षमस्याः॥

—सहस्रगीति, २-१०

नवम शतक में—भगवद्गुणों के सम्यक् अनुभव के उपाय।

दशम शतक में—नित्यानन्द का भोग।

श्री स्वामी परांकुशाचार्य शास्त्री महोदय ने गलता कुंज, प्रयाग घाट, मथुरा से इसे वि० सं० १९९५ में प्रकाशित कराया।

रामायण

१. **श्री वाल्मीकीय रामायण**—गलता गद्दी के स्वामी मधुराचार्य के 'श्री सुन्दरमणि संदर्भ' ग्रन्थ के अनन्तर वाल्मीकीय रामायण भी अवध की मधुरोपासना का एक प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ हो गया है। सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण की शृंगारपरक व्याख्या करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने अनेक वचनों को उद्धृत करके बताया है कि पुरुष किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देख कर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते हैं जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देख कर हो जाती है। श्री मधुराचार्य जी ने 'जार' और 'उपपति' का भी अपना विलक्षण अर्थ किया है, क्योंकि उनका मानना है कि भगवान् के साथ जार-भाव नहीं चल सकता। वहाँ तो सती नारी और पति का ही सम्बन्ध चल सकता है। श्री मधुराचार्य जी मानते हैं कि संसार बीज को जीर्ण करे अर्थात् नाश करे उसको 'जार' कहते हैं और इसी प्रकार अन्तर्यामी रूप से वा प्रत्यक्ष रूप से स्थित होकर अपने प्रेमी उपासकों का पालन रक्षण करे उसका नाम 'उपपति' है।[1] 'जार' और 'उपपति' का यह अर्थ अपनी विलक्षणता में सर्वथा मौलिक है। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के अनेक उद्धरणों से श्री मधुराचार्य ने यह सिद्ध किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण तो वंशीवादन से स्त्रियादिकों को मोहित करते थे, परन्तु श्री राम जी तो अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से स्त्रीपुरुष साधारण जन्तुओं को मोहित करने वाले हैं।[2]

वाल्मीकीय रामायण में शृंगार के कई स्थलों का निर्देश करते हुए श्री मधुराचार्य जी ने इसे रसिक-सम्प्रदाय का आधार ग्रन्थ सिद्ध किया है और जैसे कृष्णायत मधुर उपासना का प्रधान आधार ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है वैसे ही श्री रामोपासना की रसिक शाखा का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ श्री वाल्मीकीय रामायण माना जाता है। श्री वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में राम के अशोक-वन का वर्णन मिलता है, जहाँ राम-सीता के विहार का भी उल्लेख मिलता है।[3]

---

१ **परोपभुक्तायाः सर्वांगुभोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति संसारवीजं नाशयतीति जारः। उप समीपे ऽन्तर्यामिरूपेण ऽव्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः॥**

—सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० ४४

२ **श्री कृष्णस्तु वेणुरणनैः स्त्रियादिमोहनः। अयं तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपुं साधारण सर्वजन्तुमोहकः**

—सुन्दरमणि संदर्भ, पृ० १०६

३ दे० वा० रा० सर्ग ४२।

सीतां...मधुरैकं...पाययामास

२. **आनन्द रामायण**—आनन्द रामायण रामभक्ति के रसिकोपासकों का एक प्रधान ग्रन्थ है। अनुमानतः इसकी रचना १५ वीं शताब्दी में हुई होगी। अध्यात्म रामायण के कई उद्धरण इसमें मिलते हैं। इसमें कुल १२२५२ श्लोक और ९ काण्ड हैं। पहला काण्ड **सारकाण्ड** है, जिसमें १३ सर्ग हैं। इसमें राम-जन्म से लेकर सीताहरण तक का प्रसंग है। दूसरा **यात्रा-कांड** है, जिसमें ९ सर्ग हैं। इसमें राम की तीर्थयात्रा का प्रसंग है। तीसरा काण्ड **यागकाण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग हैं। इसमें रामाश्वमेध का वर्णन है। चौथा काण्ड **विलास-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग हैं। इसमें सीता का नखशिख वर्णन, सीता के नानाविध शृंगारों एवं अलंकारों का वर्णन, राम-सीता की जलक्रीड़ा,[1] नाना विहार-विलास तथा उनकी दिनचर्या का बड़े विस्तार से वर्णन है। इसी काण्ड के सर्ग ७ से १९ तक में राम के एकपत्नीव्रत रखने के कारण अगले अवतार में बहुत ही पत्नियों को प्राप्त करने का आश्वासन मिलता है। तथा कामपीड़िता देव-पत्नियों को कृष्णावतार में गोपिकाएँ बनने का आश्वासन मिलता है। आठवें सर्ग में गुणवती तथा पिंगला को क्रमशः सत्यभामा तथा कुब्जा बनने का आश्वासन राम देते हैं। नवें सर्ग में राम सीता-सहित कुरुक्षेत्र की यात्रा करते हैं।

पाँचवाँ काण्ड **जन्म-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग हैं। इसमें राम द्वारा सीता-त्याग की कथा आती है, फिर लव-कुश का जन्म। फिर कुश-लव का राम की सेना से युद्ध, उर्मिला, श्रुतिकीर्त्ति तथा मांडवी के दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए।

छठा काण्ड **विवाह-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग हैं। इसमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आठ पुत्रों के विवाह का प्रसंग है।

सातवाँ काण्ड **राज्य-काण्ड** है, जिसमें २४ सर्ग हैं। इसमें राम की अनेक विजय-यात्राओं का वर्णन है। राम के रूप को देख कर स्त्रियाँ प्रायः कामातुर हो जाती हैं और राम अपने अगले (कृष्ण) अवतार में उनकी लालसा पूरी करने का आश्वासन देते हैं। इसमें लगभग १६१०८

---

१ मुष्टिभ्यां जानकी रामं ताडयामास कौतुकात्।
सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया॥
चुचुम्ब तस्या बिंबोष्ठं चूर्णयामास तत्कुचौ।
मुक्त्या तत्कंचुकीबंधमालिंग्य हृदयेन ताम्॥
मुमोच कच्छं श्रीरामः सीतायाः स्वकरेण सः।
उड्डीय वस्त्रं हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श सः॥
ततः करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्षयन्मुदा।
सीता चाकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मितानना॥
एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा।
कः समर्थस्तयोः क्रीडां सविस्तारां निवेदितुम्॥

—आनन्द रामायण, सर्ग ६, श्लोक ५२-५६

५. **रामायण मणिरत्न**—इसका भी उल्लेख श्री रामदास गौड़ के 'हिन्दुत्व' में है। यह वसिष्ठ-अरुन्धती-संवाद है और इसमें कुल ३६,००० श्लोक हैं। इसमें मिथिला तथा अयोध्या में राम का वसन्तोत्सव मनाने का विवरण है।

६. **मैन्द रामायण**—मैन्द रामायण की चर्चा भी 'हिन्दुत्व' में है। मैन्द-कौरव-संवाद में कुल ५२,००० श्लोकों में यह पूरा हुआ है। इसमें जनकपुर की वाटिका में राम-सीता के लीला-विलास का प्रसंग विशेष रूप से वर्णित है।

७. **मंजुल रामायण**—उपर्युक्त 'हिन्दुत्व' में उल्लेख। सुतीक्ष्ण-कृत कहा जाता है। इसमें शबरी के प्रति राम ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है और उसी प्रसंग में रागमयी प्रीति-पराभक्ति का सविशेष वर्णन है। इनके अतिरिक्त भी रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' में संवृत रामायण, लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, रामायण महामाला, सौहार्द रामायण, सौर्य रामायण, चान्द्र रामायण, स्वायंभुव रामायण, सुब्रह्म रामायण, सुवर्चस् रामायण, देव रामायण, श्रपण रामायण, दुरंत रामायण और रामायण चम्पू की चर्चा की है।

८. **भुशुंडी रामायण**—भुशुंडी रामायण भी इस रसिक-संप्रदाय का एक सर्वमान्य ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति श्रावणकुंज अयोध्या में देखने को मिलती है। उसमें मनुष्य छन्द में कुल छत्तीस हजार श्लोक हैं। गीता प्रेस गोरखपुर ने इस ग्रन्थ का फोटो स्क्रिप्ट लिया है। इसका एक श्लोक यों है—

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांशसमुद्भूतःकृष्णो भवति द्वापरे॥

नाटक, उपाख्यान, लीलाचरित-काव्य

१. **महानाटक अथवा हनुमन्नाटक**—महाकवि हनुमान द्वारा रचित यह नाटक रसिकोपासकों का एक परम प्रिय ग्रन्थ है। इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं। एक है गिरीश प्रिण्टिंग वर्क्स कलकत्ता का सन् १९३९ का प्रकाशित, दूसरा है मुंबई वैभव-मुद्रण-यन्त्रालय बंबई से संवत् १९८१ का प्रकाशित। इस नाटक में पूरा रामचरित है। दूसरे अंक में रामजानकीविलास का बहुत ही रोमांटिक वर्णन है जो कतिपय विद्वानों की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। जो हो, राम जानकी का विलास दूसरे अंक में देखने ही योग्य है।[1]

---

१ अंके कृत्वा जनकतनयां द्वारकोटेस्तटान्तात्।
पर्यंकांके विपुलपुलकां राघवो नम्रवक्त्राम्॥
बाणान् पंच प्रवदति जनः पंचबाणो प्रमाणैः
बाणैः किं मां प्रहरति शतैर्व्याहरन्नानिनाय॥
अन्योन्यं बाहुपाशग्रहणरसभराशीलिनोस्तत्रयूनो
भूयो भूयः प्रभूताभिमतफल भुजोर्नन्दतोर्जात एषः।
संसारो गर्भसारो नव इव मधुरालापिनोः कामिनो मां
गाढं चालिंग्य गाढं स्वपिहि नहिनहीति च्युतो बाहुबन्धः॥

परिपूर्ण काम भगवान् राम ने सीता के साथ वह लीला-विलास किया, जो त्रिभुवन में न कोई कर सका है न कर सकेगा।[1]

वक्त्रे ततः फणिलता दलवीटिकां स्वे।
विन्यस्य चन्दनघनावृतपूगगर्भाम्॥
रामोऽब्रवीदयि गृहाण सुखेन बाले!
तृच्छद्मना तदधरं मधुरं प्रपातुम्॥
मंदं मंदं जनकतनया तां चतुर्धा विधाय।
स्वैरं जह्वें तदधरमधुप्रेमतो मीलिताक्षी॥
मेने तस्यास्तदनुकवलात् धर्मकामार्थमोक्षान्।
रामः कायं मधुरमधरं ब्रह्म जीत्वापि तस्याः॥

सुप्तायां सीतायां रामः—

भातिस्म चित्तस्थितरामचन्द्रं संरुन्धती निर्गमशंकयेव।
स्तनोपरि स्थापितपाणिपद्मा छद्माप्तनिद्राहरिणायताक्षी।

तत्र सीतावक्षःस्थलस्थभ्रमरमवलोक्य—

मदनदहनशुष्यत् क्लान्तकान्ता कुचान्त
र्हृदि मलयजपंके गाढबद्धाखिलांकिः।
उपरि विततपक्षो लक्ष्यते ऽलिर्निमग्नः
शर इव कुसुमेषोरेष पुङ्खा वशेषः॥

अत्रावसरे

पृथुलजघनभारं मन्दमान्दोलयन्ती।
मृदुचलदलकान्ता प्रस्फुरत्कर्णपूरा।
प्रकटितभुजमूला दर्शितस्तन्यलीला।
प्रमदयति पतिं द्राक् जानकी व्याजनिद्रा॥

जानकी प्रबुद्धा

स्पृहयति च बिभेति प्रेमतो बालभावा-
न्मिलति सुरतसंगादंगमाकुचयन्ती।
अहह! नहि नहीति व्याजमप्यालपन्ती
स्मितमधुरकटाक्षैर्भावमाविष्करोति॥

—महानाटक, अंक २, श्लोक ४५-५२

१ सीतां मनोहरतरां गिरमुद्गिरन्ती-
मालिंग्य तत्र बुभुजे परिपूर्णकामः।

२. **प्रसन्नराघवम्**—महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उपनाम जयदेव कवि-विरचित यह नाटक सात अंकों में पूरा हुआ है। अनुमानतः इसकी रचना १२ वीं या १३ वीं शताब्दी में हुई होगी। इसके दूसरे अंक में राम और सीता का चण्डिकायतन में मिलन तथा पूर्वराग का चित्रण बहुत ही मनोहारी शैली में हुआ है। श्री रामचन्द्र वाटिका में श्री जानकी जी को अचानक देखकर विस्मय से अभिभूत हो जाते हैं और पूछते हैं—'नीलम पर खिंची स्वर्ण रेखा के समान, कनक-कदली के अभ्यन्तर भाग की तरह स्वच्छ, हरिद्रा-जल की तरह कान्तिप्रवाहवाले अंगों से सुन्दरी यह कौन कन्दर्प की क्रीड़ाभवन-दीपिका की ऐसी दीख रही है।'[1] श्री राम कहते हैं—'कन्दर्प ने तुम्हारे शरीर को अपना धनुष समझ कर तुम्हारे मध्यदेश को अपनी मुट्ठी से पकड़ा, जिसके फल-स्वरूप त्रिवलि के छल से तीन अंगुलि संधि-रेखाएँ त्रिभुवन-वशीकरण-मुद्रा के समान दीख रही हैं।'[2] सीता राम को कटाक्ष से लीलापूर्वक देखती है। राम उसका देखना देखकर कहते हैं—'नव यौवन का सर्वस्व, भोग का भवन, आँखों का सौभाग्य, मद का गौरव, जगत् का सार, जन्म लेने का फल, कन्दर्प का अभिप्राय, राम का हृदय, रति का तत्त्व, शृंगार का रहस्य, कुछ ऐसी ही उस कमलनयनी को देखना है।'[3] इस प्रकार पूरा-का-पूरा दूसरा अंक राम-सीता के परस्पर आकर्षण, उत्कंठा, प्रीति, एवं संभोगेच्छा के भाव से परिपूर्ण है। इस प्रकार भवभूति के उत्तर रामचरित में

रामस्तथा त्रिभुवनेऽपि तथा न कोऽपि
रामां भुनक्ति बुभुजे न च भोक्ष्यतीशः।।

—महानाटक, अंक २, श्लोक ६०

१ केयं श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा
लग्नैरंगैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः।
हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः
कायक्रीडाभवनवलभी दीपिकेवाविरस्ति

—प्रसन्नराघव, अंक २, श्लोक ७

२ यत्वा चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा
तन्वीमेनां तव तनुलतां मध्यदेशे बभार
यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारा-
स्तिस्रा भान्ति त्रिवलिकपटादंगुलीसंधिरेखाः।।

—प्रसन्नराघव, अंक २, श्लोक १७

३ सर्वस्वं नवयौवनस्य भवनं भोगस्य भाग्यं दृशां
सौभाग्यं मदविन्दुसस्य जगतः सारं फलं जन्मनः।
साकूतं कुसुमायुधस्य हृदयं रामस्य तत्त्वं रतेः
शृंगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किंचिदालोकितम्।।

—वही, अंक २, श्लोक २६

राम का सीता के विरह में तड़पना[1] तथा महावीर चरित में सीता-राम का पूर्वानुराग इस सम्बन्ध में लक्ष्य करने की वस्तु है। 'महावीर-चरित' के प्रथम अंक में विश्वामित्र सीता तथा उर्मिला को अपने आश्रम में बुलाते हैं, जहाँ राम और लक्ष्मण उनको देख कर आकर्षित हो जाते हैं। इन नाटकों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी से लेकर राम-सीता के सम्बन्ध में शृंगार-भावना तथा उनके पूर्वानुराग का वर्णन विशेष रूप में होने लगा था।

३. **मैथिली कल्याण**[2]—जैन कवि हस्तिवल्लभ का यह नाटक तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में लिखा बताया जाता है।[3] आरम्भ के चार अंकों में राम तथा सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया गया है। दोनों स्वयंवर के पूर्व मिथिला के कामदेव-मन्दिर में और माधवी-वन में मिलते हैं। अनन्तर चन्द्रकान्तधर गृह में अभिसारिका सीता का चित्रण किया गया है। अन्तिम अंक में राम-सीता का विवाह है।

४. **उदार राघव**—उदार राघव की रचना १४ वीं शताब्दी के मध्य में हुई बताई जाती है। लेखक हैं साकल्वमल्ल। इसके कुल १८ सर्गों में केवल नौ सर्ग सुरक्षित तथा प्रकाशित हैं। राम के वन जाते समय सीता का तर्क यह है कि मैंने बहुत-से रामायण सुने हैं, लेकिन उनमें राम कहीं भी सीता के विना वन नहीं जाते हैं।[4] इसके तीसरे सर्ग में मिथिला की स्त्रियों का वर्णन तथा नवें सर्ग में वनवास में राम-सीता का वन-विलास विशेष रूप में द्रष्टव्य है।

५. **जानकी हरण**—कुमारदास कृत 'जानकी हरण' में विवाह के पहले ही राम-सीता के पारस्परिक आकर्षण तथा सीता के विरह का वर्णन मिलता है।[5] विवाह के उपरान्त राम और सीता के संभोग का वर्णन है।[6] 'जानकी हरण' के तीसरे सर्ग में दशरथ की क्रीड़ा का वर्णन विशेष विस्तार से किया गया है।

६. **सत्योपाख्यान**—सत्योपाख्यान पत्राकार में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से छपा उपलब्ध है। आरम्भ में राम विष्णु के, लक्ष्मण शेष के, भरत सुदर्शन के और शत्रुघ्न शंख के अवतार हैं—

---

१ किमपि किमपि मंदं मन्दमासात्तयोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भ व्यापृतैकैकदोष्णो—
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्॥ —उ० रा० च०

२ माणिकचन्द दिगंबर जैन ग्रन्थमाला सं० ५।

३ रामकथा पृ० १९७, अनुच्छेद २४४।

४ रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो षडशः श्रुतानि।
न क्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वनं यात इति श्रुतं मे॥

—उदार राघव सर्ग ५.४८

५ देखिए जानकीहरण, सर्ग ७।

६ देखिए जानकीहरण, सर्ग ८।

ऐसा वर्णित है। फिर दशरथ-कैकेयी का विवाह, मंथरा के पूर्व जन्म की कथा और फिर राम की बाललीला का वर्णन है। उत्तरार्द्ध में सीता जी का स्वयंवर, राम सीता का विवाह, जल-विहार, वन-विहार[1] सीता की मानलीला, होलिकोत्सव आदि का रसमय विवरण है।

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में 'रासपंचाध्यायी' के अनुशीलन से हृद्रोग के नाश होने का फल है, उसी प्रकार सत्योपाख्यान में राम-सीता के विहार का अनुशीलन भी सभी पापों को नष्ट कर विमल भक्ति को जन्म देता है। अतएव रसिकों-रसभावुकों को इसका बार-बार प्रीतिपूर्वक श्रवण-मनन-अनुशीलन करना उचित है।[2]

७. **वृहद् कौशल खण्ड**—वृहद् कौशल खण्ड अभी-अभी दो खंडों में पं० रामवल्लभाशरण जी महाराज की 'रसवर्धिनी टीका' सहित लाहौर के सेठ रोशनलाल अग्रवाल तथा रामप्रियाशरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ है। परन्तु है यह 'प्राइवेट सर्क्यूलेशन' के लिए ही। जनसाधारण में इसका अन्यथा अर्थ भी लग सकता है, इसीलिए यह सर्वसुलभ नहीं है। कहते हैं, इस ग्रंथ को श्री वेदव्यास जी ने श्री सूत-शौनक-संवाद रूप में निर्माण किया है। श्री शौनक जी ने श्री सूत जी से श्री रामजी के रहस्य-चरित्र की जिज्ञासा की। उत्तर में श्री सूत जी ने संक्षेप में श्री राम-जानकी (प्रिया प्रीतम) का लीला-रहस्य बतलाया। भगवान् श्री राम और भगवती सीता के युगल ध्यान के अनेक श्लोक हैं, तदनन्तर जलविहार, मृगयाविहार आदि की झाँकी का वर्णन कर के श्री सरयू-पुलिन में सखाओं के साथ रसविहार का वर्णन है और यहीं प्रथम अध्याय समाप्त होता है। द्वितीय अध्याय से पंचम अध्याय तक गोपकन्या, देवकन्या, नागकन्या, गंधर्वकन्या, राजकन्या आदि के साथ भगवान् के रासविहार का बड़ी मार्मिक भाषा में वर्णन किया है। छठें अध्याय में श्री जानकी जी के पूर्वराग का उल्लेख कर सातवें अध्याय में विवाह का प्रसंग है। इसके अनन्तर नवें अध्याय से पन्द्रहवें अध्याय तक विवाहोत्तर देवकन्याओं के साथ गंधर्व-कन्याओं के साथ, किन्नर-सुताओं के साथ, विद्याधर-कन्याओं के साथ सिद्धकुमारियों के साथ, राजकन्याओं के साथ, साध्य सुताओं के साथ, गुह्यक देव कन्याओं के साथ, यक्ष कन्याओं के साथ नाग कन्याओं के साथ रास का प्रकरण सविस्तार विशेष रूप से बड़ी ही भावमयी प्रभावमयी भाषा में प्रस्तुत

---

१ **कुचद्वयेन रामस्य हृदयं स्पृशतीव सा।**
कण्ठे लग्ना तदा भाति मालेव स्वर्णवल्लरी॥ **—सं० २१.२३**

तथा च

तस्यैवांके तथा सीतां लज्जया सस्मिताननाम्।
रामचन्द्रं घनश्यामं सीतां विद्युल्लतोपमाम्॥ **—सं० २६.१०**

२ **श्रोतव्यं रसिकैः सर्वैर्भावुकैः प्रीतिपूर्वकम्।**
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्तिः प्रजायते॥

—सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध २५-५०

किया गया है। यों यह समस्त ग्रन्थ ही श्री जानकीराघवरासविलास का अपूर्व ग्रन्थ है और रसिकोपासकों में इसे वेदवत् पूज्य एवं परम गुह्य मानते हैं। श्री हनुमत् निवास के सतत प्रिया-प्रीतम की अष्टयामसेवा में परायण, अनन्योपासक, मधुर रस के परम रसिक एवं रसज्ञ मर्मज्ञ महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से ही यह दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।

८. **माधुर्य केलि कादम्बिनी**—जैसा नाम से ही स्पष्ट है स्वामी श्री मधुराचार्य द्वारा रचित मधुर रस का एक परम आदरणीय ग्रन्थ है। इसकी पूरी प्रति अभी उपलब्ध नहीं हुई है। 'शिव संहिता' की 'रसबोधिनी टीका' में पं० रामवल्लभाशरण जी महाराज ने इस ग्रन्थ के कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं।[1]

भावार्थ यह कि जब जड़ पदार्थ तक राम के रूप पर मुग्ध हो जाते हैं तो उन प्रमदाओं का क्या कहना, जिनके हृदय में मन्मथ का प्रवेश हो चुका है।

श्रीराघवं परमहंस यतीन्द्रमुख्या
नार्यो ऽभवन् सखि विमोहवशाश्च दृष्ट्वा।
ते राक्षसाश्च मुमुहुः किल कामिनीनां
पुंसां कथैवननु का रसराजमूर्त्तिः॥
कन्दर्पकोटि समकान्तिरलं च रामः
श्यामः सुपश्यति तरुं ह्यथ पक्षिणश्च।
वृक्षाः खगाः कुसुमवाणवशा भवन्ति
कामं सदैव विनयं क्रियते रमज्ञे॥
दृष्ट्वा सुरम्यं निजरूपमद्भुतं
शिलातले कांचन ज्योति निर्मले।
मुमोह रामः रघुवंशभूषणः
सीतेव स्वालिंगनभावमश्नुते॥
अहोति रूपं परमं मनोहरं
ममापि यन्मोहकरं सुखावहम्।
मन्ये प्रिया भाग्यमतीव गौरवं
या लिंगनामन्दमवाप दुर्लभम्।
निजे सुरूपे लतिकादिमोहने
यदायुमोहाशु मनोज सुन्दरः।
तदा कथा का प्रमदागणानां
चित्तेषु यासां प्रविशेच्च मन्मथः॥

---

१ देखिए 'शिवसंहिता' की पं० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रसबोधिनी टीका' में पन्द्रहवें अध्याय के ५२ वें श्लोक का भाष्य (पृ० १६८)।

जबतक 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' पूरी प्राप्त नहीं होती, तबतक इन पाँच श्लोकों से ही संतोष करना पड़ेगा। अस्तु।

९. **रामलिंगामृत**—रामलिंगामृत की रचना बनारसनिवासी 'अद्वैत' नामक कवि द्वारा १६०८ ईसवी में हुई थी। इसकी हस्तलिपि लंदन में सुरक्षित है। (दे० इंडिया आफिस कैटलॉग नं० ३९२०)[1] आरम्भ प्रथम सर्ग में देवताओं द्वारा विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना है, दूसरे सर्ग-राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म जानकी-स्तन-पान, वन-क्रीड़ा, अध्ययन, यज्ञोपवीत-संस्कार, तथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना। तीसरे सर्ग में विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण राम का सीता स्वयंवर में पहुँचना। राम के सौन्दर्य का सीता की सखियों द्वारा वर्णन, राम द्वारा धनुर्भंग। चौथे सर्ग में सीता स्वयंवर है। राम को देखने की उत्सुकता में स्त्रियों की दशा का अनुमान इस शार्दूल छंद से लग सकता है—

काचिन्मंगलघोषहृष्टहृदया गेहात्सखी संवृता
व्यग्रा व्यस्तसमस्तभूषण गणान्शीघ्रं दधारा ध्वजा।
सीताराम मुखारविन्दज़ रसोन्मत्ता गलन्मालती
केशे कंकतिका चलत्कुचयुगा द्वारोर्ध्वभागे स्थिता।।

इसी सर्ग में लक्ष्मी सीता को रामावतार का रहस्य बताती हैं। पाँचवें सर्ग वा छठे सर्ग में राम-वनगमन का वर्णन तथा पंचवटी निवास और बंदरों से मैत्री का वर्णन है। सातवें में राम-विभीषण-मिलन, आठवें में लंकायुद्ध है। नवें सर्ग में ही रावण महीरावण का वध है और दसवें में रामनाम की महिमा और रावण द्वारा सर्वत्र राम के रूप के दर्शन का उल्लेख है। ग्यारहवें सर्ग में रावण-वध एवं विभीषण का अभिषेक है, बारहवें में राम का राज्याभिषेक और तेरहवें सर्ग में प्रचुर विस्तार से राम और सीता के संभोग का वर्णन है, उनके प्रातः शृंगार भोजन, शयन, केलिक्रीड़ा आदि का उल्लेख है। चौदहवें सर्ग में वाल्मीकि आश्रम में लवकुश का जन्म एवं शिक्षा तथा तदनन्तर राम का सीता और लवकुश सहित अयोध्या लौटना वर्णित है। सोलहवें सर्ग में राम द्वारा श्री रंग जी का पूजन और सत्रहवें में राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है, जिसमें देवता आकर राम तथा सीता की स्तुति करते हैं। यहीं राम-सीता समस्त अयोध्या-समाज सहित परलोक गमन करते हैं। अन्त में अद्वैतमंजरी में जीव, ब्रह्म, ईश्वर, माया का निरूपण है। अठारहवें सर्ग में राम पूजा की विधि, राम शिव, तथा रामकृष्ण की अभिन्नता का प्रतिपादन है।[2]

लक्ष्य करने की बात यह है कि अद्वैत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे और रामलिंगामृत तथा रामचरितमानस की कथा में बहुत अधिक साम्य है।

---

१ 'राम कथा', पृष्ठ १६८, अनुच्छेद २३० से उद्धृत।

२ देखिए 'रामकथा', अनुच्छेद २५९, पृ० २०३-२०८।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ

रामावत मधुरोपासना के कतिपय विशिष्ट सिद्ध साधकों ने अपने सम्प्रदाय को शास्त्रीय प्रमाणों से परिपुष्ट किया। ठीक जिस प्रकार जीव गोस्वामीपाद, सनातन गोस्वामी, बलदेव विद्याभूषण तथा कृष्णदास कविराज ने गौड़ीय वैष्णव-साधना को शास्त्र प्रदान किया, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी, श्री परमहंस रामचरण जी तथा श्री स्वामी युगलानन्द शरण जी ने अपने पांडित्य तथा अनुभव के आधार पर कतिपय विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की जो इस रस-साधना में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। अस्तु।

श्री सुंदरमणि संदर्भ

श्री मधुराचार्यरचित श्री सुंदरमणि संदर्भ की चर्चा पहले भी आ चुकी है। वस्तुतः गौड़ीय वैष्णव-साधना में जो स्थान श्री जीवगोस्वामी पाद का है, वही स्थान रामावत मधुर उपासना में श्री मधुराचार्य जी का है। जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने भक्ति, प्रीति, आदि षट् संदर्भ द्वारा गौड़ीय वैष्णव-साधना के रहस्य का उद्‌घाटन एवं विश्लेषण किया, ठीक उसी प्रकार मधुराचार्य जी ने भी छह संदर्भों का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिसमें केवल एक ही संदर्भ 'सुन्दर-मणि संदर्भ' मिलता है। शेष पाँच संदर्भों में 'वैदिक मणि संदर्भ' का कुछ अंश उपलब्ध है। इस ग्रन्थरत्न को 'रहस्य रत्न प्रभा' टीका के सहित स्वामी रामवल्लभाशरण जी महाराज की आज्ञा से श्री पुरुषोत्तमशरण जी ने संवत् १९८४ में प्रकाशित कराया। जिस प्रकार श्री गोस्वामीपाद ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवत का आधार लिया है उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण को लिया है। यह दूसरी बात है कि श्री मधुराचार्य की व्याख्या को ज्यों का त्यों स्वीकार करने में आज के पंडित समाज को कुण्ठा होगी, पर इससे घबराने या बिचकने की क्या बात है? प्रत्येक दार्शनिक मत ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, भगवद्‌गीता (बृहत्त्रयी) का अपने-अपने ढंग से अर्थ करता है। इसलिए यदि मधुराचार्य ने वाल्मीकीय रामायण की मधुराश्रयी व्याख्या करने में कुछ खींचतान की भी हो, तो उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है और उसे उसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

मधुराचार्य जी ने सुंदरमणि संदर्भ के मंगलाचरण में ही अपने सिद्धान्त का सार रख दिया है—

> प्रोद्यद्भानुसपत्नरत्ननिकरैर्देदीप्यमाने महा,
> मोदे दिव्यतराति मंजुवनितावृन्दैः सदा सेविताम्।।
> रासोल्लासमुखैश्च व्याकृततमं दिव्ये महामण्डपे-
> ऽयोध्यामध्य प्रमोदशुभ्रविपिने रामं ससीतं भजे।।

अयोध्या के मध्य में स्थित सूर्य के समान प्रभा विस्तार करने वाले रत्नसमूहों से आलोकित शुभ्र प्रमोदवन में मंजु वनितावृन्द से सवित रासोल्लास के आरम्भ में दिव्य महामण्डप में आसीन सीता सहित राम की वन्दना करता हूँ।

भगवान् राम में 'परत्व' और 'सौलभ्य' दोनों ही गुण प्रचुर होने के कारण इष्टदेव हैं। परत्व इष्टदेव की महानता का और सौलभ्य उनकी उदारता का परिचायक है। श्री वाल्मीकीय रामायण को मधुराचार्य जी ने 'निरतिशय निर्दोष नित्य रसमय' माना है।[1] यह संपूर्ण ग्रन्थ पूर्णतः श्री सीता जी का चरित्र है।[2] हनुमान जी ने सुन्दर काण्ड के १६वें सर्ग में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सीता के लिए ही रामचन्द्र ने सारे दुष्कर कार्य किये।[3] इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ सीताहेतुक है और नारीप्राधान्य के कारण शृंगाररसात्मक है।[4] जिस प्रकार श्री रामचन्द्र अन्य सभी अवतारों के कारण हैं, उसी प्रकार श्री रामायण भी समस्त वाङ्मय काव्य पुराणादिकों का कारण है। यह स्वतः प्रमाण है।[5] अवतारों में केवल श्री रामचन्द्र ही हैं जो शृंगार रस की पूर्ण मूर्त्ति हैं, कारण कि श्री कृष्ण तो श्रीराम के अंशावतार हैं। वस्तुतः सभी अन्य अवतार अवतारमात्र हैं, श्रीराम ही 'अवतारी' हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री मधुराचार्य जी ने जार भाव या परकीया भाव को प्रेमोत्कर्ष का कारण नहीं माना है। गौड़ीय वैष्णवों ने परकीया भाव को इसलिए श्रेष्ठ माना,

---

१ कृत्स्नस्यापि श्रीमद्रामायणस्य निरतिशयनिर्दोष नित्यरसमयत्वम्।

—सुंदरमणि संदर्भ, पृष्ठ १०

२ कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।

—वही, पृष्ठ ११

३ अस्याः हेतो विशालाक्ष्याः हतो बाली महाबलः।
रावणप्रतिमो वीर्ये कवन्धश्च निपातितः॥
अस्यानिमित्तं सुग्रीवः प्राप्तवान् लोकसत्कृतम्।
विराधश्च हतः संख्ये राक्षसो भीमदर्शनः।
अस्याः हेतोर्महद्दुःखं प्राप्तं रामेण धीमता।
परा सम्भावनास्याभिरस्यान्दिशि निवेशिता॥
सागरश्च मदाक्रान्तः श्रीमान् नदनदीपतिः।
अस्याः हेतोर्विशलाक्ष्या विचितेयं महामही।
अस्या कृते जगत्सर्वमणुमन्येत केवलम्॥

—वही, पृष्ठ १४-१५

४ रामायणं नारीप्रधानमिति प्राधान्येन शृंगाररस एवात्र प्रतिपाद्यते।

—वही, पृष्ठ २०

५ यथा श्री रामचन्द्रः स्वेतर सर्वकारणं तथा श्रीमद्रामायणमपि स्वान्य सर्ववाङ्मयकारणमिति वेदादिबोधस्य प्रामाण्यमवगन्तव्यम् तेन श्रीमद्रामायणस्य प्रमाणान्तरापेक्षा नास्त्येति। तद्विसंवादि प्रामाण्यमुपेक्ष्यमिति निर्मत्सरतयांगीकार्यं विद्वद्भिरिति।

—वही, पृष्ठ २३

क्योंकि अनेक विघ्न-बाधाओं के भीतर से जो प्रच्छन्न कामुकत्व है, वही प्रेम को निरतिशय आनन्द-मय बना देता है। इस पर श्री मधुराचार्य का कथन है कि यह तो प्राकृत जन के लिए है। भगवत्पक्ष में बिल्कुल बेमतलब की चीज है। वस्तुतः स्वकीया प्रेम ही उत्तम प्रीति सुख का हेतु है। विघ्न-बाधाएँ इसमें भी क्या कम हैं? गुरुजनों की सेवा और प्रियजनों की आँख बचाकर स्वकीया पत्नी जो प्रेम दे सकती है वह किसी अन्य विधि से नहीं प्राप्त हो सकती है।[1] इसी प्रकार 'जार' और 'उपपति' शब्द का भी अर्थ मधुराचार्य ने अपना स्वतंत्र किया है। 'जार' का अर्थ है संसार-बीज को जीर्ण अर्थात् नाश करनेवाला और 'उपपति' का अर्थ है अन्तर्यामी रूप से प्रीतिदाता।[2] प्रेम शारीरिक होता ही नहीं मानसिक होता है तब शारीरिक अंगसंग का प्रश्न ही कहाँ उठता है? वस्तुतः परात्पर भगवान् को शृंगार या मधुर रस का आलंबन कहा जाता है तब यह रस प्राकृत जनों में परिचित शरीर सुखमूलक शृंगार रस नहीं है, प्रत्युत दिव्य आनन्द रस है। इस प्रकार श्री मधुराचार्य ने शृंगार रस को बहुत ऊँची आध्यात्मिक भूमिका पर रखा है और मर्यादापालन पर बहुत अधिक जोर दिया है। शरीर-सुख को तो उन्होंने घृणित कहा है। वस्तुतः मधुराचार्य के मत से चित्त का परम प्रीति रूप ब्रह्मावगाहन करनेवाला जो परिणाम है, जिसको श्रुतियों ने 'आनन्द' नाम दिया है, वही शृंगार, रस है।[3] इस ग्रन्थ में श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण से अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि पुरुष भी किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देखकर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते हैं, जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देखकर हो उठती है। ऐसे स्थलों पर मधुराचार्य जी प्रायः मानसी प्रीति की चर्चा कर दिया करते हैं, ताकि 'लोकवेदकिंकर' भक्तजन भ्रान्ति में न पड़ें। अपनी व्याख्या में वे प्रायः 'रहस्य' शब्द का आश्रय लेते हैं। रामायण के प्रायः सभी पात्रों के वचनों की श्री मधुराचार्य जी ने कुछ ऐसी व्याख्या की है कि रामायण के प्रायः सभी मुख्य पात्र भगवान् को कान्त रूप में पाने की लालसा करते हैं।

---

१ किं च शृंगारोत्कर्षे प्रच्छन्नकामुकत्वं जारत्वं च कारणं नोपपद्यते। नापि परकीयात्वं बलीयसः स्फुटं परदाराभिमर्शनात्। दौर्लभ्यमिहापि मातृ पितृ गुरु शुश्रूषण, मित्र बन्धु जनसमागम राजानुरोध सेवा विप्रवास मान कलहोपवास यागरोगादिषु व्यक्तं। धर्माधर्म साक्षिभूतेषु करणाधिपेषुच सर्वत्र सर्वदा सर्ववश्यत्सु प्रच्छन्न कामुकत्वमपि जारे नास्ति श्वशुरादि संनिधाने पत्युरपि कामुकत्वस्य सत्वात्।

—वही, पृष्ठ ३९-४०

२ परोपभुक्तायाः सर्वांगु भोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति संसारबीजं नाशयतीति जारः। उप समीपं अंतर्यामिरूपेण व्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः।

—वही, पृष्ठ ४४

३ नहि मिथुनमेव शृंगारः तस्य घृणित्वप्रसिद्धेः अपितु आनन्दापरनामकः परमप्रीतिरूपः चित्तस्य ब्रह्मावगाही परिणामः प्रसिद्धः।

—वही, पृष्ठ ५९

इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण तो केवल स्त्रियों को आकृष्ट कर सके थे, परन्तु राम के रूप और माधुर्य का ही यह गुण था कि उन्होंने पुरुषों को तत्रापि तपोनिरत ऋषियों को भी रमणेच्छु बना दिया। यह रामावतार की श्रेष्ठता है।[1] मधुराचार्य ने भगवान् राम के रासविहारी रूप को ही वाल्मीकि रामायण से प्रतिष्ठापित किया है।[2] जो लोग भगवान् राम के एकपत्नीत्व व्रत एवं मर्यादापुरुषोत्तमरूप की दुहाई दिया करते हैं, उन्हें श्री मधुराचार्य ने 'लोकवेदकिंकर' कहा है और कहा है कि वे लोग इस रस को नहीं समझ सकते, अपनी सीमा में आप ही बँधे हुए हैं। यहीं श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकि का एक वचन उद्धृत किया है— 'सुखैश्वर्यरसज्ञः सन् कामिनी-कामवर्धनः'। श्रीरामचन्द्र सुख ऐश्वर्य के रसज्ञ हैं कामिनियों के कामवर्धक हैं।

मधुराचार्य ने बताया है कि अयोध्या में कामद, केलि, कल्हार, कला, कौशिक, कौमुद, कौंभ, कौशेय, कालिक, तालिक, सिद्ध साध्य, सुसिद्ध, दीर्घ, शौक, सौरभ, शांभव, श्रीसदन, बार्हस्पत्य, वसिष्ठ, शाण्डिल्य, कात्यायन, गणेश्वर आदि अनेक वन हैं जहाँ श्री सीता जी के साथ श्रीरामचन्द्र विहार करते हैं। सीता जी की सहस्रों सखियाँ हैं जिनके नाम चन्द्रा, चन्द्रकला, चांद्री, चन्द्रकान्ता आदि हैं। इनमें रूप, शील, वय में जो सीता जी के समान हैं वे 'सखी' कहलाती हैं, जो न्यून हैं 'दासी' कहलाती हैं। इनके सौ मुख्य गण हैं। मुख्य सखियों के नाम से इन गणों का नाम है, उनमें से कुछ गणों के नाम यों हैं—शान्तागण, कृष्णगण, धृतिगण, प्रकीर्त्तिगण, ज्ञानागण, कांतिदागण, विशारदागण, वुधागण, भाववेत्रीगण इत्यादि।

श्रीरामचन्द्र के एक पत्नीव्रत का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्व का है। मधुराचार्य जी ने कई स्थलों पर इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यहाँ इस प्रश्न का समाधान भी वड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। आदि शक्ति श्री जानकी जी ने अपने पिता श्री जनक जी को जो ध्यान बताया है वह अत्यन्त रहस्यमय है।[3] श्री जानकी जी ने कहा है कि पुरुषोत्तम श्रीराम जी में रस रूप शक्ति

---

१ पुरुषोऽपि श्रीरामं दृष्ट्वा स्त्री भूत्वानेन मिथुनी भवेयमिति निवारवेगो मनोभवो भवति। श्री कृष्णस्तु वेणुरणनैः स्त्र्यादिमोहनः अयं तु स्वसौन्दर्येण स्त्रीपुंसाधारण सर्व जन्तुमोहकः।

—वही, पृष्ठ १०६

२ रामस्तु सीतया सार्द्धं विजहार बहूनृतून्।

३ कामपूर्णं कामवरं कामास्पदमनोहरम्।
कन्दर्पकोटिलावण्यं रमणीगणमनोहरम्॥
रसरूपां विजानीहि शक्तिं मां पुरुषोत्तमे।
भोक्ता स तु महादेवः श्री रामः सदसत्परः॥
यमेक्षणकलाक्षेप विक्षिप्त राघवीतनुः॥
ईक्षया राघवस्यापि मामकी तनुरुत्तमा।
तयोरैक्यात्समुत्पन्नो सब्रह्म ततः परम्॥
सुखमात्यंतिकं तस्माद्येन विश्वं सुखायते॥

—सु० मणि संदर्भ, पृष्ठ ४३२-३३

मैं (श्री सीता जी) हूँ। श्रीराम महादेव हैं, वे सत् असत् से परे भोक्ता हैं। मेरी ईक्षण-कला के आक्षेप से श्रीरामचन्द्र शरीर धारण करते हैं और उनकी इच्छा से मेरा शरीर है, ऐसा समझिए। श्रीरामचन्द्र जी और मेरे शरीर के ऐक्य भाव से यह रसरूप परब्रह्म है। इसी से विश्व सुखी होता है। इसी रस से बहुत से रस—वीर, करुण, हास्य, भयानक आदि उद्भिन्न हुए हैं। सभी शक्तियाँ मुझसे निकली हैं, जो शुद्ध सत्त्वरूप और विकाररहित हैं। वागीशा, माधवी, नित्या, विक्षा, अविक्षा, हरिप्रिया, कूटरूप, मनोजीवन आदि भुक्ति-मुक्ति-प्रदात्री शक्तियाँ ऐसी ही हैं। वे सब श्री रामचन्द्र जी को भोग्यरूपा हैं, सदानन्दा और रसमोदविहारिका हैं। ये मेरे ही समान हैं, इन सब के भोक्ता रघुनन्दन ही हैं।

मधुराचार्य ने बड़े जोरदार शब्दों में अपने पक्ष का स्थापन करते हुए कहा है—'वस्तुतः लीला-रस के लिए अद्भुत अप्राकृत मनुष्य रूपी भगवान् पर ब्रह्मस्वरूप श्री रामचन्द्र में प्राकृत के समान आभास देखना उन्हें विधि-निषेध का किंकर मान लेने के समान है और उनकी अनीश्वरता बताना है। इस बात को तत्त्वज्ञ लोग ही समझ सकते हैं। लौकिक आचार में ही लोक को प्रमाण मानना चाहिए, भगवद्रहस्यात्मक अलौकिक अर्थ में नहीं।'[1]

इस प्रकार, बड़े ही आकर्षक ढंग से इस ग्रन्थ में मधुर रस का प्रतिपादन हुआ है और इस ग्रन्थ से परिवर्त्ती मधुर रस की साधना को बहुत प्रेरणा और शक्ति मिली है।

श्री रामतत्त्वप्रकाश

श्रीरामतत्त्वप्रकाश श्री मधुराचार्य जी का दूसरा ग्रन्थ है, जिसे प्रमाण ग्रन्थ के रूप में मानते हैं। यह ग्रन्थ सं० २००३ वि० में विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय से मुद्रित तथा श्री अखिलेश्वर-दास कृत 'उद्योता' टीका सहित श्री हनुमत् निवास-निवासी श्री रामकिशोर शरण जी के कृपापात्र श्री रामप्रियाशरण द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल त्रयोदश उल्लास हैं। प्रथम उल्लास में अवतारों के अंशांशित्व का निरूपण है, दूसरे में अन्य अवतारों की अपेक्षा श्रीराम की उत्कृष्टता

तादृशं बहुधा भिन्नं रामश्चैव तथाविधाः।
वीर करुणा श्रृंगार हास्य वीभत्स भीतयः।
रसभेदा बहुविधाः शक्तयोर्मे विनिःसृताः॥
शुद्ध सत्त्वात्मिकाः सर्वा निर्विकारा रसोत्सवाः॥
वागीशा माधवी नित्या विक्षाविक्षा हरिप्रियाः।
कूटरूपा मनोजीवा भक्ति मुक्तिफलप्रदाः॥
एता भोग्याः सदानन्दा रसमोदविहारिकाः।
अहं यथा तथैयाश्च भोक्ता देवो रघूद्वहः॥

१ देखिए 'कल्पना', वर्ष, अंक ५ में प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का निबंध—'मधुराचार्य और उनका मणिसंदर्भ'।

सिद्ध की गई है। इसमें मधुराचार्य ने शास्त्रों के अनेक वचनों के उद्धरण लेकर यह प्रमाणित किया है कि राम अवतारी थे, शेष अन्य अवतार। अर्थात् 'एते चांशकलाः पुंसां रामस्तु भगवान्स्वयम्।' 'स्वयं भगवान्' की एक कला के विलास हैं भगवान्।[1] जैसे समस्त अवतारों में अवतारी श्रीराम जी ही हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ नदियों में कारणरूप परमपवित्रा सौम्या श्री सरयू जी हैं। सर्वावतारी भगवान् राम ही द्विभुज से चतुर्भुज हो गये। विष्णु पुराण में जाम्बवान् ने श्रीकृष्ण से कहा है कि हमारे स्वामी श्री राम के अंश जैसे श्रीनारायण हैं, वैसे ही सकलजगत् के परायण श्रीनारायण के आप अंश हैं। चतुर्थ उल्लास में भगवान् राम के तथा श्री जानकी जी के चरण-चिह्नों का सविशेष वर्णन है तथा भगवान् राम के रूप का माहात्म्य है। पाँचवें उल्लास में यह दिखलाया है कि रामायण भी भागवत की भाँति समाधि-भापा में लिखा, समाधि में प्राप्त ज्योति से ज्योतिर्मान् आप्त ग्रंथ हैं। छठे उल्लास में यह सिद्ध किया गया है कि शुकदेव आदि के उपास्य श्रीराम ही हैं। सातवें उल्लास में रामोपासना के परस्पर विरोधी वचनों का परिहार तथा समन्वय दिखलाया गया है। आठवें उल्लास में राम-सीता का नित्य संयोग सिद्ध किया गया है और नवें में रसिक शिरोमणि राम का अनेक नायिकाओं के साथ नृत्य तथा रास विलास प्रतिस्थापित किया गया है। मधुराचार्य ऐसे स्थलों पर अपने पांडित्य और प्रतिभा का प्रचण्ड प्रयोग करते हैं और लगता है अपने मन की वात रामायण के सभी पात्रों से कबुलवा लेते हैं।[2] शब्दों के ऊपर श्री मधुराचार्य जी का विशेष प्रभाव दिखता है और वे अपने पाण्डित्य के बल पर उन्हें एक नई दिशा में मोड़ लेने में सर्वथा समर्थ हैं। 'स्नुषा' शब्द को लेकर ही उन्होंने एक श्लोक वाल्मीकीय

---

१ यथा सर्वावताराणामवतारी रघूत्तमः।
तथा स्रोतसां सौम्या पाविनी सरयू सरित्॥

—अगस्त्य संहिता, उतरार्द्ध

तथा च

सर्वावतारी भगवान् रामश्चतुर्भुजोऽभवत्।—कोश-खण्ड

अस्मत्स्वामिना रामस्येव नारायणस्य सकल जगत्परायणस्यांशेन भवता भवितव्यम्।

श्री विष्णु पुराण में कृष्ण के प्रति जाम्बवान् का वचन ४.३.५३।

२ उपानृत्यन्त राजानं नृत्यगीतविशारदाः।
अप्सरोगणसंघाश्च किन्नरी परिवारिताः॥
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशंगताः।
उपनृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः॥
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः॥

—वा० रा० उ० स० ४२, २०-२२ श्लोक

रामायण का उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि राम ने अनेक नायिकाओं के साथ रासरंग किया।[1] इस प्रकार, अनेक नायिकाओं के एकमात्र नायक श्रीराम हैं, इसके लिए अनेकानेक प्रमाण मधुराचार्य ने इस उल्लास में प्रस्तुत कर दिये हैं।

यदि राम और सीता का नित्य संभोग है तो विरह और वियोग के वचनों का क्या अर्थ है, इसी का समाधान दशम उल्लास का मुख्य विषय है। इस सम्बन्ध में श्री मधुराचार्य ने 'जानकी विलास' के उद्धरण दिये हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि राम सीता के विना और सीता राम के विना एक क्षण भी नहीं रह सकते।[2] एकादश उल्लास में रामलीला की वर्ष-गणना है जिससे स्पष्ट है कि मधुराचार्य ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। बारहवें उल्लास में लवकुश संदेह का निवारण हुआ है। और तेरहवें में लीला का नित्यत्त्व प्रमाणित हुआ है। और इसके लिए स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य से कुछ श्लोक दिये हैं।[3] इस प्रकार श्री मधुराचार्य का 'रामतत्त्वप्रकाश, भी 'सुन्दरमणि संदर्भ' की भाँति एक परम मान्य ग्रन्थ है।

श्री रामनवरत्नसार-संग्रह

श्री रामनवरत्नसार संग्रह परमहंस स्वामी रामचरणदास 'करुणासिंधु' द्वारा संगृहीत तथा पं० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रत्नप्रभा' टीका सहित सं० १९८५ में गोकुल प्रेस अयोध्या द्वारा मुद्रित तथा श्री जानकीघाट के श्री अवधशरण जी द्वारा प्रकाशित है। इसमें नौ अध्याय हैं और भिन्न शास्त्रों से प्रमाण एकत्रित कर रसोपासना के विविध अंगों को परिपुष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि श्री रामचरणदास 'करुणा सिन्धु' बड़े ही सुलझे विचार के संत पुरुष थे और उन्हें किसी प्रकार का आग्रह नहीं था और न अर्थ करने में विशेष खींचतान ही उन्होंने की है। शब्दों की अपेक्षा भाव पर उनकी दृष्टि विशेष है और भावग्राहिणी प्रतिभा का बहुत ही सुन्दर सुसमंजस परिचय आपके इस ग्रन्थ से मिलता है। इन नवरत्नों में

---

१ दृष्ट्वा खलु भविष्यन्ति रामश्च परमाः स्त्रियः।
अपदृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

—वा०, अयोध्या, सं० ८, श्लोक १२

२ रामो हि न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते।
सीता नैव भवेत्सा हि यत्र रामो निदीधति॥
सीता रामं विना नैव नैव सीतां विना हरिः।
जानकीरामयोरेषः संबंधः शाश्वतो मतः॥

—जानकी विलास से रामतत्त्व प्रकाश, पृष्ठ २०६ पर उद्धृत

३ चतुर्धा तु तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम्।
अत्रैव रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥

—रामतत्त्वप्रकाश, पृष्ठ २९४ पर उद्धृत

सर्व प्रथम भगवन्नाम है। विविध शास्त्रों में—जैसे हनुमन्नाटक, वाराहपुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, नृसिंह पुराण, ब्रह्मयामल, काशीखण्ड, सनत्कुमार संहिता, हिरण्यगर्भ संहिता, महाशंभु संहिता, अध्यात्म रामायण, भरद्वाज संहिता, हनुमत् संहिता, अगस्त्य संहिता आदि-आदि ग्रन्थों से नाम-महिमा पर प्रमाण वाक्यों श्लोकों का उद्धरण देकर श्री करुणा सिन्धु ने श्री रामनाम की अपार महिमा को प्रतिष्ठापित किया है। उन्होंने इसमें सखियों के नाम भी पूरे विस्तार से दिया है।[1] अनेकानेक शास्त्रों के उद्धरण से श्री करुणासिन्धु ने यही प्रमाणित किया है कि परात्पर ब्रह्म श्रीराम ही हैं और उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।[2] रूप के अनन्तर धाम की चर्चा है

---

१ तत्र वागीश्वरी देवी माधवी प्रियवल्लभा।
असिता च सिता चैव प्रकृतिर्गुणसंभवा॥
उमादेवी महामाया श्रुतिजात विशारदा।
पद्महस्ता विशालाक्षी कमला हरिवल्लभा॥
सुमुखी प्रेमदा नित्या वृन्दा देवी मनोरमा।
चिदात्मकं सदाभासं नयनानन्ददायकम्॥
स्वकान्तहृदयारामं रामं राजीवलोचनम्।
निर्विकारं पृथुश्रोण्यो राघवं पर्युपासते॥
उर्वशी मेनका रंभा राधा चन्द्रावली तथा।
हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगंधा सुलोचना॥
हंसिनी पालिनी पद्मा हारिणी मृगलोचना।
रामस्य परिनृत्यंति गीतावादित्रमोहिताः॥
कर्पूरांगी विशालाक्षी शक्तिप्रियरसोत्सवा।
चारुनेत्रा चारुगात्रा चार्वंगी चारुलोचना॥
गोपकन्या सहस्रैस्तु गोपबालैश्च तादृशैः।
गोकुलैरावृतं सम्यक् पद्मशंखादिभिः सदा॥
अंगादिपरिसंकीर्णं आत्मादिशक्ति रंजितम्।
वेष्टितं वासुदेवाद्यैः सेवितं हनुमदादिभिः॥ —श्री रामनवरत्न, पृष्ठ २०-२१

२ रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोयं सत्यं सत्यमिदं जगत्॥ —सनत्कुमार संहिता,पृष्ठ २६ पर उद्धृत

तथा च—

शंभु विरंचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना।
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरिहर बंदित पदरेनू॥
उपजहिं जासु अंश गुनखानी। अगनित लक्षि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बामदिसि सीता सोई॥ —रामचरित मानस, बालकाण्ड

और बड़े विस्तार से। शैली वही है, शास्त्र वचनों का प्रमाण। साकेत लोक में भगवान् राम सीता के साथ तथा अन्य अनन्त सखियों के साथ राम विलास करते रहते हैं। ये सब सखियाँ श्री जानकी जी के अंश से उत्पन्न हैं।[1] वह साकेत लोक अथवा दिव्य अयोध्यापुरी सब वैकुण्ठों की मूलाधारा है, मूल प्रकृति से परे हैं, तत्सद् ब्रह्ममयी है, विरजा से उत्तर है, दिव्य रसमय कोषों से युक्त है और वही है श्री सीताराम का नित्य विहार स्थल।[2] इसके अनन्तर सच्चे वैराग्य का लक्षण है। वैराग्य का अर्थ है भगवान् में अतिशय प्रीति-अनुराग, आसक्ति। ऐसा होने से स्वतः ही जगत् से वैराग्य हो जाता है।[3] इसके बाद है साधु लक्षण तथा सत्संग का माहात्म्य कहते हैं कि गंगा पाप का हरण करती है, चन्द्रमा ताप का हरण करता है, कल्पतरु दैन्य का हरण करता है परन्तु साधु समागम से पाप ताप तथा दैन्य एक साथ नष्ट हो जाते हैं।[4] साधु वे हैं जिनका हृदय भगवान् में रमता है और क्षण भर के लिए भी जो भगवान् से पृथक् नहीं होते। ऐसे वैष्णव साधु से कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ हो जाती है और पृथ्वी धन्य हो जाती है।[5] इतना ही नहीं, वैष्णवों

---

१ अनन्ताभिः सखीभिश्च सार्द्धं रामः स सीतया।
स्वेच्छया कुरुते रासं ताः कुजागात्र संभवा॥
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४० पर श्री महारामायण से उद्धृत

२ अयोध्यापुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा प्रकृतेः परा तत्सद् ब्रह्ममय विरजोत्तर दिव्य रत्नकोषाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति। अथर्वण उत्तरार्द्ध से
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४२ पर उद्धृत

३ नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ८० पर उद्धृत

४ गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्यं हन्ति साधुसमागमः॥ आदि पुराण से
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ १-२ पर उद्धृत

५ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं।
मदन्यान् नहि जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥
—श्री मद्भागवत से रामनवरत्न, पृष्ठ १०६ पर उद्धृत

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा भागवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ते पितरश्च धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥
—पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

के चरणोदक से बढ़कर कोई भी तीर्थ नहीं है, क्योंकि वैष्णवों का चरणोदक नित्य गंगा को भी पवित्र करता है।[1] अन्तिम भाग में है भगवान् श्रीराम के रूप, गुण, प्रताप तथा शरणागति का रहस्य और भेद का वर्णन। यह इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है और वैष्णव रस-साधना पर विशेष प्रकाश डालता है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरणदास जी गुह्य रसिक साधना के अनुभवी भी थे और मर्मज्ञ भी, दूसरे शब्दों में श्रोत्रिय भी थे और ब्रह्मनिष्ठ भी। इस खण्ड के आरम्भ में ही उनका अपना रचा हुआ एक दोहा है। बीच में अनेक स्थलों पर श्री करुणासिंधु जी ने स्वरचित पद दिये हैं जिससे उनकी अन्तर्धारा का अनुमान किया जा सकता है। वह दोहा इस प्रकार है—

नखसिख सीताराम छवि जब लगि हृदय न बास,
रामचरण सब साधना तब लगि लखब निरास।।

और अन्त में श्री करुणासिन्धु जी ने इष्ट ध्यान के स्वरचित दो श्लोक दिये हैं जो अद्वितीय हैं—

रामं सान्द्रधनस्वरूपममलं सच्चिद्घनानन्दकम्।
विद्युद्दिव्यदुकूलपीतयुगलं श्रीदामवक्षःस्थलम्।।
मंजीरांगद रत्नकंकणरणत्कांचीलसन्मुद्रिकम्।
मुक्ताहार किरीट कुण्डल धनुः संचित्र वाणोज्वलम्।।
काश्मीरी तिलकालकावृतमुखं साचीक्षणं सस्मितम्।
ताम्बूलाधर पल्लवं रसमयं नासाग्रमुक्ताफलम्।।
ध्यायेच्छत्र सुदिव्यचामरयुतं साकेतरत्नासने।
जानक्यंशभुजं सखीगणवृतं नित्यं निकुंजे स्थितम्।।

इस प्रकार रामनवरत्न में स्वामी रामचरणदास करुणासिंधु जी ने रामभक्ति की रसमयी साधना के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक ज्ञातव्य बातों को बड़े ढंग से सजाकर रख लिया है। शास्त्र के वचनों को ठीक-ठीक तारतम्य से सजा देना ही उनकी अलौकिक समन्वयी प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं प्रशस्त अध्ययन का सूचक है। अर्थ में कहीं भी खींचतान अथवा दूरारूढ़ कल्पना से काम नहीं लिया है।

श्री सीताराम नाम प्रताप-प्रकाश

श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश श्री स्वामी युगलानन्दशरण जी महाराज द्वारा श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, संहिता, तंत्र, नाटक, रहस्य और श्रीमद्रामायण आदि सद्ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा श्रीरामनाममाहात्म्य विषय पर संगृहीत तथा सन् १९२५ ई० में लखनऊ स्टीम प्रेस

---

१ नातः परतरं तीर्थं वैष्णवांघ्रिजलात् शुभात्।
तेषा पादोदकं नित्यं गंगामपि पुनाति हि।। —पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

से मुद्रित (पाँचवाँ संस्करण) भाषा-टीका सहित उपलब्ध है। इसमें कुल २१८ पृष्ठ हैं। श्री रामनाम की महिमा पर इतना भव्य प्रामाणिक ग्रन्थ और नहीं है और इसीलिए बात की बात में इसके कितने संस्करण हुए। इसकी लोकप्रियता का स्वयं यह एक प्रबल प्रमाण है। स्वामी युगलानन्दशरण जी रसिक उपासना के एक सर्वमान्य आचार्य हैं। यह ग्रन्थ इनके अनुभव और पाण्डित्य के प्रकाश से जगमग है। इस ग्रन्थ में बीच-बीच में, स्वामी श्री युगलानन्दशरण जी के रचे हुए दोहे, कवित्त, सवैये भी मिलते हैं जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका विवेचन यथास्थान मिलेगा। नाम-साधना में युगलानन्दशरण जी ने प्रेम को ही विशेष महत्त्व दिया है और प्रीतिपूर्वक, इष्ट के ध्यान के रस में लीन नाम-स्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है, जैसा इनके इस दोहे से स्पष्ट है—

> वड़भागी रागी रसिक, ज्ञान ध्यान रसलीन।
> भजे जानकी जानि निज, नाम महा रसमीन।।

इस दोहे में रसिकोपासना में नामसाधना की संपूर्ण प्रक्रिया आ गई है। अस्तु श्री युगलानन्दशरण जी का 'श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश-ग्रन्थ नाम' साधना का एक अनुपम कोष है जिसमें समस्त शास्त्रों का निचोड़ इस विषय पर एक स्थान पर सुन्दर ढंग से सजाया हुआ मिलता है। यह ग्रन्थ इसी कारण रसिकोपासकों में नाम साधना में रसलीन भक्तों के गले का हार है और सदा रहेगा।

श्री रामतत्त्व-भास्कर

श्री रामतत्त्व-भास्कर श्री हरिहरप्रसाद का रचा हुआ और शृंगार भवन, अयोध्या के श्री प्रमोदवन विहारीशरण जी के तत्त्वावधान में लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद से सं० १९७२ में मुद्रित तथा प्रकाशित हुआ है। पूर्वार्द्ध में अनेक मतों का खण्डन है और अपने मत का स्थापन। उत्तरार्द्ध में श्रीराम का 'परत्व' तथा अन्य देवताओं से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। प्रसंगतः षडक्षर-माहात्म्य भी आ गया है। नामतत्त्व के प्रकरण में विष्णु, नारायण, हरि, गोविन्द, वासुदेव, जगन्नाथ, कृष्ण, राम आदि नामों का अलग-अलग माहात्म्य वर्णित है। फिर नामापराध की चर्चा है और पुनः श्री रामनाम की महिमा का सविशेष वर्णन है। रामनाम सभी नामों से श्रेष्ठ है, मधुर है, आनन्ददाता है, यही ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रमाणित किया है, प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली है।

उपासनात्रय सिद्धान्त

उपासनात्रय सिद्धान्त भी प्रमाण ग्रन्थों में एक आदरणीय स्थान का अधिकारी है। इस कनक-भवन, अयोध्या के महंत परमहंस सीताशरण जी के शिष्य श्री सरयूदास जी 'वैष्णवधर्म प्ररोचक' ने बड़े परिश्रम से वेद, शास्त्र, पुराण, संहिता, तंत्र, रहस्य, नाटक, रामायण तथा और भी अनेकानेक रहस्य-ग्रन्थों के प्रमाण देकर एम्० एन्० प्रेस, बनारस से छपवाया तथा सेठ छोटे-लाल लक्ष्मीचंद अयोध्या से प्रकाशित कराया है। 'उपासनात्रय सिद्धान्त' में श्री रामानुजीय

वैष्णवों के मतानुसार श्रीमन्नारायण की उपासना, श्री वृन्दावन-वासियों के मतानुसार श्री कृष्णोपासना तथा श्री अयोध्यानिवासियों के मतानुसार श्री रामोपासना का सिद्धान्त बड़े ही प्रामाणिक ढंग से शास्त्रों के प्रमाणों से परिपुष्ट वर्णित है। संग्रहकर्त्ता की उदारता एवं समन्वय बुद्धि का पता पग-पग पर मिलता है। अपने इष्ट के प्रति विशेष अनुराग एवं आस्था होते हुए भी अन्य उपास्य के प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव कथमपि खण्डित या दूषित नहीं होने पाया है। यही ग्रन्थकार की विशेपता है। साम्प्रदायिक आग्रह तो इस ग्रन्थ में लेशमात्र भी नहीं है।

इस ग्रन्थ में एक स्थान पर (पृ० १२०) स्वामी रामानन्द को राम का अवतार माना है तथा उनके साथ ही ब्रह्मा का अवतार अनन्तानन्द, नारद के अवतार सुरसुरानन्द, शंकर के अवतार सुखानन्द-सनत्कुमार के अवतार नरहर्यानन्द, कपिल के अवतार योगानन्द, मनु के अवतार पीपा जी, प्रह्लाद के अवतार कबीर, जनक के अवतार भावानंद, भीष्म के अवतार सेना जी, शुकदेव के अवतार गालवानन्द योगिराज, यमराज के अवतार रमादास अथवा रैदास, लक्ष्मी का अवतार पद्मावती हुई। इस कथन का क्या आधार है या क्या प्रमाण है इसका उल्लेख नहीं मिलता। जो हो, कुल मिला कर यह ग्रन्थ त्रिविध उपासना का तुलनात्मक रहस्य समझने के लिए तथा रामोपासना की रसिक धारा की विशेपता समझाने के लिए परम उपयोगी है।

एक बार श्री जानकी जी ने भगवान् राम से रास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस पर भगवान् राम ने कहा कि तुम्हारा ही अंश वृन्दावनेश्वरी श्री राधा जी हैं और मेरे ही अंश श्री गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जी हैं। श्रीराम का ऐसा कहना था कि संपूर्ण गोलोक अपने पूर्ण रास मण्डल के साथ सामने प्रत्यक्ष हो गया तथा राधाकृष्ण श्री सीताराम में लीन हो गये---राधा जी सीता जी में और श्रीकृष्ण श्रीराम में।[1] संग्रहकर्त्ता ने कई स्थलों पर विभिन्न शास्त्र-वचनों से यह प्रमाणित किया है कि भगवान् राम नारायण से भी, श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भगवान् राम के आवेशावतार हैं।[2] इसमें साम्प्रदायिक आग्रह न समझकर साम्प्रदायिक निष्ठा ही मुख्य

श्री जानकी उवाच--

१ **आवां प्रियो निकुंजोऽत्र सर्वर्त्तुसुखशोभितम्।**
कच्चिनौ विहरिष्यावो राधाकृष्णाविव व्रजे।।

श्री राम उवाच--

त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
महेश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनन्दनः।।
ततस्तद् युगलं श्रीमद्राधाकृष्णात्मकं महत्।
सीतारामात्मकं युगमं प्राविशन्नतिपूर्वकम्।।

२ **परा नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।**
यो वै परतपः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराट्।।

मानना चाहिए । आग्रह एक चीज है, निष्ठा और । कोई भी अपनी अनन्य निष्ठा में अपने इष्टदेव को सर्वोपरि मान सकता है और ऐसा मानने में किसी को कथमपि आपत्ति या विरोध नहीं होना चाहिए।

श्री रामपटल

श्री रामपटल हिन्दी-टीका के साथ सं० १९७९ में आनन्द प्रेस, बनारस से मुद्रित तथा छोटे-लाल लक्ष्मीचंद, अयोध्या द्वारा प्रकाशित उपलब्ध है । इसमें वैष्णवों के आचार-विचार, उनके पंच संस्कार, दश लक्षण, मुद्रा, जपविधि, षोडशोपचार पूजापद्धति, नाम, संस्कार, तिलक-धारण आदि पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। इसे चारों वैष्णव मतों के आचार-विचार का कोष ग्रन्थ या 'रेफरेंस बुक' माना जा सकता है, क्योंकि प्रायः सभी उपयोगी साधना शैलियों तथा आवश्यक उपादानों का सविशेष सप्रमाण विवरण इस ग्रन्थ में एक स्थान पर एकत्र मिलता है ।

शृंगारिक खण्ड काव्य

राम-सम्बन्धी शृंगारिक खण्ड काव्य की सृष्टि विशेषकर 'मेघदूत' तथा 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर हुई है। 'मेघदूत' के अनुकरण पर निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—

१. हंस-संदेश अथवा हंस-दूत । इसमें हंस-द्वारा सीता के पास लाये हुए राम-संदेश का वर्णन मिलता है । यह तेरहवीं शताब्दी का ग्रन्थ माना जाता है और इसके रचयिता के कई नाम पाये जाते हैं—वेंकटदेशिक, वेंकटनाथ, वेदान्ताचार्य, श्री वेदान्तदेशिक ।

२. भ्रमर दूत—नैयायिक रुद्र वाचस्पति की २८८ छंदों की इस रचना में सीता के पास भ्रमर को भेजने का वर्णन किया गया है ।

३. भ्रमर संदेश—वासुदेव कृत ।

४. कपिदूत—हनुमान जी द्वारा संदेश वाहन।

५. कोकिल संदेश—वेंकटाचार्य कृत ६०० छन्दों की १७ वीं शताब्दी की रचना।

६. चंद्रदूत—कृष्णचन्द्र तर्कालंकार कृत।

गीत-गोविन्द के अनुकरण पर भी बहुत से राम-सीता-सम्बन्धी काव्यों की रचना हुई है । उदाहरणार्थ—

१. रामगीत गोविन्द जो मूल से जयदेव कृत माना जाता है।

२. गीता राघव नाम से दो रचनाएँ प्रचलित हैं, एक हरिशंकर कृत तथा अन्य प्रभाकर कृत।

यस्यानन्तावताराश्च कला अंशविभूतयः ।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशाः परं ब्रह्म स्वरूपभाः ।।
स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः ।

—श्री उपासनात्रय सिद्धान्त, पृष्ठ १४७

३. जानकी गीता—श्री हर्याचार्य कृत।

४. राम विलास-हरिनाथ कृत।

५. संगीत रघुनन्दन १८ वीं शताब्दी—विश्वनाथ सिंह जू की रचना में गीतगोविन्द के अनुकरण पर साथ-साथ सीताराम की युग्म भक्ति का भी प्रतिपादन किया गया है।

६. राघवविलास—साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ कृत।

७. रामशतक—सोमेश्वर कृत।

८. समार्याशतक—मुद्गलभट्ट कृत।

९. आर्यारामायण:—कृष्णेनु कृत।

इनमें रामकथा की कोई विशेष सामग्री नहीं मिलती, परन्तु इनसे रामकथा की लोकप्रियता तथा समस्त काव्य-शैलियों में व्यापकता का प्रमाण मिलता है।[1]

---

१. देखिए रामकथा—पृष्ठ २००-२०१ अनुच्छेद २५२-२५३-२५४।

आठवाँ अध्याय

रसिक परम्परा का साहित्य

हिन्दी में

अष्टयाम

'अष्टयाम' में अष्टप्रहर की सेवा का वर्णन है। इसमें वाह्य सेवा और मानसी सेवा दोनों का ही वर्णन होता है। मधुरोपासना में अष्टयाम सेवा मुख्यतम अंग है। इस समय भी श्री अवध में अष्टयाम उपासना चलती है। मंगला आरती से लेकर शयन तक की विविध लीलाओं को अष्टयाम कहते हैं। भगवान का स्नान तथा शृंगार, भिन्न-भिन्न समयों की लीला, भोजन और शयन ये ही पाँच काल होते हैं।

सबसे पहला अष्टयाम श्रीकृष्णदास जी पयहारी के शिष्य श्री अग्रस्वामी का है। अभी-अभी चैत्र शुक्ल ६ वि० संवत् १९९५ में पं० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज श्री जानकी घाट अयोध्याजी की व्याख्या के सहित अंमावा-टेकारी की राजराजेश्वरी श्रीमती रानी भुवनेश्वरी कुँवरि द्वारा प्रकाशित हुआ है।

श्री अदग्रस्वामी कृत

भगवान राम के सखा और सखी

१.सुलोचनमणि, २.सुभद्र मणि, ३.सुचन्द्रमणि, ४.जयसेन मणि, ५.वलिष्ठमणि, ६.शुभशीलमणि, ७.अनंगमणि और ८.रसकेतुमणि ये आठों काम को लज्जित करनेवाले सुन्दर कुमार आठों मन्त्रियों के पुत्र हैं। श्रीरामजी के सखा हैं। सदा ही श्रीरामजी की सेवा में तत्पर रहते हैं।

स्त्रियः पुंमस्स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविताः॥ पा० टि०॥

पुनः १.श्री लक्ष्मणा जी, २.श्री श्यामल जी, ३. श्री हंसी जी, ४.श्री सुगमा जी, ५. श्री वंश-ध्वजा जी, ६.श्री चित्ररेखा जी, ७. श्री तेजोरूपा जी, ८.श्री इन्दिरावली जी ये आठ सखी हैं। समय-समय पर पुरुष रूप धारण कर श्री सीतारामजी की सेवा करती हैं।

पुनः आठ दासियाँ हैं—१.निगमा जी, २.सुरसा जी, ३.वाग्मी जी, ४. शास्त्रज्ञा जी, ५.वहुमंगला जी, ६.भोगज्ञा जी, ७.धर्मशीला जी, ८.विचित्रा जी। ये सव नित्य ही सेवा विधान करनेवाली है।

ध्यान

अशोक वन के मध्य एक कल्पवृक्ष है। यद्यपि सभी वृक्ष देव-तरुवरों को लज्जित करने

वाले हैं, तथापि यह विलक्षण है। उस कल्पवृक्ष के पास ही अग्रभाग में मणिमय मनोरम मण्डप है, मन्दिर बना हुआ है, जिसके चारों दिशाओं में द्वार है। उसके बीच में रत्नमयी वेदी है, उस वेदी के मध्य सिंहासन है। सिंहासन के मध्य मणिमय अष्टदल कमल है। कमल के मध्य कर्णिका है। उस कर्णिका में प्रथम मकार चन्द्रबीज है, पुनः अकार भानुबीज है, पुनः ऊपर के भाग में रकार वह्नि : अग्नि बीज है। उसी अग्निमण्डल में श्री सीताराम जी का निवास है।

उसी कर्णिका पर आठ सखियों से सेवित श्री सीताराम जी विराजमान हैं। दक्षिण में चमर, पश्चिम में छत्र, उत्तर में व्यजन लिए श्री भरतादि भ्राता तथा अन्य सेवक परिकर सब ताम्बूल, पुष्पमाला इत्यादि लिए सेवा कर रहे ह।

ईशान कोण में श्री लक्ष्मणा जी हैं, पूर्व में श्री श्यामला जी हैं अग्निकोण में श्री हंसा जी हैं और दक्षिण में श्री सुगमा जी हैं। नैर्ऋत्य कोण में श्री वंशध्वजाजी हैं, पश्चिम में श्री चित्ररेखा जी हैं, वायव्य कोण में तेजोरूपा जी हैं और उत्तर में श्री इन्दिरावली जी हैं। इस प्रकार, सेवा का वर्णन करके अब कुञ्जों के स्थानों का कथन करते हैं कि किस दिशा में किसका कुञ्ज हैं।

उत्तर में, सेवा के सब उपकरणों से युक्त, परम रम्य श्री लक्ष्मणा जी का कुञ्ज है। इसी तरह ललित कुण्ड से पर्व श्री श्यामला जी का कुञ्ज है, और ललित कुण्ड से दक्षिण श्री हंसी जी का कुञ्ज है। पश्चिम में नाना पुष्पों से मण्डित श्री सुगमा जी का कुञ्ज है, पश्चिम और उत्तर के बीच में अर्थात् वायव्यकोण में श्रीमती वंश-ध्वजाजी अपने कुञ्ज में विराजती हैं। इसी तरह ईशान कोण में श्री चित्ररेखा जी हैं और पूर्व-दक्षिण के मध्य अग्निकोण में श्री तेजोरूपा जी अपने कुञ्ज में प्रतिष्ठित हैं। नैर्ऋत्यकोण में श्री इन्दिरावली जी हैं। इसी तरह, सखियों के नाम और उनके स्थान कुञ्ज कहे गये हैं। जैसे — ललितकुण्ड के आठों तरफ आठ सखियों के कुञ्ज हैं, वैसे ही, माधवी कुण्ड के आठों तरफ आठ सखाओं के कुञ्ज हैं। माधवी-कुण्ड के उत्तर कुञ्ज में श्री सुलोचन जी हैं, ईशान-कोण में श्री सुभद्रा जी का कुञ्ज है और पूर्व में श्री सुचन्द्र जी का कुञ्ज है। अग्निकोण में श्री जसयन जी का कुञ्ज है, दक्षिण में श्री वरिष्ठ जी का कुञ्ज है, नैर्ऋत्य में श्री जयशील जी का कुञ्ज है और पश्चिम में श्री अनंगजित् जी अर्थात् जिनको श्री अनंगमणि कहते हैं, वे इस कुञ्ज में स्थित हैं। वायव्यकोण में श्री रसकेतु जी का कुञ्ज है। इस प्रकार, अपने-अपने कुञ्जों में आठों सखा रहते हैं।

प्रफुल्लकमलप्रख्ये मरन्दामोदमेदुरे।
तत्र प्रसूनशयने समासीनान्तु जानकीम् ॥पा० टि०

सोरभ, आमोद : और मकरन्द से भरे खिले हुए कमल के समान ही (ऐसे) कमल दलों की शैया पर (जिनमें सरोवर के नवविकसित कमलों की पंक्तियों से तनिक भी अन्तर नहीं है, जो तनिक भी नहीं मुर्झाए हैं) श्री विदेहराजनन्दिनी जू विराजी हुई हैं। ऐसा चिन्तन करे।

नानाऽलंकारसंयुक्ता सर्वसौन्दर्यशालिनीम्।
आश्लिष्टांगी च हरिणा सर्वाङ्गो रामवल्लभाम् ॥पा० टि०

श्री राम जी से आश्लिष्ट हैं। प्रातःकाल जागकर दोनों प्रिया-प्रियतम, स्नेह भरे, परस्पर मिले हुए हैं — नायिका-शिरोमणि आपका मुग्ध भाव ही, सब शोभा का तथा गुणोद्रेक के गौरव का सूचक है।

रतिलीलासमाकृष्टास्फुरदलकसंयुताम् ।
ध्यात्वादेवीं वरारोहां साधकस्तत्परोभवेत् ॥

परस्पर की स्नेहमयी रतिलीला से समाकृष्ट होने के कारण अलकें बिथुर रही हैं, उनसे संयुक्तवरारोहा देवी, दिव्यगुण लीला-सम्पन्ना श्री रामवल्लभा जू का ध्यान कर साधक अपनी सेवा में तत्पर होवे।

लक्ष्मणा श्यामला हंसी सुगमाश्च चतुर्विधाः।
स्त्रियः पुंसः स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविताः॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी, श्री श्यामला जी, श्री हंसी जी और श्री सुगमा जी, ये चार प्रकार की परम चतुर सखियाँ, समय-समय पर, पुरुष-स्वरूप को धारण कर, अर्थात् कभी स्त्री रूप से कभी पुरुष रूप से सेवा करती हैं।

'यादृशी रामवांछास्यात्तादृशाहिभवन्ति ते'।
'जानक्यासहितं रामं नित्यं मेवेत्तु मानसे'॥पा० टि०

सखियों की सेवा का वर्णन—

लक्ष्मणा ताम्बूलसेवां श्यामला गन्धमोदकम्।
हंसी चन्दनलिप्तांगं सुगमा चन्द्रवासकम् ॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी ताम्बूल से सेवा करती हैं, श्री श्यामला जी अतर आदि सुगन्धित वस्तुओं से एवं मोदक आदि पक्वान्नों से सेवा करती हैं, श्री हंसी जी कोमल करकमलों से मृदु अंगों में चन्दन आदि लेपन करने की सेवा करती हैं।

निगमा चामरसेवां च सुरमा वस्त्रकं तथा।
वाग्मी पादाब्ज सेवां च शास्त्रज्ञा वाद्यमंगला॥पा० टि०

श्री निगमा जी चामर की सेवा, श्री सुरमा जी वस्त्र की सेवा, श्री वाग्मी जी चरण कमलों की सेवा और शास्त्रज्ञा जी मंगलमय अनेक प्रकार के सुरीले बाजों को बजाकर मंगलमय गान के द्वारा सेवा करती हैं।

आलापे बहुमंगला भोगज्ञा गायने रता।
धर्म्मशीला पादसेवा नित्य सेवा शयाह्निकम्॥पा० टि०

श्री बहुमंगला जी अनेक तरह के रागों का आलाप करती हैं, श्री भोगज्ञा जी भी गान करने में तत्पर रहती हैं और धर्मशीला जी चरण-सेवा करती हैं।

जब बाटिकादिक विहार करके श्री रामजी लौटते हैं, उस समय सखियों को संग लेकर गोपुर के गवाक्ष नाम झरोखों में बैठकर श्रीरामजी के मुख कमल को श्री रामवल्लभा जी अवलोकन करती हैं।

एवं विचिंतयेद्दृष्टः प्रेमानन्देन साधकः।
सीतारामविहारंच प्रेमामृतरसार्णवम्।।पा० टि०

इस तरह से हर्षित होकर प्रेमानन्द से प्रेमावृत्त रस का समुद्र श्री सीताराम जी का विहार मन में साधक को चिन्तन करना चाहिए।

सोलह श्रृंगार

स्नानं नासाग्रं मुक्तां च नील कौशेयवस्त्रकम्।
स्वर्ण सूत्रां दिव्य वेणीमंगरागानुरंजितम्।।पा० टि०

स्नाम और नासाग्र मुक्ता का धारण करना और नील रंग की रेशमी साड़ी धारण करना जिसमें सुवर्ण के सूत्रों की मनोहर चमकदार किनारी बनी है, दिव्य वेणी का संवारना और अंगराग से अनुरंजित करना।

कांची गुणलसलन्नीवीं मणिस्रगवतंसिकाम्।
कराग्रे धृतपद्मां च नागवल्ली दलान्विताम्।।पा० टि०

सुवर्ण की मणिजटित कांची अर्थात् छुद्र घण्टिका और उसके मनोहर गुण से नीबी का अग्र भाग शोभित होता है और मणियों की माला तथा कर्णफूल आदि सबसे श्रृंगार होता है, पुनः कर-कमल में पद्म को धारण करती हैं और ताम्बूल को ग्रहण करती है।

सिन्दूर विन्दु तिलकां कस्तूरी चिबुकांचिताम्।
अंजनेना रंजिताक्षीं वलयादिविभूषिताम्।।पा० टि०

सिन्दूर का विन्दु तिलक स्थान पर धारण करती है। कस्तूरी का अति सूक्ष्म विन्दु चिबुक के ऊपर धारण करती है जिससे अति शोभित होती है। पुनः अंजन आदि से नेत्र कमल रंजित होते हैं और वलयादि अर्थात् चूड़ी आदि मणि-रचित दिव्य भूषणों से कर-कमल शोभित होते हैं।

यावकै रक्तपादां च सिंजन्मंजीरभूषणाम्।
श्रृंगार षोडशयुतां सीतां ध्यायेद्धृदम्बुजे।।

फिर यावक अर्थात् महावर से आपके चरण-कमल अति शोभित किये जाते हैं और सुन्दर मनोहर नूपुरादि मंजीर भूषणों से शोभित होती है। इस तरह षोडश-श्रृंगार से युक्त सर्वेश्वर श्री रामजी की वल्लभा श्री जानकी जी को हृदय कमल में ध्यान करे।

ध्यान मंजरी

श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी की यह 'ध्यान मञ्जरी' रामरसिकोपासकों की परम प्रिय पोथी है। एक बहुत प्राचीन प्रति कामेन्द्रमणि जी के शिष्य रसरंगमणि जी की 'मकरन्द माधुरी' टीका के साथ प्राप्त है। टीका स्वयं अपने आप में रसिकोपासना का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें स्थान - स्थान पर शंकाएँ की गई हैं और विस्तार से जमकर, उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। टीका की शैली पुरानी है और 'किंभूती' है; पर तत्त्व-निरूपण बड़ा ही प्रभावशाली है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल ८० पदों का है। आरम्भ में श्री अवधपुरी का ध्यान है, फिर वहाँ के निवासी धर्मशील नर-नारियों का वर्णन है। पुनः अन्तःपुर निवासिनी युवती सेविकाओं का उल्लेख है। सरयू जी के वर्णन में अग्रदास जी ने कमाल कर दिया है। वहाँ , श्री सरयू तट पर, अशोक वन है जहाँ एक कल्पवृक्ष है। उसी कल्पवृक्ष की स्वर्ण वेदिका पर एक रत्न सिंहासन है जिसपर दिव्य पद्मों का एक शुभासन है। उसके बीच में दिव्य कर्णिका है जो एक तेज से आवेष्ठित है। उस पर युगल सरकार श्री सीताराम सुशोभित हैं।

अब स्वयं श्री अग्रदास जी के शब्दों में ही इस दिव्य ध्यान का आनन्द लीजिए ——

श्री राम का ध्यान——

कल्प वृक्ष के निकट तहाँ यह धाम मणिन युत।
कंचन मय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत।।

स्वर्ण वेदिका मध्य तहाँ यह रतन सिंहासन।
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन।।

ताके मध्य सुदेस कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत तहँ तेज वन्हि सम उपमा भ्राजै।।

तामधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा।
अखिल रूप अमोघि सजल घन तन की शोभा।।

शिर पर दिव्य किरीट जटित मंजुल मणि मोती।
निरखि रुचिरता लजित निकर दिन कर की जोती।।

कुण्डल ललित कपोल जुगल अति परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेस दिनेशा।।

मेचक कुटिल सुचारु सरोरुह नयन सुहाए।
मुख पंकज के निकट मनहुँ अलि छौना आये।।

भृकुटी त्रय पद सगुन मनहुँ अलि अवलि विराजै।
नासा परम सुदेश वदन लखि पंकज लाजै॥

चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षत।
मन्द हास मृदु वयन जनन को आनन्द वर्षत॥

दीरघ दीप्त ललाट ज्ञान मुद्रा दृढ़ धारी।
सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी॥

परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै।
उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुभ मणि भ्राजै॥

यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु विराजै।
उभै भुजा आजानु नगन जटि कंकन राजै॥

चूनीरतन जराय मुद्रिका अधिक संवारी।
शोभित अद्भुत रूप अरुण की छवि अनुहारी॥

भूषण विविध सदेश पीत पट शोभित भारी।
लसत कोर चहुं ओर छोर कल कंचन धारी॥

रोमावलि बनि आइ नाभि अस लगति सुहाई।
त्रिवलि तामधि ललित रेख त्रय अति छवि छाई॥

कटि परदेश सुढ़ार अधिक छबि किंकिन राजै।
जानु पुष्ट बनि गूढ़ गुल्फ अति ललित बिराजै॥

नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहै।
रविकल सुरसंगीत सुनत परिजन मन मोहै॥

युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित।
पद्मा नित्यनिकेत शरण गत भव भय खंडित॥

दक्षिण भुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै।
दिव्यायुध सुविशाल बाम कर धनुष विराजै॥

पोड़स बरस किशोर राम नित सुन्दर राजै।
राम रूप को निरखि बिभाकर कोटिक लाजै॥

अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द बाम दिशि जनक कुमारी॥

श्री सीता जी का ध्यान

नगन जरे छबि भरे विविध भूषण अस सोहैं।
सुन्दर अंक उदार विदित चामीकर कोहैं॥
अलक झलकता श्याम पीठ सोभित कल बेनी।
सुन्दरता की सींव किधौ राजति अलि श्रेनी॥
रचित सु विविध प्रकार मांग जरतार संवारी।
मनहुं, सरसरी धार बनी शोभा अस भारी॥
पाटन की लर और बड़े बड़े उज्ज्वल मोती।
सघन तिमिर के मध्य मनो उड़गण की जोती॥
रतन रचित मणि जटित शीस पर विन्दा छाजै।
ललित कपोन सु युगल करन ताटंक विराजै॥
उज्ज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहैं।
राजत परम सोहाग भाग को भवन किधौ हैं॥
गोरोचन को तिलक ललित रेखा बनि आई।
उन्नत नासा सुभग लसत वेसरि जु सुहाई॥
भृकुटी नयन विशाल सौम्य चितवनि जग पावन।
मानहुं विकसित कमल वदन अस लगत सुहावन॥
अरुण अधर तर दसन पांति अस लगति सुहाई।
चारु चिबुक बिच तनक बिन्दु मेचक छबि छाई॥
कंठ पोति मणि जोति सु छबि मुक्ता बरमाला।
पदिक रचित कलधौत विराजत हृदय विशाला॥
हेम तन्तु कर रचित अरुणा सारी रंग झीनी।
कंचुकी चित्रित चतुर विविध शोभित रंग भीनी॥
वर अंगद छबि देति बाहु अस लगति सुहाई।
करन चुरी रंगभरी ललित मंदरी बनि आई॥
पद्मराग मणिनील जटित युग कंकण राजै।
मनहुं वनज के फूल दुरेफनि पंक्ति विराज॥
लहगा कटि परदेश भांति अति शोभित गहिरी।
अरुण असित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी॥

हरित नगन कर जरित युगल जेहरि अस राजै।
तिन पर घुंघुरु और अग्र बिछिया सुबिराजै।।
तिन पर नग जु अमोल ललित चूनी गण लाये।
चरण चारु तल अरुण सहज ही लगत सुहाये।।
अतुलित युगल स्वरूप कवन अस उपमा जिनकी।
जेतिक उपमा दीप्ति शक्ति करि भासित तिनकी।।
यहि विधि राजत राम अवधपुर अवध बिहारी।
दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी।।

पार्षदों का ध्यान

दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा।
उभय हेतु अनुसार धरे बृत खंडित धारा।।
शेष लिये कर छत्र भरत लिये चंवर दुरावैं।
अनि सुवन करजोरि सु प्रभु की कीरति गावैं।।
अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी।
सुरति शक्ति विमलादि रहत नित आज्ञाकारी।।
जो जो जेहि अधिकार सचितव सेवा मन बासै।
बीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहिं उपासै।।
यही ध्यान उर धरै स्वयं तन सुफल करेवा।
भव चतुरानन आदि चरन बन्दै सब देवा।।
यह दम्पति बर ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावै।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुं नहिं पावै।।
पौरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित सोहैं।
चंपतार मंदार कल्पतरु देखत मोहैं।।

रामाष्टयाम

श्री नाभादास जी

द्वादश वन वर्णन

प्रथमहिं वन शृंगार सुहावन। वन विहार तमाल अति पावन।।
वन रसाल चंपक चन्दन वर। पारिजात अशोक मंगल तर।।

वन विचित्र कवि कहत कदंबा। वन अनंग रस अलि अवलंबा।।
नवल नाग केसरि वन नीको। ललित लालि तो रघुवर सीको।।
तृदिशि नगर सरयू सरि पावनि। मणिमय तीरथ अमित सुहावनि।।
विकसे जलज भृंग रस भूले। गुंजत जल समूह दोउ कूले।।
परिखा त्रिविध सुधा सम वारी। विकसे त्रिविध कंज मनहारी।।
विच विच महल पंक्ति वनि आई। स्वर्ण रत्न मणि सुभग सुहाई।।

परिखा प्रति चहुं दिशि लसत, कंचन कोट प्रकास।
विविध रंग नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास।।

दिव्य फटिक मय कोट की, शोभा कहि न सिराय।
चहुं दिशि अद्‌भुत ज्योति मय, जगमगात सुख पाय।।

महल की शोभा

भीतर कोट वोट अति पावन। चिंता मणि मय भूमि सुहावन।।
चहुं दिशि योजन चार सुहावा। सो अवधेंद्र भवन श्रुति गावा।।
पंच चौक राजत अति नीके। कौशलसुता राजमहिषी के।।
पूरव चौक सखी बहु राजैं। वेत पाणि रक्षण हित काजै।।
दक्षिण राज किंकरी दासी। महल टहल नित निकट सुपासी।।
पश्चिम चौक सैन की शाला। राजति तहां सुमंगल बाला।।
रघुवर धाय पुत्र सव पाले। पान पान सुख वहु विधि लाले।।
उत्तर चौक करत सव सेवा। राजत रंग राज कुल देवा।।

कुल गुरु नृप पुत्रन सहित, वधुन सहित रनिवास।
ज्ञाति वर्ग मंत्री मुदित, पूजत सहित हुलास।।

अन्तःपुर का वर्णन

पुनि तहं ते षोडश सहचरी। गाइ उठीं प्रीतम रंग भरी।।
तिन ते अलि नव अष्ट सुहाई। निज निज थल गावत छबि छाई।।
अंतःपुर जहं सिय पिय राजै। शोभा कहत शेष श्रुति लाजै।।
रतन जड़ित परयंक सुहावा। स्वर्ण रत्न मणि खचित सुपावा।।
विविध विचित्र चित्र रंग राजै। निरखत अलिवलि सहित समाजै।।
अति अद्‌भुत उपमा छविछाये। श्रुति संहिता पुराणन गाये।।
तेहि ऊपर अति ललित बिछोना। क्षीर फेन सम कोमल लोना।।
तेहि ऊपर सुमनन की शोभा। कहत न बनै देखि मन लोभा।।

चित्र विचित्र अनी न रचि, सेज सुमन पच रंग।
लाल लाड़िली रस भरे, सोवत दोउ हित संग ॥
छतुरी ललित ललाम, राजत वर परयंक कर ॥
चहुंदिशि मुक्ता दाम, विशद कांति झालरि ललित ॥

कनक दंड वर चारि सुहावन। रचित अरुण मणि अति मन भावन ॥
अति सुंदर सनेह सुख खानी। कहत सुकरि सद ग्रन्थ वखानी ॥
अद्भुत रंग कांति सुखरासी। कुंज महल छवि प्रभा प्रकासी ॥
गज मुक्तन की झालरि झमकै। मणिमय दीप ज्योति मधि चमकै ॥
झीने पट अति परदा परे। पवन प्रसंग व्यजन शिर ढरे ॥
तेहि चारिउ दिशि फरस बिछाये। कनक तारमणि जड़ित सुहाये ॥
कहुं अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना विच बीचा ॥
कहुं कंचन की चौकी धरी। झारी श्री सरयू जल भरी ॥

शीतल मधुर सुगंध सुख, स्वाद विशद रस रूप।
तृषा हरन मंगल करन, आनंद भरन अनूप ॥

रत्न जड़ित वहु धरे कटोरा। बहु मेवन युत स्वाद न थोरा ॥
पान दान वीरनि ते भरे। अगिणित भांति सुरभि कहुं धरे ॥
पुनि तेहि पीछे परदा डारे। तहं नृत्यत उठि सखी सवांरे ॥
प्रथम वरन अरु अष्टम जोरी। पुनि जहं ते षोडस सहचरी ॥
तेहि पीछे ललना बहु राजै। निज निज सौ जलि ये सब भ्राजै ॥
कोउ ताम्बूल लिये कोउ झारी। कोउ सुमनन श्रृंगार सवांरी ॥
रंग रंग के गजरा लीन्हें। प्रीतम मग चितवति चित दीन्हें ॥
अन्तहपुर की धुनि सुनि पाई। निज निज थलनि नचौ सब जाई ॥

कुंज कुंज ते अलि अमित, विविध सौज के साज।
चन्दन अगर सुगंध सुभ, सुमन सुमंगल काज ॥
युगल लाल प्रिय कुंज सुख, नित नव विमल विहार।
पंच भावरति युगल मति, वर्णत लहत न पार ॥

यहि विधि लखि जागे रघुराई। पुनि परदा इक दीन उठाई ॥
जागे प्रीतम निशि रंग भीने। अरसपरस श्रृंगार सब कीन्हें ॥

लसत लड़ैती लाल दोउ, सिथिल सनेह सुअंग।
दंपति संपति परस्पर, समर समर रसरंग ॥

मंगल थार अनेक विधि, लाल लाड़िली पास।
आगे धरि मंगल अमित, गावहिं सहित हुलास॥
सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार।
कोउ न राम सम दूसरो, नेह निवाहन हार॥

राम कुंवर छवि देखन लागीं। अंग अंग श्याम रूप अनुरागी॥
त्रिदश वर्ष मुग्धा को श्यामा। मध्या काम केलि विश्रामा॥
कोउ वय संधि केलि प्रिय नारी। युगल रंग रमु रूप विहारी॥
कोउ नित नवल लाल मुख चाहें। यहि विधि प्रीति रीति निरवाहें॥
गद गद कंठ रोम सुरभंगा। लहत अष्ट सात्विक कोउ अंगा॥
सबकी प्रीति रीति जिय जानत। तन मन वचन लाल सन मानत॥

अन्तःपुर में सखियों की सेवा

अन्तःपुर की गली सुहाई। तेहि मग बहु ललना चलि आई॥
चतुर शिरोमणि सिय सुख पाई। भगिनी सब समीप बैठाई॥
जरकस पट परदा अति झीनों। स्वर्ण सूत्र मणि खचित नवीनों॥
तेहि भीतर बैठी सब राजहिं। रति शत कोटि देखि छवि लाजहिं॥
सब समाज देखहिं सुख पाई। श्रवण वचन सुख सुनत सुहाई॥
रस अगम्य सुख बरणि न जाई। युगल ललित वात्सल्य सुहाई॥
पिय मुख लखि सिय संग विराजी। निज निज परिकर युत सुख साजी॥
अग्र भाग सुभगा अति सोहैं। सहजा हास विलासन मोहैं॥
श्री सरयू झारी लिये ठाढ़ी। पान दान सुख तुलसी बाढ़ी॥
कमला विमला चमर ढुरावै। चन्द्र कला कछु तान सुनावै॥
और सबै निज टहल सुधारैं। ठाढ़ी दंपति चमर संवारैं॥

जेहि जेहि अंग की माधुरी में मन लाग्यौ जास।
सोइ सोइ अंग निरखत सकल, मन में परम हुलास॥

कोउ दंपति चितवनि को निरखै। मंद हंसनि मन आनंद बरखै॥

यहि विधि सबके नयन थकि, रहे माधुरी माहिं॥
सो लखि दंपति कोर दृग, अरस परस मुस्क्याहिं॥
कुंज कुंज प्रति सहचरी, आवत नावत माथ।
सन्मानत मृदु वचन कहि, लखि छबि होत सनाथ॥

भोजन के समय

प्रथम मधुर रस पंच ग्राम करि। भोजन करन लगे आनंद भरि॥

सिय निज कर पिय मुख में देहीं। मन्दस्मित करि लालन लेहीं॥
पुनि पिय सिय मुख ग्रास देत हंसि। व्रीड़ा युत लै होत प्रेम वसि॥
जेहि व्यंजन पर सिय कर देहीं। सो प्रीतम पहिले धरि लेहीं॥
लैकर ग्रास सीय मुख माहीं। देत लेत सुधि सुधा कि नाहीं॥
प्रीति परस्पर अघटित दोऊ। सखि सुख निरखि लखत मुख कोऊ॥
नैन शयन करि आपुस माहीं। एक एक ते लखि मुसुकाहीं॥
युगल रूप रति सरस सनेही। भोजन की सुधि रहत न केही॥
कहुं जल शोभा सिय कर लेहीं। लालन मुख पंकज महं देहीं॥
पुनि सोइ लै पिय सिय मुख लावै। हित सों प्रियहि पान करवावै॥
जब पिय धरै सीय तेहि टारै। पिय सोइ लै निज वदन संवारै॥
तब सिय औ रनवीन उठावै। लाल तौन लै सिय मुख प्यावै॥
लाल चहै निज कर कछु पावै। तब सिय निज कर शीघ्र पवावै॥
गूढ़ प्रेम लखि पिय मुसकाहीं। प्रेम क्षुधा कहि सकत न नाहीं॥

नृत्य संगीत

छंद गीत बहु रागन करहीं। निज निज गुण नृत्य न संचरहीं॥
संगीतादि नृत्य बहु कीन्हे। कला अनेक राग रस भीने॥
जिनहिं देखि रंभादिक नारी। अचरज पाय करत मनुहारी॥
दंपति एक सिंहासन राजै। चमर छत्र लिये अली बिराजै॥
देखि देखि दंपति मुसक्याहीं। रीझ देत बहु तिनहिं सराहीं॥
पान दीन्ह तिन्ह शिर धरि लीन्हा। निज परिकर कहं आयसु दीन्हा॥
श्री सहजा उठि यंत्र सुधारै। चंद्रकला निज वाद्य संवारै॥
रस मंजरी श्रृंगार करि आई। अमित कला गुण निपुण सुहाई॥
करि प्रणाम तेहि राग अलापी। निज निज सदन रागिनी थापी॥
परिकर युत सब रूप सुनाये। मानहुं रागमहल भरि छाये॥

शयन

जाय पलंग बैठे रस भीने। शयन करन की दिशि रुच कीन्हे॥
पौढ़े लाल प्रिया पद लालत। रस मंजरी चमर शिर चालत॥
रस मंजरी चरण तत्र लागी। सिय आयसु शिर धरि अनुरागी॥

श्री कृष्णदास अवतार, शिष्य अनंतानंद के।
भये शिष्य सब पार, पयहारी परसाद ते॥
अंस परस्पर भुज धरे, निशि दिन पूरण काम।
प्रेम सखी हिय में बसें, सियाराम छवि धाम॥

अलंकार, छंद, रस और पिंगल के प्रेमियों के लिए भी यह ग्रंथ बड़े ही महत्त्व का है। रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अलंकारों की जैसे हाट लग गई है। रस की दृष्टि से तो नाभादास जी का यह 'अष्टयाम' एक आकर ग्रंथ है।

नेह-प्रकाश

महात्मा बाल अलीजी

'नेह-प्रकाश' में कुल १४८ दोहे हैं; पर सब-के-सब अनमोल हैं। भाषा बड़ी साफ-सुथरी, और भाव बड़े ही रसमय और प्रगाढ़ हैं। आरंभ में आह्लादिनी शक्ति का स्वरूप विचार है जो आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एवं साधना की दृष्टि से सम्पन्न है। इसके अनन्तर सखियों की नामावली और उनकी विशिष्ट सेवाओं का प्रकरण है जो रसोपासना के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिपादित है। यह पक्ष सब प्रकार से शास्त्र एवं अनुभव के आधार पर अवलंबित है। तदनन्तर श्री रामजी का सीताजी के प्रति प्रणय-निवेदन है। तब आता है---रस-विलास, प्रेम विलास, रूप विलास। तदन्तर है सखियों के वचन श्री जानकी जी के प्रति, फिर श्री राम के प्रति। अन्त में सीता की छवि का बड़ा ही भव्य वर्णन है जो एक साथ उनके रूप और प्रभाव की महिमा से सम्पन्न है। यह छोटी सी पोथी रसिकोपासना में विशिष्ट गौरव की सहज ही अधिकारिणी है।

(रहस्य प्रमोद भवन, श्री जानकी घाट अयोध्या में हस्तलिखित प्रति प्राप्त है।)

'सिद्धान्त तत्त्वदीपिका' में परम तत्व की व्याख्या कथानक के रूप में समासोक्ति और रूपकोक्ति के सहारे वर्णित है। आरंभ में राजा विश्वकाय की पुत्री प्रभावती के रूप गुण यौवन शील सौन्दर्य का वर्णन है---

> प्रभावती इति नाम अनूपा। वरनि न परै अलौकिक रूपा॥
> शची उर्वशी मदन पियारी। सुर किन्नर पन्नग नर नारी॥
> जाके रूप ओप सो पगीं। जहँ तहँ रहत सबै जगमगीं॥

प्रभावती के निसनवीन रूप और जगमनमोहनी कान्ति से शची, उर्वशी, रति आदि रूपवती एवं कान्तिमती हैं। इस प्रकार प्रथम प्रकाश में प्रभावती का स्वरूपनिरूपण है। अब स्वभावतः विश्वकाय के मन में योग्य वर खोजने की चिन्ता होती है। वह परम भजनीय को खोजना चाहते हैं---उसे जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भजते हैं। दूसरे प्रकाश में इसी वर-वरण का प्रसंग है। इतने में ही 'सुसंभ्रमा' नाम की एक नटी का प्रवेश होता है जो प्रभावती को विश्व प्रपंच की मोहिनी में उलझा लेती है और प्रभावती पर उसका सम्मोहन बहुत व्यापक रूप में पड़ जाता है। चौथे प्रकाश में इसी का वर्णन है। परन्तु एक बार मन में परम भजनीय को वरण कर लेने के कारण ही 'कृपावती' का समागम होता है और वह सहज भाव से प्रभावती को प्रेम मार्ग पर लाना चाहती है। पंचम प्रकाश में इसी का वर्णन है। 'कृपावती' राम के रूप, यौवन, माधुर्य, आनन्द संदोहता, सुखमूर्त्ति, वशीकरणता आदि का वर्णन करती है और रामभक्ति की महिमा का वर्णन करती है।

यही छठा प्रकाश है। सातवें प्रकाश में ध्यान, जप, सेवा, साधन का वर्णन है। आठवें में तीर्थयात्रा, पाषंड मतों का वर्णन है। सब से पहले नवें प्रकाश में अभेदवाद का कस कर खंडन किया है। अब प्रभावती का ध्यान राम की प्रेमाभक्ति की ओर उन्मुख होता है और अब उसका नाम 'सुमुखी' हो जाता है। यहाँ अब कृपावती श्री तत्व का विश्लेषण सुमुखी को सुनाती है। यहाँ 'कृपावती' थोड़ी देर के लिए गायब हो जाती है और उससे मिलने के लिए सुमुखी के मन में चटपटी जगती है और वह बहुत ही व्याकुल हो जाती है। एक-एक क्षण कल्प की तरह बीत रहा है। कुछ काल के अनन्तर कृपावती का दर्शन होता है और कृपावती 'सम्बन्ध' का वर्णन करती है—संबंध की महिमा का बड़ा ही भव्य वर्णन है। यहाँ पंच काल, पंच संस्कार, अर्थ पञ्चक का वर्णन नारद पञ्चरात्र तथा पद्मपुराण के आधार पर है। (कण्ठी, तिलक, मंत्र, आश्रय और नाम) तदनन्तर भगवान राम के रूप, लीला, प्रभाव आदि को भगवान श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया गया है और पुनः युगल दंपति रस विहार की दिव्य शोभा का वर्णन है।

> प्रिय को निज स्वामी पुनि जानै। सिय सहचरि आपन को मानै॥
> निस दिन निरखै रास बिलास। ते सिंगार भक्त नित पास॥

इस प्रकार परमा भक्ति का सविस्तर वर्णन सुन कर 'सुमुखी' कृतार्थ हो गई और फिर पंच संस्कार ग्रहण कर दीक्षित हो गई। दशम प्रकाश में पञ्च संस्कारों का ही वर्णन है। यहां से तत्व निरूपण का प्रकरण शुरू होता है। अर्चा, विभु, विग्रह आदि के भेद, सप्तावरण का रहस्य, नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्चर्यमयी मिथिला पुरी का वर्णन। 'विरजा' इस पार एक आचरण में गोकुल वृन्दावन, नन्द-यशोदा, राधा-माधव का लीला विलास वर्णन है। 'विरजा' पार सप्तावरण भेद कर दिव्य साकेतधाम तथा वहाँ राम-जानकी के दिव्य लीला विहार का विस्तार से वर्णन सुन कर 'सुमुखी' के हृदय में उस लीला में प्रवेश पाकर उस परम सुख की उपलब्धि की अभिलाषा जगती है। 'सुमुखी' का प्रवेश इस लीला में होता है—

> चले रमन रसिया रस ख्याल। निरखि सखीं सब भई निहाल॥
> चलीं संग मिलि छवि सौ भरीं अति अनूप रस केलि निंदरी॥
> सुन्दर केस मन्द मुसुकाहीं वर नितम्बिनी उरु दृढ़ माहीं॥
> पीन पयोधर भूषण भूरी गान वाद्य कुशला छवि मूरी॥
> जिनकी कला कला कौ अंस प्रगटीं तिय रमादि अवतंस॥
> सिय परिचारीं पिया पियारीं ऐसी सखी अनन्त निहारीं॥

इस प्रकार 'स्वरूप-निरूपण' का प्रसंग द्वादश प्रकाश में आया है। इसके अनन्तर चार-पाँच अध्यायों में विभव, अर्चा, विग्रह आदि अवतारों का वर्णन, तथा 'अर्थ पञ्चक' का विवेचन है। इसके पश्चात दास्य, सख्यादि पञ्च भाव का सविशेष वर्णन है। इसके पश्चात् 'श्रृंगार भाव' का वर्णन है। यहाँ भगवान् राम और भगवती जानकी के अंगों का बड़े ही आनन्दोल्लास पूर्वक वर्णन है—

पियवस प्रिया प्रियावस पीय, उरझे रहत रैन दिन हीय।
सिय हिय के जीवन हैं पीय, पीय के प्रान जीवन धन सीय ।।

जब लगि लाल सियहिं ढिंग निरखैं, तब लगि चहुँ दिसि आनन्द बरखैं।
यह लखी ढिंग से प्रान पियारी पिय तें पल न होत कहुँ न्यारी।
इक टक पिय सिय रूप निहारैं अपना सरवस तापर वारैं।
ज्यों-ज्यों वह छवि पीवैं त्यों वह तृषा अधिक उपजावैं।।
निसि दिन रहत तहाँ सुख भीनौ पिय छवि जल करिके मन मीनौ।
'सुमुखी' कहे हरि पूरन काम सब सुखधाम आतमाराम।
नहिं कहुँ परतें सुख की चाही क्यों तिय रमन संभवै ताही।
तेहि कह्यौ सिय हरि भिन्न न और, एक स्वरूप द्विधा तनु गौर।
एकाकी नहिं रमन सुहाई पति पत्नी सु भयो प्रभु सोई।।

इस प्रकार संभ्रमा का जाल काट कर प्रभावती अपने परम इष्ट को प्राप्त कर लेती है। यहाँ इतना स्मरण रखने योग्य है कि प्रभावती सुमुखी ही साधन है, संभ्रमा माया है, कृपावती गुरु है और भगवत्प्राप्ति इष्ट मिलन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ कुल ३६ प्रकाशों में समाप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त महात्मा बाल अली जी की बड़ी 'ध्यान मंजरी' भी रसोपासना का एक मुख्य प्रामाणिक ग्रंथ है।

अब यहाँ 'नेह-प्रकाश' से कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

गूढ़ वेद वेदान्त को निज सिद्धान्त स्वरूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गन भूप।।

सो वह परम उपासना वहै जु परम उपासि।

एकाकी नहिं रमन ह्वै चहत सहायहि सोइ।
रमत एक ही ब्रह्म यह पति पत्नी तनु होइ।।

जग जिनके सुख सिन्धु के लय उपजीवत जीव।
पगे प्रेम रस स्वाद सौं रमत प्रीय तम पीव।।

सींचे विविध सुगन्ध नव मुक्ता वन्दन माल।
चहुँ दिशि अगणित नगन युत बने झरोखा जाल।।

सुन्दर गादी गेंडुवा विविध खेल के साज।
युगल चरण सेवैं तहाँ प्रमुदित सखी समाज।।

सखियन की नामावली और सेवा

श्री विमला रुचि शारदा विजया वामावाम।
कमला कान्ति मती कला केलिकोविदा नाम।।

कामा केशि किशोरिका कांचि कोशला कालि।
कञ्जा क्षीर कलावती कञ्जलोचना आलि।।

कुञ्जा कलिका कोकिला काशि कृपाला जानि।
कल्याणी गम कुंकुमा कृपा पूरणा मानि।।

कृष्ण शारिका कामदा कृपावती सुखरूप।
चन्द्रा चन्द्रकला अली चन्द्रानन्नी अनूप।

चम्पक बरणी चन्द्रिका चारु दरशना बाल।
चारुद तीरु चकोरिका पुनि गण चम्पक माल।।

देव वर्णिनी देविका देव रूपिणी नारि।
देवी दुर्गा दामिनी दैवज्ञा उरधारि।।

गनि ज्ञाना गुण सागरा ज्ञप्ति गुणज्ञातीय।
नन्दा नवला-सी नवल नागरि अति कमनीय।।

प्रेमा परमा पावनी प्रेमप्रदा तिहि ठौर।
प्रियंबदा प्रज्ञा परा भनि प्रौढ़ा अलि और।।

भाव विदा भावनि भवा भासि भावरा भीरु।
मुग्धा मुदा मनोरमा सखि मृग सावा छीरु।।

मोद दायिका माधवी मृग नाभी शिर नाइ।
मानिनि माधुरि मंगला मान कोविदा गाइ।।

रहसज्ञा रस रूपिणी रम्या रामा लेखि।
और रमा रतिवर्द्धिनी रोहा उर्णि विशेखि।।

शान्ता सुखदा स्वच्छता सीमन्तिनि उर आनि।
श्यामा सती सु मध्यमा साधु मतीहि बखानि।।

शृंगारा चतुरा सुरा सेसा हसिका केशि।
सुरा सुन्दरी शारदा मनि सांभवी सुदेशि।।

सुरभि सरूपा सारगा संज्ञा नारु सुनामि।
शान्ति रूपिणी शंकरी सुप्रिया सुच्छा भामि।।

सखी और दासी में भेद

तुल्य वेश गुण रूप सखि न्यून किंकरी जानि।
गति बल धन सुख सबनि को एक मैथिली मानि।।

श्री रामजी के वचन सीताजी के प्रति

किये सपथ कहुँ तोहिं प्राणप्रिया निज हीय की।
अस न अपन पौ मोहिं जैसे प्रिय तुम लगति हौ।।
मिलौ कोटि ब्रह्मांड हूँ अस न मोहिं आनन्द।
होतु जु तब मुख कमल को पान करत मकरन्द।।
श्रवण नैन मन तुम बसे और न कछू सुहात।
तेरी हित चितवनि उपर वारे सब सुख जात।।
मेरे हिय आनन्द को तुम ही प्रिये निदान।
हौ जिय की जीवन जरी प्रानन हू के प्रान।।
निरखत तुव मुख कंज छवि पलक न परत सुहाइ।
धन्य अपन पौ गनत हौ हौ तुमसों धन पाय।।
तेरे किंकरि वर्ग को हौ हौ सदा अधीन।
देउ अपनपौ दीन ह्वै मैं न गनौ कछु दीन।।
प्रेम भरे प्रिय वचन सुनि प्रिया मधुर मुसुक्याय।।
वारि विभूषण वचन पर लिये लाल उर लाय।।

रस-विलास

रंग रंगीले लाल रंग रंगीली लाड़िली।
बिहरत नैन बिशाल रंग रंगीली अलिन मै।।
बहु सुगन्ध कुसुमन रची दुग्ध फेन सम सैन।
ऐन मैन मन अलिन यह रचै मैन को ऐन।।
सैन साल मोहित भरे तापर पौढ़त आइ।
रस मन बचन अगम्य सो कहौ कौन पै जाइ।।
नील पीत छवि सो भरे पहिरे बसन सुरंग।
जनु दम्पति यह रूप ह्वै परसत प्यारे अंग।।
नील पीत नव बसन छवि हिलि मिलि भय यक रंग।
हरे हरे अलि कहत हैं यह धरि सिय पिय अंग।।
रस बिलसत पीतम सुखहि चिर निशि चाह प्रवीन।
चन्द्रकला चन्द्रहि निरखि मधुर जन्त्र सुरकीन।
सुख निद्रा पौढ़ै अरघ नारी स्वर से होय।
प्रेम समाधि लगी मनौ सखि जानत सुख सोय।।

अलि कुर कुट धुनि सुनि डरो रविहि देत यह टेर।
अहि गुरुजन ऐहैं इहाँ भलो नहीं यह वेर॥

अमल सेज पर कमल से दृगन सलोने गात।
निशि हुलसे बिलगे लसे अलसे उठे विभाति॥

जगे कुंवर रस रग मगे पगे परस्पर प्रेम।
उमगे गलबहियाँ लगे पगे कि मरकत हेम॥

कहि पिय पिय प्यारी विबस नहिं तम बसन सम्हार।
घुमित दृग दोउ झुकि रहे रस मतवारे लाल॥

महा प्रेम आवे सते भय तन मय आकार।
हौं प्रीतम हौ हीं प्रिया यह रहि गयो विचारि॥

प्रेम-विलास

उलटि बढ़ी तब प्रीति नवल लड़ैती लाल हिय।
कै बहुरचौ वह रीति प्रेम स्वाद वहु विध लहे॥

नेह सरोवर कुंवर दोउ रहे फूलि नव कंज।
अनुरागी अलि अलिन के लपटे लोचन मञ्जु॥

दम्पति प्रेम पयोधि मैं जो दृग देत सुभाइ।
सुधि बुधि सव विसरत तहाँ रहे सु विस्मै पाय॥

कबहुँक सुन्दर डोल महि राजत युगल किशोर।
अद्भुत छवि बाढ़ी तहाँ ठाढ़ी अलि चहुँ ओर॥

हिलि मिलि झूलत डोल दोउ अलि हिय हरने लाल।
लसी युगल गल एक ही सुसम कुसुम मय माल॥

सुन्दर गलवहियाँ दिये लालन लसे अनूप।
तन मन प्रान कपोल दृग मिलत भये इक रूप॥

गौर श्याम विचरत पये मनहुँ किहैं इक देह।
सौहैं मन मोहैं ललन कोहैं हरतिय नेह॥

पिय कुण्डल तिय अलक सों कर कंकण सौ माल।
मन सो मन दृग दृगन सों रहे उरझि दोउ लाल॥

यद्यपि दम्पति परसपर सदा प्रेम रस लीन।
रहे अपन पौ हारि कै पै पिय अधिक अधीन॥

श्याम बरण अम्बरन को सुकृत सराहत लाल।
छराहरा अंग राग भो चाहत नैन बिशाल।।

जो हिमहूँ को नाम सी कोउ उचरत सुख कन्द।
तिहि मुख की निसि दिवस हित चितै रहत रघुनन्द।।

जनक नन्दनी नाम नित हित हिय भरिजो लेत।
ताके हाथ अधीन ह्वै लाल अपन पौ देत।।

प्राण पियारी ललित पग धरत फिरत जिहि ठौर।
ताहि दृगन हित बिवश ह्वै लावत नवल किशोर।।

हार पदिक कुण्डल तिलक कबहुँ अंक तन तीय।
छिन छिन विनही टरे रहत आय संवारत पीय।।
कबहुँ उड़ावत भ्रमर पिय हांकत कबहुँ बयार।
प्राण पिया हंसि गहत कर कहत अली बलिहार।।

रूप-विलास

कुंवर सांवरे गौर हिय हरन दोउ लाड़ले।
नवल रसिक सिरमौर रूप भरे बिहरत रहत।।

अंग राग दै अलिन मिलि किये ललन तन गौर।
इक छवि ह्वै प्रीतम प्रिया ललित लसे इक ठौर।।

कुसुम क्रीट कवरी गुही रंग कुम-कुम मुख कंज।
अंजन अंजित युगल दृग नाशा बेसरि मञ्जु।।

श्रुति कुण्डल भल दशन दुति अरुण अधर छवि ऐन।
हित सौ हंसि बोलहि पिय हिय हरने मृदु बैन।।

भुज गर उर कटि कुसुम मय धरि भूषण पट पीत।
पांयन नव नूपुर कहे ललित लसे दोउ मीत।।

एक चित्त कोउ एक बय एक नेह इक प्राण।
एक रूप इक वेश ह्वै क्रीड़त कुंवर सुजान।।

रीझि चितै चित चकित ह्वै रूप जलधि सी बाल।
वारत लाल तमाल द्विति अंक माल दै माल।।

सब अपने भूषण बसन अपने ही कर लाल।
लाड़िलि अंग बनाइ छवि निरखहिं नैन विशाल।।

कबहुँ अचानक आय दृग मूरति नवल किशोर।
छल से गहि लीनों मनो निज हिय हरने चोर॥

कबहुँ निहारत नृत्य सुख ललन आइ तिहि गेह।
जहँ चातुर आतुर अली गावत पिय नव नेह॥

कबहुँ तहाँ हिय उमगि दोउ कुंवर करत कल गान।
अली रूप रागिनि तहाँ वारत अपने प्राण॥

कबहुँ चितै दोउ परसपर रूप जलधि से गात।
रीझत वारत अपन पौ कहत बिवस ह्वै जात॥

सखियों के वचन जानकी के प्रति

करहिं अली रस पान जिनके जीवन कुंवर दोउ।
वारहिं तन मन प्रान निरखि निरखि नव नेह छवि॥

इहि विधि बिलसैं रैनि दिन युगल कुंवर रस रासि।
दिव्य अमल आनन्द मय परे प्रेम की पासि॥

समय पाय सिय मिलन हित आइ गुरु पुर नारि।
रहसि कहत चित चकित ह्वै छवि सौ भाग्य निहारि॥

एरी सिय बरणौ कहा तव सौभाग्य अपार।
लग्यौ रहत बहु रूप धरि हरि जाने आधार॥

नयन मीन कच्छप उरज अरु नृसिंह कटि ठौर।
कृष्ण केश हिय राम बलि बावन तो सम और॥

कोटि कोटि ब्रह्मांड को एकै ईश्वर जोइ।
तेरी हित जीवन सिये चहे निरन्तर सोइ॥

ब्रह्म शक्र शिव मुनिन के जो जीवन धन पीय।
ताकी तू जीवन जरी शील सागरी सीय॥

ब्रह्म रुद्र सुर गण सवै रहत जासु बस दीन।
सो पिय मुख निरखत रहे सिय तेरे आधीन॥

बात कहत रसकेलि की ढिग गुरजन लजि जीय।
दे निज भूषण नगन मुख कह्यौ मौन शुक सीय॥

सखी वचन राम के प्रति

तव आनन दृग अर्पि सिय आगन जागन तीय।
तेरी आनजु कहत हौं भल बस कीन्हे पीय॥

तेरी छवि देखत बिबस वारि सुसर्व सुसीय।
आतुर चितवत और कुछ इत उत चितवत पीय॥

सिय जानी रानी तुहीं सुख खानी व प्रवीन।
मानी छवि पानी किये रस दानी दृग मीन॥

हौ वारी सौभाग्य पर जनक दुलारी बाल।
चेरी चेरी कौ चहै मुख तेरी को लाल॥

सर्वस अर्पो तोहिं पिय तूं चित लियो चुराय।
तौ तौ बिन उनके अली नहिं कछु सीय सुहाय॥

म्याइ प्रेम मान्दक प्रबल ते प्रिय सुधि बिसराइ।
करि बस बांधे गुनन सों तऊ तुहीं मन भाइ॥

बंधे एकहू ठौर कोउ सो परबस ह्वै दीन।
सब अंगन लालन बंधे क्यों न होइ आधीन॥

वन्ध्य जीवत रसन सो बंध्यो हृदय वल तैन।
अलि जानकित्वच परस रस रूप बंधे दृग नैन॥

सीता की छवि

अरुण वरण तव चरण नख हैं कि तरुणि शिर मौर।
अनुरागी दृग लाल के बसे आय इहि ठौर॥

तो वक जावक रंग छवि निरखति अलि अनुराग।
मनु मन भावन प्रेम रस पावत पायन लाग॥

गति गायनि पायनि परसि करि नूपुर झनकार।
पिय हिय हरने मन्त्र को करत सुचारु उचार॥

जंघ युगल तव जनक जे अकि ग्रह उत्सव रम्भ।
पिया प्रेम कै भवन कै किधौ सुन्दर बरखम्भ॥

गुरु नितम्ब कटि सिंह मिलि पट गौतमी प्रवाह।
किंकिणि मुनि गण अमर निज मन अन्हवावत नाह॥

नाभि गंभीर कि भ्रमर यह नेह निरजगा माहिं।
तामहं पिय मन मगन ह्वै नेकहु निकरचौ नाहिं॥

है अलि सुन्दरि उरज युग रहे तव उरजु प्रकाश।
नवल नेह के फन्द द्वै अतिपिय सुख की रासि॥

लस्यो श्याम तब तन कस्यो कंचुकि बसन बनाय।
राखे हैं मनो प्राण पति हिये लगाय दुराय॥

सिय तेरे गोरे गरे पोति जोति छवि झाय।
मनहुँ रंगीले लाल की भुजा रही लपटाय॥

कुसुमति भूषण नगन युत भुज वल्लरी सुवास।
लालन बीच तमाल के कन्ध पर कियो निवास॥

चकत तरौना भौंह युग अलिवलि दृग मृग जोर।
रदन अमी कण बदन तव शशिरथ पीय चकोर॥

रघुवर मन रंजन निपुण गंजन मद रस मैन।
कंजन पर खंजन किधौं अंजन अंजित नैन॥

नथ मुक्ता झलकत पगे नाशा स्वास सुवास।
उरझि परचौ यह पीय मन मनहुँ प्रेम के पास॥

तब अलि छलकत अलक अकि रस शृंगारिक धार।
श्याम भये रंग भीजि तिहि प्रीतम प्राण अधार॥

सब दिशि कंचन मय करत तव तन जोति अनूप।
मनु झरिझरि अंगन परै अंग रमावै रूप॥

सिय तब रूप अपार पिय पियत न नैन अघाय।
भये चहत सुर राज से सियरै अति अकुलाय॥

रूप भाग्य गुण भार नव योवन मारहि पाइ।
क्यों सहिहै दृग भार तो निरखत नाह डराइ॥

वारि अपन पौ दृगन तैं डरि अलि कछू कहून।
रहत उतारत हीय महिं पियहू राई लून॥

सर्व संवारत बिवश ह्वै तेरी छविहि निहारि।
वारि वारि पीवत रहत वारि वारि पिय वारि॥

तू सिय पिय के रंग रंगी रंगे पीय तव रंग।
रहे अली इक रूप ह्वै ज्यों जल मिले तरंग॥

कबहुँ कहत पुर बधुन सों निज हिय हित की वात
स्वामिनि के गुण गुण सुमरि किंकरि गात न मात॥

प्रभाव बर्णन

धरैं सीय पद ध्यान यहि विधि मञ्जु समाज सुख।
बसहिं पीय के प्राण प्रेम प्रगट तेहि भक्ति मैं॥

सिय मूरति जेहि हिय बसी तापहिं नैन बिशाल।
उर राने आवत चले पारावत से लाल॥

जनक सुता सम देवता कहो कौन जग और।
जाके बस रघुवीर पिय ब्रह्म रुद्र शिर मौर॥

योग यंत्र तप नेम ब्रत त्याग त्यागिये दूरि।
होय अनन्य सो सेइये श्री जानकि पद धूरि॥

होब अल्प कृशसेव बिनु दीन जानि करुनेह।
सकल सुकृत मिलि सीय पद धूरि भूरि फल देह॥

उमा रमा सरस्वति सची जिहि बिभूति के रूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गण भूप॥

ए अलि 'नेह प्रकाशिका' बचन हियें मैं राखि।

ध्यान-मञ्जरी

बाल अली जी

सामान्य परिचय—जैन प्रेस लखनऊ में ई० स० १९०८ में मुद्रित तथा सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्वई वाले द्वारा प्रकाशित। सं० १७२६ के फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी को यह ग्रन्थ लिखा गया—जैसा नीचे लिखे पद से स्पष्ट है—

सत्रह सै षडविंश वरष मास फाल्गुनि।
शुक्ल पक्ष पञ्चमी अमर शुभवार लग्नप्रति।
तेहि अवसर यह 'ध्यान मञ्जरी' प्रगट भईहै।
परम सुमंगल करनि वरनि बर मोदमयी है।

विषय—'ध्यान मञ्जरी' काव्य और साधना दोनों ही दृष्टियों से रामावत शृंगारोपासना का एक परम मूल्यवान ग्रन्थ है। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी यह प्रथम कोटि की एक विशिष्ट रचना है। ऐसी साफ-सुथरी मुहावरेदार भाषा का प्रयोग, भावना की ऐसी तीव्रता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस-साधना का विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि युगल सरकार श्री सीताराम के ध्यान का ऐसा ग्रन्थ दूसरा है नहीं, है नहीं। कनक भवन बिहारी त्रैलोक्यसुन्दर भगवान् राम तथा उनकी प्राणेश्वरी जानकी के रूप, रंग, वेश, अलंकार

का ऐसा सजीव वर्णन इतनी सजीली भाषा में देखने को नहीं मिलता। यही कारण है कि श्रृंगार उपासना के रसिक साधकों में इस ग्रन्थ का विशेष आदर है, और बड़ी श्रद्धा भक्ति और प्रीति से इसका अनुशीलन एवं अभ्यास होता है। इसमें कुल २७३ पद हैं।

उदाहरण—

पहिरै तट हरियार वसन सुन्दर तन सोहै।
प्रतिबिम्बित बिधु बदन कञ्ज लोचन मन मोहै॥

कनक भीत नग लगें सघन जगमगे सुहाए।
मनहुँ अगार अपार नैन पाये मन भाये॥

द्वै लोचन प्रभु रूप निरखि हिय तृप्ति न होई।
ताते त्यागि निमेष सहस दृग देखत सोई॥

तिन पर पानिप भरे जरे कारन मुक्ता अस।
प्रेमानन्द उदोत होत नयनन अंसुआ जस॥

नग नग प्रति प्रतिबिम्ब युगल झलकत छवि पावै।
मनहुँ भवन निज अंग सुखद विस्व रूप दिखावै॥

तहँ इक परम प्रकाश रत्नमय बरं सिंहासन।
तहँ सहस्र दल कमल कोटि तम तोम बिनासन॥

लसत चारु चहुँ ओर करणिका अति छवि छाजै।
तहँ सुन्दर रघुवीर रसिक सिरमौर विराजै॥

सुद्ध सच्चिदानन्द कन्द बर बिग्रह जाको।
देही देह बिभाग आहि सो नाहिन ताको॥

ताही तनकी प्रभा ब्रह्म व्यापक जग जोहै।
घनीभूत जिमि तरनि तेज सब तिमिर विपोहै॥

श्याम बरन तन सीस जरकसी पाग रही फवि।
नव नीरद तें निकसि प्रात जनु प्रगट भयो रवि॥

श्री मुख पर लिय झलक अलक असल में घुंघरारे।
रहे घेरि नव कञ्ज मधुप सौरभ मतवारे॥

चित चितवत हरि लेहिं सोह अस सावर भौंहे।
दृग दीपन के ऊपर परति जनु काजर सोहैं॥

केसरि तिलक ललाट पट न छवि परत विशेख।
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेखैं॥

पलक किधौ सिय रूप पिबन के अधरहिं सोहैं।
तहँ सुन्दर रघुवीर बरन बरुणी मनमोहैं॥
मनहुँ पीय की जीह बरणि नहिं सकति सीय छवि।
सहस सर नय धरि कहन सो चहत नैन कवि॥
पलक मोहिनी पखा वाटि मखतूल छोरहैं।
प्राण प्रिया पर करत पवन जनु नव किशोर हैं॥
बड़रे नैन चकोर जोर सदृश छवि पावै।
श्री जानकि मुख चन्द्र चन्द्रिका पींन जघावै॥
उन्नत नाशा मनहुँ स्वास श्रुति सिद्ध दरी है।
नागरि अंग सुबास रमन को बिमल गरी है॥
अग्र सुमुक्त मञ्जु अधर अमृत अधिकारी।
मनहुँ प्रिया मन किधौ कञ्ज पर कवि छवि भारी॥
श्रवण कि भाजन युगल अमल मरकत मणि राजै।
लिये लड़ैती वचन अमृत पीवन के काजै॥
तहँ कुण्डल छवि भरे विविध मणि जड़े लसत हैं।
जनु युग मदन मयूर नीलगिरि सिखर बसत हैं॥
झलकत ललित कपोल गोल अस सांवर पिय के।
मनहुँ अमल आदरश परम मन भावते सिय के॥
तिन मधि कुण्डल जुगल ज्योति जगमगत लसत अस।
चपल जमुन जल मांझ भानु प्रतिबिम्व परत जस॥
अधर सुरंग समीप दन्त पंगति नवली है।
जपाकुसुम पर लसत मनहुँ मुक्ता अवली है॥
कोमल अमल अलोल सरस रसना मन मोहै।
मनहुँ कमल दल तुल्य रमा मन्दिर मैं सोहै॥
किधौं चतुर सिय सखी मोद सिय मन उपजावति।
मधुर भावती बात बहत हंसि तिनहिं रिझावति॥
गिरा गंभीर कि गरज होत आनन्द मेह की।
सींचि बढ़ावत बेगि बेलि हिय नव सनेह की॥
हंसत लसत ताम्बूल बदन सों गन्ध सकेलें।
जनु फूल्यो हृद कमल उठत सौरभ की रैलें॥

चिबुकारुण सुखमा अपार झलकत मुखझांई।
मनहुँ कि व्यापक ब्रह्म ज्योति यह वेद न गाई॥

कम्बु कण्ठवर रेख लसत अवधेश सुवन की।
करी जानि छवि सीव लीक जनु त्रय त्रिभुवन की॥

अल्प उदर पर ललित रोम राजी राजत अस।
सुन्दर मूरति रचत दई विधि सूत रेख जस॥

उलही किधौं सिंगार बेलि चह मदन सुहाई।
नाभि कूप के सो सलिल सों सींचि बढ़ाई॥

अकि अतिहीं कटि छीन जानि आधारहि दीनी।
बहुरि सुता पर त्रिवलि बन्ध दैकें दृढ़ कीनी॥

जन दुख हरन नितम्ब चक्रवर लसत सुदरसन।
उपरि झलक कटि वसन तासु पर तेज पुञ्ज मनु॥

सोहत जानुर जंघ अंघ्रि सब अंग रस भीने।
मानहु करि कर जुगल नाल बिनु कमल नलीने॥

चरन अंगुरिनख सोह देखि कबि रहै मुख मूंदे।
कमल दलनि पर अमल लगी जनु स्वाति कि बूंदे॥

पीत बसन तन लसत परत दृगहू रपटी है।
नव घन पीतम अंग मनहुँ चपला लपटी है॥

किधौं सिय रूप तरंग रंग रंगि पीत भयो है।
छिन न तजत यह जानि प्रेम पथ रसिक नयो है॥

बाम अंग नव रंग भरी जानकि सुठि सोहै।
रूप अलौकिक बरनि कहन को कविवर कोहै॥

जा बिनु रघुवर ध्यान कल्प भरि जो नर करही।
प्रभु नहिं होत प्रसन्न बृथा श्रम करि पचि मरही॥

जा रस की अनुमात्र छीट जाके हिय लागी।
वसीभूत तिहि संग रहत प्रभु रस अनुरागी॥

ता रस मय अंग अंग अमल सुन्दर बर सिय के।
परम उपासक गम्य प्रान जीवन धन प्रिय के॥

जंघ जुगल किधौं रँभ खँभ किधौं सोह धामको।
चिदानन्द घन मात्र ध्यान इक गम्य राम को॥

गुर नितम्ब कटि छीत मनहुँ मृगराज नयो है।
यह गुर सिंह मिलाप बारहें वरष भयो है।।

विविध चरन को सेय बसन कटि तट परिधाने।
मनहुँ कि थिय अभिलाष कोटि तन सों लपटाने।।

त्रिवली अमल अनंग सरित त्रय धार समानहिं।
अकि छवि जलधि तरंग किधौं योवन सोयं नहिं।।

अलप उदर पर अमल रोम राजी छवि पाई।।
जनु उत ते इक सरल अलक की झलकत झांई।।

अकि तकि अमृत कुम्भ चली करि पांति पपीली।
उमगि श्रवत शृंगार धार हिय में कि रँगीली।।

किधौं पिय मन खंजरीट रमत भूवनि नष रेषनि।
किधौं हरि मन बस करन मन्त्र लिखि सूक्षम लखनि।

तिहि मिलि मुक्ता माल लाल गुन पोहि बनाई।
नागरि अंग जगमगति भिन्न रंग सोह सोहाई।।

जनु सरस्वति सुर सरित मिलि रवि जा छवि दैनी।
मय पावन पिय नयन न्हाइ इहि ललित त्रिबेनी।।

अगिनित हार हमेल और उर चौकि जरी मनि।
कनक विविध मणि भाल माल बर कुसुम रही बनि।।

तुंग उरोजनि बनी नील कंचुकि कसि भारी।
काम वाज सिर कुलहकि जोवन गजकि अंध्यारी।।

करतल अचल सुहाग भाग की राजत रेखैं।
बांचत है नित नाह नेह सों त्यागि निमेखैं।।

सौरभ सुरंग सुठौनि लसत अंगुरी अस करकी।
काम नृपति सर पञ्च कली किधौं नव केसरि की।।

गौर चिबुक पर तनक चिन्ह देखियत मेचक छवि।
जनु कंचन के पीठ बैठि रसराज रह्यौ फवि।।

किधौं निश पति निशि सुवन मोद सों गोद खिलावें।
किधौं मधुप सुत कञ्ज गन्ध पीवत न अघावें।।

सुधा सदन के माझ रह्यौ किधौ राहु दन्त चभि।
किधौं रसिक मनि पीय सीय को लोभ लग्यो खुभि।।

अरुण सुधाधर अधर जग न उपमा कोउ तिन सम।
पल्लव जया बिगन्ध कठिन बिद्रुम कहिये किम।।
बर्तुंल ललित कपोल नाह मन नैन बसही।
मनु मूरति धरि रूप भूप के आसन लसही।।

लगन पचीसी

श्री कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—१. लगन पचीसी—ज्ञाना अली के शिष्य रामकिशोर शरण जी की प्रेरणा से सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल बम्बई वाले ने सन् १९०१ में लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में छपवाया। इसमें बिहाग, सोरठा, काफी, जैजेवन्ती, टोड़ी, खम्भाच, झिंझौटी आदि रागों में श्री सीताराम की परस्पर प्रणय प्रीति का वर्णन है। यह संवत् १९५७ में लिखी गई, ऐसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है। कुल ४० पद और पृष्ठ २९ हैं। भाषा में पञ्जाबीपन है।

विषय—लगन की पीर, लगन की चोट ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। प्रीति से प्रीति का ही शोधन होता है। जगत की वासनाओं में मन की जो सहज आसक्ति है, उसका परिमार्जन भगवान् के चरणों में गहरी ममता-प्रीति-आसक्ति से ही हो सकता है। और कोई उपाय है नहीं, हो नहीं सकता। पदों में इश्क, आशिक, माशूक, महबूब, जुल्फ, दरद, लगन, दिवाना, दिल, दिलदार, ख्वाब आदि शब्द प्रचुर मात्रा में व्यवहृत हुए हैं। सम्भव है सूफी प्रभाव के कारण ही अथवा उर्दू फारसी का ज्ञान होने के कारण। परन्तु सारी पद्धति आशिक-माशूक वाली है जो ध्यान देने की वस्तु है। बार-बार इस बात का संकेत है कि इश्कमजाजी ही पलट कर इश्कहकीकी हो जाता है। कतिपय उदाहरण—

(१)

सुन री सखी उस इश्क की कहानी।
दिल दरदी दिलदार दरश बिन देखि नजर भर करत दिवानी।
दिन अरु रात बात प्यारे की जात गई पर हाथ बिकानी।
कृपानिवास श्री राम सजन की सूरति हेरि मैं हार हिरानी।।

(२)

कोइ सूनो दरद दिवाने।
बेदरदी सों लगन लगी है चले दरद को घाते।।
दरद उठत बैठत में दरद हि, दरद हि दिन अरु राते।
बोलनि चितवनि दरद भरी सी दरदमान मुसकाते।।

दरद मेखला पहिर फकीरी अब सुख होय कहाँ ते।
दरद गये से कौन काम की दरदहि भरे कुशलाते।।
दरद वंदीनी दरद सुनावा दरद हमारे हाथे।
कृपानिवास दरद सों जीवनि ये ही लगन की हाते।।

(३)

लगन निगोड़ी मेरे पैड़े माई क्यों परी री।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो तांती शूली पै धरी री।।

नाहि नगर में न्यावरी कोइ नेही जन को।
बंधे लगन के फंदन में उत करत कैद फिर मन को।।
मृदु नवनीत अनल धरतावत कुलिश किठन नहि छेरै।
मेरे मृगन के बान चलावे गज रिपु उर नहि नेरै।।
भ्रमर वास बसि बसै केतकी पुनि कुस कंटक फोरे।
भरे लगन की सारस रस सौ फिर क्यौ सारस रौरै।।
लगन पेंच सो खेंच लियो मन फिर हा हा क्यों कूकै।
लगन अगन जर भय कोयले फिर अहिरन क्यों हूकै।
प्रीति पाय भर के फिर कैसे बिरह वलाय बढ़ावै।।
करै घायल प्यारी चितवनि लगि दुरि क्यों जहुर लगावै।।
मित्र सुधाकर अग्नि चबावे लगन चकोर बिचारै।
कृपा निवास निशाफल बिन नित नेही हाय पुकारै।।

लगन निबाहे ही बनि आवै।
भाव कुभाव खवाव जान दे नेही नाम कहावै।।
दृग अटके मन सौंपि दियो जब पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परबस कैसो ही न्याव चुकावै।।
तन दहु द्रवन पवन हंसि उघरे तदपि लगन ललचावै।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तब निज भाग सिहावै।
अवगुण बहुत सुगुण नहि रंचक तौ उनके गुण गावै।
नेहु निसोत नवल प्यारे को लाज दाग क्यों लावै।
कौड़ी प्राण गये कछु हानि न लाल रतन जो पावै।।
कुल सुख मुक्ति सुजात जान दै लगन न तनक गवावै।
कृपानिवास प्रीत प्यारो को छोड़िन लोग हंसावै।।

चोट लगी है री राम लगन की।
प्राण सुध न तन सुध न सुध न रही बदन प्रगट कर प्रीत अगन की।
औचकि उचकि चषन मग पैठी मूरति अति बर बरण गगन की।।
छीन सुथान बिरान करी मोहिं निपट अटपटी बान ठगनि की।
लाज जरी मरजाद टरी सब छाय परी अनुराग दृगन की।
कृपानिवास उसास हाय के पगन कहाँ जहाँ पगन दगन की।।

कोई प्यारे फकीर दिवाने।
इश्क अमल दो प्याला पीवत आठ पहर मस्ताने।।
घूमत खरे चलति मतिवारे बोलत मन बौराने।।
कहर मेहर में सदा खुशाली दिलभर देखि लुभाने।।
चस्म भरी सूरत सांवलदी साजन हाथ विकाने।
गई हंसै रौवें बर रावे चुप ज्यों रहत अपाने।।
वे महिरम घर वार के सब हंसि हंसि दै दै ताने।
कृपा निवास हुए दुनियाँ बिच कोइ घायल पहिंचाने।।

लगन निगोड़ी मेरे पैड़ै माई क्यों परी री।।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हाल्यो मानों तांती शूली पै धरी री।
जहर मिलावत नीकै नई नई बात बनावति।
खैंचति कठोर हलावति बंधुवासी में करीरी।
कुल शुद लाज भागी दुख भर पीर जागी।।
अंदिया लगोही लागी महा विष सों भरी री।
कृपानिवासी कही घर की न बन की भई गई।
नहिं वारे गरने प्रीतम प्यारी संग गरी री।।
माई काहू के न लागो हेली चोट लगन की।
सीरी सीरी लागै आगी धिरी धीरी सुलगत पागे।
फिर जागै भारी जरनी अगिनि की।
जरे पै लगावत लोन बरजत चारा कौन मौन
धरि मोहन बैठे जानत न मनकी।
जानी को जनाये जी की कहत सराहे नीकी
पीकी रुचि ऐसी ही की फीकी कहै मन की।
लगति न मानी बैरनी निपट कठिनता अहिरनता
पुनि कुटावती मेहरन दुख सुख घन की।

तीखी तीखी छैनी छौलै फिर फिर फूकै तौले
पर हांथ बेंचति मौले जौले चेरी जिनकी।
करखनि फन्दनि बांधी लै धन ब्रत नियमादि
लगन लहर उदमादी दादी है ठगन की।
जब लगि लागति नाहीं तब लगि कुशल बिहाई
कृपानिवास बिकाई पगन द्रगन की।

लगन निगोड़ी लगत सुखारी फिर पाछे दुखदाई री।
अंखियन सों मिल गढ़ में पैठे सब घर ले अपनाई री॥
लाज मर्याद नेम ब्रत धीरज थाने सबल सिपाही री।
छीनै शस्तर पकरि निकाई आपु करे ठकुराई री॥
मन सों भूप सुबस कर गर्वित फेरे देश दोहाई री।
आपु चहूं दिशि निडर किलोलत नेही को दुबराई री॥
लड्डुवा के मिस देत धतूरा वहुत करै मितताई री।
कृपानिवास प्रीत वश स्यानी को नाहीं बिकलाई री॥

लगन जाल है काल प्रगति कहो उलझी किन सुरझाई री।
सर्बस खोइ होय मन बिहरनि जिन यह लगन लगाई री॥
मति चेतन बवरी करि राखे नेही मन बिकलाई री।
यौवन जुरमे जाय मिलै जनु सीरी पवन सुहाई री॥
बाढ़ै रोग कहा कहौं सजनी भटकि मरै तनुबाई री।
घन ज्यौं गरजनि लागति प्यारी मोर सुमन ललचाई री॥
पावै मारति औलनि गोलनि सो जानी निठुराई री।
देत जुवाँ क्यों दाँव पहिल की फिर लूटकुल तल गाई री॥
करत फकीर अमीरन के सुत घर घर भीख मंगाई री।
कृपानिवास परी गर मेरे दुख दो भा सुख दाई री॥

लगन गरीबी गर्व गमायो भई दीन मतिहारी री।
चलिन सकौ थकि द्वार सजन के सुख दुख चाह बिसारी री॥
काम क्रोध मद मोह बिसर गये काज लाज कुल डारी री।
मातु पिता सुत बन्धु मित्र सों घरवर तजि भई न्यारी री॥
कर्म करो नहिं मर्म भुलावो योग भोग जग टारी री।
प्रीतम बिन उझको नहिं औरन गांठी लगन हमारी री॥
मन की दौर जहां लगि सिमटी अटकी इक सों यारी री।
जने जने सों प्यार करै सो जन्म जन्म की ख्वारी री॥

औरन को आदर विष जानों सुधा सजन किरकारी री।
और मिले घरदौर न मिलि हो प्रीतम पौरि पुकारी री॥
हा हा खाई हाइ फिर.हो हौं हारि हारि हिय हारी री।
कृपानिवास उपास राम सिया तन मन धन सब हारी री॥

लगन जरी कर प्यार सुंघाई सूंघत भई दिवानी री।
लहर चढ़ी कछु ख्वाब जनाया दिल भर गर लिपटानी री॥
लपटनि कपट निपट दुखदाई तवाबुंद ज्यों पानी री।
जहर कहर में देत सुन्योरी दियो मेहर दिलजानी री॥
जानि पियो मन सजन हाथ को झीनें स्वाद लुभानी री।
लालन के घर लगन कमाई लग वारनि उरझानी री॥
जौन लगे चित कौन करे कृत नेही यह गुजरानी री।
कृपानिवास दुकान लगन की स्यानी कौन बिकानी री॥

मिली तन प्यार सों प्यारी खुली मन इश्क गुलजारी।
सखी सों श्याम की बातें। कही है जो हुई रातें॥
मिला था ख्वाब में अलमस्त धरा था रीझ छाती दस्त।
उठी मैं चमक मन वहरमत देखा सेज का मरहम।
हुआ मन हाल दरहाला मिलै जालम जुलुफ वाला।
न जानों चश्म दुःखदाई खुशी में डाल फिकराई।
लगे बेदर्द मासूका परी मैं दर्द बस कूका।
कृपानिवास दिन रतियां लगी है राम की बतियां॥

लगन लगी जब जोर पियारे और मिलन में लहना क्यारे।
दिल मिला दिलदार के दिल सों और मिलन में लहना क्यारे।
लाख छोड़ खाक तन में पाक ह्वै मन चहना क्यारे।
कृपानिवास राम आशिक ह्वै फेर दुनियां में रहना क्यारे॥

अनन्य चिंतामणि

श्री कृपानिवास जी कृत

अनन्य चिन्तामणि

हस्तलिखित प्रति 'प्रमोद रहस्य वन' अयोध्या में प्राप्त। आरंभ में सभी प्रकार के साधनों के फल का निर्णय किया है। यम, नियम, आसन, षड्चक्रभेदन तथा अमृतपान का वर्णन है। फिर ज्ञान-वैराग्य का उल्लेख है। फिर द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट मत-मतान्तरों का निर्णय है। योग, ज्ञान

आदि साधनों से गाया नहीं छोड़ती। फिर पञ्च भाव और पञ्च रहस्य का प्रकरण है। इसके उपरान्त 'स्वसुख' और 'तत्सुख' का प्रसंग है और उसके जीने का वर्णन है। हनुमान जी गुरु हैं। उनके सूक्ष्म रूप का नाम कृपा सहचरी है। इसके अनन्तर 'प्राप्ति' का आनन्द विधान है और स्थूल-सूक्ष्म का विवेचन। इसके पश्चात् तमो गुण नाश का उपाय वर्णित है। इसके बाद भूत, प्रेत, देवादिकों की उपासना का फल है। फिर 'अनन्य' का लक्षण है। 'अनन्यता' में श्री हनुमान जी उदाहरण हैं। षट् प्रकार की अनन्य निष्ठा के द्वारा ही इष्टि प्राप्ति होती है। जैसे चातक स्वाती, अनन्यता के नामानन्यता, वेशानन्यता, इष्टानन्यता, वागनन्यता, प्रसादानन्यता, वृत्ति अनन्यता।

ऐश्वर्य और माधुर्य में ऐश्वर्य के आस्वदन के उपरान्त ही माधुर्य का आस्वादन होता है। इसके उपरान्त है 'युगल स्वरूप निर्णय'। युगल स्वरूप में सीता-राम-तत्त्व का भाव निरूपण है। इसके अनन्तर विश्व रूप की नित्यता का निरूपण है। इसके अनन्तर अनन्य शरणागति के स्वरूप का निरूपण है। आदर्श भक्त के लक्षणों में प्रीति, प्रतीति, अचाह, अशंकाशील, सचाई, सरलता, सुबंक, गुरुमुख, दृढ़ता, सुवद, संवाद (साराहरी) चतुर, सत्यवाद, सुरसिकता, रोचकता, अनालस, आनन्दी, अनसोची, दयालुता, प्रतिपालक, उदार, कृपालु, अमानी, मानद, दानी, अमद, अकोही, एकांती, अदंभी, भावुक, निर्मलता, त्यागी, अनुरागी, प्रिय, मोहममता-शून्य, मुक्त है। विशेष विस्तार से इन लक्षणों का वर्णन है। 'शृंगार' के सुख का वर्णन अन्त में विस्तार से वर्णन है। विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन है।

रामरसामृतसिंधु

अन्त में 'परा भक्ति' आती है। कुल मिला कर १६ प्रवाह हैं, आदि।

पूर्वरचित भगवान् राम के चरित्र का विशेष वर्णन—हनुमान जी जनकपुर में पुष्पवाटिका में साथ हैं। चित्रकूट प्रसंग में किशोरीजी के आग्रह पर वन-विहार के लिए चले हैं। देवताओं ने वहाँ प्रार्थना की कि दुष्टों का वध कैसे होगा ? कलह की वार्ता नहीं। केवट का प्रसंग भी मिथिला जाते ही आता है।

(हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत्-निवास (अयोध्या) में महात्मा श्री रामकिशोर शरण जी के निजी पुस्तकालय में प्राप्त।)

खुले पत्रों में

प्रथम प्रवाह	७२	पन्ने
द्वितीय ,,	४२	,,
तृतीय ,,	९४	,,
चतुर्थ ,,	२४	,,
पंचम ,,	२८	,,

षष्ठ	प्रवाह	२०	पद्य
सप्तम्	,,	१८	,,
अष्टम्	,,	२४	,,
नवम्	,,	२४	,,
दशम्	,,	२१	,,
एकादश	,,	३२	,,
द्वादश	,,	१४	,,
त्रयोदश	,,	१८	,,
चर्तुदश	,,	२४	,,
पंचदश	,,	२३	,,
षोडश	,,	११	,,

प्रत्येक प्रवाह में अनेक तरंगे हैं। छंद अनेक प्रकार के हैं---वैताल, हरिगीतिका, मनोरमी, कवित्त, दोहे, चोपाई, सोरठा आदि हैं।

'रामरसामृत सिंधु' में रसिकों की उपासना तथा सुख का स्वरूप के ही विशेष रूप से वर्णन है। युगल राम विलास के आह्लाद, सुखानुभूति का विशेष वर्णन है। आठवें प्रवाह में चित्रकूट का लीला-विहार और रास का वर्णन बड़ा ही भव्य है। चित्रकूट में योगमाया के चमत्कारी प्रभाव से सभी देवता सखीरूप में रास में सम्मिलित होते हैं। युगल महारस के पिलाने-वाले परम गुरु श्री हनुमत लाल जी हैं।

रास-पद्धति

महाराज कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय---लखनऊ के पं० घासीराम के देशोपकारक प्रेस में सन् १९१० में मुद्रित तथा सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचंद द्वारा प्रकाशित। इस ग्रंथ में कुल पृष्ठ ५५ और लगभग १५० पद हैं जो भिन्न-भिन्न रागों में लिखे हुए हैं।

विषय---ठीक श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी के आधार पर श्री राम रास के प्रसंग का वर्णन हुआ है। लगता है श्री कृपानिवास जी ने ठीक राधाकृष्ण रास के आधार पर सीताराम रास का प्रकरण बाँधा है और प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी अपने ढंग का अद्वितीय है। भाषा साफ-सुथरी और कई स्थानों में पंजाबी पुट लिये हुए है। फिर भी इस प्रकार राम-रास का सांगोपांग वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। रसिक साधना में कृपानिवास जी के पदों का बड़ा सम्मान है। अवश्य ही ये अनुभवी रामरसिक संत थे। श्री जानकी जी का मान-वर्णन करने में कई अपूर्व सफलता मिलती है।

राम रस रंग सों संग सिया प्यारी रास मंडल मधि सोहैं।
बनि ठनि रूप सिरोमनि सोहनि कोटि मदन रति मोहैं।।
जैसी ये सरद निसा छकि चांदनी जुगल चंद छबि जोहैं।
कृपानिवास विलास मगन मन कहनि कुशल कवि कोहैं।।

नवल रसीले लाल रास रस में खरे।
सहचरि अंसनि धरि भुज झमकनि कबहु ठमकि पै गलैं धरैं।
रूप झौक झुकि परति सखी जन झमकि धरैं मद में भरैं।।
बंक बिलोकनि चपला चौकनि कोमलता छिन में न हरैं।
अलिअवलि छवि कलित चहों दिस कवि को मिस उपमा न सरैं।
कृपानिवास श्री जानकीवल्लभ नैननि तें न टरैं।

निरषि छबि अटकि रहे दृग मेरे।
छकित छवीली छबिन छवीले मगन रसीले हेरे।
मंद हसन टुक लसन दसन की कसन परै उर झेरे।
तिरछी झांकनि बड़ी बड़ी आँखनि लाखनि के मन घेरे।
रास विहारी बिहारनि प्यारी घूमत मदन घुमेरे।
कृपानिवास श्री जानकीबल्लभ नीके नैन अएरे।।

निर्तत री रंग भीने रास में।
मदन गहल मद महल बिहारी दोउ गरबहियां दीन्हे।।
उघटत छंद प्रबंध गीत गति नटवर कला प्रवीने।
नूपुर नवल नवल मुख गावत तान मधुर स्वर झीने।।
अलकनि हलनि चलनि पलकनि की मलकनि अंगन गीने।
कृपानिवास नवल कुंजनि रम सिय जू राम नवीने।।

रंग भरे राम रसिक रसबस करि प्यारी रास भवन रस माते।
सुरति विहार उमंग अनंगति अंग अंग सरसाते।।
किंकनी नूपुर वलय मुखर कर लोचन रति इतराते।
कृपानिवास बिलास बिलासी सुंदर संग सुहाते।।

हरि बिन को जाने मेरे मन की।
आठ पहर मोहि कल न परत है प्यास बढ़ी दरसन की।
लगन चोट लागी तन वल की हलकी चोटै घन की।
कृपानिवास श्री राम रसिक अब सुधि लीजै बिरहन की।।

उर में उठत रैन दिन हूकै।
लगन अगनि जरि भई हो कोयला जरी बरी फिर फूकै ।।
मरम मारसों मरी रही मैं नई मार नहिं चूकै।
कृपानिवास श्री राम रसिक सुनि मो बिरहनि कूकै ।।

द्रुम द्रुम बूझ थकी बन हेरत प्यारी बैठी आय पुलनिपर।
तरु बिन कल्पलता मानो मुरझी झुकि झुकि परति सिथल धर ।।
सखि जन धारि संभारि पवन ढर श्रम कण हर कोई गहि पट कटिकर।
कृपानिवास कहति कहा दुरिया राम रसिक मेरो मनहर ।।

मेरो मन हरी लीनो हेली रसिक साँवरे चोर।
चतुर दृगन सों मिलि उर धसि करि कसि कसि लगनि मरोर।।
हसि करि बसि करि रसि करि मो सन लाज सबनि की रोर।
कृपानिवास राम छैला के फेल फसाई में जोर।।

प्यारी ऐसे अन बोलनो कबहुं न कीजिये ललन मनावै हंसि बोलिए।
अपने चित सों प्रीतम के चित नित नयो हित क्यों न तोलिए।।
बिना दोष कहा रोष बढ़ावो रस में विष नहीं घोलिए।
कृपानिवास सिया मन अटके पिया घूंघट पट खोलिए।।

पिय प्यारी बसि प्यार रास रस झुलेरी।
रहसि हिंडोरै लसन जुगल छबि जन उपमा झूलैरी।
चंद्रकलादि झुलावति गावति फरकत अंग दुलैरी।
कृपानिवास जानकीवल्लभ निरखि जुगल छबि फूलैरी ।।

राज कुंवर मेरे संग लग्योरी।
जहां जहां जाउं तहां तहां लखाउं प्रेम बिबस रस रहत पग्योरी ।।
सोय रहौं स्वपने चमकावै जागि उठौ तो मृदु मुसकावै।
हसि हेरों तब फूल मगल तन रोस करौ तब हाहा खावै ।।
वेस दुराय दुरो परिवन में दिप्ट चुराय वदन पट खोलै।
पग परसत अपराध छिपावत मन हरनी मधुबीनी बोलै ।।
भवन छिपों खिरकी खरकावै पाय अकेली अंक भरै री।
सरजू जाऊ न्हान मिस पीछै आयसु ना न्हान कौतिक करैरी ।।
हारिब सों गृह आगे मेरे गुन गावै हसि बीन बजावै।
कृपानिवास राम रसिया वर रसिकनि हित नित रस बरषावै ।।

उरझ रहे वा रसि कर पेचन सों।
राम रसिक पिया प्यारी के।
नाहिं संभारत रस मतवारो वस में पन्यो मतिवारी के।
नासा चढ़नि बिलोकनि तिखी भीज गये रसवारी के।
कृपानिवास मान मनोरथ उघरत प्रान विहारी के।
मोहि सोवन दै रैन रही थोरी प्यारे।
सब निस संग अनंग रमाई अंगनि आलस भारे।
प्रीतम प्रीत की रीत न जानों स्वारथ मीत निहारे।
कृपानिवास सिया सु कुंवारी हस कछु नैन ततारे॥

भावना-पचीसी

कृपानिवास कृत

कृपानिवास जी कृत भावना पचीसी सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से एक अनमोल पुस्तक है। संपूर्ण ग्रंथ दोहों में है। आरंभ में श्री जानकी जी की सखियों के नाम और उनकी सेवा तदनन्तर श्री रामजी की सखियों के नाम और उनकी सेवा का विवरण है। पहला १२ दोहों में और दूसरा २१ दोहों में है। इसके पश्चात् प्रातः शृंगार का वर्णन भोग, षोडशोपचार पूजा तथा फिर भावना अर्थात् मानसिक पूजा का प्रकरण है।

श्रीजानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा

प्रथमहि श्री प्रसाद जू, सकल सखिन सिरमौर।
जिनके कर विहरत सदा, दंपति श्यामल गौर॥

चन्द्र कला गुन आगरी, रहस विचक्षन जान।
सुरुचि लाडिली लाल की, सेवत समै समान॥

विमला विमल विहार मैं, रहत सदा लवलीन।
रहस संपदा लाल की, प्रगटति चाह नवीन॥

मदन कला रस मदन को, सदन जुगुल रस हेतु।
वदन प्रशंसा को करै, अडिग भाव रस खेत॥

विश्व मोहनी एक रस, मोहि रही पद कंज।
सिय वल्लभ की माधुरी, भरी धरी दृग पुंज॥

उर्मिला उर अति सुख वसै, पिय प्यारी अनुकूल।
जुगुल वदन निरखत खिले, चन्द्र कमोदनि फूल॥

चम्पकला रस चौपकी, मानौ भरी भंडार।
लाल लाडिली सुख सदा, देखत नित्य विहार॥
रूप लता विधि रूप की, पर्म उपासक एक।
राम जानकी महल की, टहल जु करन विवेक॥
अष्ट सखी ये मुख्य है, ओर सखी कह अन्त।
इनकी कृपा कटाक्ष तें, शुद्ध भये बहु जन्तु॥
जो चाहै सिय लाल की, रहस माधुरी केल।
तौ सब आस विहाय कै, कीजै इनकी मेल॥
श्री प्रसाद प्रसाद करि, अष्ट सखी गुन गाय।
अलि निवास जिनकी मया, महल माधुरी पाय॥
प्रथम पाठ इनको करै, पीछै और कराय।
रहसि माधुरी उर फुरै, सहल महल कौ जाय॥

श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा

प्रथम चारु शीला सुभग, गान कला सु प्रवीन।
जुगुल केलि रसना रसित, राम रहस रसलीन॥
हेमा कर वीरी सदा, हंसि दंपति मुख देत।
संपति राग सुहाग की, सौभागिनि उर हेत॥
क्षेमा समै प्रबन्ध कर, वसन विचित्र वनाय।
सुरुचि सुहावन सुखद सब, पिय प्यारी पहिराय॥
सखी पद्म गंगा सुभग, भूषन सेवत अंग।
सदा विभूषित आप तन, जुगुल माधुरी रंग॥
अलि सुलोचना चित्रवित, अंजन तिलक संवारि।
अंग रासि सिय लाल के, करि जीवति शृंगार॥
सखी वरारोहा हरषि, भोजन युगल जिमाय।
प्रान प्राननी प्रान सुख, राखति प्रान लगाय॥
लक्षमणा मन लक्षगुन, पुष्प विभूषन साजि।
बिहंसि बिहंसि पहिरावही, सिय वल्लभ महाराज॥
सुभगा सुभग सिरोमनि, सेज सोहाई सेव।
सिय वल्लभ सुख सुरति रस, सकल जानि साभेव॥

अष्ट सखी ये लाल की मुख्य जनाई जानि।
अलि निवास इनकी मया, महल माधुरी पानि॥

सेज सदन मनि सेज रचि, समय सरिस सुख साज।
हसि जनाय पधराय दोउ, सुमिरहु सुरति समाज॥

पिअ प्यारी सुख रस रसै, वसै सखी चहुओर।
दृग भोगी तत्सुख लहै, कृपा रहसि मतिवौर॥

भोजन भोग विहार सुख, सद्गुरु सेस अहार।
सदा भावना भाव वस, समै समै अनुसार॥

सुरति प्रान दृग ध्यान धरि, जौ लौ प्रीति विहार।
सुरुचि समुझि सामीप झुकि, पुनि सब सौज सम्हार॥

लाड सुभोग जिमा वही, आर्त्त आरती साज।
लाड लडावात सेज सजि, पौढ़ावै महाराज॥

जुगुल चरन सेवै सुखद, दृग प्राननि सों लाय।
कोमल पद प्रीतम प्रिया, कोमल करमन भाय॥

सदा भावना लीन यह, मीन जथा जल प्यार।
और साधना सब तजै, भजै कृपा सुख सार॥

भोग पचीसी पर्म सुख, पढ़ि निति प्रीति प्रकास।
भाई मन पाई रसहिं, गाई कृपानिवास॥

श्री कृपानिवास जी की

पदावली

श्रीज्ञाना इसी के शिष्य महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से छोटे लाल लक्ष्मीचंद बंबईवाले ने प्रकाशित किया। इस संग्रह में लगभग चार सौ पद हैं और प्रातः जागरण से ले कर शयन तक के भिन्न-भिन्न समयों और लीलाओं के पद हैं।

रसिकोपासक कवियों में कृपानिवास जी विशिष्ट पद के अधिकारी हैं। इन्हें उतने हलके ढंग से नहीं लिया जा सकता जिस ढंग से आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिया है। अपने निजी आग्रह (दुराग्रह ?) के कारण भी कभी-कभी उत्तम से उत्तम वस्तु कुरूप और अभद्र दीखती है। इसीलिए यह वैज्ञानिक एवं निष्पक्ष दृष्टि नहीं कही जा सकती। अस्तु श्री कृपानिवास के पदों से स्पष्ट है कि वे इस रस रहस्य के एक परम अनुभवी संत एवं सफल कवि हैं। भाषा बहुत ही सुथरी, भाव बड़े ही सरस।

उदाहरण--

सुभग सेज सदन रंग राजत सियलाल संग रस अनंग जीत जंग प्रात लसे प्यारे।
मन स्वरूप मोहनिशि चंद किधौं रोही सि ललनि छटा सोहा सिसुंदर उपहारे।।
दोऊ लाल गसि रसाल प्रातकाल नहिं संभाल उभै चंद्र प्रेमजाल सोवै मतवारे।
चहुओर सखि चकोर उझकै छवि ठौर ठौर चमचमात नैन भोर शर्द रैनितारे।।
छूटे दरि परद बन्द अगर सुरभि अति सुगंध गुंजत अलिबृंद वृंद सुख ममन्द सारे।
सकल सखि चौप चमकि चाहि छकित रस कि रहति बार उझकि उछकि द्वार लगि संभारे।
औसर सुख समझि खरी रसविनोद विफुलभारी आलस तन देखि डरी मधुर भाव पारेउ सिमटी।
श्री प्रसाद आगे सब समाज पांय लगे कृपानिवास भाग जगे पलक कछु उघारे।।
जागे जब युगुल लाल आलस बसि छबि रसाल निरखि दृगनि सब मिहाल प्रात सुख वधाई।
बिपुरन कल कुंचित कच सुमन विविध लसत सुरुचि उड़गण लै तिमर कल चंद शरनि आई।
आलस मद अरुण नैन घुरनि तन पंकज अपन लैन वास भ्रमर माल भृकुटी सुघराई।
बदन मदन मद सु निधन रदन छदन बिंब कदन मगन अंग मुरत तुरत सुरति मुख जंभाई।
दोऊ जन भुज अंशधरी शिथल अंगालिंगन करी मनु तमाल कनक लता शाखा लपटाई।
दशन छद कपोल कलित चुंवनि शशि मध्य ललित मनहुं सुरति शारद की प्रगटी चतुराई।
नखन चिह्न श्याम अंग शोभा मथि अति अनंग मनु तमाल ललमुनी रैनि की बसाई।
बिगलित गलमाल ठरनि मुक्ता झरि सेज परनि स्वाति बूंद प्रात शरद धरति सिंधुमाई।
सारी शिर पैच ढरे विविधि बसन फरकि परे परस्परनि प्यार भरे रति श्रृंगार छाई।
वर उरोज नगन खरे देखि दृगनि श्याम हरे मदन कलश सुरस भरे लालन ललचाई।
मधुर बैन श्रवत मैन अलसानी अलि चलति सैन रैन की कमाई प्रिय नैननि बतराई।
गोर रंग श्याम रंग शारद प्रतिबिंब गंगनि कालींदी जनु दीप दाम श्याम गौरताई।।
प्यार निरार भरि सुमोद करि बिनोद पिया गोद रंगरसिकरैनि क्रिया साधि अंक ल्याई।
प्राणपति सुजीव निरस पीवनिं अनुराग भरी हरी रूप सुखमा सुख पाय तन समाई।
कछुक लाज सुरस काज निरखि निकट सखी समाज छबि बिराज नवल दोउ मुरकि दृग नवाई।
श्री प्रसाद जानकी जु वल्लभ सुख दानकी जु कृपानिवास प्राण की जु पारस निधिपाई।।

रंग रंगीले दोउ सोय जगेरी।
बिथुरी अलकै अलसी पलकै रंग सनेह सुरंग पगेरी।
मद रस छके बिराजत लालन ललना के रस रंग ठगेरी।
कृपानिवास श्री जानकी वल्लभ सखियन के दृग निरखि परोरी।।

नवल छबीले दोउ सोय जगेरी।
अकथ कथौं कछु छवि सुघराई।
गौर श्याम भद्र श्याम गौरि मैं बिंवतनु तरत बरन पर छाई॥
दृग अंजन अधरन पर सोहैं कुच केसरि पिय उर लपटाई।
कचवर पेच औ चिरति झुलन बेसरि सरस समैं बलखाई॥
सुरति समर बरबीर बिजय परलोचन घूमत युत अरुनाई।
कृपानिवास विलासनि सिया जू वल्लभ सों मृदुकहि मुसकाई॥

भोरहिं छबि प्रीतम के मन भाई।
सब रस भरी उमंग बढ़ावति हंसि हंसि लाल जगाई॥
अंजन खंजन सुकर बनावत बसन सुगंध भिगाई।
चोलसकेर सुभग तजु बैठी कुच दै पानि लजाई॥
पोंछत बदन मदन रस सरसे प्रीतम प्रीत सवाई।
कुच कुमलाई कली उठावत चुटकी चटक जभाई।
अलक संवारत पलक उघारत सकल सौज अलसाई॥
पिया की गोद बिनोद बिहारनि चमकि अंग अंगराई।
नैन उघारि सखिन सों बोलति लालन सों मुसक्याई।
कृपानिवास श्री जानकी प्यारी प्यार प्रिया उर लाई॥

सखी कछु कहि नहिं जात री।
जब देखौं तब लाल लालची छिन छिन हाहा खात री॥
रस लंपट संपुट कर मोही भोई मधुरी बात री।
जो बीती चितमित नहिं पइये हित हिय मांझ समात री॥
सुख सों दुख दुख सों सुख जानों हाहा लाल सिहात री।
कृपानिवास बिलासनि चंचल अंचल दै मुसक्यात री॥

कुछ अकथ कथा है आजु की।
हंसि प्रीतम चोली कस खोली बोली नाहिन लाज की॥
बोलत हित चित यतन उपावै गावै बिनय स्वकाज की।
अंक निशंक बंक करधारी हारी हाहा हाज की॥
भुज भरी लई दई दई करिते पति पोषी रतिराज की।
कृपानिवास बिलास रमाई भाई सुरति समाज की॥

पिय के नैन प्रिया छबि उरझे सिया दृग पिय छबि लागे।
मनु द्वै रूप सरोवर मीनन सदन पलटि सुख रागे॥

प्रीतम प्राण बसैं प्यारी बश प्यारी पिया के आगे।
कहि लालन मैं सर्वसु तुम्हरो मैं तुम्हरी बड़ भागे।
तुम्हरी मया बड़ भाग बिलासनि बिलसहु सुख मन मांगे।।
लाल रावरो हित सु अमोलक मन सब हेतन त्यागे।
तुमसों लाल निहाल चरण लगि मानों भाग सुभागे।।
राज रावरी वस्तु प्राण तन पगे रहो जिमि पागे।
यह सुख सुधा सदा कोई पीवै कोई भूले विष दागे।
कृपानिवास प्रसाद स्वाद सों प्यायो जन निशि जागे।।

महारस भीनी रंग भरी जोरी।
सिय अनुराग पगे पिय सुन्दर पिय सिय राग निबोरी।।
सिय की मया विचारत घूमैं पिय की रहसि समुझ मन मोरी।
मिली श्यामता गौर युगल तन मृग मद केसरि घोरी।।
छबि की छटा सी दमक दमकनि दामिनि हंसनि मनोरी।
रस आनन्द मधुर झर इक रस सखि मन भर सरसोरी।।
गर भुज माल सु लाल लड़ावति अली लड़ावति प्रिय लड़कोरी।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ मोहिय ते न कदापि टरोरी।।

सदा चिरजीवो रंग भरी जोरी।
सदा बिहार करो रंग मंदिर रंग किशोर किशोरी।।
सदा सुहागनि के अनुरागनि रंगे रहो बड़भाग बटोरी।
पिय को प्राण बसो सिय सुन्दरि सिय मन श्याम बसोरी।।
पिया की चाह सुचात्रि कलों रहो सिया की मया स्वाति बरसोरी।
सिय मुख चंद सुधारस द्रवो नित पिय की चांदि चकोरी।।
हमरे नैन प्राण की सर्बसु अधिक अधिक सुख रस सरसोरी।
कृपानिवास उपास महल की टहल लगी सो लगोरी।।

सिय राम जु को ध्यान मेरे निशिदिन रह माई।
युगल बदन सुखमा सदन मदन अति लुभाई।।
क्रीट मुकुट चंद्रकोर जटि मणि मुक्ताई।
कुंडल कल करनफूल झूमक झुमकाई।।
भाल युगल दुतिय चन्द्र श्री अमन्द छाई।
बिकट भृकुटि मदन चाप चारि चरि चढ़ाई।।
युग कपोल अलक झलक मेंचक बलखाई।
मनु दुरेफ मालकंज मकरंद लुभाई।।

खंजन दृगन सैन दैन गैन मद चुराई।
नवल नथ सुहाग युगल नासिका सुहाई॥
अधरारुन बिंब लजित दशन पांति पाई।
कल कपोल बोल मधुर सुमन मनु झराई॥
चिबुक बिंदु मिथुन मिंदु लसत श्यामताई।
जनु मिलाप कियो राहु बसी मित्रताई॥
सुभग भाल पदिक हार कंठो तिमनाई।
ग्रीव ललित सींव सुभग भूषण सघनाई॥
श्याम भुजा अंगदादि कंकनि जटताई।
गवरिं भुजनि वल यादिक भूषण सुघराई॥
जावक युत जान हस्त पान अरुनताई।
पुष्प लिये गौर श्याम बीरी जु बनाई॥
उर सुगन्ध कर्पूरादि मलय केसराई।
युगल-उदर सुघर सकत कहि न सुभगताई॥
रोम पांति मधुप अवलि लै सुबास धाई।
गंग ययुन धार बही नाभि अलि घुमाई॥
किंकिनी नवीन छुद्र घंटिका सजाई।
मधुर मुखरबीन मनौ कामरति वजाई॥
नूपुर वर पायल पद गुल्फ वर्तुरताई।
युगल पद सरोज अलिनि मनु सुर सरसाई॥
गौर श्याम सुरस धान काम रति लजाई॥
अंग अंग नवल रंग नवलहि तरुनाई।
कृपानिवास आस सुमति खास टहल लाई॥

सेज सुख सोये सांवर गोरि।
प्राण बपुष मन लगन गोद सुख सिमटि भये एक ठौरि॥
लपटि भुजातन सोहति मानो नेह लती सुख द्रुम निसकोरि।
पलक लगी वर बदन मनोहर मीन सुधासर बोरि॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुचिंत मैं समय समझ गुन कोरि।
कृपानिवास सियापद पंकज सेवनि नैन निहोरि॥

युगल रस को रति गाय सुनावै।
प्रेम भरी सुख भरी सो सहचरी निज हेत जनावै॥
कवहुं सुनै न बैन मन तनसों कबहुं मुकर पद पावै।

समय समय सुख टहल महल की हितु सब लाड़ लड़ावैं ॥
अगम अगोचर गोचर करि हैं अवक बचन दरसावैं।
चिनमय रस चिर पिय प्यारी को रसिक उपासिनु प्यावैं ॥
सिय पिय सुख जन गुन प्रतिपालन अपने भाय बढ़ावैं।
कृपानिवास अली अलबेली सबकी चाह बढ़ावैं ॥

समय सुहावनि सुन्दर जोरी।
सजी नवल तन सुरुचि सखी जन धन लौं श्याम सिया दुति गोरी ॥
नव भूषण नव बसन मनोहर नवल किशोर किशोरी।
प्राणन माल सजी अलबेली फूल फरै फल जनक ररोरी ॥
रूप सिंहासन बिछें वसन पर गरवहियां पद टोरी।
परम उदार उपासिन के हित छबि शृंगार सदा यक ठोरी ॥
अष्ट भवन की सखी सिमटि सब वनि ठाढ़ी चहुंओरी।
पीवत युगल माधुरी नैननि मतिवारी रंग बोरी ॥
कोई बोलनि कोई चितवनि सों रति कोई मुसकन कियोरी।
कृपानिवास पिय सिय सों लगि आंखें मुरी नहिं मोरी ॥

सदा सुहागनि जनक किशोरी।
आनंद कन्द चन्द कैरव कुल वरपाये भल भाग करोरी ॥
भव धनु भंजन जे नृप गउर बन वन बनेह निहोरी।
अंड अनेक चंड यश गावत सो नागर बस प्रेम ठगोरी ॥
काल करास कंप भुव फेरन अनुहर देव अकोरी।
जो गुन निर्गुन सगुन गुन सागर सिय गुन रसित रसिक मनि सोरी ॥
शारद उमा शची रति कमला चरन सेव सकोरी।
ज्यों हुतास कनिका रबि ऊपर बात मिलै धवै गति ओरी ॥
पति की प्रान प्रान की सर्वसु सर्वसु की बसतोरी।
ते जन मन क्रम वचन सिया पद रति प्रसंस तिन निगम वढ़चोरी ॥
शील स्वरूप सहज गुन मंदिर अंतर श्याम लसै तन गोरी।
कृपानिवास राम प्यारी छबि मो नैन ते छिन न टरोरी ॥

आज बने राम सिया सुंदर सुघर बर रसके रसिक रसदान।
रस की प्रवीण लिये बीन नवीन सिया पिया रस पुलकि ले तान ॥
रसही की रीझ रस भीज भेजाय रहे रस भरि जै जै धुनि रसकर गान।
रस के विलास रसहास निवास अली रसभरी जोरी पर वारों तन प्रान ॥

हेली री रंग धाम रंगीले प्यारे शोभित सिया संग राम।
सुरंग सिंहासन पर रंग राजे दोउ अंग अंग ये वारों कोटि सतकाम ।।
सुरंग समाज बन्यो रंग सो वितान तन्यों रंग रसराज राज रंग ददाम।
कृपानिवास प्यारे रंग रस रासभरे रंग मिल गवर सुरंग घनश्याम ।।

देखो भाई रंग भरे पिया सोहत रंग भरी सिया अंगबाम।
रंग भरी वतियां रिया रंगीली नरबर रंग कोटिक रंग अभिराम ।।
रंग सो अभंग सर भवन तरंग ढरि चरसों सहेलि पर रंग ललाम।
रंग बिलास निवास अली मिलि झिलि रहे रंगरि भुज दाम ।।

रंग महल दोउ राजत रंग रसीले।
लावन लंक अंकन की सानिधि भुज अंसनि गुन सीले ।।
नैन की वतरावनि भावनि लावनि बोलनि बदन हंसीले।
उरहित भाव मिले रुचि बरणित करि नित केलि कबीले ।।
सखि जनमन की प्रीति चातुरी मिली जुहरत रति सो रतीले।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ रहसि उपासिक हीले ।।

मेरो मन सु पथिक मग भूल पर्योरी।
प्यारी तन कानन बहुरंगनि अंगनि अंग अनंग फस्योरी ।।
राजी रोम सघन द्रुम छबिमय लता जाल फांसे कौन टर्योरी।
त्रिवली सरिता उचसैन कुच मध्य गुफा बसि नहिं निकस्योरी ।।
खंजन करि लसै सु मनोहर बिपुल कटाक्ष सु मृगनि मखोरी।
ज्यों वन सिंह सुछंद फिरै गज धीरज नेम कुमान दर्योरी ।।
बाल व्याल सखि ताल कपोलनि करन कंज मकरंद धर्योरी।
भौंहें मधुप पांति आवति शर खंजन मारग अटक पर्योरी ।।
जयति प्रसाद सुनो अटवी सुख रूपचन्द बरपोष हर्योरी।
कृपानिवास बिलासनि सिय कृपा विचरो वन मन मैंन डर्योरी ।।

नीवी करषत बरजत प्यारी।
रस लंपट संपुट कर जोरत पद परसत पुनि लै बलिहारी ।।
बदन घुमाय सिहाय महाजट तड़ित ज्यों चमकत बंक निहारी।
तलपट राय मचाय धूम रस हंसि हंसि कृपानिवास सियहारी ।।

करो सुभग सुख मद मतिवारी।
मुधरि उघरि उज्ज्वल रस तेरे मेरो मन होरो अधिकारी ।।
परम उदारनि सरन राबरी मृदुल चित्त मोहित हितकारी।
कृपानिवास बिलास भरी सिय पिय को मन बसरस बिस्तारी ।।

पिय हंसि रसरस कंचुकि खोलैं।
चमक निवारति पानि लाड़ली मुरकि मुरकि मुख बोलैं ॥
टुकरहो सखी सखी कछु गावति भावन मदन बिलोलैं।
कटि गहि लटकि हटकती सुंदरि अधरनि परसि कपोलैं॥
तलपटुराय लाय उरसों उर कोक कलानि किलोलैं।
कृपानिवास बिलासी दंपति संपति रास बढ़ोलैं॥

पौढ़े सुख सैन रैन रंग महल मैं।
सुरति सरोवर हंस हंसनी करत किलोल मद मदन गहल मैं॥
अरी पान बलपीय जीय की सुजीवनि ग्रीबनि भुज भरि सुघर सहल मैं।
अधर अधर धर सकुच परस्पर भयो है मिलन मानो आज यहल मैं॥
सीतल मंद सुगन्ध पवन जहं बहत भवन सुख सरस चहल मैं।
जयति जानकी रमन कमल पद अली निवास नित रहत रहल मैं॥

दोउ मुख झाँकैं झरोषनि अलियां।
सैन किलोलत लोल रसिक मन मैन बढ़्यो ज्यों रैन सुघुलियां॥
उघरे अंग संग जगु राजत जनु सर पंकज कंचन कलियां।
उर उर अरत दरत केसर बर करत बिनोद विपुल मद रसियां॥
परिरंभन चुंबन रस संतत चपला भूकंपन हलियां।
कृपानिवास बिलास बिलोकति आस सखी जनमन की सुफलियां॥

जयति रति खेतवर युगल सोभावनी।
दलि तन बसन की लसन अद्भुत बसै हसै सुकुमार रसभार जीति अनी॥
बिथुर कच अंग जनु कंज बन मधुप गन पिवत मकरंद सुख कंद सुखमा घनी।
नखनि रद छत प्रगट निघट उपमा जदपि तदपि कहि व्याज रसराज चूड़ामना॥
फूल घन अरुन जनु तड़ित मिल भासई नील द्रुम लपटि जत सुमन कंचन तनी।
कीवौ पादप लतालाल मुनियां वसी शशी मुख महि जु वहु आय पूजत धनी॥
मिथुन तन एक सखि देखि चकृत नवल कमल केसर लिये रैन रति द्रुति सनी।
जयति श्री प्रसाद मुख स्वाद रसरास रलि पलति सुनिवास नहिं जात महिमा भनी॥

पिय मिल करत बिलास बिलासनि माधुरी।
महा बिहार बिहारनि प्रगटे सुघर रसिक मनिका जुरी॥
वपुप घुमाय फिराय चक्रवत बिक्रम बिकट प्रकासुरी॥
कंदुक कलन ललन ललचाये चलन चातुरी आजुरी॥

जंत्र जराय सिहाय शुकल हो हसत लजावसि हातुरी।
जयति जानकी रवन केलि रस अलि निवास अलि आसुरी।।

ये री ये सुख मंदिर सेज रसीले सोये।
प्रीतम अंक लिये रस सागर मनु निस केसर पंक जगोये।।
पिय उर भुज श्रृंगार सरोवर परमा बेल बिमोये।
बदन उभय जनु सदन सुधाकर मिलत सुप्रेम समोये।।
गवर श्याम पद मिश्रित राजे मनु सुप्रिया गन होये।
कृपानिवास बिलासी दंपति मैं निज नैन पोये।।

श्री स्वामी जनक राजकिशोरी शरण
'श्री रसिक अली'

(१) सिद्धान्त मुक्तावली

रामरसामृत के लोलुपों के हितार्थ सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद बम्बई वाले ने जैन प्रेस लखनऊ में इसे १९०७ ई० सन् में छपवा कर प्रकाशित किया। इसमें कुल ५२ पृष्ठ और १५७ दोहे सोरठे हैं।

विषय––आरंभ में गुरु वंदना है फिर रामरूप की कृष्णरूप से विशेष मोहकता का वर्णन है। कृष्ण के बाल रूप को देख कर भी पूतना ने विष से मिला अपना स्तन्य पिला दिया परन्तु उधर शूर्पणखा शत्रु की बहिन होती हुई भी राम के त्रिभुवनमोहन रूप पर मुग्ध हो उन्हें पति रूप में वरण करना चाहती है। कृष्ण के रूप पर तो स्त्रियां ही मुग्ध हुई परन्तु राम के रूप पर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनि भी आसक्त हो कर उनका आलिंगन करना चाहते हैं। इस प्रकार राम का रूप परम मनोहारी है।

इसके अनन्तर दास दासी, सखा सखी भाव का वैशिष्ट्य दिखलाया गया है। होली, रास, हिंडोलना, महल और श्रृंगार में जो सेवा-भाव प्रिय लगे उसे ही ग्रहण कर तत्संबंध से भावित हो कर निरंतर प्रेमरस में छके रहना चाहिए।

तत्पश्चात् साधन, भाव और प्रेम का प्रसंग है। इन तीनों की बड़ी ही भावपूर्ण व्याख्या है उदाहरण सहित। फिर निष्ठा के भेद तथा प्रीतिरीति का स्वरूप विधान निश्चित किया गया है। भक्तिरस का वर्णन करते समय आश्रय आलंबन का प्रकरण बड़े विस्तार से आया है तथा रसों में दास्य, सखी वात्सल्य, श्रृंगार का सविशेष वर्णन है। अभिप्राय यह कि रसिकोपासना के सिद्धान्त का बड़ा ही भव्य मनोज्ञ ग्रंथ है और यहां गागर में सागर की उक्ति घटित होती है।

सिद्धान्तानन्यतरंगिणी

हस्तलिखित प्रति प्रमोद रहस्य भवन अयोध्या में प्राप्त है। इसमें कुल १६ तरंग और ५५० दोहे हैं। इसमें भावना का ही विषय मुख्य रूप से आया है।

अमर रामायण (संस्कृत में)—लगभग ४००० श्लोक हैं। कनक महल, अष्टयाम, भावना तथा रससाधना का यह प्रमुख ग्रंथ माना जाता है ।

रहस्य रत्नमाला—रसिक वल्लभ शरण जी का रस पर दोहे, चौपाइयों में।

सिद्धांत चौंतीसी—सिद्धान्त के ३४ दोहे ।

होलिका विनोद—१३ कवित्त । सीताराम की

कवितावली

श्री जानकी करुणा भरण

अध्यायत्रयी

दोहावली

सिद्धान्त मुक्तावली

श्री रसिक अलीकृत

ज्ञानी योगिन करत संग ये तजि रसिकन संग।
सूख गर्त्त सेवन करत शठ तजि पावन गंग॥

ज्ञान योग आश्रय करत त्यागि के भक्ति उदार।
बालिस छांह बबूर की बैठत तजि सहकार॥

सीस नवै सियराम को जीह जपै सियराम।
हृदय ध्यान सियराम को नहीं और सन काम॥

नारि मोह लखि पुरुष वर पुरुष मोह लखि नारि।
तहां न अनहोनी कछू कवि बुध कहत विचारि॥

होनी होनी होइ तहं अद्भुतता नहिं जान।
अनहोनी तहं होइ कछु अद्भुत क्रिया वखान॥

अनहोनी सोइ जानिये पुरुष रूप निधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि अद्भुतता सोइ लेखि॥

मोगति दंडक विपिन मुनि भइ रघुवरहि निकारि।
याते अद्भुत रूप श्री रामहि को निरधारि॥

अद्भुत रूप निहारि कै सब जिय होत सुमोह।
विषतन प्यावत पूतना नेक न ल्याई छोह॥

रिपु भगनी पुनि राक्षसी जाकर मनुज अहार।
मगन भई लखि राम छवि करन चही भरतार॥

खरदूषन आदिक सकल मोहे राम निहार।
लड़े सो निज इच्छा नहीं जिय बीरत्व विचार॥

ऐसे रघुबर रूप निधि सो मोहे सिय देखि।
पटतर ताकहुं पाइये अति अद्भुत छबि लेखि॥

उमा रमा ब्रह्मानि सिया महल सेवत सदा।
शारद चतुर सुजानि नित कृत चरित सुगावहीं॥

यथा अवध मिथिला तथा सुख सुखमा मरयाद।
इनहिं सदा उर धारिये त्याग सबै हमिसाद॥

प्रकृती अरु सब तत्व तें भिन्न जीव निज रूप।
सो प्रभु सों नातो बिसरि पर्‌यो मोह तम कूप॥

पुनि सोइ रसिकन संग करि लहै यथारथ ज्ञान।
नातो सिय रघुनन्द सौ निज स्वरूप पहिंचान॥

दास दासि अरु सखि सखा इनमें निज रुचि एक।
नातो करि सिय राम सों सेवै भाव विवेक॥

होरी रास हिंडोलना महलन अरु सिकार।
इन्ह लीलन की भावना करे निज भावनुसार॥

बसै अवध मिथिलाथवा त्यागि सकल जिस आस।
मिलिहैं सिय रघुनन्द मोहिं अस करि दृढ़ विश्वास॥

पूजे नहिं वहु देवता विधि निषेध नहिं कर्म।
सरण भरोसो एक दृढ़ यह सरणागति धर्म॥

सो पुनि त्रिधा बखानिये साधन भावरु प्रेम।
साधन सोई जानिये यामें बहुविधि नेम॥

श्रद्धा अरु बिश्रंभ पुनि निज सजाति कर संग।
भजन प्रक्रिया धारना निष्टा रुची अभंग॥

पुनि अनर्थकर त्याग सब यह लक्षण उर आनु।
प्रथमहि साधन भक्ति के ताकरि भाव बखानु॥

क्रियारंभ के प्रथम हीं उपजे उर आनन्द।
क्रिया विषै दुख सहनता फसै न आलस फन्द॥

ए तीनों बुध कहत हैं श्रद्धा के अनुभाव।
श्रद्धा सम्पति होय घर तब बस्तू की चाव॥

सुनि लखि नहिं लौकीक में दरशन हीं आम्नाय।
सो सुनि चित्त सांची गहै सो बिश्वास सुभाय।।

जामे करिये भाव पुनि सोइ परीक्षा लाग।
बहु विधि चित्त उदवेग हीं तदपि तासु नहिं त्याग।।

यह निष्टा अनुभाव लखि जाके उर में होय।
ताको कछु संशय नहिं मिलै रामसिय दोय।।

जामे प्रीति लगाइये लखि कछु तिहि विपरीत।
जिय अभाव आवै नहीं सो निष्टा की रीति।।

दरश परस में सुख बढ़ बिनु दरशन दुख भूरि।
यह रुचिकै अनुभाव सखि करै न रघुवर दूरि।।

भाव भक्ति तव जानिये यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय।।

मिलन आसरजु बद्ध चित पुनि उत्कंठा जान।
आसक्ति तद्‌गुण कथन प्रीति बसत अस्थान।।

नाम गाम में रुचि सदा यह नव लक्षण होइ।
सिय रघुनन्दन मिलन को अधिकारी लखु सोइ।।

बिघ्न अनेकन होइ तौ प्रीति रीति नहिं हान।
आसक्ती नित नव बढ़ै सो लखु प्रेम प्रधान।।

स्नेह सुलक्षण जानिये चित्त द्रवित लखि होय।
तन धन बिलग न मानहीं तजे बिछेदक जोय।।

सिय रघुवर सम्बन्ध करि दुख सो सुख इव भास।
सिय रघुवर सम्बन्ध विन सुख सो दुःख निवास।।

यह लक्षण अनुराग के अनुरागी उर जान।
ताको करि सतसंग पुनि अपनेहुं उर आन।।

लखु लक्षण यह प्रणय के दृढ़ विश्वास जु होय।
बाढ़ै उर अति सख्यता निज समता सखि कोय।।

लखु उपासना द्विविधि सो ऐश्वर्जाशय एक।
द्वितिये माधुर्याशया धरै यथा रूचेक।।

द्विभुज परात्पर रामसिय रासादिक करि युक्त।
ध्यावै नित गोलोक सो ऐश्वर्याशय उक्त।।

तथा अवध मैं ध्यावहीं रासादिक बहुरंग।
बीच वीच मिथिला गवन चहूं बन्धु मिलि संग॥

माधुर्य्या सोइ जानहु रसल जनन सुख मूल।
करै सदा सोइ भावना गहि लक्षण अनुकूल॥

पूर्व कहे ते प्रणय युत अष्ट सात्विका जान।
तनमन को यो धो भई ताहि सात्विका मान॥

अंसन पर अलकें लसत भुज अंगद छवि देत।
छरो छबीलौ फेट मे चित्त चुराये लेत॥

संजन सफरी से चपल अनियारे युग बान।
जनु युवती एती हतन भौंह चाप संधान॥

ललित कसन कटि वसन की ललित तलटकनी चाल।
ललित धनुष करसर धरनि ललिताई निधिलाल॥

ललिताई रघुनन्द की सो आलम्ब विभाव।
ललित रसाश्रित जनन को मिलन सदा मनुचाव॥

कोकिल शब्द बसंत ऋतु सो उद्दीपन जानु।
मन्द हसनि दृग फेरनी सो अनुभाव बखानु॥

पूर्व कहे ते सात्विका सबै सुदिप्ता जानु।
उग्र अरु आलस्य बिनु संचारिहु अनुमानु॥

अस्थाई प्रिय तारती प्रणय प्रेम अरुनेह।
अनुराग अस परस पर वारत तन मन गेह॥

दशा वियोग प्रयोग में पूर्वक ही दश सोय।
अब रस रिपुता मीतता कह्यौ जस होय॥

मैत्री शान्ति रु दास्य के अरस परस सो जानु।
वत्सल सख्य तटस्थ दोउ सुचि सपल अनुमानु॥

सख्य अरु श्रृंगार दोउ अरस परस लखु मीत।
शांति रु वत्सल दोउ यह सुचि सों अति बिपरीत॥

बनिता बृन्दन मध्य जब रघुबर करत विलास।
सुचि अरु अद्भुत हास्य यह तीनों रसन निबास॥

अन्दोल रहस्य दीपिका

श्री रसिक अली कृत

यह श्री जनकराज किशोरी शरण श्री रसिक अलिजी की परम मधुर रसमयी रचना है। ई० सन् १९०७ में जैन प्रेस, लखनऊ में छपा। कुल पृष्ठ १६ और छंद ४३ हैं।

विषय—बड़ी ही भाव भरी कवित्वपूर्ण भाषा में आंदोल रहस्य के रस का वर्णन किया गया है। भाषा बड़ी ही सजीव, सरस, सशक्त। प्रिया प्रीतम के परस्पर लाने लड़ाने का बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। सखियों ने शृंगार के जो साज सजाये हैं वह भी देखते ही बनता है। हिंडोले पर झूलते होने के कारण प्रिया प्रीतम के मुखमण्डल पर जो श्रमकण आ गये हैं उनकी छबि भी कैसी निराली है। अन्त में इस शृंगार-साधक प्रेमी कवि ने कह दिया है कि लाल की यह ललित लीला त्रिगुणमयी माया से परे की वस्तु है; वहां पुरुष नहीं पहुँच सकता, वहाँ केवल 'अली' को अधिकार है।

उदाहरण—

बाढ़्यो अधिक रस झूलना सखि छकीं सब रस रूप।
खसी बसन कंचुकि कसन छूटत टूटत हार अनूप॥

सो मुक्तामणि बिस्तरन पर कोमल चरण चुभि जाय।
भय मानि ले सब दासिका जल मांझि देत बहाय॥

पीतम प्रिया मुख श्रम सलिल कन पोंछि हित सुख लेत।
जनु नागराज सुइंदु अरचत सुध साधन हेत॥

जब लाडिली कटि लचकि मचकति झुकति पिय की वोर
तब जात बलि बलि लाड़लो गति होत चंद चकोर॥

जब परसि वात उरोज अंचल उड़त सिय सकुचाय।
पुनि हेरि पिय तन नमित चखरहि रसन दसन दवाय॥

लखि हाव पियउर भाव सरसत चाव चित उमगात।
सो निरखि दंपति सुख सरस अलि मुदित उमगी गात॥

हिय हार उरझे दुहुन के त्यौं अली झोटा देत।
सुरझे न झोकनि झपटि लपटी नवल पिय रसलेत॥

लखि श्रमित सब झूलनि पिया प्यारी लई भरि अंक।
ले गोद पिय झूलन लगे लखि छके वदन मयंक॥

भीगे अलिन के चोल चूंदरि चुवन लागे रंग।
झीने सुपट लोग लिपट दरसाइ त्यों अलि अंग॥

मृगी ज्यों सब ठगी नागरि रहि विरह तन घेरि।
मिलन चाहति लाल अंक निसंक हारी हेरि।।

ललित लीला लाल सिय की त्रिगुन माया पार।
पुरुष तहं पहुंचे नहीं केवल अली अधिकार।।

रसिक अलि जीवन यही ध्यावै रटै दिन रैन।
बिनु जुगल रस लीला लखे छिन पल हिये किमि चैन।।

पञ्चशतक

श्री रामचरणदास 'करुणासिन्धु' जी

रसिकोपासकों में शिरोमणि महात्मा रामचरणदास जी के लिखे 'पञ्चशतक' में (१) विवेक शतक, (२) वैराग्य शतक, (३) उपासना शतक, (४) विरह शतक और (५) नाम शतक सम्मिलित हैं। शृंगारोपासना में एक प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में इसका आदर है। सिद्धान्त ग्रन्थों में यह पञ्चशतक सर्वमान्य है। इन ग्रन्थों से स्पष्ट ही पता चलता है कि महात्मा रामचरणदास जी रसिकोपासना के अनुभवी और विद्वान् सन्त थे। ज्ञान और निष्ठा का ऐसा मणिकांचन संयोग दुर्लभ है।

विवेक शतक

(२) राम रसामृत खण्ड

हस्तलिखित प्रति रहस्य प्रमोदभवन अयोध्या में प्राप्त। इसमें वैराग्य, सन्तों की पहिचान एकादश भक्तों का वर्णन अन्त में रसका प्रकरण है। कुल चार खण्डों में समाप्त होता है।

'उपासना शतक,' और 'विरह शतक' से कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

शोभा वर्णन

नीच कर्म करने गई, सुपनखा मति कूरि।
राम रूप लखि रमि गई, दुष्ट भाव भय दूरि।।

गई पूतना कृष्ण ढिग, करन नीच के काम।
रमीन लखि कृत कर्म लघु, आपको न तेहि काम।।

गाइ बजाइ सुनाच कै, कृष्ण मोहि बृज नारि।
राम चरन दण्डक तपी, तिय भय राम निहारि।।

राम चरन गुरु एक ते, बहु गुन जाने जाइ।
जथा एक फल चाखिये, पेड़ भरे रस पाइ।।

सब कहँ फूल बसन सुख, अगिन लूक सम सोहि।
सकल सुजोग कुयोग भव, रामलला विन तोहि॥

रसमालिका

श्री रामचरणदास जी

सुप्रसिद्ध रसिकाचार्य श्री रामचरणदास जी महाराज 'श्री करुणसिंह जी' रचित (रसमालिका), रसिकोपासना के गले का हार है। इसमें परधाम, पर स्वरूप, पर रस, पर मन्त्र, ब्रह्म, जीव, भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, सत्संग, प्रेम तथा लीला बिहार का रहस्य बड़े ही गम्भीर एवं रहस्यपूर्ण ढंग से वर्णित है। इसे श्री भरतशरण जी (श्री विश्वम्भरप्रसाद जी माथुर, भू० पू० प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज, अजमेर) ने प्रकाशित किया है। रसिकोपासना का सिद्धान्त एवं उसके विनियाग की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। कथा यों है कि एक समय ब्रह्मलोक में चारों वेद अपने पारस्परिक सत्संग में ब्रह्म का निरूपण करते हुए इस बात का निर्णय नहीं कर सके कि ब्रह्म का स्वरूप सगुण है या निर्गुण। अन्त में चारों ही मिल कर शेष भगवान् के पास पहुँचे। शेष भगवान् ने लक्ष्मण जी के स्वरूप में उन्हें दर्शन दिये। फिर वेदों के प्रश्न करने पर आपने परधाम, परस्वरूप, पर मन्त्र, पर रस, क्षर, अक्षर, सगुण और अगुण इन नौ प्रश्नों का स्पष्ट रूप से विवेचन करते हुए वेदों का संशय दूर किया। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में ब्रह्म, जीव, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग और सत्संग आदि गूढ़ विषयों का भी सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। तात्पर्य यह कि भक्तिपथ-प्रदर्शक शृंगार रस से ओतप्रोत यह ग्रन्थरत्न अपने ढंग का निराला ही है। शब्दावली बड़ी ही गम्भीर और भाव बड़े ही गहन हैं। विना अच्छी तरह डुबकी लगाये इस ग्रन्थ का भाव पकड़ में नहीं आता। कुल ग्रन्थ १५ अवकाशों में विभक्त हैं और प्रत्येक अवकाश में भिन्न-भिन्न प्रकरण हैं।

सिद्धान्त

श्री तुलसी शृंगार गुप्त रस दास्य बखानी।
यही चोट रहि गई प्राप्ति में रस विलगानी॥
सोई आनि रस वपु धरचौ अग्र स्वामी के पथ लहे।
टीका रचि निज ग्रन्थ के प्रगट रास रस निर्वहे॥
राम नाम वन्दौ यदपि मुख ते कहा न जाय।
ज्यों तिय निज पति नाम को कहत वहुत सकुचाय॥
तासु मध्य आसीन भक्ति महारानी जू।
दहिने सुअंग परमीश जुगल छवि खानी जू॥
वरनन लगेऊ स्वरूप राग मंगल करि।
सहसौ शिर महि नाइ चरण रज हिय धरि॥

शिर चन्द्रिका किरीट अमित शशि रवि छवि।
जनु शशि रस कहँ पियति वेनि नागिनि कवि॥

हंस वन्धु मुख लुब्ध अलक अलि अलि जनु।
भृकुटि कुटिल छवि हरे कोटि मनसिज धनु॥

दिव्य जलज सम नयन श्रवण लगि सोहहीं।
जेहि चितवनि की कृपा सुजन जिय जोहहीं॥

करण फूल मनि कनी वर्नी अवरनि गति।
विपुल दिवस निशि राज छपहि विन्दुन प्रति॥

जुगल वदन छवि धाम कोटि शशि छवि इमि।
मानिक मनि ढिग पोत होत द्युति त्यों जिमि॥

तिलक अधर रद विंब हास अद्भुत लसै।
जनु घन रवि शिशु जलज मध्य दामिनि वसै॥

वेसर स्वच्छ बुलाक अधर पर हलकई।
जनु वृहस्पति दिवि शुक्र हृदय शशि ललकई॥

चिबुक कपोल अमोल गरे मुक्तावलि।
राम चरण छवि अलख लखहिं संग की अलि॥

परम रुचिर अंगद कंकन मुद्री वर।
शोभा छवि सु शृंगार सुभग तिन कर धर॥

हार बीच बैजंति पदिक उर पर बनु।
धनु जुग मंडल नषतहि शशि मंडल जनु॥

सारी किनारी जनेऊ अमर धनु कहं हंसै।
जनु दामिनि कै दमकि जमुन विच थिर लसै॥

कटि अवरन पट दिव्य उभय तन में फबै।
संग छवि अलख अनूठि तुच्छ उपमा सबै॥

नाभि दिव्य द्विज राज अमी हृद अलि जिमि।
रवि नन्दिनी छवि भ्रमर करै छवि तहं किमि॥

त्रिवलि रेख छवि सींव सूत्र किंकिनि फवि।
मनहुँ महा छवि छेकि हंसति त्रिभुवन छवि॥

कटि पर वर पट एक जुगनु शोभा असि।
मरकत गिरि उर तडित मनहु पूरन शशि॥

विधु मधु गण्डहि मण्डि चरण नूपुर धुनि।
जनु अलि स्वरन कञ्ज पर रमतापुही गुनि॥
नख मयंक सुत लाल वनज दल पर लसै।
मनहु स्वेत अलि मौन पियत अनुभव रसै॥
कोटिन विमल निशेश नखन प्रति वारिये।
जावक अनुपम अमल तडित द्युति कारिये॥
पगतल अमृत सिन्धु चिन्ह तेहि वर जनु।
कोइ सखि जन जिय मीन पीन तेहि रस मनु॥
हनुमत शिव शुक सनक हमौ पाँचों सखी।
रहहिं सदा प्रभु निकट करहि आज्ञा लखी॥
सकल चिन्ह हिय वसहि प्रगट एकै दुई।
सेवि धर्म यह परम रहहि पिय मन छुई॥
लाडिली लालन तनु छवि सम उपमा इमि।
रवि ढिंगि अमित खद्योत दीप द्युति हत जिमि॥
मानिक मनि जहँ पोत गुंज द्युति किमि जगे।
कोटिन सर हरि सर सम कहत लज्जा लगे॥
जुगल रूप ह्वै द्वै कर कमल सचल सर।
राम चरण किमि कहै कृपिन सुर पुर घर॥
मनि श्रेणी वेनी वनी जनु अहिनी अनी मुक्तन कसी।
घन गिरि जनु शशि कुण्ड कहँ उडि चलिय झुकि रस की रसी॥
भृकुटी कुटिल अलि कञ्ज चष मुख इन्दु सर विगसित मनो।
विहंसित अधर रद हद छवि जनु दाम शशि भीतर बनो॥
जुग वीर जनु तेहि तीर कंचन कमठ शिशु निकसे वसे।
मुख कञ्ज पर वेसर मनहु चित लाल सित अलि होइ लसे।
को कहै छवि छाके रसिक नति मूक मय रस ते भरी।
प्रति अंग कोटिन वारिये जग करनि रक्षक ले करी॥

वन विहार

सव राहस साज वनाये वन विहरत सो रस पाये।
बहु रंग के फूल उतारी वन माल गुहै पिय प्यारी॥

बहु भूषण सुमन बनावे रचि प्रीतम को पहिरावे।
प्रभु निज कर फूल उतारी बहु कंचुकि हार संवारी॥
सब सखियन को पहिरावे सखि फूलन मांग गुहावे।
रचि सेत सुमन बहु सारी सुचि रंग विरंगी किनारी॥
प्रभु निज कर वर पहिराई मुख दिव्य सुगन्ध लगाई।
सब दिव्य अलंकृत सोहैं रस रास वसन्त रच्यो हैं॥

बसन्त विहार

खेलत वसन्त लाडिली लाल, सुख सिन्धु उमगि आनन्द माल।
वन अद्भुत अति जहँ नित वसन्त, प्रभु विहरत लीन्है सखि अनन्त॥
तन लसत स्वेत पट सुभग अंग, जनु वाल हंस वस बीच गंग।
हंसि रंग विविध डारत कृपालू, जनु कुन्द लतन्ह पर बैठे लाल॥
सब सखिय सुमन ले विविध रंग, एक रचि वितान मोहित अनंग।
सर सुमन सिंहासन रचि वनाइ, छवि कहत कोटि शारद लजाय॥
तेहि पर सखियन बैठाय श्याम, लज्जित प्रति अंगन्ह कोटि काम।
तहँ नाचत सखि करि विविध गान, धुधुकत मृदंग धमकत निशान॥
वीना तमूर नेदुर उपंग, रस भरिय भेरि वाजत मुचंग।
नूपुर कंकन किंकिनी सुराल, गति थेइ थेइ थेइ थेइ उठत ताल॥
गावहि अनूठि रागिनि रसाल, सुनि रस वस विहंसत उठे लाल।
रस हेतु धरे प्रभु अमित रूप, एक ओर भई सखी छवि अनूप॥
पिय ओर चलहिं पिचकारि चारु, सखी और अवीरन परी मारु।
भई कीच अगर कुंकुम सुरंग, सुख सिन्धु बढ़ेउ आनन्द तरंग॥
एक सखिय नाम हेमा प्रवीन, चलि रस छल करि प्रभु पकरि लीन।
कोइ हार पीताम्बर लिये छीन, कोइ निज उर प्रभु उर डारि दीन॥
कोइ चुंवत मुख लालन लड़ाइ, कोइ हंसत पान वत्सल लगाइ।
मिलि प्रीतम सखि अल्हाद रूप, रचि राम चरण राहस अनूप॥
मनि भूमि पर लगे नचन गति जगमगति प्रति छांही वर्नी।
जनु छवि शृंगार मनोज रति लजि चुनि पगतर सजि अनी॥

सखियों का नृत्य

मनि तरु लतन्ह जगमगति जनु देखत चपल तिर्पित नहीं।
सखि नचहि मुद्राकार प्रभु विच बीच करते कर गही॥

बहु ताल बाजहि चरण चंचल मुरत कर मुख चप हुए।
मुक्ता कलिय नूपुर खसे जनु अमिय सर बहु शशि उए॥
दहु ओर बाजन सदि बजावहि रमसिहा धुधु धद्धधू।
भभ भेरि वज तड तड नफीर निशान धधकहि डंक धू॥
सहनाई पिय पिय गुमकि गुंम मृदंग झनझन झांझही।
तम्बूर जंग मुचंग करतालादि अनगन बाजही॥
तरु सुमन वर्षहिं श्रम अकर्षहिं सकल हर्षहिं रस भरे।
सोलहहि जिन शृंगार रस भरि अपर रस बाहिर धरे॥

शृंगार

श्रम कन मुख सोहैं कमल कोश मोती मनु।
तेहि उपर अरुण रज परम अनूपम को मनु॥
मेचक कच अलि जनु कमल बदन पर झुंकि झिले।
शशि राहु मनहु दुइ कुटिल समर तजि नइ मिले॥
रतनन भरि झारी जल सुगन्ध सखि लीन्हे जू।
निज प्रभु मुख धोइ सुख मूरति चित दीन्हे जू॥
कोउ भुज गहि ठाढ़ी कोइ सखि अंग अंगोछे जू।
कोइ व्यंजन करै कोइ अंचल ते मुख पौछै जू॥
कोइ कुण्डल अलकें उरझि गई निरुवारे जू।
कोइ मुकुट सुधारै भूषण टूट संवारै जू॥
कोइ कसहि पीताम्वर अंग सुगन्ध लगावै जू।
कोइ चँवर ढुरावै मधुर-मधुर कोइ गावै जू॥
सखियन के भूषन निज कर लाल सुधारी जू।
फूलन रचि चौकी सखि प्रभु कहँ बैठारी जू॥
कोइ चरण प्रक्षाले धूप दीप करै प्यारी जू।
छप्पन विधि भोजन लाइ सखी न्यारी न्यारी जू॥
फल फूल मूल दल अभिनिन्दिक बहु लावै जू।
प्रभु सखिन पवावहिं सखिय देइ प्रभु पावै जू॥
रस पाइ परस्पर लै आचमन सु पान जू।
करै दिव्य आरती बाजन धुनि धुनि गान जू॥
एक सुमन सेज रचित प्रीतम को पौढ़ाई जू।
सखि पाय पलोटहि कुल पद परसि लड़ाई जू॥
हंसि हंसि सब मांगहि रास दान पुनि दीजे जू॥
प्रभु राम चरण उठि जल बिहार कछु कीजै जू॥

नृत्य-विहार

नाचत नट नागर सुख सागर उमग्यो री।
लालन मुख विमल इन्दु मेचक उर चिबुक बिन्दु॥
सखि मुख चष विमल कंज तज गति विगस्यो री॥
भृकुटि कुटिल चंचरीक थिरकत रसिक लीक॥
गान विच अलि अलीक तजि ढिंग निकस्यो री॥
कर कर गहि ललिय लाल झूमत गज मत्त माल।
लचकत कटि ग्रीव चरण हिरि फिरि चलत्योरी॥
अलकैं ललकैं कपोल कुण्डल हलकैं कलोल।
जनु शशि उर रचिहि डोल गहु गत्रि झूल्योरी॥
यहि विधि गये सरयु तीर तीर पुञ्ज बन गंभीर।
पुञ्ज सुमन पुञ्ज भ्रमरि गुंजत जन ज्योंरी॥
युग तट मणि मय पवित्र चित्रित श्रेणी विचित्र।
प्रभु मन भव जल सनेत्र करुण रस भरयोरी॥
नील रतन मानिक जनु सेज शयन मानिक फनु।
जुन वन भव प्रभु रवि अलि रसन रट रस्योरी॥
सुमति कहति सूरति वलि मूरति दिखराऊ अचलि।
राम चरण जग तजि लखु भवन भैसि क्योंरी॥

जल क्रीड़ा

परि लेलि प्रभु मानस ललिय ललि लाल कौतूहल रची।
जल केलि क्रीड़ा व्रीड़ जहँ अह्लाद क्रीड़ा कल मची॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फैकहिं अलि लची।
तेहि संग भ्रमरि उड़ाहि गुंजत देखि कवि शारद नची॥
जनु पुर शशि टूटहिं वियकि अहि वाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन संपुट वेष्टि रस अलि आलि चपरि लै जूटही॥
प्रभु लेत पुनि फैंकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटही।
जिमि राम चरण हवाय सिय पुर काम रनि कर छूटही॥
यहि विधि जल केलि हेलि खेलत पिय पियारी।
उमगत आनन्द माल हंसत धरत ललिय लाल।
अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमा री॥
मिलित लाल अलक बंक बेसरि अरुझेउ तटंक।
अलि कच कुण्डल बुलाक अरुझेउ उपमा री॥

जनु जुग विधु चष कुरंग गुरु द्वौ रवि अरि अनंग।
अहि रजु कसि बीच वैर सब तजि सुख भारी।।
बहु सखि निरुवारित करताल हंस बजावती।
बहु व्यंग राग गावती मन भावति नहिं न्यारी।।
कर ते कर जोरि सकल निर्त्तत्त जल उपर चपल।
चरन चलत छुवत छटकि नूपुर रवकारी।।
रत्नालंकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्र।
जनु घन दिवि तडित विपुल दमकत दुतिवारी।।
छुम छुम थेइ थेइ तरंग गावति पिय संग संग।
चलित लजित जग अनंग बाजत करतारी।।
अद्भुत राहस अनूप देखहिं कोइ सखि स्वरूप।
राम चरण देखैं किमि नयन अन्ध चारी।।

हिंडोला

झूलत लाडिली लाल हिंडोलें।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु वितान घन माल
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल।
बरषत मेह झरत तरु अमृत बोलत मोर रसाल।
श्री सरयू उमगत उज्ज्वल जल लहरि उठत मानों जाल।।

त्रिविध पवन निन्दक मारुत चल पट फहरात सु लाल।
पद कर भूषन तडित नखत शशि निन्दत धनु सुरपाल।।
बहु सखि संग संग झूलति हैं बहुरि झुलावति बाल।
गावहिं मधुर लाल मन मोहैं करहिं विविध रस ख्याल।।

मनहुँ मदन रति के व्याहन कहँ साजि सकल निज ताल।
लाल विहारि देखि वन भूलेऊ बिसरि गयो सब हाल।।
यह रस राशि रसिक कोइ सखि सोइ निशि दिन रहति निहाल।।
रामचरण यह छाड़ि कहै कछु कारिख तेहि मुख भाल।।

दास रूप नहिं मिलत रहत ढिग चाह कछू नहिं।
तीन मुक्ति फल एक एक यहि रहेउ चारि गहि।।
तदपि त्रिगुण विन तजे दास पद कबहु होइ सिधि।
जो वनिता पति लहै पिता कुल रहै कवन विधि।।
सकल धर्म भये दूरि दासि भइ ब्रज युवती जब।
जप तप व्रत नेमादि नाश यह दास होइ तब।।

बिन जागे नहिं दास दास यह होइ काहि लखि।
बिना लखे कहुँ प्रीति प्रीति बिनु प्रेम सके भखि।।

बिना प्रेम की भक्ति हेतु घृत वारि मथइ जड़।
बिन सतसंग गंवार यथा जग चतुर होइ बड़।।

जहां आस नहिं दास दास जहँ आस न है इमि।
श्री रामचरण रवि रैनि एक स्थान उदय किमि।।

टांकी शब्द अनूप वज्र घांटी धरि फोरै।
शशि प्रति जल विन पवन दीप यहि विधि चित जोरै।।

तहँ सरवर इक अमी सहम्र दल कमल प्रेम रस।
जेहि जन को जिय भंवर पियत जग तेहि गुलाम वस।।

अष्टयाम पूजा विधि

श्री रामचरण जी कृत

[अगस्त्य संहिता के मूल श्लोकों का पद्यमय भाष्य। मंगला आरती से लेकर शयन तक के पद। लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १९०१ ई० में छपाकर छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने प्रकाशित किया।]

सखियों और सीता का शृंगार

कोइ जल कनक महावर दइ पग पीय के।
जनु मरकत मणि पत्र लिखति यश सीय के।।

जनक लली पद जावक चित्र लोल दई।
कनक पत्र जनु लिखति राम मन मोल लई।।

सिय पग पीठ धवल मणि एक ढिगन कनु।
बाल हंस सब कञ्ज कोश वोड़ी जनु।।

बिवलि नूपुर सिय पग रतन कनक कर।
मनहुँ विचित्र भ्रमर अलि लाल कमल पर।।

नूपुर तीन अवलि पग राम सोनकर।
मनहुँ पराग भरे अलि नील कमल पर।।

सिय नूपुर तर गेंज कनक दुइलर बर।
नूपुर पर पैंजनी बनी शोभा घर।।

नूपुर ऊपर गोड़हरा जानकी पीय के।
जात रूप मणि चुनित चुनित तस सीय के।।

पग शृंगार करें चतुरी श्यामा सखी।
कोई कहै जेहि वस भयो राम रामा लखी।।

सिय को छील रसालत पाँच त्रै एक हीं।
स्वर्ण खोल भरि मोति जड़ाव लरन गुही।।

जानकी कटि जगमगति नील पट पर छई।
मनहुँ सप्तरिखि नारि बलाहक पर उई।।

रामचन्द्र कटि घेर तीनि लर किंकिणी।
नील शृंग मध्य प्रान सुरुज जनु दामिनी।।

जानकि कटि मण्डल त्रय किंकिणी घनि गुही।
मनहुँ शुक्र की माल सूत्र दामिनि पुही।।

किंकिणि तर कटि सूत्र उभय शोभा असी।
कनक तमाल लता तरु दामिनि जालसी।।

ललिय लाल कटि सूत्र युगल सखि रचि भरी।
राम चरण शृंगार छवि जनु मेखल करी।।

श्री राम जी का शृंगार

श्री राम जू के कण्ठ कण्ठा लसत अतिशय गजमनी।
त्रैकोण कौस्तुभ उर लसै रवि कोटि शशि दुति सो घनी।।
कौस्तुभ तरे बर गुंज कञ्चन मणि कनिन अद्भुत बनी।
उद्योत रवि शतकोटि हृद पर पदिक शोभा भनी।
नाभी तरे बरमाल मोहन कनक बिद्रुम ललागे।
बैजन्ति माला किंकिणी तर लागि रतन पचरंग जगे।।
श्री कृष्ण नीलारुण धवल पीता पिद्वौ लर जगमगे।
शृंगार कृत बनमाल रवि ससि ग्रीवतें अरु पग लगे।।
कञ्चन धौत इव कल सुमन पट कलित जरावन गुहि तजे।
नव नील घन नखतन्ह नव ग्रह तड़ित शशि रवि बहुलजे।।

सखियों द्वारा सीता और राम का शृंगार

कोइ सखि सिय भ्रू मध्य सुभग सेंदुर करै।
मनहुँ अमल शशि शिखर दिव्य दीपक बरै।।

राम भाल तिलकोर्द्ध गोरोचन रेख दुई।
पीत मनहुँ घन शिखर तड़ित जग मग छुई॥

कोइ सखि सिय कच झारहिं रुचिर मांग गुहि।
शीश श्रवण लगि मध्य मिलित मोती पुहीं॥

टीका सिय जू के भाल श्रवण लगि पर ठटी।
पट्टा कार कनक नवरत्न कनिन जटी॥

टीका पर चन्द्रिका राम दिगि झुकि रह्यो।
रवि शशि बहु त्रिभुवन उपमा कछु नहिं लह्यो॥

सप्त शृंग यक मध्य किरीट राम शिर।
मणि जटित रवि कोटि चन्द मिलि नहिं थिर॥

राम अलक घुंघुरारि कपोलन लगि लसैं।
मनहुँ लुब्ध अलि कमल भौंर पीवत रसैं॥

सिय सेंदुर टीका भाल बेंडी बनु।
कनक शृंग पर केतु दुइज शशि शुक्र जनु॥

बेंदी बनी अनूप श्रवणता टंकनु।
जनु शशि हृदय दुकूल कमठ शिशु कंचन॥

राम श्रवण कुंडल मकराकृत लोल जू।
जनु, तमाल तरु झूलत मयन हिंडोल जू॥

कोटिन रबि पर तेज कोटि शीतल शशि।
जनक लली की बोर तेज शीतल तसि॥

अति सुन्दर सिय के अम्बक काजल बनो।
अरुण कंज के कोप श्याम रेखा मनो॥

काजल देंहि सखी दुइ लोचन श्याम के।
जेहि विधि जनक लली के तेहि विधि राम के॥

सीता मुख अधरारुण पर बेसरि हलै।
जनु मयंक सुत अरुण कंज दलन पर चलै॥

राम बुलाक मनोहर चिबुक विन्दु कई।
पीत सकल छबि छेंकि छाप जनु करि दई॥

नील विन्दु सीता जू के चिबुक सखी करी।
वशीकरण जनु यन्त्र राम चितहित धरी॥

पहुंची वलय बहूटा मणि कनक जरावहीं।
सीता भुज द्वौ मूल सखी पहिरावहिं॥

राम भुजन बाजू वलय मुनि मन मोहिका।
खड़ुवा पहुंची कंकन मणिन मुद्रिका॥

सिय पछुवा चूरी कंकरण मुंदरी छल्ला।
बंक आदि बहु भूषण कनक मणिन कला॥

पीताम्वर मणि कनक छोर मोतिन छजै।
शरद प्रात रवि तड़ित तप्त कंचन लजै॥

ललिय लाल के भूषण अगिणित को कही।
राम चरण सखि जानहिं जो लखि छकि रही॥

जेहि सखि कुंज राम सिय जाहीं।
तहं तहं पूजन सखिय कराहीं॥
जानकि रसिक जानकी संगे।
वन बिहरहिं कभु कुंजन रंगे।
विहरत सुख जानकी बिहारी॥

आवत रास बिहारी देखो सखि।
सरयू तीर शृंगार विपिन ते अति अनूप छबि न्यारी॥
सीताराम मनोहर जोरी चितवन की बलिहारी।
कुंडल अलक हलक बुलाक की दलकत हृदय हमारी॥
संग सखी सौहैं अलबेली बनी ठनी छबिकारी।
सुमन सिंगार किये नखशिख लौं निजकर श्याम संवारी॥
प्रभु आगे सखि खेलत आवें फूलन गेंद उंछारी॥
झुकि झुकि लेत परस्पर फेंकहिं लखि अनन्द पिय प्यारी॥
आये दम्पति रामचरण सखि सुमन सिंगार उतारी।
नदशिख मणि भूषण सिंगार करि सिंहासन बैठारी॥

राजित सिय रघुबीर सिंहासन।
कोटिन भानु प्रकास सिंहासन कोटिन शशि सम सीर॥
कोटि काम रति दुति निन्दत द्वौ श्यामल गौर शरीर।
मणि बहु भांति विभूषण शोभित पीत नीलंवर चीर॥
बहु सखि धूप की युक्ति बनावहिं बहु दीप सजीर।
बहु सखि रचि नैवेद्य बनावहिं बहु सखि लीन्हे नीर॥

बहु सखि मुख मज्जन पट लीन्हे बहु सखि लीन्हे बीर।
बहु सखि छत्र व्यजन चामर लीन्हे बहु मदि करत समीर॥
बहु सखि बाजन विविध बजावहिं ताल देहिं बहु धीर।
राम चरण सखि गौरी गावहिं मधुरे स्वर गंभीर॥
प्रथम चरण तल पुनि नख जावक नूपुर बाम्ह बानकी।
सखि आरति करें प्रिय प्राण की निरखहिं छवि राम सुजान की॥
पुनि किंकिणि कटि सूत्र मनोहर बहुरि अधर चप पान की।
दम्पति मुख सखि शशि चकोर थंभि पुनि सर्वांग प्रनाम की॥
पुन किरीट चंद्रिका निरखि पुनि राम चरण सखि पान की।
अंगि अंग छबि सुधापान करि रामलाल अरु जानकी॥

अलि छबि देखु किशोर किशोरी।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दनी तरु शृंगार युग रूप फरो री॥
केकि कंठ द्युति श्याम रामतन कंचन धौत जानकी गोरी।
रामचन्द्र कर शर धनु राजत सिय कर कमल गेंद छवि छोरी।
रामचन्द्र कटि कांध पिताम्बर सारी नील सीय तन गोरी॥
मनहुं राम सारी होइ सिय तन सिय पट पीत राम तन कोरी॥
को छबि कहै बिभूषण भूपित को अस जो सखि मन न हरो री।
युगल मनोहर अंग अंग प्रति वारों छबि रति काम करोरी॥
बहु सखि निकट ठाढ़ि सेवा बहु नृत्य तान स्वर गान भरोरी।
रामचरण सनकादि शेष शुक शिव हनुमत मत यहै धरोरी॥
अति प्रेम मगन तनमन भीजै सखि आरति सैन सुरुचि कीजै।
युगल चंद सब के सन्मुख नित चित चकोर भयो मदन खीजै॥
सीताराम सुधा छबि निधि महं चलत मीन इव चख लीजै।
अंग अंग लखि रूपसार शशि नयन मगन रह रह पीजै॥
बहु सखि ठाढ़ि साज सब साजे बाजन ताल गान मधुरीजै।
रामचरण सखि करत आरती मन क्रम बचन अर्पि दीजै॥

सैन चलिय पिया मोर राम सिय।
सकल सखी मुख चंद बिलोकहिं रैनि गई बहु तेरि॥
अलसाने लखि नयन उनींदे सहजा सखी निहोरि।
ललिय लाल सोवनार चलहु बलि सकल सखी करजोरि॥
सुनि सखि बचन उठे पिय प्यारी उतरि सिंहासन सोरे।
सखियन राम सीय जु के भूषण हर शिर हंसि काछु छोरे॥

भूषण बसन उतारि राखि सखि सैन विभूषण थोरे।
सीय राम सोवनार चले सुख सखियन अति उमगोरे॥
मणिमय पलंग ढिगन मुक्तावलि सेज बंद कसि डोरे।
राम चरण उछीर गेंदुआ पै फेन सेज पौढ़े रे॥

सयन कियो पिय प्यारी सेज सुख।
विविधि रंग मणि मय मंदिर मै जगमगात उजियारी॥
मदन मंजरी की आयसु सखि प्रथमहिं सेज संवारी।
दिव्य सुगन्ध सुमन चहुं ढिग रचि विविध रंग फुलवारी॥
सीताराम अराम कीन सखि ठाढ़ि नीर भरे झारी।
चतुर सखी पद पदुम पलोटहिं राहस बात उचारी॥
बीरा पीक दान सखि लीन्हें सयन भोग भरे थारी।
वाजन पंच बजाव पंच सखि सप्त स्वरन रसकारी॥
आइ नींद सुख सोइ रहे रघुनन्दन जनक दुलारी।
रामचरण सखि वहु चौकी रहि वहु निज महल पधारी॥

श्री जीवाराम 'जुगल-प्रिया' जी

(१) युगलप्रिया पदावली

श्री जीवाराम युगलप्रिया के प्रेम भरे गीतों का यह संग्रह लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद में सम्वत् १९५९ सावन बदी १३ को छपा। इसमें विशेषतः सावन, फागुन के झूले और होली के पद हैं जिनमें श्री सीताजी तथा श्री रामजी के प्रणय विहार, रास, झूला के दृश्य विशेष रूप में वर्णित हैं। अनेक राग रागिनियों के पद हैं भाषा में पूर्वीपन है। उर्दू फारसी के शब्द आये हैं परन्तु अपेक्षाकृत कम। कुल १०७ पद हैं और पृष्ठ ५६।

विषय—युगल लीला विहार, रास विलास कनक भवन, सरयू तट की कुंजों में तथा सखियों सहित नाना विधि होली के आनन्दोल्लास और सावन में झूलन विहार। इसके अतिरिक्त श्री युगल प्रियाजी के दो और ग्रंथ हैं। **शृंगार रहस्य दीपिका** और **अष्टायाम**। यहाँ हम पदावली से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

ये जागे श्याम सिया संग रंग भरे रंग महल कनक भवन शैन कुंज धाम।
अलसौहैं सौहैं नैन झपको है मोहै मैन अंग अंग सुरत समर छाम॥
निज कुंज ते छटा सी छवि पुंज पुंज आई चन्द्रकलादिक बाम।
वीना मृदंग उपंग कठतार चंग मिलित चरित गावती ललाम॥
यह रस राज समाज विलोकत विसरयो है सब मन काम।
युगलप्रिया मंगनाई रसिकन धन मिलन हेतु रटत युगलनाम॥

मैं वारी युगल पर वारी।
दशरथ जू के श्याम सलोने गोरी श्री जनक दुलारी॥
नवल निकुंज नवल बनिता चहुंदिशा लसति अति प्यारी।
गान सरस बीना मृदंग धुनि युगलप्रिया बलिहारी॥

नई लगन ललन तोसे लागी।
या मिथिला की आवनि मैं तेरी विपुल अली छवि पागी॥
लै चलु पिय प्रमोद वन में जहां ऋतु बसंत अनुरागी।
अवध रंगमणि महल कांचनी युगलप्रिया बड़भागी॥
चले दोउ कुंज सरयू तट को सखिन संग अलसाने दिये गलबाहीं।
बिथुरित अलकावली मुखारविन्द शोभित सुखमा सनेह रसिकन
दृग कंज मंजु प्रफुलित जनु युगलभानु प्रगटे बनमाहीं।
छप तस्करादि जेते रसिक भाव दुखित रहे सूख्यो हृदवारि रासध्यान नाहीं॥
युगलप्रिया रसिकन के हृदयवारि राम ध्यान।
वैठक सजि पुलकत आनन्द रोम रोम असुजाहीं॥
लाडिली बनी अलबेली बना मनवारो।
श्री मिथिलेश कुमारि सरस छवि दशरथ राज दुलारो॥
श्यामल गौर नखशिख सुख साठनि अंग अंग छवि भारी।
युगलप्रिया दरशन के मनोरथ तलफत प्राण हमारो॥

जादू भरी राम तुमरी नजरिया।
जेहि चितवत तेहि वसकरि राखत सुन्दर श्याम रामधनु धरिया॥
जुलफन युत मुख चन्द्र प्रकाशित नासामणि लटकन मनहरिया।
युगलप्रिया मिथिला पुर वासिन फसी जाल विच मानो मछरिया॥

प्यारी जू होरी खेलन आई श्री सरयू तट कुंज अनूपम धाम।
वीना मृदंग मुरचंग उपंग सौ गावै रंगीली बरवाम॥
प्रीतम आये धाय ज्यों अनंग छाये प्यारी भाल दै गुलाल वैठे यकठाम।
युगलप्रिया दोउ मूठी गुलाल भरत सब समाज अंग ललाम॥

खेलैं श्री सरयू तट में रंग रंगीली फाग री।
पुर कहु ओर प्रमोद वनी मणि कंचन भूमि विभागरी।
तिनमें पूरव दिशि मिथिला सम्बन्ध सदा अनुरागरी॥
चारुशिला कमला विमलादिक चन्द्रकला गुन आगरी।
देति सुधारि लली लालन कर कुंकुम पिचकारी नागरी॥

याही ते तत्सुख स्व सुखी सम्बन्ध टहल प्रिय लागरी।
जे यहि रीति प्रीति में हुलसत युगलप्रिया बड़ भाग री॥

हों हों खेलत दशरथ लाल रंगीली आजु रंगीली फाग।
ललना कनक भवन श्रीरंग महल विच नजर अवीरी वाग॥
विपुल कुंज चहु दिशा अलीगन चन्द्रकलादि विभाग।
सजि श्रृंगार वसन भूषन पिय प्यारी परम सुहाग॥
नहरें लगीहौ दै रंगन श्री सरजू अनुराग।
भरि डारत पिचकारी पियपर सिय कुंमकुमा पराग॥
चंद्रकला भिजोई दई अंग पिय सिर केसरि पाग।
प्यारी करतारी मनहारी बलिहारी प्रियलाग॥
यह लीला लहरी अवलोकनि भजनि प्रेम तड़ाग।
अग्र स्वामि पथ लह्यौ अमित मुख जुगल प्रिया बड़भाग॥

आजु खेलो रंग होरी सइयां आपु खेलो रंग होरी हो।
दशरथ राज कुमार छैल तुम कालि करी वरजोरी हो॥
तुम रघुवंश कुमार लाड़िले मैं निमि वंश किशोरी हो।
कौन बात में घटी हमारे यूथप सखी करोरी हो॥
रूप गुनन में नागर प्यारे हौ नागरि कछु थोरी हो।
जुगलप्रिया मुस्कात छबीली रंग महल की पोरी हो॥

आजा पियरवा रसिक रघुनन्दन।
रसिक राय रसिकन हिय चन्दन॥
याहि कुंज मिलि रसिक रंगीली।
आनि जुरी विमलादि छबीली॥
हमरो कुंज मग माहि रसीलो।
तनिक विलंबि सरस रस पी लो॥
सुनि अलि वचन लाल मुस्काये।
मिलि तेहि संग लली ढिग आये॥
याही में तत सुख स्व सुख लखायो।
जुगलप्रिया सेवा मन भायो॥

भवरा संवलिया रामा हो गोरी कमल सिय प्यारी।
एक सखी अवध पुर आई पाती सुगन्ध पहुंचाई॥
वांचत ही मन विकल भयो आये गाधिसुवन उपकारी।
ल्याये चरित्र वन पावन कीन्हीं सुर मुनि मन भावन॥

धनुष कथा सुनि हर्ष भये मुनि संग चलनि मतवारी ।।
आये मिथिला सर संयाही छबि जल अथाह जेहि माही।
अलिगन दल लखि मुदित परम मकरंद पान फुलवारी ।।
यह रसिक जनन के दाया जब होय रहित छल छाया।
तब ही लोचन मगन छबि छावत जुगलप्रिया बलिहारी ।।

गलवहिया दिये बैठे दोऊ आय सरजू कुंज पुलिन मन भाये।
मनिन जडित कंचन की अवनी विपिन प्रमोद प्रमाद रसाये ।।
चहु दिशि अलि गन लसत निकाये।
निरखि निरखि नैन नेह बढ़ाये ।।
सीस चंद्रिका कीट सुहाये।
कुसुमी वसन भूपन छबि छाये ।।
देत परस्पर पान खवाये।
मधुर मधुर बतिया बतराये ।।
रूप सुधा पीवत न अघाये।
अघटित प्रीति बरनि नहि जाये ।।
युगल प्रिया यह दंपति की छबि निरखत नैन रह्यौ मडराये ।।

उमड़ि उमड़ि आई बादरि कारी।
दशरथ नंदन जनक लली जू बैठे सखिन संग महल अटारी ।।
कुसुमी वसन युगल तन राजत जगमगात भूषन उजियारी।
अलकै विथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चंद्रिका लटक संवारी ।।
चंद्रावती मृदंग टकोरति चंद्रा तानपूर करतारी।
चंद्रकला जू वीन बजावत गावत उमग भरे पिय प्यारी ।।
अधिक प्रवाह बढयो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगलप्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रतिपति बलिहारी ।।

रंग झूलें अवध विहारी हो सरयू तट संग लिये सिय प्यारी।
सावन कुंज सुहावन पावन रतन भूमि हरियारी ।।
निज निज कुंजन ते बनि आई नित्य सखी अधिकारी।
गावहि सरसाती बरसाती दरशाती सुख भारी ।।
कबहु झुलावत प्यारी प्रीतम कबहू प्रीतम प्यारी।
युगलप्रिया रसमात परस्पर दंपति लीला धारी ।।

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर।

राजत छबि मै रतन हिंडोला तापर बोलत कीर।।
गावहिं छबि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर।
बाजत वीन मुचंग उपंग मृदंग ताल अति धीर।
युगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गंभीर।।

जागे दोउ भोर प्रीतम प्यारी सीय सुकुमारी।
आलस भरे अँडात परसपर अखियां अति चित चोर।।
नाशामणि वेसरि अधरन पर हलत सरस दुहु ओर।
मनहु शुक्र सुर सुर गुरु विचरत है कुंजकोष के कोर।।
रूप गर्विता नवनागरि पिय नागर श्याम किशोर।
युगलप्रिया दोऊ अवधविहारी जो कछु कहिय सो थोर।।

आज चल देखोरी आली श्रीराम रसिक पिय रास रच्यो सुखदाई।
रास भूषन वसन श्याम सलोने अंग लो नील की संगलोनी अली समुदाई।।
वीना मृदंग मुचंग कठतार चंग वाजत ईमन राग परम सोहाई।
युगलप्रिया गान करहिं चंद्रकला लाल प्यारी उमंगि तनछाई।।

सियावर सांवरे छबि देखि।
रहत न तन मन सुधि कछु सजनी लगत न नैन निमेखि।।
सजि सिंगार परस्पर दोऊ गलवाही वर वेखि।
युगलप्रिया अलि चंद्र कलादिक सुफल सजीवन लेखि।।

झूमि झूमि छायो रस अखियां।
गरजन मेह नेह बोलनि मै नवघन श्याम राम जिन लखियां।।
दामिनि सी दमकति अंग अंगनि गौरव रन चहुंदिशि लस सखियां।
युगलप्रिया हिय नटत रसिक जन ज्यों मयूरिशिर पर करि पखियां।।

खेलत वसंत रसिकाधिराज।
रघुनन्दन सिय संग अलि समाज।।
नव अंग अंग वर वसन साज।
वाजै मृदंग अरु विविधि बाज।।
तहं अलिगन गावैं सरस राग।
रागी जन मन अनुराग जाग।।
कहे चंद्रकला सुनिये जू लाल।
प्रमदा वन फूल्यो द्रुम रसाल।।
सजि दोऊ चलिये संत रंग।
मन मोहन दोउ मिलि येक संग।।

आये जहां वन मध्य धाम।
आयत विशाल मुखमा ललाम।।
तेहि मध्य कुंज बैठे जू आय।
तब चंद्रकला वीना बजाय।।
नाचन लागी अलि विविधि भाग।
गावहि वसंत अति सरस चाव।।
ऋतुराज सहचरी वेष कीन्ह।
मेवा भरि थारन साज दीन्ह।।
फूलन सिंगार किये अपने हाथ।
निरषत छवि ह्वै रहे अति सनाथ।।
तब युगलप्रिया रुचि समय पाय।
झोरी गुलाल होरी मनाय।।

उज्ज्वल उत्कंठा-विलास

श्री युगलानन्यशरण 'हेमलता' जी

(१) उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास

सुमधुर मनभावन दोहों में श्री जनकराज किशोरी जी तथा श्री दशरथराज किशोर जी युगल सरकार के सरस नाम, रूप, गुण, धाम और लीला की उज्ज्वल उत्कंठा से परिपूर्ण श्री युगलानन्य शरण जी महाराज की यह पुस्तक पुस्तक भंडार लहेरिया-सराय (दरभंगा) से प्रकाशित हुई है। अंत में दी हुई 'पुष्पिका' से पता चलता है कि संवत् १९७२ भाद्र शुक्ल अष्टमी भौमवार को इस ग्रंथ का लिखना पूरा हुआ था। संपूर्ण ग्रंथ दोहों में है।

विषय—आरंभ में ७० दोहों में नामोत्कंठा है, फिर ९४ दोहों में रूपोत्कंठा है, तदनन्तर ३४ दोहों में गुणोत्कंठा है, तदनन्तर ३७ दोहों में धामोत्कंठा है और अन्त में १६० दोहों में लीलोत्कंठा है। इस प्रकार कुल मिला कर ३९५ दोहों का यह ग्रंथ रसिकोपासना के आधार ग्रंथों में सर्वसम्मान्य एवं उपजीव्य ग्रंथ के रूप में पूजार्ह माना जाता है।

उदाहरण—

लोक-वेद बंधन विपुल विरस विचारि बिमारि।
जपिहौं जीवन नाम वसु याम मनादिक वारि।।

नवल नेहनिधि नाम मधि मीन समान सुलीन।
रहिहौं हाय हिराय हिय हर सायत पन पीन।।

महा मधुरता नाम सुख सागर रसना चाखि।
भुक्ति मुक्ति-अभिलाष तृन-राख मानिहौं राखि।।

बार-बार रसना सरस कब दैहौं उपदेश।
रटि रमिये निज नाम-गुन-धाम-सहित आवेश॥

श्री करुणानिधि-नाम गुण श्रवण समेत उछाह।
पल पल प्रति करिहौं कवहुं छोड़ि-छाड़ दिल-दाह॥

नाम मनोहर मोदप्रद कलित कूक सुनि कान।
ह्वैहैं कबहूं मन वपुष विवस समान महान॥

बाहर भीतर करन कुल नाम माझ करि लीन।
अमनस ह्वै रहिहौं कवहुँ निदरि वासना झीन॥

सिय-जीवन-अनुराग-घन नाम सनेहिन साथ।
कवहुं मोर मानस रमन करिहै होय सनाथ॥

नाम-मोहब्बत मीठ मोहि कबहुं लागहैं नित्त।
ज्यों लोभी कामी हृदै वाम दाम दृढ़ चित्त॥

नाम-लगन अंतर कबहुं लगिहैं लोभ-समेत।
छन बिछुरत तन त्यागिहौं जिमि झख वारि वियेत॥

नाम रटन रसना कबहुं करिहौं होस हिराय।
जिमि मयंक-मुख प्रान पति निरखति तिय बलि जाय॥

रे मन निशिदिन नाम मुद धाम जपन उत्कंठ।
करत रहो पुलकित वपुष निदरि आस-वैकुंठ॥

कौन काम की मुक्ति सो जहं न रटन सियराम।
नाम-रागविन निदरिहौं सोउ दिन अति अभिराम॥

जगमग पग पंकज परम प्रेम-प्रवाह निहारि।
ह्वै रहिहै चेरी सुमति सुरति सोहाय विचारि॥

ललित ललन लोने युगल पद पंकज प्रिय अंक।
अति अनूप नव रंग से रंगिहौं विगत कलंक॥

अरुन हरन-मन नख-प्रभा राकापति शत-तूल।
मृदुल सचिक्कन चाहि कब ह्वै जैहौं भवभूल॥

अमल ललित अंगुरीन-छबि मधुर आभरन-संग।
कब जोहत युग जाइहै निमिष समान सरंग॥

अमल कलम-कोमल-ललित सुपद-विभूषन-बीच।
मम मन मनि ह्वै लागिहै सुनत सुरव रस सींच॥

युगल चरन-अरविन्द मृदु मधुर मरन्द अमंद।
मन-मिलिन्द कब चाखिहौं परिहरि वनविष-फंद।।

जानु जंघ जग मग महा मनहारी कल कान्ति।
सरस स्वच्छ शुचि निरखिहौं सजि सब विधि चित शांति।।

कृस कामद कटि केलिमय रुचि रसराज सुधाम।
किंकिन कलित उछाह-भरि लखिहौं कबहु अकाम।।

घन-दामिनि-निदरनि वसन रसन सोहाग-समेत।
मम मन-नैन निहाल ह्वै कब हेरिहैं महेत।।

नाभि मनोहर निम्न सर सुभग अनूपम देखि।
त्रिवली तरल-तरंग-युत लोचन सफल विशेषि।।

भाव-उमंग बढ़ाय उर रस पसु वपुष संचारि।
लखिहौं नाभि-सरोज-छबि निखिल अपनपौ वारि।।

उर उज्वल लावन्य निधि विस्तीरन रसरास।
विशद विभुषन मय मधुर कब लखिहौं पगि प्यास।।

कलित कंचुकी चारु चख चितवत कुच कल संग।
लोभित ह्वै रहिहैं सुदृग मन समेत रसि रंग।।

सरसी रुह-सुन्दर-सुखद-कोमल-ललित-ललाम।
कबहुँ कञ्जकर रागमय तकि छकिहौं वसुयाम।।

मृदु अंगुरिन-मुद्रिक मधुर मण्डित-मनि-कल-कान्ति।
नख नव नूर-समेत कब लखि रहिहौं सजि शान्ति।।

अधर मधुर मन मोहने असल राग-रस रूप।
कबहुँ भाव-भरि हेरिहों हरन-हीय-दृग-धूप।।

नवल नेह निधि नासिका मुक्ता-सुनथ-समेत।
झुकनि-ललित-डोलिनि अधर-परसनि-हिय-हरि लेत।।

अंजन-अंजित श्याम-सित-अरुन रंग रमनीय।
सुख-समूह-वितरन कुशल लखि ह्वै हौं कमनीय।।

रे मन अमन अमान ह्वै निरखु नैन सुख-खान।
सुख-समाधि पैहै अवस हिरस-हिराय-हरान।।

सुखमा-भवन श्रवन कलित कुण्डल ललित समेत।
रमक-झमक-झूलन निरखि ह्वै हौं कबहुँ अचेत।।

झांई कलित कपोल मिलि महा मोद मन देत।
युगलानन्य शरन - हृदै - हारी सब सुधि लेत॥

युगल किशोर - चतुर - चरन - गहि गति रति - दृग-दैन।
निरखि हरखि उपमा निखिल हंसि पैहों चख चैन॥

प्रीतम - प्रानप्रिया पगे - प्रेम परस्पर पेखि।
धन्य अपनपौ मानिहों तृन - सम त्रिभुवन देखि॥

अंग अंग पर वारिये अमित अनंग - गुमान।
पल प्रति छवि शतगुन नवल लखि लहिहों सुखखान॥

श्री सीता - सुख प्रद - सुगुन सुधा सहस मधुरेश।
रसि - रसि रस हरषाइहों निदरि नेह - भव - वेस॥

सुन्दरता - माधुर्यता - सुकुमारता - सुवेष।
महा मोद निधि गुनन मधि ह्वैहौ मगन निमेष॥

श्री सिय - स्वामिनि - संग सुख - सुखमा - सागर श्याम।
दिव्य - भव्य - नितनव्य गुन गैहों तजि धन - धाम॥

मन वच बपु श्री धाम मधि कव बसिहों सुख-संग।
देखत दृग दुति दिव्य महि मोद मयी रंग - रंग॥

श्री सीतावर रस रसिक तरु तृण गुल्म लतान।
निरखि नेह युत नाचिहों संविहाय भुव - मान॥

लोक लाज कुल काज को समुझि सुमन विष रूप।
बसिहों विमला बिमल बुधि बलित लखत युग रूप॥

कबहूँ कनक निकेत रति हेतु मांझ ललचाय।
सरस सजातिन संग सुठि सजिहों चित परचाय॥

धाम दरस देखत दृगन चलिहै कबहुँ प्रवाह।
आपा - पर बिसराय सुधि अचल चित्त चख चाह॥

अहो भाग अनुराग मम मानुष - वपु प्रिय पाय।
अचल बास - सरयू - सुतट विषम बिकार बिहाय॥

मान प्रतिष्ठा धूरि - सम ऋधि - सिधि धूर - समान।
अनत बड़ाई विष निरखि बसिहों धाम प्रधान॥

अष्ट कुञ्ज कमनीय चहुँ ओर चारु चित चोर।
निरखि निछावरि होइहै तन मन रंग रस बोर॥

ललना ललित संवारि तन अतन निबारि सचेत।
कबहुँ युगल छवि हेरिहों बसि श्री कनक निकेत॥
सुमन सेज मुद मन्द सद सदन सैन रस रूप।
लोचन लगन लगाय कब तकि छकिहों गत धूप॥
चहुँ ओर झम झम झनक नूपुर किंकन बीन।
सुभग सहचरिन मधुर धुनि कब सुनहों निति लीन॥
रंग महल मधि मोद निधि ललित लाडिली लाल।
पगे परस्पर प्यार कब लखिहौं होय निहाल॥
कबहुँ हेरिहों नैन निज अति अलसाने अंग।
प्रिया प्रेम परतन्त्र पिय सिय समेत रसि रंग॥
उन्मद दृग राते रहस अरस निबारन नैन।
निरखि हरषि बलि जाइहों सुनि सरसाने बैन॥
प्रेम प्रमोद महा मदन मद माते दोऊ प्रात।
झुकनि परस्पर प्यार पगि जोहि मोहिहों गात॥
आलस रस बस बर बचन सुमन सचन सुख सार।
उर उमंग उमगाय कब सुनि ह्वै हों बलिहारि॥
सिथिल बसन भूषन लसन युगल ललन विपरीति।
कौन सुदिन अनुपम निरखि पैहों प्रीति प्रतीति॥
श्री यूथेश्वरि साथ युग जीवन रूप अनूप।
पट उघारि लखिहों कबहुँ परि उछाह-रस-कूप॥
रसावेश उरझनि उरसि उज्ज्वल लगन लगाय।
विकल वपुष मंगल असन कर वैहों उमगाय॥
गौर श्याम अभिराम मृदु मूरति मोद निधान।
सखिन समूह सु मध्य में लखि छकिहों पगि प्रान॥
श्री सहचरी समाज युत शुचि श्रृंगार निकुञ्ज।
कबहुँ जात दृग जोहिहों करि चञ्चल चित लुंज॥
श्री रसराज मधुर सदन मांझ मनोहर जोरि।
सजि श्रृंगार बिलोकहिं सब सन नाता तोरि॥
रंग रंग भूषन वसन नख-शिख रचि रुचि संग।
मुकुर देय कर कंज मधि निरखैहों सोमंग।

हाव - भाव अनुभाव रस सरस परस्पर पेखि।
ह्वै जैहों वलिहारि निज भाग अनूपम देखि॥

अहो सुदिन शिर मोर कब युगल दिये गलबांह।
मन्द मधुर मुसुकाय मुख कव लखिहों चितचाह॥

पल - पल पर रचिहों कदा केलि कदम्ब सचाह।
जिमि निधनी धन कामिनी प्रीतम मिलन उछाह॥

नमिमय महल सुजग मगित सुचि सुरभित सब भाँति।
सहज सौज - संयुत सदा तहँ सजि सेज सुकान्ति॥

ललित लड़ेती लाल तहँ प्रीति - महित पधराय।
लखिहों मधुर मयंक - मुख मुख- सुखमा दृग - लाय॥

सैन सुभग सजिहै युगल हौ पलोटिहों पांय।
बार - बार निज भाग को अभिनन्दन करवाय॥

चरन - चारु नख - कान्ति प्रिय अंक अमल उर - लाय।
सावधान सुख सैइहों गुन अनूप धिय ध्याय॥

सबहिं तोषि सुन्दर सुखद सिय प्यारी पुनि पास।
हृदै विपुई उमगाय मुद पीवत सुधा सु प्यास॥

विशद - विनोद - विहार - हित उपवन सखिन समेत।
सुमन सुफल निरखत कबहुँ लखिहों मोद - निकेत॥

चञ्चल चखन नचाय चहुँ ओर नचन चितचोर।
युगल - किशोर रिझाय अलि पाइय प्रीति - पटोर॥

सखिन सजायो सेज सुचि छीर - सार - सुकुमार।
नवल निकुञ्ज अजूब वर रचना रहस - अगार॥

विविध सौज - सुख - सजन श्री श्यामा श्याम सुयोग।
अति अनूप अनुराग सजि सौज सेन सम भोग॥

सखी सनेह - समेत सुचि सेज सोहासन साजि।
लली लाल पधराय तहँ निरखि रही रसराजि॥

चम्पक चामीकर चपल चपला नैन निहारि।
सिय - स्वामिनि - अंग - सुरति करि दैहौ अनगन वारि॥

कोटिन केलि - कला - कलित प्रति - पल ऋतु - अनुसार।
युगल ललन - लोयन निरखि पैहो शुचि सुखसार॥

अर्थ पंचक

श्री युगलानन्यशरण जी

(२) अर्थ पंचक

सामान्य परिचय : श्री लक्ष्मण किला अयोध्या के महन्त श्री रामदेवशरण जी महाराज के आज्ञानुसार महात्मा श्री रामधारीशरण जी की प्रेरणा से सेठ वंशीधर लड़ीवाले द्वारा श्री रामायण प्रेस लिमिटेड अयोध्या में मुद्रित तथा मुजफ्फरपुर निवासी श्री रामबहादुर शरण जी द्वारा प्रकाशित।

विषय : श्री युगलानन्यशरण जी महाराज लिखित 'अर्थ पञ्चक' रससाधना के आधार ग्रन्थों में मुख्यतम है। इसमें बहुत सरल सुबोध दोहों में तत्त्व निरूपण एवं भाव विवृति हुई है। इस छोटे-से ग्रन्थ में (१) जीव का स्वरूप विवेचन, (२) ईश्वर का स्वरूप विवेचन, (३) उपाय विवेचन, जिसमें सम्बन्ध भावना भी है (४) फल विवेचन जिसमें पुरुषार्थ तत्त्व का सविशेष निर्णय प्रस्तुत किया गया है और(५) विरोधी विवेचन तथा अन्त में काल क्षेप की व्यवस्था है। श्री गुरुदेव जीवाराम 'युगल प्रिया' के स्मरण के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। अभिप्राय यह कि थोड़े में, सार रूप से सरल सरस सुबोध दोहों में समस्त तत्त्व निरूपण बड़ी सावधानी से हुआ है। ग्रन्थ मनन करने योग्य है। गागर में सागर भर दिया है ऐसा निःसंकोच इस ग्रंथ रत्न के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। युगल उपासना तत्त्व का विवेचन पड़ा ही मार्मिक है।

उदाहरण —

प्रबल वपुष प्रारब्ध विहाई। श्री सियवर प्रत्यक्ष मिलि जाई ॥
सब छर भार सियावर मांही। अरपन कियो शरन गहिबांही ॥
दिनहिं बितावति दैव निहारी। सोई दृप्त प्रपन्न बिचारी ॥
जगत जाल परसत नहिं जिनको। लेश अविद्या ग्रसत न तिनको ॥
श्री सीतावर संग बिहारा। विविध भाँति उत्साह अपारा ॥
संतत टहल सुधा निधि चाहै। परम प्रमोद उमंग अथाहै ॥
प्रभु अनुकूल भोग निज जाने। तत्सुख सुखी स्वरूप लोभाने ॥

निराकार सब में बसत, भक्तन हिय साकार।
युगल अनन्य विचार विनु, भटकहिं अन्ध गंवार ॥
निराकार में सुख नहीं, केवल व्यापक रूप।
सरस रहस साकार मधि, श्री श्रुति शेष निरूप ॥

अन्तःकरण शुद्ध होवै जब। बिरति विषय अन्तर पावै तब ॥
यम आदिक अष्टांग समेता। क्रम ही मे अभ्यास उपेता ॥
मानस कुञ्ज मध्य इमि ध्याना। रवि पावक मधि धाम प्रधाना ॥

तामधि सिंहासन सुधरावे । दिव्य . मनिनमय बसन धरावे ।।
श्री सियिवर मूरति मन हरनी । ध्यावे तहां सहज सुख भरनी ।।
नख शिख नवल अंग रस सागर । चिनमय करै सदा मति आगर ।।
भूषन सुभग अंग प्रति जो हैं । निरखि निरखि पुनि-पुनि मन मोहैं ।।
परम दिव्य कल्यान गुनाकर । श्री सीतापति रूप प्रभा कर ।।
याही भाँति सदा मन लावे । कबहूँ प्रेम विवश प्रगटावे ।।
भक्ति योग सहकारी सोया । होय ज्ञान निर्मल पद जोया ।।
लहै मुक्ति कैवल्य प्रधान । छूटै त्रिविध वासना मान ।।
यद्यपि ज्ञान सुसाधन नीका । तदपि कठिन गाहक निज जीका ।।

इन्द्रिन के निग्रह बिना, दुर्लभ ज्ञान सुजान ।
ताहू में आयू अलप, ताते भजन प्रमान ।।

हाय हमेशा हिये रहावे । नैनन नीर प्रभाव बहावे ।।
खान पान मानादिक त्यागे । निशिदिन नाह मिलन अनुरागे ।।

पति पत्नी स्वामी अनुग, पिता पुत्र सम्बन्ध ।
धर्मी धम शरीर अरु, सुभग शरीरि निबन्ध ।।
शेषी शेष नियाम्य अरु, न्यामक रक्षक रक्ष ।
तिमि आधाराधेय ते, व्यापक व्याप्य समक्ष ।।
भोग्य भोगता एक रस, शक्ताशक्त निहारु ।
परिपूरन पूरन रहित, ज्ञाता अज्ञ बिचारु ।।
सकल वासना हीन अरु, अमित वासना पीन ।
निज पर दृढ़ सम्बन्ध इमि, जानत परम प्रवीन ।।

यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा । तद्यपि पति पत्नी सुख रूपा ।।
याहि माहि अति प्रीति प्रकासे । निरावरन प्रीतम रस भासे ।।
स्वर्ग मोक्ष अभिलाष विसारी । केवल ललन मिलन पन धारी ।।
वपु चौबीस तत्त्व कृत त्यागी । समुझि हिये तर प्रभु अनुरागी ।।
श्री सियाराम मिलन अभिलाषे । मायिक गुन गति श्रम बिन नाषे ।।
प्रान सुषमना द्वार निकारी । भाल भेदि गये धाम खरारी ।।
केवल सूषमना से गमनो । विधि वैभवदिशि ते अति बिमनो ।।
अर्चिरादि पथ होय प्रवीना । रवि मंगल छेद्यो अति झीना ।।
प्रकृति आबरन उतरि बहोरी । बिरजा सरित लख्यों रंग बोरी ।।
तेहि सरि मज्जन करि बड़ भागो । लिंग देह सब विधि तेहि त्यागो ।।
कारन तन बासना बिनासी । शुद्ध भयो बहु विधि सुखरासी ।।

बिरजा पार भयो अनयासा। निज संकल्प सहित गत आसा ॥
अमल अमानव कर पर परस्यो। महाप्रेम सागर सुद सरस्यो ॥
त्रिगुन रहित वपु बिरज बिवामी। दिव्य भव्य आनन्द निवासी ॥
सदा प्रकास रूप सुचि सुन्दर। जेहि लखि लज्जित अमित पुरन्दर ॥
हियवर रूप प्रकास मोहावन। भाजन भयो छयो छविछावन ॥
मनि सोपान द्वार ह्वै नेही। चढ़चौ बढ़चौ हिय हर्ष अदेही ॥
निरख्यौ नैन मनोहर जोरी। गौर श्याम अद्भुत रंग बोरी ॥
धनुष बाण कर कञ्ज विराजै। नख शिख नवल विभूषन साजै ॥
कुण्डल क्रीट चन्द्रिका सोही। जेहि छवि छटा निरखि मति मोही ॥
अंग अंग सौन्दर्य सोहावन। उपमा निखिल रहित मन भावन ॥
सखी सहचरी अमित सुदासी। चहुँ दिशि चमक रही चपलासी ॥
नाना मौज लिये कर मांही। निरखि रही प्रीतम गल-बांही ॥
यहि विधि सिय वल्लभ छवि देखी। यकटक रह्यौ नैन अनमेखी ॥
सियवर अति सनेह युत ताही। मकल भाँति अति प्रीति सराही ॥
मम चित्त चाह रही अतिभारी। कब लखिहौ परिकर प्रियकारी ॥
तब आवन इत अद्भुत भयो। मोद प्रमोद मोहि अति नयो ॥
बड़ भागी सोई अनुरागी। जो मम निकट आय छलि पागी ॥
या विधि तुगल किशोर सुधानिधि। बानी विमल कही सब विधि सिधि ॥
सदा मोद मन्दिर रस लहिये। परिचर्या निज रुचि वस कहिये ॥
अमित रूप धरि सेवा कीजै। यथा योग्य अभिनव सुख पीजै ॥

मधुर मनोहर चरित वर, दम्पति केलि कलान।
निरखैं हरखैं एक रस, परिहरि अमित विधान ॥

श्री जानकी सनेह हुलास शतक

श्री युगलानन्यशरण जी

(३) श्री जानकी सनेह हुलास शतक

इस ग्रन्थ में महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी ने श्रीराम से बढ़कर श्री जानकी जी की महिमा नाम प्रभाव, रहस्य का वर्णन किया है। महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी राम की अपेक्षा जानकी के प्रति अधिक आसक्त हैं, अधिक अनुरक्त हैं। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर सुन्दर, सरल, सरस दोहों में अपनी भावना को बड़े ही सजीले ढंग से व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि सारा विश्व राम का नाम जपता है परन्तु स्वयं राम श्री जानकीजी का नाम जपते हैं और उनके रूप का ध्यान करते हैं, उनके चिन्तन मनन निदिध्यासन की केन्द्र बिन्दु श्री जानकी महारानी

ही हैं। युगलानन्यशरण जी की अनन्यता की, इस छोटे-से ग्रन्थ में बड़ी ही भव्य मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है जो सहज प्रभाव डालती है।

महा मधुर रस धाम श्री सीता नाम ललाम।
झलक सुमन भासत कबहुँ होत जोत अभिराम।।

रसने तू नव नागरी गुननन आगरी नाम।
क्यों न भजै संकोच तजि सजि मन मोद ललाम।।

सखी किंकरी भाव भल धारि सुर सने नित्त।
रमो निरन्तर नाम सिय निज हिय खोल सुचित्त।।

पर पति मगध नव नागरी रचत जौन विधि नेह।
चलत बदत सोवत सोई इमि कब नाम सनेह।।

रूप जीविका वप यथा पल पल सजत सिंगार।
मम मन कबहूँ नाम छवि सजि है सरस संवार।।

तैल धार सम एक रस स्वांस स्वांस प्रति नाम।
रटौं हटौं पथ असत से बसौं रंग निज धाम।।

दीप सिखा निर्वात जल लहर हीन तेहि भाँति।
कब ह्वै है मन नाम जप जोग रहित भव भ्रान्ति।।

यथा विषय परिनाम में बिसर जात सुधि देह।
सुमिरत श्री सिय नाम गुन कब इमि होय सनेह।।

अन्ध नयन श्रुति बधिर वर बानी मूक सुपाय।
याहू ते सत गुन हरष कबहूँ नाम गुन गाय।।

श्री सरजू तट पुलिन मधि निसा उजारी मांह।
हे सिय कहि कब बिवस ह्वै रहिहों दुति द्रुम छांह।।

लता लवंग कदम्ब तर तर दृग पुलकित गात।
जयति जानकी सुजय जय जपिहों तजि जग नात।।

श्री रघुनन्दन नान मित करे जो कोटि उचार।
ताते अधिक प्रसन्न पिय सुनि सिय एकहु वार।।

जानकि वल्लभ नाम अति मधुर रसिक उर ऐन।
वसे हमेशे तोम तम समन करन चित्त चैन।।

जो भीजैं रस राज रस अरस अनेक विहाय।
तिनको केवल जानकी वल्लभ नाम सहाय।।

प्रीतम की जीवन जरी रसिकन की सुर धेनु।
भक्त अनन्यन की लता सुर तरु सिय पदरेनु॥

बार बार बर विनय करि यांचत श्री सिय देहु।
लोक उभय आसा रहित निज पिय नाम सनेहु॥

भुक्ति मुक्ति की कामना रही न रंचक हीय।
जूठन खाय अघाय नित नाम रटों सिय पीय॥

संत सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(४) सन्त सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज के मधुर रस भरे पदों का यह संग्रह सन् १९१७ में लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस में छपा। इसमें प्रेमस्वरूप भाववश्य भगवान् रामचन्द्र के प्रति रसिक भक्त हृदय का प्रणय निवेदन है जो अपनी सरसता और सहज प्रभावशालीनता के कारण पाठकों के मन को मुट्ठी में कर लेता है। श्री युगलानन्यशरण जी की पदावली में प्रायः सूफी शब्दावलियों की भरमार है। इश्क, आशिक, महबूब, जुल्फ़, जुल्म, सितम, जख्म, दर्द, आह, फरियाद, वफा, जफा, यार, आदि शब्द इन्हें विशेष प्रिय हैं और छूटकर ये इन शब्दों का व्यवहार करते हैं।

विलगि जनि होइयो हो पहलूं प्यारे।
सजनी सिय सुन्दरी संग सुख सेज सोहावन सोइयो हो।
युगल अनन्य अली मद मत्त दृग दोऊ दिलवर छवि जोइयो हो॥
निठुर पन प्यारे उचित न लागे।
तुम बिन छन छन छैल छबीले मिलन मनोरथ जागे॥
दृग देखन ही दरद दिवानी दिल दुसमन दिन दागे।
युगल अनन्य अली अपनी लखि के कारन तृन त्यागे॥

सब में परि पूरन राम न तिलभरि खाली।
जित जो हौ जिकिरि जमाय वही वनमाली॥
अंखियन में चश्मा चाह धरे रहु प्यारे।
सब विश्व विलास प्रकाश रूप उजियारे॥
नहि नेकु बिषमता लेश देश दुति धारे॥
समता सुचि शहर निवास सजे सुख सारे।
तन मन बन पर्वत बीच फैलि रही लाली॥

नगारा नेह का नित बाजत आठौ याम।
सुनत श्रवन सुख रस जस दायक भायक भल छवि धाम॥
केकी कोकिल बीन सुधा से अधिक मधुर धुनि ग्राम।
जो नहिं सुन्यो स्वाद मय इह धुनि लह्यौ न तिन विश्राम॥
जग ठग जड़ वंचक तेई जन जो नहिं सुमिरचौ नाम।
युगल अनन्य रहित संशय अब मन पायो आराम॥

मोरी तोरी लागी लगन रघुबीर।
जानत जीवन जहान जहां लगि पगि रहि मति गति गीर।
सपनेहुँ शौक जौक दूजी नहिं पल पल प्रिय पथपीर॥
जोइ जीवन धन चाह चारु चित सोइ सुखि सुगन गंभीर।
युगल अनन्य शरन घायल दिल निरखत सरयू नीर॥

कैसे भूलि गई वर बतियां।
शरन संयुत सौंपत सुख ठौर ठौर प्रिय पतियाँ।
सकल जीव निज जानि दया दृग देखत तजि गुनगतियाँ॥
हौं तेरी तूही मेरो पति दृढ़ प्रतीति छकि छतियाँ।
युगल अनन्य शरन अन्तर उर रुचत नही जस जतियाँ॥

रसीले लाला लागि गई तोसे प्रीति।
जिय जानत पहिचानत प्रीतम विरहिन रति रुचि रीति।
चाह अथाह हमेश बढ़त चित रुचत न गज विपरीति॥
काहू संग रंग निकसे नहिं छोड़चौ नीति अनीति।
युगल अनन्य शरन मिलि हौं प्रिय बढ़ी प्रबल परतीति॥

पीके पियाला पिया परचैहौ।
पल पल प्रेम बढ़ाय गाय गुन रस निधि छवि अरचैहौ।
मनमति गुनि गुरु ज्ञान ध्यान सब साधन हित खरचैहौ॥
नाह नेह बिन देह गेह कुल खेह समुझि न रचैहौ।
युगल अनन्य शरन सतगुरु श्री राम चारु चरचैहौ॥

अब हम भई सोहागिनि सांची।
कृपा करी कोशल पति प्रीतम मधुर मोह घत भाँची॥
विसरी विषय विभूति वासना नासी जगमति कांची।
नूतन नेह बांधि नूपुर पद परा प्रीति युत नांची॥
साधन सकल निवारि नेम करि युगल नाम सनराची।
युगल अनन्य शरन सीतावर रहस भावना यांची॥

जानकी रमन पियारे तुमसन लगन लगायो।
कठिन गांठि नहिं छुटत छुटाये समुझि सनेह समाया॥
रसिकन संग रंग पहिचान्यो पाँचो वपुष भुलाया।
मत मतान्त सब देखि चुकी सत सुख सपनेहुँ नहिं पाया॥
अब जनि श्याम और नहिं भासे रहे छोह छवि छाया।
युगल अनन्य शरन बन्दी पिय झपदि कीजिये दाया॥

बेदरदी दरद क्यों जाने हो।
षाके हिये न व्यापी ऐसी ताते दुख नहिं माने॥
जाके पायबे आय न भासी सो हंसि हाँसी ठाने।
मौन रहौ तो रह्यौ जात नहिं बोलत डोलत प्राने॥
हार रही कछु यतन न लागे ऐसी व्यथा समाने।
युगल अनन्य शरन हरमायत उर बेधत दृग बाने॥

केहि विधि विरह बुझावों सखीरी केहि विधि प्रीतम दर्शन पावों।
शिथिल रहत अंग अंग विरह बस दरद भरी अकुलावों।
औचक उठि बेहोश देवानी पिय पिय कहि बिलखावों॥
कबहूँ अचानक हाय हिये करि जीवन स्मृतक कहावों।
कहुँ सुधि पाय झरोखन झाँकति पथिकन से बतरावों॥
ना जानो कौनी बिरमायो यह गुनि हिय पछितावों।
युगल अनन्य धारि धीरज कहुँ ललन ललित गुन गावों॥

अन्यरीति

कासे कहों को माने हमारी।
अपने जान चतुर स्यानी तूं मेरे मत मतिमन्द गंवारी॥
लग्यो न चाव चाद प्रीतम रस अबहीं तो भोरी सुकुमारी।
घायल भई न पिय गुन रंचक ताही ते देती गनिगारी॥
जब मिलि हेरि लिहै रसिया से टब करि मौन रहेगी प्यारी।
युगलानन्य दसा न नू कतर बरनत शरम सकोच अपारी॥

बरषत बुन्द विरह बरवारी।
करकत करक करेजो कामिनि कहि न सकत हिय हारी।
गरजि गरजि गरबी गांहक जिय जारत जम डर डारी॥
चहुँ दिशि चमचमात वैरिनि यह मदन कृपा न करारी।
मान मरोर लिये मादक छकि मन्द मयूर पुकारी॥

जहँ तहँ छाय रहे दुख दायक विरहिनि एक विचारी।
युगल अनन्य शरन सिय पिय बिनु वेदन अकथ अपारी॥

वरषा ऋतु रस बरसावै।
विरहिनि हिय हाय वसावै।
पल पल पिय मृदु मधुर मोहनी मूरति हित ललचावै।
मन्द गरजि गुनगान करत बादर मिस जस प्रकटावै॥
चपला चमकि देखाय दाह दिल दूनो दरद दिवावै।
युगल अनन्य शरन सिय पिय छवि छटा छला बछवावै॥

पिय ओर सुरतिया लागी।
अब न सोहात सदन सजनी।
उमंत उमंग रंक अन्तर उर दरश चाह चित जागी।
बिस भाव चाव चरचा चल अचल दरद दिल दागी।
युगल अनन्य शरन सिय वल्लभ भेंटिये छबि अनुरागी॥

सरयू तट बास सजावो।
निज नेह निशान बजावो।
लखि ललना लोभ लजावो।
गुरु सन्तन शरन सजावो।
दृग जात रंग रुचि लावो।
इत उत की कुमति धौलावो।
सिय श्याम सनेह समावो।
गुन नाम निरन्तर गावो।
चित चोरन रूपहि ध्यावो।
मत परमानन्द सोहावो।
बहु बाद बिखाद तजावो।
समता सुख शहरहिं जावो।
नहिं अनत अनन्य लोभावो।

कैसे भीजे हमारा हियरा।
प्रभु प्रतिकूल क्रिया करनी मम होय रह्यौ रातम तियरा॥
श्रुति सम्मत सुख धाम रामधन श्याम निरन्तर नियरा।
दरश परश बिन हाय बढ़त नित अथिर अधिक दिल दियरा॥
शरनागत पावक पन प्रियतम बैन ऐन मुद सियरा।
युगल अनन्य बिना पाये पति वपु खरंग अति पियरा॥

श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(५) श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

नाम की महिमा और रस पर एक बहुत ही प्रामाणिक अनुभव सिद्ध ग्रन्थ। राम नाम का मद पीनेवाले की मदहोशी का बड़ा ही भव्य चित्रण। समस्त ग्रन्थ यहाँ से वहाँ तक अनुभव के रस में पगा हुआ है। लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस में कार्त्तिक शुक्ल १९६९ वि० में मुद्रित तथा प्रकाशित।

नाम नेम छेम प्रेम हेम झलक दाई।
रटत हटत हाय फटत मोह पटल काई।।

अटल पद प्रवेश जटिल जीवन घन देश वेश पेश प्रीति उदित होत जोत जगमगाई।
मन मति गति गमन दूर नूर पूरहिय हजूर रहस मत महस्र शुचि सरूप दृग देखाई।
युग अनन्य परम प्रिय प्रसन्न तासु मूल फूल भूल शूल ममन स्वाद संतत सरसाई।।

राम नाम मधुर सुरम पीवत पति पावै।
युग युग प्रति प्रभा पुंज संयुत मरसावै।।
सद बिलास भाम खाम सु छवि छटा छावै।
लहर लय ललाम आम अनुपम अनुभावै।
युग अनन्य युगल रूप निकट नित मोहावै।।

झुकता हुआ आता है दिल सरसार नाम में।
इसको पिला दिया कोई जन जह्र जाम में।।
चरचा चली इस बात की सब खासो आम में।।
क्या खूब रहस नींद से सोता अराम में।
ताकत नहीं है और की जो जावैं धाम में।।
खुरशैद से भी ज्यादे रौशन मोकाम में।
मुझको दिया दया ही से बरबास वाम में।।
तकलीफ फंद फानी न रहती है धाम में।
खुद ख्याल युग्म खो गया फसियाद दाम में।।

रटन रस रसिया बिरले देखे।
जिनके प्रान अधार नाम सुख सारन तजहि निमेषे।।
विमल बरन हिय हरन हार करि परिहरि विषय विशेषै।
अगुन सगुन युग रूप एक जिय लखहि अलेख सुवेषे।।

पगे प्रेम पन प्यार पीन तन अतन हीन बिन रेखे।
युगल अनन्य शरन तिनकी सुचि सोहबति चाह परेखे।।

पर प्रभु मिलत नामहि जपे।
देखिये दृग दिव्य द्युति करि श्रुति सुग्रंथन थपे।।
महा मोह मदादि मन भव से न संश्रिति कंपे।
होहि नहिं सन्मुख कदाचित विहंग पति अहि खपे।।
गगन शब्द अनूप मधिमन मगन छन प्रति छपे।
छवि अकथ छकि जकि जात आतम मरम गुरुमुख तपे।
होय युगल अनन्य जीवन अटल नहिं भवन पे।।

सुमिरत नाम रंग रस मिले।
सरस सुखमा सुचि सुरभि संग मिलित हिय सुख खिले।।
लोभ लालच दंभ दुर्मति तृगुन ग्राहन गिले।
दमक दस वापरा रस रूपा हृदैथलु थिले।।
गौर श्याम स्वरूप नख सिख भाव सनमुख पिले।
युग अनन्य शरन परम प्रिय रहस रुचि दृग रिले।।

सीताराम नाम से सनेह सजावो।
पाय परम पद प्रीति प्रभा पति श्रुति मति लौकिक लाज लजावो।।
परम परेस प्रान प्रीतम सतसंग सुरंग अभंग छजावो।
नाम परत्व विभव अनुपम गुन सुनत गुनत रुचि शान पजावो।।
योग विरति वर बोध भक्ति मय अनुछन करत कलेश भजावो।
युगलानन्य शरन सुधाम बसि नौबति नेह निशंक बजावो।।

राम रस पीवत जौन सुभागी।
तिनके भाग अदाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी।।
लाय लाय लय लगन मगन मन अतन तीन तम त्यागी।
होय रहे मद होश जोश छकि परा प्रीति मति पागी।
युगल अनन्य शरन सांचे सद शौकी विमल विरागी।।

राम नाम मंत्रसार प्यार सजि उचारो।
साधन समुदाय हाय हित हिय बिचारो।।
शुद्ध शांति सुचि सुभाव संतत धियधारो।
सीतापति पर परेश हुकुम पल न टारो।।

विशद वेद बैन सुरित ममुझत दुखदारो।
संत गुन अनंत शरन माबित निरधारो॥
रहित मान शान सपद सेवन सु विचारो।
दुख सुख सम सुमति मन न करत तिमिर तारो।
युग अनन्य शरन विपम बादन निरवारो॥

राम नाम अति प्यारो हमारो।
सोचो शब्द स्वभाविक रसनिधि नेह निबाहन हारो॥
पारस मनि चिंता चय सुर तरु काम धेनु अगनित नितवारो।
अंतरत्यागि निरन्तर निशिदिन काहू भांति करव नहिं न्यारो॥
अपर भरोश सदोश कोश दुख दारिद दाह दशोदिसि धारो।
चाखि चाखि हिय हरषि हरषि निज नाम सुधारस सांझ सबारो॥
युगल अनन्य शरन सद्गुरु की कृपा कटाक्ष पाय उजियारो॥

भजिये युगल नाम अनूप।
है इहै रस रहस बीज सुसंत श्रुति नहिं रूप॥
प्रीति प्रनय प्रतीत पूरन सहित ध्यान स्वरूप।
रसिक संग उमंग युतकरि छांडु भव भ्रम धूप॥
सहज अनुभव अमल भासत नसत कर्म कुरूप।
सुहृद साधु सुशील गुन गहि लहि सुमत सतरूप।
युग अनन्य शरन सुधारस सुभग सुमिरन भूप॥

मीठी लगे मोहिं अपने पिया को नाम अनूपम रंग भरो जी।
अपर ठौर नहिं प्रीति वढ़त कछु छनछन मेरो हीय हरो जी॥
चारिउ फल के चाहन सपनेहुं सुख संपति जगभार परोजी।
साधन सिद्ध नाम केवल दृढ़ मन बच करम सुबूझि धरो जी॥
बिना अयास रुच्छ नाना मत सागर सहजहि सहज तरो जी।
युगल अनन्य शरन संतत सुख अति विचित्र तरभाव भरो जी॥

प्रथम नाम अभिराम रूप सुख सागर गुरु ते पावै।
रसना रटन लगाय हृदय अहलाद विशेष वढ़ावै॥
तजे नाम भ्रम श्रम वरनाश्रम कर्मा कर्म बहावै।
गहे सर्वदा प्रीति रीति रस सहज स्वरूप समावै॥
मौन हमेश रहे जग से सब वाद बिवाद भुलावै।
नाम अखंड धार हरदम शमदम सनेह सरसावै।
युगल अनन्य शरन मर भीजन वस्तु बिलास बतावै॥

मति मेरी अलसानी सुमिरत नाम रंगीलो।
पीके प्रेम पियूष माधुरी नाना रस निरसानी॥
रैन नींद दिन चैन चित्त बिच बिह्वलता बिलखानी।
मिले मधुर महबूब मिलापी नव मुद मंगल मानी।
युगल अनन्य जानकी जीवन नाम निसा सरसानी॥

हमारी तेरी लागी है प्रीति अखंड।
किसही तरह न छूटि जागी शीश होय सत खंड॥
बिसरै हौं सब सुख माया मय आमय सखि ब्रह्मंड।
सतगुरु संत सु शब्द श्रवन करि पगिहौं प्रेम प्रचंड।
युगल अनन्य शरन रहिहौं इत प्रभु बल पाय उदंड॥

कबहुं दिशि मे रि हूं हेरि ये लाल।
मैं प्यासी प्रीतम पुनीत रस कीजिये जलद निहाल॥
निठुराई फावित न होत पिय सरस सुभाव रसाल।
उर आकुल अति रहत मिले बिन कठिन करेजे साल॥
केवल आस राख रोई नित रसिक रीति प्रतिपाल।
युगल अनन्य शरन अपनाइये सब बिधि सियबर हाल॥

संवत सत उन्नीस पर, एको त्रिसति जानि।
जेष्ठ मास सित पक्ष पुनि, तिथि चौदशि अनुमानि॥

लषन कोट कौशल पुरी, सहसधार के तीर।
राम वल्लभा शरन लिखि, नाम पदावलि धीर॥

श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी

(६) श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी 'हेमलता जी' के प्रेमविषयक दोहों का संग्रह श्री लवकुशशरण जी नें किया और चर्च मिशन प्रेस (गोरखपुर) में २२ वीं नवम्बर, सन् १९१६ ई० में छपा। आरंभ में जो गुरु-परंपरा है, वह यों है—

श्री जीवाराम—'युगलप्रिया' जी
।
श्री युगलानन्य शरण जी हेमलताजी
।
श्री जानकीवर शरण 'प्रीतिलताजी'
।
श्री रामवल्लभाशरण 'युगलविहारी जी'

श्री लवकुशशरण लीला विहारी जी

इस संग्रह में विरह-ज्वर, रूप-लालसा,प्रणय-विहार, लीला रसास्वादन,अष्टयाम भावना, रूपसुषमा, और अन्त में सूफी शैली पर विरह वेदना एवं प्रणय निवेदन है। भाषा प्रवाहमयी है। श्री युगलानन्य शरण जी की समस्त रचनाओं में सूफी शब्दावली ध्यान देने योग्य है। इस संप्रदाय के अधिकांश संत साधकों में सूफी शैली के दर्शन होते हैं, परन्तु युगलानन्य शरणजी की रचनाओं में वह विशेष रूप में उभर आई है। संभव है उनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी की हो या यह भी संभव है कि उन्होंने प्रेम का आस्वादन और अनुभव उसी प्रकार किया हो जैसा सूफियों में मिलता है। जो हो, भाषा बड़ी साफ, प्रवाहमयी, सुपुष्ट और शक्ति-सम्पन्न है। भाव और भाषा की सशक्तता और सरसता और उसकी व्यंजकता का जैसा भव्य परिचय युगलानन्यजी के पदों में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

उदाहरण—

बिरह-ज्वर

सीताराम सु बिरह की जेहि अंतर लगि चोट।
श्री युगलानन्य शरन तिन्हें रहत न प्रभु सुख वोट।।

प्रीतम कठिन कृपान से मति अन्तर उरभार।
सुमन मांझ सूरति सजन जिन्ह लागै तित धार।।

हाय हमारे रैन दिन किन दुखात कहौं काहि।
बिना सिया वर दरद दिल बूझन हारउ नाहिं।।

बिरहिनि कर कति पलहिं पल करि करि सूरति श्याम।
कौन भांति लालन मिलौ हौ अभागिनी बाम।।

हर हमेश मद मस्त रहु गहु गुरु ज्ञान महान।
जपु जग जीवन नाम नित हित चित्त सहित महान।।

बैनतेय सत कोटि सम सबल नाम जिय जानु।
बिपुल बासना पन्नगन समन करन द्रुत भानु।।

आंखरिआं झांई परी बाट निहारि निहारि।
जी भरिआं छालोपरी नाम पुकारि पुकारि।।

नयन मयन सरसेस रस अयन सयन रस राज।
रयन अयन छाके छटे छटा छवीली आज।।

नाम नेह विन वृथा सब पंथ संप्रदा मीत।
प्रान विना वपु नीर विन सर नृप विरहित नीत।।

अउवल इश्क कथा गुनें धुने नेह सह माथ।
गुने सरुचि चित बीच सोइ सुख सुर सुन्दर गाथ ।।

उठे दरद तब जरद तन हरद बराबर होय।
गरद मिशाल बिहाल नित हित हर साइत जोय ।।

दरस पिआस निरास सब स्वांस स्वांस प्रतिनाम।
रटे घटे पल पाव नहिं कबहूं विरह ललाम ।।

देखे बिना बियोग ज्वर ज्वाल जले सब अंग।
कब शीतल दृग होयगो निरखि जुगल छवि अंग ।।

दशा दिवानी रात दिन बदत बहकते बैन।
होत बिना घूमत फिरे छन छन टपकत नैन ।।

जाति पांति कुल वेद पथ सकल बिहाय अनेम।
निस दिन पिय के कर बिकी रुकी न प्रीतम प्रेम ।।

हेरत तव महबूब छवि छाई छटा रसाल।
लखत लखत नख सिख मधुर भई लीन सुधि त्याग ।।

जग जीवन सुख सिंधु श्री पद पंकज प्रिय अंक।
युगलानन्य निहारि निज नयन निहाल निशंक ।।

एक एक आभा भरन भुवन आभरन अंक।
चारेक दृग दरशन महाराज होत नर रंक ।।

नख सिख निरखत ही रहो नवल ललन गुन गाय।
विषम विशिष लागे नहीं सौष सरस सरसाय ।।

सिय वल्लभ समबन्ध शुभ सेशी शेष विचार।
देही देह अखंड नित नाता नेह निहार ।।

पांच क्लेश व्यापै नहीं-चित न होय विक्षेप।
जो जगमग सतसंग मिले तन मन सन निर्लेप ।।

हे सिय बर तव इश्क में मुझे तकार पकार।
गहे रहत त्यागत नहीं बिह्वल करौं पुकार ।।

दवा दरद दूरी करन हैं समीप तब श्याम।
अबि रहित दरपन मुझे दरसाइय अभिराम ।।

जुगल किशोर बिहार रस भीने महल मझार।
दिये लाम वे परस्पर स्वादत सुरस अपार ।।

हौं सिय बर हाथन बिक्यौं होनी होय सो होय।
इत उत कतहूं झांकिहौं प्रभु दरवाजे सोय।।

सिद्धाई सूली सहस समुझे सन्त सुजान।
नाम अमल माते रहै जहै जहान बितान।।

अष्टयाम-भावना

नाम अमी मानस रमी शादा गमी समान।
काम कमी संश्रिति समी जमी प्रीति प्रतिभान।।

निवछावरि मनि गन करो प्रतिपल स्वांस न पाय।
युगलानन्य न बिसारिये प्रभु रस दहि नहवाय।।

घटिक शेष निमा रहे उत्थापन सिय लाल।
मंगल भोग सुआरती अवलोकन छबि लाल।।

ता पाछे मंजन सुभग शृंगारादि रसाल।
करि कुतूहल जुगल मिलि लखि दृग होहु निहाल।।

घटिक चार प्रयंत यह करे भावना नित्य।
दृढ़ बिराग सु सनेह सह करि थिर चंचल नित्य।।

बल्लभ भोग सु आरती सत रंजादिक केलि।
निरखे प्रहर सुदिन चढ़े तक मुद मंगल मेलि।।

राज भोग साला सरस भोजन नाना भांति।
केलि कुतूहल लखि छके जुगल जगामग कांति।।

चिन्तन करे सप्रीति रुचि मध्य दिवस लो सैन।
मन बच पार बिलास वर कृपा प्राप्य रस अैन।।

प्रेमावेस सु जुगल छबि निरखे सहित उछाह।
सखी सु परिकर रंग रंगी गावे गीत उमाह।।

पुनि सर उपवन निकट कल केलि बिलोकन फूल।
घटि द्वै एक आनन्द अति बरसत महा अतूल।।

चारि घटी पुनि सुचि सभा सदन लाडिली लाल।
नेह न्याव निरनय रहस करहिं प्रसन्न बिसाल।।

जूथेश्वरी समाज सब बैठी निज निज ठौर।
गान तान उत्सव परम बचन रचन रस गौर।।

सन्ध्या समय सु सौज सुठि भोग राग रस स्वाद।
घटिका चारि सुप्रेम नित कीजे समय सुयाद।।

सखी सु परिकर आरती करहिं अनेक प्रकार।
महा मोद मंगल कुतुक कोलाहल सुख सार।।

रस मय मधुर बिहार बर रास कुंज सुख पुंज।
अर्ध निशा लों लगन करि ध्याइय करि मन लुंज।।

व्यारु बिसद बिनोद युत बिबिध प्रकार कराय।
सैन कुंज रचना रचे सुमन बिचित्र बिछाय।।

गावत मंगल रहस गुन पौढ़ाये सिय लाल।
निज निवास थल गवन करि चितै रहस रसाल।।

शेष निशा रसकेलि सुख अनुभव अमल सगम्य।
कृपा बिबस कोउ यक रसिक पावहिं अपर नरम्य।।

या विधि आठउ याम छकि रहे भावना धारि।
सुधि बुधि लोक अरु वेद को पंथ फलादिक वारि।।

कहे कहावे रस नहीं बिन ध्याये छबि सार।
ताते सब मन नात तजि भजिये युगल उदार।।

यह उज्वल रस रहस की बिसद भावना गोय।
सदा सुमन मधि ध्याइये सुचि चित चौगुन चोय।।

सीताराम सुनाम जपि करे महा मुद प्राप्त।
रहस अकथ कथिये कथं बरजहिं सब बिधि आप्त।।

सीताराम परात्पर प्रेम प्रबोधक नाम।
साधन साध्य स्वरूप श्रम समन करन गुन ग्राम।।

मन चाहे कतहूं चले रसना हिले न जाय।
प्रभु कृपाल करिहै कृपा शमिहै संश्रित ताय।।

रूप-सुषमा

अमल कमल कर परस्पर परसन प्रीति प्रकाश।
युगलानन्य अली सुमन सुमन करन प्रतिकाश।।

बड़भागी रागी रसिक बसिक बिनोद बिहार।
लखि लखि चखि रस रूप छबि कलित कपोल बहार।।

चिबुक चारु चमकन चतुर चखन चाहि चित वैन।
चपल चाह चूरन करन हरन हृदय तम मैन॥

कहां गुलाब कली कहां कठिन कंठ कित कूर।
कोमल कमल चिबुक कहां अनुछन नित नव नूर॥

चिबुक चटक पर बिन्दु वर पीत श्याम अभिराम।
प्रीतम प्रिया स्वरूप जनु लिये ललित आराम॥

सरस श्याम प्रिय पीतवर बिन्दु युगल रसखान।
युगलानन्य सनेह सजि लखत रहो बसुमान॥

युगलकिशोर स्वरूप चित चोर बिन्दु बिच बित्त।
पल प्रति लगन लगाय के लगवाइय सह हित्त॥

श्री सीताबर बिधु वदन वनज बदत बहु लाज।
वेद न बिदुल बिकार युत कहों सुष्ट मुख साज॥

कहां कलंक निकेत किल कला कलित लाचार।
युगलानन्य सुमुख प्रभा पल प्रति अगम अपार॥

लहर कहर जस जहर मुद मेहर सहर श्री वैन।
युगलानन्य निहारिये छावत छबि चित चैन॥

अंग अंग प्रतिविम्ब परि दरपन से सब गात।
बहु आभरन निवारि के भूषन जाने जात॥

जब जब जन्मो कर्म वस तब तब सिय पिय प्रीति।
बढ़े धाम बरबाश सह सुमिरत नाम सनीति॥

श्री सीता रामीय बिनु भए भयानक भीति।
बिनु सत कौनहुं भांति नहीं दिन दिन गति बिपरीति॥

निर्मोही मेरा मेहरवान हरवान हुआ सब तौर।
किस के पास गुजारिये अपना हाल सजौर॥

अपना हाल सजौर दौर दिलवर तक मेरी।
जिसके केर में बिकी भली विधि तिसकी चेरी॥

हर यक तरफ निगाह किया दुनियाजिय टोंही।
करुणा करिय कृपाल न अब हूजे निर्मोही॥

दीजे सिय वल्लभ सतस अवध सहर बर बास।
अथवा श्री कामद निट सुभग बिचित्र निवास॥

सुभग बिचित्र निवास खास निज महल सोहावन।
सर्वोपर आनंद सदन पावन ते पावन॥

बिरति भजन संपन्न चित्त अनुछन मम कीजे।
युगलानन्य सुनास नेह निरमल नित दीजे॥

मन मैदा सम पीसिये रचित रुचि तर अभ्यास।
लगन कराही शौक सुचि सरयी सुरस हुलास॥

यद्यपि परदा परी बीच से चेरी छेरी।
श्री युगलानन्य सुप्रीति तऊ प्रभु तेरी मेरी॥

निर्वाहो निज नेह नव निर्मल नीरद स्याम।
अवगाहो मेरो मधुर मानस हंस ललाम॥

आशिक औ माशूक हमारा नाम है।
समुझे फाशिक लोग न जोरत बाम है॥

एक जाति सब तौर गौर के किये से।
हरि हां युगलानन्य नाम रस रसना पिये से॥

नाम अमो रस मिला फेर आजार क्या।
राम महल में गये बहुरि बाजार क्या॥

चखा स्वाद सत बरन फिरि आम अनार क्या।
हरि हां भया सु दौलतवंत कहो शिर भार क्या॥

अमल अनूपम असल नाम श्री राम है।
और अमित सुनु नाम सो सदृश गुलाम है॥

किया खूब सा परख शंभु दूकान में।
हरि हां लिया ललाम सुनाम राम रसखान में॥

किया फकीरी सांच फेरि डर कौन का।
लिया नामनिज मुख्य काम क्या गौण का॥

दिया तसदुक भाल लाल के वास्ते।
हरि हां युगलानन्य खटक बिना आशिक रास्ते॥

श्री युगलविनोद विलास

युगल-विहार

'युगल विनोद विलास' संहिता के पंचम अध्याय का सरस काव्य में अनुवाद है। यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। रसिकोपासकों में इस ग्रंथरत्न का बहुत आदर है।

जुगल विचित्र विहार किधौ कल हंस हंसनी।
किधौं मत्त मातंग कलित करनी प्रसंसिनी॥

किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चंदबर।
किधौं सजल घन दाम नीर अन्तर विनोद कर॥

किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि।
क्रीड़त कुंवर किसोर किसोरी व्याज साज करि॥

सखिन सहित घनश्याम राम अभिराम नवल तन।
रसिक मनोरथ मधुर कामदायक प्रसन्न मन॥

नबल नाजनी नारि कंज कर गहि गरुर गुनि।
प्रीतम परम रसज्ञ रचत कौतुक अनेक पुनि॥

अति अगाध जल बीच डारि हरषत काहू पिय।
तिमि काचित वर वाम पकरि विन वसन करत हिय॥

रस निधि निज वर बाहु जंत्र यंत्रित ललना करि।
मगन होत छबि जोत परम प्रगटत सुधारि धरि॥

कैतब कुशल अजब नायिका एक कंज दृग।
निपतित प्रीतम अंग अमल मानो मनोज मृग॥

किधौं सचीपति सुमति नवल नग लषि समान घन।
गिरत छटा छबि सहित रहित आमर्ष हर्ष मन॥

किधौं सजीली स्वर्णलता सुर द्रुम सनेह तजि।
अमल तमाल अनूप रंग रमनीय आप भजि॥

काचित कला निकेत बाम कूदत स्वतंत्र जल।
गहत लाल कर कंज जाय औचक असक कल॥

प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पंडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि॥

ललित लड़ैती लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कंज करन सींचत विचित्र तर॥

कोमल कर पद कंज मंजु आघात सरस सुचि।
करहिं केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि॥

महा मधुर धुनि छाय रही चहुं ओर विलच्छन।
सषिन सहित सिय श्याम नवल रस समर अनुच्छन॥

कोउ सहचरी सनेह सनी लपि ललित उर स्थल।
मृदु तर सुपद सरोज हनत क्रीड़ा रस विह्वल॥

काचित सषी सलोन ललन दै अंकमाल अति।
समुझि विपुल भय नीर मध्य मज्जन हित डरपति॥

अति चातुरी रचाय एक आली अलबेली।
गहि प्रीतम प्रिय अंग गई बन बीच अकेली॥

काचित सखी सरोज मुखी अति सबल धारमधि।
पड़ी बड़ी हैरान हीय व्याकुल न रंच सुधि॥

तरल तरंगन संग वसन विलगान न जानति।
बहुरि होस हिय लाय विपुल ब्रीड़ा मन मानति॥

सरस सकोच सजाय निकट प्रीतम न जात तिय।
कोउ अलिक गहि बाहिं विहंसि सनमुख कीन्ही पिय॥

तव ब्रीड़ा संपन्न वाम मज्जति अंतर जल।
निरषि नवल निज नैन नाह दीन्हीं सुवसन भल॥

रसिक सिरोमनि श्याम राम अभिराम नेह निधि।
जुगल करज दै चिवुक बीच चुम्बन करि बहु विधि॥

कलित कपोल अमोल वाम निज प्रिय संजुत करि।
चाखत सुधा समूह अधर रस अति उमंग भरि॥

जिमि चञ्चल पन छोड़ि चतुर चञ्चरी कञ्ज रस।
पीतव परम प्रमोद पाय घूमत सनेह वस॥

यहि विधि विपुल विहार सहचरि संग रंग रचि।
करि सनेह रस लीन मीन मन हरन स्वाद सुचि॥

जल क्रीड़ा कमनीय निकर परिकर विशेष सजि।
भीने नवल निचोल सरस सिर सह आनन भजि॥

हेम मनोहर वरन छोभ वर वसन सुतन छवि।
दम्पति नेह नवीन परम प्रतिभा भसिति कवि॥

परिहेल प्रभु मानस ललीय लाल कौतूहल रची।
जलकेलि ब्रीड़ा ब्रीड़ जहँ अहलाद क्रीड़ा कलमची।।

जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेंकहिं अलि चली।
तेहिं संग भ्रमर उड़ाहि गुंजत देखि कवि शारद नची।।
जनु पूर शशि टूटहिं विथकि अहिवाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सम्पुट वेष्टिरस अलि अलि चपरि लै जूटहीं।।
प्रभु लेत पुनि फेंकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटहिं।
जिमि रामचरण हवाइ सीयपुर काम रति कर छूटहिं।।

यहि विधि जलकेलि हेलि खेलत पिय प्यारी।
उमगत आनन्द माल हंसत धरत ललिय लाल, अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमारी
मिलित लाल अलक वंक वेसरि अरुझेउ तटंक अलि कच कुंडल बुलाक अरुझेउ उपमारी।।
जनु जुग विधु चख कुरंग, गुरु द्वौ रवि अलि अनंग अहि रजकसि वीच वैर सब तजग सुखमारी।
कोउ सखि निरुआरति करताल हंसि बजावति वहु व्यंग राग गवति मन भावनि नहिं न्यारी।।
करते कर जोरि सकल निरतत जल उपर चपल, चरण चलत छुअत छटक नूपुर रवकारी।
रत्ना लंकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्रैं जनु घन दिवि तड़ित विपुल दमकति दुतिवारी।।
छुम छुम थेइ थेइ तरंग गावत पिय संग संग चलत लजत गज अनंग वाजत करतारी।।
अद्‌भुत राहस अनूप देखहिं कोई सखी सरूप, श्रीरामचरण देखहिं किमि नयन अन्ध चारी।।

वहुताल वाजहिं चरण चञ्चल मुरत कर मुख चष छुये।
मुक्ता कलीय नूपुर खसे जनु अमियशर वहु शशि उये।।
युग युग सखी बिच बिच एक मध्य राम निर्तत।
संगीत ताण्डवी सुगन्ध गति अनेक ल्याई।।
गावत षट् राग राम रागिनि स्वर ताल ग्राम।
मव धरि सखि रूप राम रास हेतु आई।।
श्री जानकी रघुनन्दन मन भावति भई ब्रह्म रैन।
श्री राम चरण सकल जीव परमानन्द पाई।।
यद्यपि अली अपार, मुख्य गनी गन नायिका।
द्वै हजार हजार, एक एक सखी के किंकरी।।

उभय प्रबोधक रामायण

श्री बनादास कृत

महात्मा बनादासजी

महात्मा बनादास जी के अनेक ग्रन्थों का पता अब लगा है। उनमें साधन की ही विशेषता है—ज्ञान वैराग्य, भक्ति, नाम स्मरण, पवित्र जीवन का ही प्रकरण विशेष रूप से

आया है। महात्मा बनादास जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बाहर बाहर से उनकी दास्य भक्ति है पर अन्तर के अन्तर में मधुरा भक्ति है। अवध के अधिकांश महात्माओं की साधना का यही रहस्य है।

उभय प्रबोधक रामायण—लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने में दिसम्बर सन् १८९२ ई० में छपा—'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' तथा 'रामायण शतकोटि अपारा' के अनुसार श्री बनादास जी को 'उभय प्रबोधक रामायण' में सात काण्ड श्री गोस्वामीजी के सात काण्ड से सर्वथा भिन्न हैं। इनके सात काण्ड के नाम हैं—मूलखण्ड, गुण खण्ड, नाम खण्ड, अयोध्या खण्ड, विपिन खण्ड, विहार खण्ड, ज्ञान खण्ड और शान्ति खण्ड। इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, कवित्तादि अनेक प्रकार के ललित छन्द हैं। भाषा बड़ी ही शुद्ध साधु और शुचि है। बनादास जी एक पहुँचे हुए सन्त थे यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट है और इनकी शैली बड़ी ही मनोहर एवं प्रभावमयी है। पाठक के मन को वह सहज ही गिरफ्तार कर लेती है और कालरिज के 'ऐंशिएंट मैरिनर' की भाँति पाठक पर कथा का जादू का-सा असर होता है। शेष भाग में तो कथा रामचरित मानस के अनुसार ही चलती है परन्तु विहार खण्ड में भगवान् राम वन से लौटने के बाद एक बार जनकपुर जाते हैं और वहाँ से लौटकर काशी में काशीराज के सम्मान्य अतिथि होते हैं। यह सर्वथा नयी उद्भावना है। भक्तों ने भगवान् की जिस किसी लीला का जिस रीति से साक्षात्कार किया वैसे ही वर्णन कर दिया है इसमें शंका के लिए कोई अवकाश नहीं है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बनादास जी की मधुरोपासना परम गुह्य है एवं गोपनीय भी। अतएव मुख्यतः उनके ग्रन्थों में ज्ञान वैराग्य के आधार पर भक्ति की प्रस्थापना ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है पर जहाँ तहाँ अप्रकट रूप में अनायास अन्तर की गुप्त धारा भी व्यक्त हो गई है जैसे—

इत उत घूमति बाग मृगा खग विटप निहारति।
लगी सुरति रघुबीर मूरति ते नेक न टारति।।
सीता बूझति सखिन नाम तरू लता विटप कर।
चहति न नेक बिछोह प्रीति पथ दृढ़ि अति तत्पर।।
कहूँ कहूँ प्रगटत दुरत प्रभु सीता जनु सूर शसि।
कह बनादास वल्ली लता जलद पटल तट पर सुअसि।।

राम बाम कर सुमन गिरयौ बोखे सों भूतल।
रह्यौ न पूजा योग लेन पुनि लगे फूल दल।।
अन्तर्यामी सकल सदा जनकी रुचि राखैं।
शारद शेश गणेश निगम नारद अस भाखैं।।
प्रीति रीति पहिचानि बो त्रिभुवन तीनिउ काल महँ।
कह बनादास रघुनाथ सम कबहूँ ना उन कतहुँ कहूँ।।

सिया राम हिय मध्य राम सिय के उर माहीं।
थप्यो पुष्ट तेहि काल तुष्ट आयो दोउ पाहीं॥
नख शिख देख तरु पउ भय जनु मुकुरहिं छाया।
तदपि न मानत तृप्त काल अति अलि लखि पाया॥

युक्ति वचन सखिय न कहिये ऐहैं यहि बेर नित।
आजु ते प्रतिदिन नेम करि गिरिजा पूजिन लाय चित॥

हीय बनी उपमान तिहूँ पुर राम बना हमरे मन भावै।
दम्पति आसन एक विराजे तजो रति कोटि मनोज दबावै॥
सांवल गोर सोहात मनोहर तोप नहीं जेति ते शिव पावै।
दास बना धृग जीवन है असि मूरति से जो सनेह न लावै॥

राम सिया अवलोकनिचारु विचारु किये न कोऊ लखि पावै।
गूढ़ सनेह न जात लखो सुठि शील संकोच हिये में दुरावै॥
दोउ परस्पर भाव बढ़ावत ताको कहाँ उपमा कवि लावै।
दास बना अति भाग्य के भाजन जाके हिये यह मूरति आवै॥

काम करि शावक के कर से अजानु बाहु उर सुठि बृहदंशु यज्ञ पीत धारी है।
राजै भुज अंगद औ कंकण कनक कर जटित मणिन मुद्रिका कि छवि न्यारी है॥
राते अरबिन्द कर जानु पीन काम साथ सघनि रोमावली सो लागै अति प्यारी है।
बनादास कटि सिंह चरण कमल चारि श्याम गौर जोड़ी अंग अंग शोभा क्यारी है॥

भाग्य सराहैं सबै अपनी जो समय तेहि में अवलोकन हारे।
सांवल गौर बनी बर जोरी वसूं निशि बासर नैन हमारे॥
सुकृत पूरे सबै भली भाँति से दास बना उर माहिं बिचारे।
पाके समान अहै अजहूँ प्रभु के यश लागत जाहि पियारे॥

नाना मणि जटित मुकुट हेम शीश सोहै भानु से प्रकाश काक पक्ष छवि न्यारी है।
मेचक कुञ्जित नागछौना ज्यों लटकि रहे लपटि लपटि लागे जोहे अति प्यारी है॥
कैधों अलि अवलिन उपमा अनूठो मिलै आठो किये कवि जन जानौ छवि क्यारी है।
बनादास कुण्डल कनक लोल राजै श्रौण मीन छटा छाँटि डारे जाने जासु यारी है॥

बंक भ्रुव कञ्ज नैन मुख छवि ऐन मानो सैन किये जाहि दिशि स्वाद तिन पाये हैं।
तिलक बिशाल भाल तड़ित कि द्युति निन्दै अल्पउ भैरेख जनु अचल सुभाये हैं॥
अधर दशन अति अरुण अनोखी आशै बिम्बाफल दाड़िम न पटलर आये हैं।
गोले हैं कपोल मन मोल लेत बिना बित बना दास नासा शुक तुंड हिल जाये हैं॥

चन्द मुख मन्द मन्द हंसत हरत मन हर दम टरत तन ही से अति नीके हैं।
चोखी है चिबुक चित चोरि लेत बार बार बनादास द्युति मरकत मणि फीके हैं।।
कम्बु ग्रीव शोभा सीव लागति अतीव प्रिय हरि कन्ध जोहे जिन रहें निति ठीके हैं।
उभै भुज भारी कर कंकण केयूर युत करज ललित धनु बाण अति ठीके हैं।।

उर सुठि वृहद प्रसून मुक्त माल भ्राजै तुलसी सु दल युत यज्ञ पीत भली है।
भृगु चर्ण रमा रेख त्रिवली विशेष छवि नाभि है गंभीर जनु लाखों मन छली है।।
सिंह कटि तूण पटपीत है कनक कांति तड़ित विनिंदित सुरति सुठि मली है।
बनादास जामा लाल ललित लगाये कोर बोर छोर जोहे जाय जाकी मति हली है।।

जानु युग काम भाथ केरा तरु तुच्छ लागै जागै जीव सोत रोमावली जे जोहे है।
कोटिन मदन कोक दन रूप अंग अंग भूप वर्षा को ऐसो कौन देखि मोहे है।।
गुल्फ छवि गूढ़ है करुढ़ पैनि काय मुनि कमल चरण माहिं चित्त जिन पोहे है।
बनादास मन है मतंग जोर जंग अति पंग होत तबै अंग अंग लेत कोहे है।।

कनक भवन सिया रमण बिहार थल रचना न कहै योग गिरा मूक लई है।
सखी सीय संग में शिंगार शुभ अंग अंग शची रति मान भंग मानो करि दई है।।
तहाँ पै सिंहासन प्रकास न बरणि जात निरखि लजात भानु हेम मणि मई है।।
जोड़ी श्याम गौर विराजमान ताहि पर बनादास नख शिख शोभा सरसई है।।

मानहुँ तमाल तरु निकट कनक वेलि लई है सकेलि छवि चौदह भुवन की।
जाल की सुअंग पै अनेक रति भंग होत कोटिन अनंग व्याजु नृपति सुवन की।।
वनादास ऐसे ध्यान सदा जे परायण हैं ताहि मुक्ति आश नहिं रह त्रिभुवन की।।
मन क्रम वचन निशोच भये सोर्य जन जाको है भरोस एक दारिददुवन की।।

मुकुट शिर हेम का भ्राजै मनो द्युति भानु लाजे है।
छटा जुलफौं कि अति नोदी निरखि त्रै ताप भाजे है।।
लसै घुंघुंवारि लट लोनी निरखि चित चोरि जाते हैं।
लटक उरजाहि के आवै नहीं फिरि कछु सोहाते हैं।।
श्रवन में राजत मोती अनोखी पैन प्यारी है।
जिगर के जुल्प को काटै छटा अति ही नियारी है।।
बंक भ्रुव नैन रतनारे सुभग अवलोकनि भाई है।
तिलक शुचि भाल में भ्राजी मनहुँ चित को चोराई है।।
अधर अरुणार शुभ नासा दशन की कान्ति नीकी है।
हंसनि मृदु भावती ही को छटा दाड़िम की फीकी है।।
चन्द्र मुख श्याम के जेहि लगै तेहि त्रय लोक हल्का है।
निरखि मन तोप नहि पावै नहीं तहँ मूल पल्का है।।

चिबुक चित चोर अति लेवै गरे त्रय रेख प्यारे हैं।
कन्ध केहरि के सुठि लाजै वृषभ से भूरि भारे हैं॥
गरे गज राग रुरे हैं विपुल मणि के न मोहै को।
उभै भुज काम करि करसे तिन्हें मूरख न जोहै को॥
बना इस ध्यान में रमता तिन्हें हरि से, जुदाई क्या।
जो आशिक पाक है दिल के उन्हें जग में बड़ाई क्या॥

कमर केहरि से अति चोखी सुमन कर माल लीन्हे हैं।
छटा पट पीट की न्यारी कोउ जन चित दीन्हे हैं॥
जबै युग जानु को पेखै कहाँ कैवल्य बासा है।
कमल पद को न जोहे जे तिन्ह यमलोक त्रासा है॥
दिशा बायें पै सिय राजै सबै उपमा टटोरी है।
न पटतर ताहि ले दीन्ही अधिक नृप की किशोरी है॥

बना कुर्बान चरणों पै कहनि औरह निज बहोवै।
वचन के ज्ञान की झल्की पलटि ताही कि पति खोवै॥

सीताराम झूला विलास

श्री रसरंगमणि जी

श्री सीताराम झूला विलास : इसे छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने जैन प्रेस लखनऊ में जुलाई सन् १८९९ में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इस में २५ पद झूला के और ५ पद नौका-विहार एवं जल-विहार के हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ कवित्त में है और भाषा साधारणतः पुष्ट एवं मार्जित है। झूलन के पदों में लीला-विहार का एक ही चित्र बार बार आया है, सीताजी राम को झुला रही हैं, राम सीताजी को। फिर दोनों को सखियाँ झुलाती हैं और युगल मिलन का रस लेती हैं। नौका-विहार या जल-विहार के पदों में भी एक ही दृश्य बार बार आया है। फिर भी कुल मिला कर यह ग्रन्थ रसिक साधना का एक अनमोल रत्न है।

उदाहरण—

सावन सघन घन गगन मै दरसत बरसत बारि घोर घहरि घमंकि कै।
दिनहूँ न दीसत दिनेस ननिसीस निसि दुरत विदिसि दिसि दामिनी दमंकि कै॥
राम रस धाम सिया संग रसरंगमनी झुकि झुकि झोंकन सों झूलत झमंकि कै।
डरि मुसक्याय कहै कण्ठ लपटाय प्यारी लीजै रस रसे रसे रसिक रमंकि कै॥

रसिकाधिराज राम सिया सिया प्यारी वंग रंग की उमंग बरसावैं रस झूलि झूलि।
झोंका को लगावें झुकि झुकि मिलि जावें दोऊ अति सुख पावें रहि जावें मान भूलि भूलि॥

आली गीत गावें हाव भाव दरसावें प्रिया प्रीत मै रिझावें नाचैं नई गति पूलि पूलि ।।
सावन सोहावन प्रमोद वन पावन मै लसत हिंडोरा रसरंगमनी फूलि फूलि ।।
छाय छाय आये चहूँ ओर घनघोर करि मोर जोर बरसें मधुरझरी लाय लाय ।
लाय लाय गलबाँह राजत नवेली नाह सखिया झुलावें झुकि झुकि नाचें गाय गाय ।।
गाय गाय बोलें मानो कोकिला मधुप कीर सरजू के तीर तरुफूले नीर पाय पाय ।
पाय पाय पान मुसुक्याय रघुराय सीय झूलै रसरंगमनी मनमोद छाय छाय ।।

करत सिय रघुबर बारि बिहार ।
सखिन सखन जुत जुगल सलोने सरस परसपर पागे प्यार ।
नई नाव छवि छई वितानन कलबल चलत सरजु जलधार ।।
लसत हिंडोर किसोर किसोरी कोरी नाचहिं गाय मलार ।
भादों घन बरसत भरदर भल दोउ दल भरि खेलहिं पिचकार ।।
दंपति निरपि हंसत निबसत छलि उर रसरंगमनी आगार ।।

श्री रामनाम यश विलास

श्री रामरूप यश विलास

श्री राम रस रंग मणि जी भगवान् राम के नाम और रूप के यश के वर्णन कवित्त रूप में इस संग्रह में प्राप्त हैं। पण्डित वासीराम त्रिपाठी के देशोपकारक प्रेम लखनऊ में संवत् १९६५ अर्थात् सन् १९०० में मुद्रित हुआ। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

राम पिता सुखदा सुत भ्रात सु मातु सनेह जुता यमुजाम हैं।
राम सु मीत बिनीत सखा सु पुनीत सिखावत मन्त्र सु नाम हैं ।।
राम सु देह के पालक मालक दीन दयाल सु देत अराम हैं।
रामहि प्रान के प्रान सु जीवन जीवहुँ के रसरंग श्रीराम हैं ।।

रामहीं को दास मैं हौं रामहीं की आस मोहि,
राम दुख नास मम वास खास धाम हौं ।।
रामहीं की पूजा मेरे राम विन दूजा नाहिं,
सीताराम शरण रहौं मैं आठो जाम हौं ।।
रामहीं को ध्यान मेरे रामहीं को ज्ञान,
रसरंग सख्य अभिमान राम को गुलाम हौं ।।
राजपद ठाम मेरे रामहीं को काम मेरे,
मागों सीताराम हीं सों रट सो राम राम हौं ।।

जाग मेरे राम भूरि भाग मेरे राम,
गीत राम मेरे राम अनुराग 'रसराम' हैं।
धीर मेरे राम बरबीर मेरे राम,
हर पीर मेरे राम धनु तीर धर श्याम हैं।।
दानी मेरे राम सत्यबानी मेरे राम,
सिया रानी रतराम सुख खानी शील धाम हैं।
पात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सर वस रामनाम हैं।।

देह मेरे राम सु विदेह मेरे राम,
गुन गेह मेरे राम प्रदनेह मेह श्याम हैं।
रंग मेरे राम भव भंग कारी राम,
सुभ अंग मेरे राम बसै संग बसु जाम हैं।
स्वामी मेरे राम ब्रह्म नामी मेरे राम,
हियधामी मेरे राम सखा साँचे 'रसराम' हैं।
तात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सरबस रामनाम हैं।।

कीजिये कृपा कृपाल निर हेतु रसराम,
सुमिरौं सनेह वस रामनाम रोय रोय।
मानस के बिमल बिलोचननि बार बार,
जुग पद मख जोति जग मग जोय जोय।।
बान्त सम बिषे सुख दुख बिसराय,
पराभक्ति तोष पाय ध्याऊँ सान्ति सुख सोय।
सीताराम अहौ जन झूठ साँच आपही को,
आप अपनाय जेली पाप ताप धोय धोय।।

दीन बन्धु जानि राम रावरे को बन्धु मानौ,
ताते मोहिं केहूँ भाँति आपौ मानि लीजिए।
आपही के माने मन मानैगो प्रमोद मीत,
मेटि भव भीति प्यारे साँची प्रीति दीजिए।।
बैन नाम नेह लीन रूप सिन्धु नैन मीन,
होवें प्रेम पीन त्यों अदीन सुखी कीजिए।
खीजिए न दोष देखि रीझिए कृपाल राम,
बसि उर धाम रस रंग बन्धु कीजिए।।

श्री सरयू रस-रंग लहरी तथा अवध पञ्चक

श्री रसरंगमणि

श्री रसरंगमणि जी के इस ग्रन्थ में श्री सरयू जी की महिमा का बड़ी भव्य भाषा में वर्णन है। सीताराम के लीला विहार की दिव्य रम्य स्थली श्री सरयू जी की गुणावली गाते कवि कभी थकता ही नहीं।

उदाहरण—

लेत मुख नाम राम गंग रस रंग मनी,
देत सुख संग भारी भवभीति भूलती।
सरद ससी के कल किरनै समान,
तुंग तरल तरंग ताके ताप निरमूलती॥
परसत पाथ सीतानाथ अनुराग बाग,
बेलि रसकेलि उप फैलि फलि फूलती।
सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि सिद्धि भुक्ति,
मुक्ति झुंड झाउन के झारन में झूलती॥

जे वाशिष्टी मिष्ट वारि कुल इष्ट हमारी।
अवलोकत अनइष्ट हरनि सुख करनि अपारी॥
जयति कोशला कलित ललित धारा धरनीया।
द्रवरूपा रघुबीर कृपा भवदुख दरनीया॥
जय जननी रस रंग मनि जगमग जग जाहिर चरित।
जय रघुबर दृग जलजजा जय जय जय सरजू सरित॥

जैसे सब नामन मै रामनाम मुख्य पुनि,
रूपन मै जैसे राम रूप अभिराम है।
सास्त्रन मै जैसे रामायण सुवेद सार,
वेदन के मध्य जैसे वेद बर साम है॥
सरितन माहिं जैसे सरजू सिरोमणि है,
भक्तन मै जैसे हनुमन्त जितकाम है।
तैसे सब धामन के मधि रसराम निधी,
धामाधिप अवध ललाम रामधाम है॥

श्री सीताराण शोभावली प्रेम पदावली

श्री सीतारामशरण रामरसरंगमणि

श्री रामरसरंगमणि जी का ८० पृष्ठों का यह ग्रन्थ देशोपकारक प्रेस लखनऊ से सन् १९०२ ई० में श्री सीताराम शरण भगवान्प्रसाद जी की प्रेरणा से छपा। इसकी पूरी प्रति अब मिलती नहीं, एक खण्डित प्रति मिली है। ये पुस्तकें ऐसे कागज पर छपी हैं कि इन्हें हाथ लगाते ही टूट-टूट जाती हैं। और इसलिए, बहुत सँभालकर इन्हें पढ़ना होता है। मधुर रस के प्रेमसागर में डुबकी लगानेवाले रामरस रंग मणि जी की यह पुस्तक साहित्य, साधना और सिद्धान्त सभी दृष्टियों से परम उपयोगी है एवं इस सम्प्रदाय की रस साधना को समझने में बहुत अधिक सहायक है। आरम्भ में श्री सीताजी का नखशिख-वर्णन है जो बड़ा ही मनोहारी एवं जीवन्त है। इसके अनन्तर श्री रामजी के अंग-प्रत्यंग का विशद एवं रससिक्त वर्णन है। फिर पावस के झूलनविहार और फिर वसन्तविहार है। अन्त में रासोत्सव का बड़ा ही मनोहारी प्रकरण है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रामरसरंगमणि जी को इस कृति में अपूर्व सफलता मिली है।

मांग वर्णन

सिर चन्द्रिका चारु लसी रसरंगमनी लखि के चखमे बड़ भाग है।
जोति जगै गुहि मोगिन की वर ज्यों तम तोम में तारे उजाग है।।
जाहि मनाय उमादि रमा नितहीं निज मांग को मांगे सोहाग है।
सेंदुर पूरित भूरि भरी छवि सीय सोहागिनि की शुभ मांग है।।

बेनी वर्णन

नागिन की उपमा अनुरागिन के मन में नहिं भावति देनी।
कञ्चन शैल सिंगार कि धार किधों रसरंगमनी अलि श्रेनी।।
रेशम लाल गुही सित फूल लसी ज्यों महा सुखमा की त्रिबेनी।
वल्लभ की बिरची अति बेस बिदेह लली की बिराजति बेनी।।

लिलार वर्णन

उज्ज्वल चारु सु चन्दन चित्रित बन्दन विन्दु अमन्द उदार है।
भाग कौ भाजन साजन प्रेम को हेम पटा कि सोहाग आगार है।।
अर्ध शशी कि वसीकर जन्त्र परेसहुँ को वसकार अपार है।
शोभा धनी रसरंग मनी मिथिलेश लली को ललाम लिलार है।।

नयन वर्णन

खञ्जन मान - विभञ्जन श्यामल कञ्ज मनो सुखमा सरसी के।
भौंह कमान बिलोक निबान विभाव भरे मनहारक पीके।।

कोमल कोटि कृपा कि कटाक्ष मनी रसरंग पै कारक नीके।
राघव रञ्जन रञ्जित अञ्जन मञ्जु बिशाल बिलोचन सी के॥

नासिका वर्णन

सुक नासिक ते सिय नासिक नीक लखे रति लाजि रही लचि कै।
वर बेसरि बेस विराजि रही झुलनी छवि छाजि रही नचि कै॥
रस रंग मनी मधुरे अधरान बीरी सु भ्राजि रही रचि कै।
मुसुक्यान सु जान पिया हिय में सुख सम्पति साजि रही सचि कै॥

मुख वर्णन

वन्धुक विद्रुम विम्व जपा अरुने मधुरे अधरान पै वारौं।
दामिनि दाड़िम कुन्द कली दमना वलि के दुति पै बलिहारौं॥
बैनन पै रसरंग मनी पिक बैन निछावरि को करि डारौं॥
आनन पै सिय के शशि कोटिन दूर पवारि कै वारि उतारौं॥

कण्ठ वर्णन

कोमल औ कल स्वच्छ झलाझल राजित रेख महा छवि सीवाँ।
भूषन भूरि लसै रसरंग मनी मुकता के अमोल अतीवा॥
केलि कला कि अदा उन मीलनि हीलनि राम सुजान कि जीवा।
कम्बु कपोति सु कण्ठ लजै लखि कै रघुनन्दन गोरिक ग्रीवा॥

हाथ वर्णन

चारू महा सुकमार सुढार हरैं दुति हेम तथा ताड़िता की।
कञ्ज मृनाल रसाल किधों युग धार लसैं सुखमा सरिता की॥
दैनि अभै सुख लोक उभै रसरंग मनी सम कल्प लता की।
राम पिया गर की वरहार सी बाहुँ उदार विदेह सुता की॥

रम्भ सु दुन्दुभि सिंह सुधाकर श्री फल के उपमेय जे अंग हैं।
आन ते नाहिं न जानि सकै न बखानि सकै सुमणीरसरंग हैं॥
जानत केवल रामहिं एक कहै न सोऊ कोई और के संग हैं।
याही विचार उचार भयो सिय की सुखमा को समास प्रसंग हैं॥

सर्व देह वर्णन

मोन सो सुन्दरताई समी मितलाई सोहाई प्रभा अमली की।
दामिनि ओप मनीरसरंग मृदुल सुगन्धिहुं चम्प कली की॥

कल्पलता सी लसै लहरानि अनूपम लाल तमाल रली की।
ज्यों छवि गेह सनेह की दीप दिप दुति देह विदेह लली की॥

सारी वर्णन

झीन रंगीन नवीन नितै ज्यों सिंगार घटा सुखमा बरसाती।
कञ्चन तार किनारी रची कल श्यामल राम छटा दरसाती॥
ताहि ते प्यारी जु प्यार समेत सदा निज अंगन सों परसाती।
क्यों बरनै रसरंग मनी जस सारी सिया तन में सरसाती॥

पदपंकज वर्णन

लाल रसाल महा उर मण्डित दासन के दुख दोप बिनासी।
शारद सिन्धु सुता गिरिजा जिन को नित पूजहिं प्रेम प्रकासी॥
वेद को मूल सो नूपुर नाद जगै नखजोति सुब्रह्म प्रभासी।
राम प्रिया पद कञ्ज तेई रसरंग मनी हिय कञ्ज निवासी॥

अंगुलि राम प्रिया पद कञ्ज की मञ्जुल मंगल की कर वाहैं।
नासन दासन के दुख के नख भूरि सुभागन के भर वाहैं॥
रेख प्रकास भरे रसरंग मनी तम मोहमयी हरवा हैं।
व्योम के तारन हूँ तें अपार अधीन के तारन ज्यों तरवा हैं॥

हैं दसहूँ उपनीपद - सार कि तेज दसौ अवतार के भ्राजै।
कै दसहूँ दिग पालन भालन के बर मानिक ये छवि छाजै॥
ऐकि प्रकाश स्वरूप लगी पग सों दसधा भगती सुख साजै।
की रसरंग मनी सिय - पायन के सु दसौ नख सुन्दर राजै॥

पावस

सरयू के कूला बिरचित झूला झूलत सिय रघुराज आली।
रिमझिमि रिमिझिमि बरसत बदरा भींजत सिय सारी पिय चदरा जलकण मुखन बिराज आली॥
लै पटकर रघुवर पटरानी बिहंसि परस्पर पोंछत पानी लखि सुब सुखी समाज आली।
गावहिं सखी सोहावन सांवन सुनि रसरंगमणी मनभावन अति आनन्दित आज आली॥

झूलन

झूलत राम लाल अलबेलो।
लीन्हें सिय ललना अलबेली रमकत सनो सनेह नबेलो॥
मिलि गोरी गावत गरबोली हंसत हंसावत लहि मुद मेलो।
परिकर दृगन प्रमोद बढ़ावत करि रसरंग मणी रस खेलो॥

झूलत सिय स्वामिनि महरानी।
श्री महराज कुंमार झुलावत सजि सनेह सनमानी॥
प्रीतम प्रीति प्रबल सखि प्यारी पग प्रमोद मुसक्यानी।
लखि रसरंग मणी दुहुँ अखियाँ छवि सुख सिन्धु समानी॥

झूलत राम सिया रस रसिकैं।
रस भरि गाय गवावत हिलिमिलि हिय सर सावत हंसिकै॥
खात खवावत पान पानकरि अधर सुधारस फंसिकैं।
रस झूलनि रस रंगमणी यह निरखत हियो हुलसि कै॥

मलार

झुकि झुकि सीताराम सु झूलैं।
सांवन सरयू तट प्रमोद बन घन बरसत अनूकूलैं॥
कल कामिनी कछोटा कंसि कसि दोउ दिशि हंसि हंसि हूलैं।
मिलि मलार गावत सिय पिय सखि सुनि सुरतिय तन भूलैं॥
अञ्चल माल सुधारि सनेही लखि चञ्चल दृग फूलैं।
प्यारिहुँ अलक सम्हारि लहैं रस रंग मणी मुद मूलैं॥

झूलत रसिक राज रघुनन्दन।
झोंकत बिहंसि बिलोकत प्यारो प्यारी आनन चन्द॥
झझकि झमकि झुकि पिय कहुँ बरजहिं अलबेली हंसि मन्द।
लाल ललकि रस रंग मनी उर लावत लहि आनन्द॥

आली री को झूलै इन संग।
नाजुकता न बिलोकत परकी झोकत अधिक उमंग।
रसिकराज कहवावत पै नहिं आवत रस गति ढंग॥
पियकर जोरि निहोरि हंसायो छायो प्रेम उतंग।
मणि रस रंग रामसिय अंगन वारत अमित अनंग॥

रघुबर झूलत प्यारी संग।
रुचि लखि ललित झुलावत गावत राग मलार तरंग।
हंसत हंसावत पान खवावत खात सनेह उमंग।।
आवत भंवर उड़ावत कर सौ बसन सम्हारत अंग।
दम्पति प्रीति रीति पर वारत तन मनमणिरसरंग।।

झूलत रघुवर प्राण पियारी।
प्राणनाथ अंसन भुज धारी।।
सांवन सरयू तट फुलवारी।।
लहर विलोकि परै जहँ भारी।।
नभ घनघटा घेरि आई कारी।।
गरजत बरसत रिमि झिमि वारी।।
हरित भूमि तरुलता अपारी।।
बोलत दादुर खग मनहारी।।
सखि नख शिख सिंगार संवारी।।
गावहिं रागिनि मधुर मलारी।।
बाज बजाय नंटहिं दै तारी।।
निरखि युगल छवि होहिं सुखारी।।
झोंकि झुलावत अवध विहारी।।
सिय डरपै पिय ओर निहारी।।
छवि छाके दोउ देह बिसारी।।
लखि रसरंग मणी वलिहारी।।

कजरी

देखो देखो जी हिंगोरा झूलें युगल मिले।
लोनी मिथिलेश लली लसी चंपकली मानो रघुनन्दनील अरविन्द से खिले।।
मन्द मन्द बुन्द परें मन्द मन्द झूलें दोऊ मन्द हंसि हेरें सुखसिंधु में हिले।
प्रेम की उमंग भरे संग रसरंगमणी वारि कै अनंग झांकी झांकत झिले।।

झूलत सिय रघुराज दुलारे।
बन प्रमोद बर सरित किनारे।।
गरिज गरिज बरसत घन कारे।
चातक मोर मोर किल कारे।
बसन सुरंग अंग दोउ धारे।।

तन जगमग भूपन उजियारे।
हिलि मिल गावहि राग मलारे॥

बड़े बड़े बूंद बरसि रहे बदरा।
सिय पिय झूलि रहे रस भीने भीजें सुरंग चूनरि चदरा॥
लखि रसरंग मनी दंपति छवि मुर्यो स बाम काम कदरा॥

हिंडोरे झूलत युगल किशोरे।
बरषत घन हरषत सिय पिय हिय निरखत नयनन कोरे।
बस रसरंगमणी मनमोरे रमकनि थोरे थोरे॥

रसिक वर हरि लीन्हों मन मोरा।
नवल उमंग संग सिय लीन्हें झूलत रंग हिंडोरा॥
हंसि हंसि सियदिशि झुकि चित चोरत तिवत नयन मरोरा।
रूपधनी रसरंगमनी उर वस्यो बीर बरजोरा॥

रसत रघुबीर सिय सरद सुख रास मैं।
सरद बन मंजु मधि सरद कल कुंज जहं फूलि रहि मल्लिका गुंज अलि बास मैं॥
सरद श्रृंगार सजि सरद सखि यंत्र धरि सरद पद गान करि नचहि स हुलास मैं।
सरद की सुभग निसि सरद चांदनि बिलसि सरद शशि अमल अति उदित अकास मैं।
सरद शशि सरिस सिय राम मुख अमृत छवि पियत रसरंग दृग प्रेमपगि प्यास मैं॥

शोभा बनी सिया दुलही की।
तन दुति कुंद करै कुन्दन दुति मुख माधुरी चन्दते नीकी॥
लोचन ललित कंज ते मंजुल अंजन भरे मनहुं छवि पीकी।
सोहत सब भूषन गोरे तन तैसी लसनि चारु चुनरी की॥
अति सुन्दर सेंदुर पूरित शिर मन मोहति सुखमा मौरी की।
बसत हिए रसरंग मनी सिय-रघुवर जोरी भावति जी की॥

छोरो लला कंकन सिय जू को।
एकहि कर सुझावो सलोने यामे प्रमान नहीं कर दू को॥
छोरत छैल न छूटै छबीली बिहंसति करि पट ओट कछू को॥
कह सखि सियपद गहो लाल अब यह न धनुप जो कियो युग टूको॥
सुनि मुसक्याय वदत रघुबर मन भावै सो आज कहो जनि चूको।
सुरझाये रसरंगमणी प्रभु गिरह नेह उरझाय बधू को॥

बसन्त

बर पीत बरन आयो बसन्त।
सजे पीत साज सब सियाकन्त॥
बन पीत लता कुसुमित रसाल।
मधिमहल पीत मणि को विशाल॥
भये पीत युगल करि अंग राग।
पहिरे सारी पट पीत पाग॥
किये पीत उभय परिकर सिंगार।
पकवान पीत भरि कनक थार॥
दंपति जिमाय जलपीत प्याय।
दै पीत पान पुनि अंतरलाय॥
करि पीत आरती बंदि पांय।
नटैं पीत राग सु बसन्त गाय॥
धरि पीत बसन भरतादि भाय।
शुचि सदा जो हारहिं मुदित आय॥
रचि माली मालिनि डालि पीत।
ल्याए जनु पठयो मदन मीत॥
बंदी जन बालक बृन्द वृन्द।
ऋतु पीत सु बरनन पढ़हिं छन्द॥
गुनि समय सु आयसु सबहिं दीन।
सिय पिय लगे खेलन प्रीति लीन॥
सुर निरखि सुमन बरषत अनन्त।
रसरंगमणी जय जय भनन्त॥

आज सिया पिया खेलत होरी।
श्यामल कौशल लाल रसीले जनक लाड़िली गोरी॥
पगे प्रीति रस रीति बिराजत सखी सखा दुहुं ओरी।
मारहिं मूठि गुलाल गेंद सुम पिचकन केसर घोरी॥
गावत गीत गारिदै दोउ दल युगल हंसत मुख मोरी।
बरजोरी करि रघुनन्दन को गहि लिए राज किसोरी॥
कहि जय जय अलि गंठ जोरी दोउ पधराए यक ठोरी।
निरखि राम रसरंगमणी मुख शशि भई आंखि चकोरी॥

होरी खेलिए रघुराई सिया स्वामिनि सुखदाई।
राज किशोर जोर जनि कीजै दीजै मुद मधुराई॥
हरषित हिय हिय हरन हारिए पीजिए प्रीति अघाई रसिक रसनद उमगाई॥
लाल कपोल गुलाल मलाइय चुंबन दै मुसक्याई।
अंजन नयन निरंजन नेही मन रंजन अंबाई कंज खंजन लजवाई॥
नव नागर नाचिए नई गति प्यारी के गुनगाई।
सिया संग रसरंगमणी प्रभु बैठि बदन दिखराई हमें आनंद बढ़ाई॥

किए सिय राम शृंगार फुलनमई।
फूल बंगला तरे लसत युग सुख भरे फूलि हिय हंसत अनुराग दृग उमगई।
फूल आभरन पट फूलचन्द्रिका मुकुट फूल गुहीं अलक लट ललित मुख छवि छई।
फूल को गुच्छ सिय फूल धनुबान पिय लिए लखि जियत दोउ द्रुहन की द्रुनि नई॥
फूलि रहिं कुंज कल चलत सुभगंधि जल रचित युगत फूल सु फुहार भई सितलई।
बरदि सुर फूल उर हरखि रसरंगमणी निरखि सियराम छवि करत दृग सुफलई॥

बसो मेरे नयनन में सियराम।
गोरी जनककिशोरी श्यामा रघुबर सुन्दर श्याम॥
नखशिख भूषन बसन संवारे छवि कोटिन रति काम।
लखन छत्र युग चंवर भरत रिपु दवन दाहिने वाम॥
हनुमत बीजत व्यजन लसत सब परिकर ललित ललाम।
कमल नयन बिहंसत दंपति रसरंगमणी मुद धाम॥

राजत सिय रघुराज आज री।
सिंहासन पर गौर श्याम तन निमिकुल रघुकुल सीस ताजरी॥
चंवर लिये दुहं ओर भरत रिपु दमन लषन धरे छत्र छाजरी।
हनुमत व्यजन करत कर अंग छड़ी गहे रह्यो सुजस गाजरी॥
धनुसर असि चर्मादि विभीषन सुग्रीवादिक करन भ्राजरी।
जय जय जस रसरंगमणी कहि करत सुमन झरि सुरम माजरी॥

राजत राम सिय रस मीन।
युगल सिरन किरीट कुंडल मकर सुखमा पीन॥
सखि झपाकृत कल कपोलन चित्ररचना कीन।
चपल दृगन समेत देखे प्रगट द्वादश मीन॥
बनी एकहिं वेषकी वलि आज सु छवि नवीन।
लखत परिकर प्रेम पगि रसराममणि सुख लीन॥

श्री रामशत बन्दना

श्री सीताराम शरण राम रसरंग मणि

श्रृंगार स्वरूप श्री सीताराम के वर दुलहिन वेश की बार बार मधुर भावमयी वंदना। दोहे रस में शराबोर है। अन्त में पांच सवैये कवित्त हैं जो 'लालसा' परक हैं और उद्धव के 'आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां' तथा रसखान के 'जो पशु हों तो' की याद दिलाते हैं।

बन्दौं दूलह वेष दुति सिय दुलहिनि युत राम।
गौरि श्याम रसरंगमणि जन-मन पूरण काम॥

बन्दौं बर दुलहिनि सकल आए अवध दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं सुख रसरंग अपार॥

बन्दौं सिंहासन लसे दुलहिनि दूलह चारि।
पूजहिं अम्ब कदम्ब लखि रसरंगहु बलिहारि॥

बन्दौं सीताकान्त सुख रस श्रृंगार स्वरूप।
रसिकराज रस रंगमणि सखा सुबंधु अनूप॥

बन्दौं भरताग्रज मधुर प्रेम सख्य रस रूप।
कृपा सिन्धु रसरंगमणि बंधु अखिल रस भूप॥

बन्दौं सीताराम प्रभु सुख रस रंग प्रदानि।
गिरा अर्थ जल बीचि सम भिन्न अभिन्न सुमानि॥

बन्दौं दशरथनन्द शुभ गुण मन्दिर रस रंग।
सिय हिय चन्दन चन्द मुख सुन्दर अमित अनंग॥

बन्दौं पितु आज्ञा निरत लखन राम सिय संग।
अवध राज तजि बन गवन करन हरषि रस रंग॥

बन्दौं सखा निषाद के नव नेही रघुराय।
तेहिं भेटे रस रंगमणि प्राण सरिस हिय लाय॥

बन्दौं अवध बिहारि प्रभु सियबिहारि सुख धाम।
हिय बिहारि रस रंगमणि मुनि मनहारी राम॥

बन्दौं रघुपति राजपति रसपति पति-रस रंग।
गतिपति पति पति जगतपति रतिपति शत सम अंग॥

बन्दौं श्री रघुवीर बर दयादान कर बीर।
धर्मवीर रसरंग मणि युद्धवीर मतिधीर॥

बन्दौं राघव राम रस रूप राशि रस रंग।
रघुनन्दन राजीव दृग राज सुता सिय संग।।
बन्दौं भक्ति सुभक्त जन भक्त प्राण प्रिय राम।
संप्रदाय शरणागती तिलक तुलसिका दाम।।

हे विधि जौ करिए खग वृक्ष मृगादि तौ औध विपीन मझार को।
ह्वै जल जंतु जिऔं पै पिऔं बरवारि सुखी सरजू सरि धार को।।
वाहन श्वान बनाइय जो तो सवारी सिकारी श्री राजकुमार को।
जो नर तो रस रंगमणी करु प्यार सखा रघुनन्दन यार को।।

अंत्यज तो अवधेश को खास सफा करों भोर दुआर अगार को।
सूद्र तो सार करों सिय पीय को वैश्य बनों पुर औध बजार को।।
जो द्विज तो रबिवंश गुरू कुल ह्वै पढ़ों राम विवाह सुचार को।
छत्रि तो श्री रघुवंशहिं में रसरंगमणी सखा राघव यार को।।

राम सखा रसरंगमणी अलि है सिय के पद पंकज प्यार को।
है लघु बंधु सु लच्छन लाल को तें नित लालत देत पुलार को।।
है रिपुशाल को बाल सहोदर भाइ सबै भरतादि कुमार को।
श्री अवधेश औ अम्बन को अति छोट सुढोट है गोद खेलार को।।

पांयन को पेखि पुनि नखखन परेखि युग जंघा जानु जोहि लाग्यो लंक ललचाय कै।
नाभी में नहाय आयो उर में उरायन सों भेंटि भुजदंड गह्यो ग्रीवा गुणगाय कै।।
चाहिकै चिवुक को निवुकि रसरंगमणी, वदन विलोकि भयो विवस वनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगों जुलुफ जंजीरन में जाय कै।।

पद कंज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर में कसिगो।
ऊरु अवलोकि कटि किंकिनी सु-पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासरा धसिगो।।
कढ़िकै उदर उर वाहु रसरंगमणी भेंटि ग्रीवा भूषन चिवुक विन्दु वसिगो।
गचतै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हांसि फांसि फंसिगो।।

श्री राम रस रंग बिलास

अयोध्यानिवासी श्री सीतारामशरण रामरस रंगमणि जी का "रामरसरंगविलास" सिद्धान्त, साधना और साहित्य की दृष्टि से एक अनमोल मणि है। हितचिंतक प्रेस रामघाट बनारस सिटी से आषाढ़ संवत १९६७ में छपा। आरंभ में मंगलाचरण, इष्ट वंदना, गुरुवंदना के १२ श्लोक हैं और उसके बाद आठ कवित्तों में आचार्य की वंदना है। इसके अनन्तर श्री रामनाम का यश, श्रीराम का रूपरस, श्री राम की कृपाभिलाषा, श्री रामायण की कथा (सार रूप में, अतिशय

संक्षिप्त), श्री राम के प्रति अनन्यता, श्री राम का माधुर्य, पुनः नाम प्रभाव, श्री राम का नखशिख वर्णन, श्री सीता जी का गुण प्रभाव वर्णन, आदि विषय इस ग्रंथ में कुल १८५ कवित्तों में वर्णित हैं। भाषा बहुत साफ, सरल एवं मार्जित है। सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्त्व का है।

उदाहरण—

लोचन लाल के लोभी अली ललि कंज विलोचन श्यामल फूले।
आनन श्री रघुनन्द कौ चन्द सिया चख चारु चकोरक भूले।।
जानकि जानकि जानकि जान पियारी के प्रीतम प्रान समूले।
यों रसरंगमणी के हिया सेजिया बसिया रसिया सम तूले।।

श्री राम का ध्यान वर्णन

पांयन को पेखि पुनि नखन परेखि युग जंघा जानु जोहि लाग्यो लंक ललचाय कै।
नाभी में नहाय आयो उरमें उरायन सों भेंटि भुजदंड गह्यो ग्रीवा गुणगाय कै।।
चाहिकै चिवुक को निवुकि रसरंगमणी वदन विलोकि भयो विवस बनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगो जुल्फ जंजीरन में जाय कै।।

पद कंज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर में कसिगो।
उरु अवलोकि कटि किंकिनी सु पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासर धसिगो।।
कढ़िकै उदर उर बाहु रसरंगमणी भेंटि ग्रीवा भूषन चिवुक निन्दु वसिगो।
चितै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हांसी फांसी फसिगो।।

श्री सीता जी का ध्यान वर्णन

आनन श्री शशि कोटिन की सुखमा सुखसार सिंगार सनी है।
श्री फल चंपक बंधुक कुन्द से अंगन बाग बहार बनी हैं।।
कंज सुखंजन गंजन नैन रमा रति जाके छटा कि कनी हैं।
राम धना धन प्रान समा सियजू रसरंगमणी कि धनी हैं।।

श्री सीताजी का प्रभाव वर्णन

करुणा बसीली भक्त जीव की उसीली,
भव दुख की नसीली वेद विविद जसीली हैं।
वदन शशीली शोभा सदन लसीली,
रंस रंग शुमशीली मति प्रीति दरशीली हैं।।
मन्द विहसीली मंजु गौरवगंसीली,
पिय हिय हुलसीली राम रसकी रसीली हैं।

दिव्य गुणशीली नव्य नेह की कसीली,
भव्य सुख पर सीली सिय स्वामिनी सुशीली हैं ।।

प्रणत उधारणी हैं बिगरी सुधारणी हैं,
दिव्य गुण कारणी हैं टारनी कलेसकी ।
औगुन बिसारणी हैं भक्त काज सारणी हैं,
सुख को पसारणी हैं प्यारनी परेश की ।।
महल विहारनी हैं सोरहौ सिंगारनी हैं,
राम मनहारनी हैं धारणी रसेश की ।
रसरंग तारनी कृपा की कोर ढारनी है,
विरुद प्रचारनी है मिया जू हमेश की ।।

प्यारी नैन प्यारे बसै प्यारे नैन प्यारी बसें,
उभै नैन चोरिबे को उभै नैन चोर हैं ।
मुख मिथिलेश जा को मधुर मयंक मोहे,
अवध किशोर चारु चतुर चकोर हैं ।।
राम घनश्याम मंजु बैन मोद दैन धुनि,
सुनि स्वामिनी को मन नाचै मत्तमोर हैं ।
शोभा मकरन्द रसरंगमणी मृग फूले,
युगल लहि नेह भानु मोर हैं ।।

कनक भवन में प्रिया प्रीतम की झाँकी

सेत अंगराग लाए रामलाल बसें गौर गोरी,
श्री किशोरी जोरी एक ही प्रभा की है ।
सीस ताज चन्द्रिकादि भूषन बिराजें लाजें,
अंग लखि शोभा काम रति औ रमा की है ।।
आनन पै अमित हजार चन्द्र बलिहार,
नैन निहार मार-मारनि मना की है ।
छाकी रसरंगमणी सुखमा सिंगारता की,
कनक भवन प्रिया प्रीतम की झांकी है ।।

राम झाँकी विलास

श्री राम रसरंगमणि जी के इस छोटे-से ग्रंथ में भगवान श्री राम के शैशव से लेकर सिंहासनासीन होने तक के समस्त रूपों की झाँकियाँ हैं जो दर्शनीय है। काव्य का सौष्ठव और

भावों की सुकुमारता इन झाँकियों को और भी मधुर बना देती है। यह ग्रंथ सं० १९६६ वि० के ज्येष्ठ शु० पंचमी को पूरा हुआ था जैसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है।

श्याम अंग बसन सुरंग सोहैं संग बंधु नाचत तुरंग चाल चलत चलांकी है।
कंकन करन रसरंगमणी माल उर भाल में तिलक मंजु मौर शिर ढाँकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हँसनि आनन्द भरी नैन अरविन्द छबि फन्द मनसा की है।
झांकी जेहि झांकी यह वांकी रही ताकी कहा राम दुलहा की बर बांकी बनी झांकी है॥

वारिद बरन वपु विज्जु सो वसन बन्यो बाण बाणासनवंत बाहु बीरता की हैं।
विविध विभूपन बिशाल बनमाल बनी बाम में बिराजती त्यों बेटी बसुधा की हैं॥
विधु सो वदन वर वारिज बिलोचन हैं विहसनि बड़ी बाधा बिदरनि बांकी है।
बसैं रसरंग के वनज वुधि बोध बीच विश्व बीर रामकी विमल बांकी झांकी है॥

सीता तड़िता के तन बसन समान घन घनश्याम तन घट दुति तड़िता की है।
मानो कल नील कंज शील पुंज सिया नैन लाल कंजहू ते मंजु आँखैं रसिया की हैं॥
पैखैं रसरंगमणी शोभा दोऊ दोहुँन की मंद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झांकी बुधि कतहूं न झांकी अस राघव सिया की जस बांकी बर झांकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने ललित सुबा हुकल कंठन कसे रहैं।
केलिके उछाह छवि छाके दोऊ दोहुन के लूटत अनन्द लीला लोभित लसे रहैं॥
फेरत बिलोचन बिलोल त्यों विनोद माते राते रसरंगमणि हेरत हँसे रहैं।
आनंद के कंद दोऊ चंद रघुनंद सिय सरस हमारे हिया कमल बसे रहैं॥

सियबर केलि पदावली

श्री ज्ञानाअलि सहचरिजी

सियबर केलि पदावली

रसिकोपासकों का यह परम प्रिय ग्रंथ भगवान रामचन्द्र और भगवती जानकी महारानी के परस्पर अरसपरस, आमोद-प्रमोद तथा लीलाविलास और प्रणय विहार का एक उत्कृष्ट आकर ग्रंथ है। इस शाखा के उपासकों में इसका विशिष्ट आदर है। ज्ञाना अलिजी ने आरंभ में अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यह आत्म परिचय परम रहस्यमय है और प्रेम में भगवान और भक्त का कितना प्रगाढ़ रसमय अपनत्व हो सकता है उसका बहुत ही भव्य निदर्शन है। तदनन्तर राम जन्म की वधाई और जानकी जन्म की वधाई के पद हैं। इसके पश्चात् 'लगन' की बड़ी ही मार्मिक व्याख्या है। यह व्याख्या साहित्यिक दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद बारहमासा और षट् ऋतु में युगल सरकार के अरस परस, झूलन, नृत्य, वन विहार, जल विहार, होली के पद हैं। प्राकृतिक छटा की पृष्ठ भूमि में इन नानाविध लीलाओं का जो स्वरूप ज्ञाना अलि ने प्रस्तुत किया

है वह साहित्य और साधना दोनों ही दृष्टियों से सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार इस ग्रंथ में ४०८ पद हैं। अन्त में अष्टयाम सेवा कुंज द्वादश विलास पदावली है जिसमें इस उपासना का तत्त्व बहुत संक्षेप में, सार रूप में वर्णित है। यह ग्रंथ इस उपासना के लोगों में परम आदरणीय है और साहित्यिक दृष्टि से भी अन्यतम है, इसलिए इसका विशेष परिचय उदाहरणों द्वारा देने की चेष्टा हो रही है।

यह ग्रंथ मुंशी नवलकिशोर के छापाखाने में सन् १९१४ ईसवी में छपा। स्वयं लेखक ने ग्रंथ के अंत में लिखा है—

अगहन सुदी सुदूर तिथि शनिबासर सुख मूल।
पवन सुवन दिन जन्म कर जानि समय मनु कूल।।
सियवर केलि पदावली ग्रंथ समापित कीन।
ज्ञाना अलि श्री अवधपुर भक्ति निछावरि लीन।।

अपनी विनय का परिचय भी अन्त में ज्ञाना अलि सहचरि जी ने कितने भोले शब्दों में दिया है—

रूप माधुरी गुण कथन नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा यह जीवन विश्राम।।
ताते कछु मन मनन करि ज्यों त्यों मन समुझाय।
गाय लाड़ली लाल यश निज मति सरिस्स सोहाय।।
पिंगल काव्य न कोप गति गण अरु अगण न हांस।
यह सेवा फल सिय कृपा निश्चय परम भरोस।।
हे स्वामिनि सिय प्राणप्रिय प्रिय वल्लभा किशोरि।
रघुवर सियवर रूप निधि गुण निधि मय गति तोरि।।

हे जीवन धन लाड़िली
हे नृप लालन मीत।
हे मन भावन भामिनी !
दीजै युग पद प्रीत।।
हे नट नागर नागरी,
छवि आगरि गुण खानि।
हे शरणागत रक्षिका
निज चेरी करि जानि।।
हे शशि बदनी छवि सुधा
अधराधर मृदु बैन।

पिय चकोर चित लुब्ध नित,
पियत माधुरी नैन।।
हे सुखमाकर साँवरे,
श्याम सलोने लाल।
मृगनयनी छबिजाल में।
फँसे रहौं ज्यों माल।।
हे गुण गाहक नेह निधि
जग जीवन विश्राम।
सियारमण सुखमा भवन
बड़ भागी सुखधाम।।
हे रसिकन जीवनजरी
युग युग पूरणचन्द।
घटौ बढ़ौ कबहूँ नहीं
नित्य सच्चिदानन्द।।

आत्म परिचय

चन्द्रकान्ति मम मातुपितु, शत्रूजित नृप जान।
चारुशिला भगिनी बड़ी, ताकी अनुचरि मान।।

ज्ञा कहिये जो गोप्य रस, ना निश्चय जिय जान।
ताकी शरणागत भई, ज्ञाना अली बखान।।

अष्ट सखी सिय मुख्य हैं, तिनमहं ज्ञाना जोय।
ताकी सहचरि द्वितिय बपु, ज्ञाना अली सो होय।।

ज्ञाना ज्ञान न जान कछु, ना निषेध करि दीन।
केवल सियवर शरण गहि, तासों गुनत प्रबीन।।

ज्ञान अखण्ड अनादि अज, जनकलली को पीय।
तासों बरी निशंक ह्वै, ज्ञाना सहचरि सीय।।

अज अखंड श्री रामवर, मूरति विश्व निवास।
तासों बरि गुरु कृपाकरि, ज्ञाना ज्ञान प्रकास।।

श्री मिथिला नैहर समुझि, सासुर अवधहि जानि।
दोउ घर सुखद सुसर्बदा, रहिहौं जहं मनमानि।।

राम जन्म की बधाई

बारे के श्याम सनेहिया सुनिये नृपलाल।
सूरति प्यासी अंखिया अति विरह बिहाल॥
मिठि मिठि बतियां प्यारी चितवनि छबि जाल।
ज्ञाना अलि विहंसनि तेरी निशिदिन हियशाल॥
चतुर चूड़ामणि प्यारो नृपराज दुलारो।
वोलै मधुर रस वतियां यौवन मतवारो॥
चितवनि शर विषसानी जानी हो गुमानि।
ज्ञाना अलि पिय मन वसिया रसिया चितचोर॥
रसियाने कैसी कीन्ही वावरि करि दीन्हि।
इकतौ मैं वारी भोरी दूजे वय थोरि॥
जुलमी जगत उजियारो कारो नृपबारो।
ज्ञाना अलि पिय छवि प्यासी मियचरण उपासी॥

श्री जानकी जन्म की बधाई

तित नई नइ आनंद बधाई।
बड़े भाग नृप भवन भले दिन सुता भई सुख दाई॥
निमि कुल सुधा समुद्र रमासी प्रगट भई सुखमा गुणा रासी।
असुरन मारि सुरन की जीवन विश्व विशद यशछाई।
जीवन जरी जगत की स्वामिनि अंग अंग छवि द्युति बहु दामिनि॥
उमा रमारति देखि लली छवि तनमन धन बलिजाई॥
सुन्दरि सब गुणखानि सलोनी ऐसी कहूं भई नहिं होनी।
नवपट चारि अठारह चौदह ज्ञाना अलि यशगाई।

सखी री आजु भई मन भाई।
सब गुण खानि सलोनी सुन्दरि बेटि सुनैना जाई॥
बहुत दिनन नृप शिव धनु पूज्यो सो फल प्रगट देखाई।
पुर प्रमोद केहि भांति सराहौं रानी कोखि जुड़ाई॥
सुनि सखि वचन साजि सव मंगल मणि गण बिपुल लुटाई।
गज गामिनि दामिनि सी दमकत उर प्रमोद अनमाई॥
जाको निगम नेति कहि गावत शंकर हृदय चोराई।
ज्ञाना अलि तेहि प्रगट देखियत निमिकुल सुयश वढ़ाई॥

लगन

लगन लागि मोरी तोरी बारे के मनेहिया श्याम।
लाज गई गृह काज न भावै सुधि बुधि भइ मोरी॥

सोई जानै जाके लगी, विना लगे क्या होय।
लगन विना पिय नहिं मिलै, कोटि करै जो कोय॥

लगन हमारे श्याम सों, जाको लागी होय।
ज्ञाना अलि सोई सगो, और नहीं जग कोय॥

को जानै पिय पीर तुम्हें विनु नव योवन जोरी॥
लगन करों तो लागि रहौ, तन मन आठौ याम।
लगन में तोरो क्या लगै, केवल सुमिरन राम॥
लगन बिना लाखों यतन, करि पचि मरै अयान।
लगन लगी जाके हिये, सो अति चतुर सयान॥
आशिक भई पिया अपने पर यामे क्या चोरी॥
परि लखै पीतम सोई, सदा जिये सो जीव।
लगन सोई लागी रहै, ज्यों चातक जल पीव॥
प्रीति परीक्षा जानिये, पिय विनु कछु न सोहाय।
पीर सहै पिय पिय कहै, परी परी पछिताय॥
ज्ञानाअलि छवि फन्द परी हौ कसी प्रेम डोरी॥

संवलिया ने ना जानो क्या कीन।
सुधि बुधि सब हरि लीन॥
नेकु चितै चित चोरि मोरि मुख जनु जादू करि दीन।
छलि करि बिवश कीन मन भावन चतुराई में पीन॥
लगन बिना मन नहिं लगै, जप तप कछु न सोहाय।
लगन बिना दृढ़ प्रीति नहिं, ज्ञानाअलि पछिताय॥
विवश भई छवि सरस पिया, लखि जाहि गुणन प्रवीन॥

रसिक शिरोमणि सांवरो, मेरो जीवन प्रान।
चेरी ह्वै तेरी रहौ, यह मेरे मनमान॥
ज्ञानाअलि अवधेश ललन छवि लखि को न होय अधीन॥

संवलिया हो लगन लगी दिन रैन।
जब लागी तब काहु न जानी अब लागी दुख दैन।

भौंह कमान नयन रतनारे मनहूँ मदन शर पैन॥
फिरत विहाल हाल कासौं कहौ विनु देखे नहिं चैन।
ज्ञानाअलि दिशि नेकु चितौ हंसि करि कटाक्ष मृदु सैन॥

सिया बर हो कैसि लगाई प्रीति।
प्रीति लगाय निठुर ह्वै बैठे किन सिखई यह रीति।
कासों कहौ सुनै को मेरी यह तेरी अनरीति।
ज्ञानाअलि ऐसी नहिं चहिये ज्यों बारु की भीति॥

प्रीति की रीति नियारी करु यारी।
प्रीति सराहन योग मीन को बिनु जल मरण विचारी॥
ज्यों चातक स्वाती जल चाहत पियत न सुरसरि बारी।
ज्ञानाअलि सियवर मन भावत जग सब लगत उजारी॥

कहौ सजनी श्याम सुन्दर की बातें।
जासों कटै दिन रातैं॥
जबते गये कुंवर मिथिलाते विरह जरावत गातैं।
कहँ वह हंसनि बिलोकति तिरछनि बोलन चलनि सोहातैं॥
चरवण पान पीक झुकि डारनि मन्द मन्द मुसुकानैं।
घरि पल छिन छिन कल्प सरिस दिन यामिनि मोहिं बिहातैं॥
ज्ञानाअलि कब सो दिन ऐहे सुनिहो अवधते आतैं॥

दृगन भरि श्याम सुरति विनु देखे।
होत न चित में चैन सखी री बीतत पलक कलप के लेखे।
जब आवत भुज अंस धरनि सुधि होत हिये बिच बिरह बिशेखे।
करकत हिये हहरि हारी हौ प्राण रहो अवशेखे॥
सुन्दर मधुर माधुरी मूरति मधुर मनोहर बेखे।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार बिनु दुखी सुखी छवि पेखे॥

हमारी सुधि लीजैं राजिव नैन।
दृग भरि हेरि फेरि अंसन भुज लावो हिये सुख दैन॥
ललकत मन छिन छिन मिलिबे को विनु देखे नहिं चैन।
आरत हरण बेद यश गावत क्यों न सुनौ मम बैन॥
रूप सुधा छवि दृगन पिआवो करि कटाक्ष मृदु सैन।
ज्ञानाअलि पिय बिरह बावरी नहिं सोहात दिन रैन॥

अवध नृप ललन बिना रतिया।
नहिं भावै बतिया जरै नित छतिया।।
पीतम रसिया वे दिल बिच बसियाहो।
हाथ नहिं आवै सदा तरसावे लखै को घतिया।।
ज्ञानाअलि गलियन आवै।
नइ नइ तानै गावै दृगन दरशावै करै रस बतिया।।

दरस रस प्यास पिया तेरी।
रसिक रसखानि सकल सुखदानि अरज मेरी।।
दिल का मेहर वे जाहिर जग उजियारा।
अवध नृप प्यारा प्रेमवश हारा बिहंसि हेरी।।
ज्ञानाअलि माधुरि तेरी सुख सुखमा की ढेरी।
जानि सिय चेरी कञ्जकर फेरी राखु नेरी।।

जानि हो गुमानि मैंने तेरि मुसुकानी।
भौंहें चाप संधानि नयन शर मारत तकि तकि तानी।।
करकत हिय बिच घाव न सूझै कासों कहौ मैं बखानी।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार की घातें सब मनमानी।।

पावस पिय मिलन आश सुनि सुनि घन धुनि अकाश दरशत पिय छवि प्रकाश मन मयूर नाचे री।
दामिनि दमकत न थोर रिमि झिमि बरसत झंकोर कोकिला कलाप मधुर दादुर धुनि भाचे री।।
झिंगुर झुम झनननन पवन चलत सुंमननननन लेत तान तूंतननननन सप्त स्वरन सांचे री।
ज्ञानाअलि चित बिलास पावस ऋतु पिय निवास आये लखि हिय हुलास बिरह जरनि बांचे री।।

ललना नवेलि लाल मनहुँ नवल तरु तमाल आलबाल कनक बेलि चहूँ ओर छाई है।
सुन्दर मुख छवि रसाल चितवत लखि दृग निहाल अनुपम छवि हृदय शाल जीवन धन पाई है।।
प्यारी छवि नवल जाल प्रियतम मन फंसि मराल मुक्तागुन मञ्जुमाल निशि दिन यश गाई है।
ज्ञानाअलि चित चकोर प्रियतम दृग दृगन जोर पीवत छवि रस न थोर क्षण क्षण सरसाई है।।

सखि उमड़ि घुमड़ि डरवावे।
कारे कारे बदरा गरजि गरजि करि प्रियतम छवि दरशावे।।
पिय पिय रटत पपीहा प्यारी दादुर मोर शोर सुनिकै झनन झनन झींगुर झनकारै त्रिविध पवन सरसावे।
अति अंधियारी कारि विजुलि चमक न्यारि घुम घननन घहरावे।।
बरसत बारि सुखकारि मनहारि भारि घन घमण्ड करि छावे।
आवन अषाढ़ सुनि पिय मन भावन को मन अनन्द सुख पावे।।
प्रेम तृण अंकुरन बिन दरशन लगे ज्ञाना अलि अति मन भावै।।

देखो कारे कारे बदरा प्यारे।
मनहुँ पिया घनश्याम मिलन को उमगि चले मतवारे॥
घूमि घूमि महि लूमि झूमि करि घननननन घहरावै।
बड़े बड़े बूंदन बरसै उमड़ि चले नदनारे॥
महि हरियाइ भाइ द्रुमन सुमन शोभा सरयु पुलिन छवि छाई।
घन घोर शोर सुनि मो कुहुँकन लागे नचत महा सुख भारे।
देखि ऋतु पावस सरस सरसानि हिय पिय प्यारी मन भावै।
ज्ञानाअलि कनक अटारि चढ़ि हेरि जब गावत स्वरन मल्हारे॥

अरज मोरि मानिले प्यारी पिय संग ऋतु सुख लीजिये।
अबकी पावस सुख सरसावन मन भावन वश कीजिये॥
नइ नइ तानन गाय रंगभरि अधराधर रस पीजिये।
मुख मयंक छवि सुधा सरोवर चप चकोर सखि लीजिये॥
श्री प्रमोदवन लता निकुञ्जनि प्रियतम रुचि सुख दीजिये।
ज्ञानाअलि मन भावन पिय संग सरस परम सुख भीजिये॥

रसिक भये सिय रूप लखि, रसिया नाम कहाय।
तासों रसिकन के हिये, सिय वर रूप सुहाय॥
यक टक रहत निहारी॥
प्राण के हरैया दोऊ चित्त के चोरैया सजनी छवि दरशैया लखि शोभा न्यारी

प्रिय छवि में प्यारी रंगी, तासों श्यामा नाम।
प्यारी छवि में पिय रंगे, तासों प्रियतम श्याम दोउ रसिक विहारी॥
लखि पिय प्यारि शोभा ज्ञानाअलि मनलोभा जम्यो उर प्रेम गोभा फिरै मतवारी॥

रसिक रस झूलिये झुलना मधुर मधुर हुलना।
डरपत हिय कम्पत तन प्रियतम बयस मधुर तुलना॥
वयस मधुर सुखमा सदन, मदन कोटि छवि अंग।
सुख सागर नागर नवल, नवला नवल उमंग॥
सुन्दरि श्यामा श्याम मनोहर अंग अंग छवि खुलना।
रसिक राज रघुराज सुत, रस लोभी रस खान।
रस गाहक रस वस करन, रसिकन जीवन प्रान॥
ज्ञानाअलि बलिहारि तुम्हारी क्या भूले भुलना॥

सजनी सावन सरस सोहावन।
झूलन आई पिय प्यारे संग सिय प्यारी छवि छावन

नव तरु लता मधुर मृदु कुंजन मधुर मधुर ध्वनि सुनत सोहावन
नतट मयूर कोकिला गावत मन भावन चितचावन ।।
नील पीत धन तड़ित वरन तन मदन कोटि रति छवि सरसावन ।
ज्ञानाअलि वलि वलि झूलन लखि गहि पिय कटिपट दावन ।।

रिमि झिमि बुंदन बरसत बारी ।
बन प्रमोद सरयू तट बिहरत रघुबर सिय सुकुमारी ।।
ज्यों ज्यों भीजत सुरंग पाग पिय त्यों त्यों सिय तन सारी ।
झीने वसन अंग अंग भीने वह सुख सरस बयारी ।
द्युति दमकत दामिनि घन गरजत डरपि अंक पिय धारी ।
ज्ञानाअलि पावस उमंग रसिकियो वश करि मतवारी ।।

रसिक दोउ रहसि रहसि झूलैं ।
सरस ऋतु पावस सुख मूलैं ।।
नवल तरु लता ललित दरसैं ।
उमड़ घन घटा अटा परसैं ।।
बड़े बड़े बूंदन नित बरसैं ।
झुलावे झूलैं सुख सरसैं ।।

अलि चपलावलि अचल ह्वै, पिय प्रियतम घन पाय ।
नित नव सुख बरसन लगी, झूलन गाय बजाय ।।

सुनत पिय प्यारी चित्त फूलैं ।
नवल सिय रसिक लाल झांकी ।।
बिलोकनि अलबेली बांकी ।।
नेकु जेहि ओर विहंसि ताकी ।
सोई बड़भागिनि मति पाकी ।।

श्री सरयू तट निकट ही, सोम श्रवन बट छांह ।
नाह नेह ज्ञानाअली, बढ़त धरे गलबांह ।।
यही सुख प्रियतम अनुकूलैं ।।

सिय रसिक बिहारी झूलैं ।
सावन कुञ्ज सरित सरयू तट वन प्रमोद मुद मूलैं ।
नख सिख सुमन शिंगार सजोरी अवध चन्द्र चन्द्रानन‍ि गोरी निवछावरि रति मदन करोरी तेहि सम एकन तूलैं ।
सिय झूलैं पिय झूमि झुलावैं निरखि निरखि छवि बलि बलि जावैं मन भावैं कटि लचकनि मचनि हरषि हरत हिय शूलैं ।।

जागरि बयस शिरोमणि नारी सिय प्यारी सब राज कुमारी लिये मांज ठाढ़ी चहुँ ओरनि सेवा सुख अनुकूलै।
मृगनयनी कलकोकिल बयनी गजगमनी सब रति मद मदनी ज्ञानाअलि सब निमि कुल छवनी छिन छिन छवि लखि फूलै।।

धीरे झूलौ रसिक रस बरसौ।
तुम घनश्याम सिया द्युति दामिनि अरस परस तन परसौ।
नवला नवल रूप रसप्यासी छवि अमृत दै दृग सुख सरसौ।।
ज्ञानाअलि गरजी अरजी सुनि भुज अंसन धरि नित नव दरसौ।

झूलन झूलै नवल रस रसिया।
श्री नृप नन्दन जनकनन्दनी गौर श्याम मृदु मूरति रसिया।।
तरु तमाल जनु कनक बेलि मिलि भुजवली उरझनि मनवसिया।।
ज्ञानाअलि अभिलाष नई नित कीजिय सिय पिय चरणन वसिया।।

रसिक बिहारी सिय सुकुमारी।
धीरे झुलावो गावो प्यारी को रिझावो लै बलिहारी।।
तुम गुण रूप उजागर नागर नागरि नेह सम्हारी।
सिय मुख चन्द्रचकोर चोरपिय छवि अमृत अधिकारी।।
गोय गोद झूलत रस लम्पट रसिकन हित सुखकारी।
ज्ञानाअलि सहचरि यश गावत जागि सुभाग हमारी।।

झमकि झुकि झूलन झूलैरी।
तन गौर श्याम अभिराम राम रमणी छवि खूलैरी।
सजि बसन विभूषण सुमन माल ललना गण गावत पद रसाल
मुख चन्द्र बिलोकति भइ निहाल दृग कुमुदिनि फूलैरी।।
कमला कल कोकिल बरत गान विमला बीणागति अति प्रवीण
सुभगा जु सप्तस्वर करि अलाप भुज अंसन मूलैरी।।
ज्ञानाअलि दम्पति रस विलास नित कनक भवन कुंजन प्रकास
भाविक जन जानत हिय हुलास नित यहि सुख तूलैरी।।

अनोखी रसिक पिय प्यारी।
झूलन चली संग सुकुमारी।
सुरंग पिय पाग मनहारी।
चन्द्रिका सीय शिर धारी।
छबीली लाड़िली सारी।
श्याम कटि पीत पटवारी।

देव नर नाग नृप वारी।
सवै निमिवंश उजियारी।
झुलावैं झमकि झुकि झारी।
गगन ध्वनि गान रसकारी।
भयो रसरंग अति जारी।
परसपर झूलती नारी।
ज्ञानाअलि निरखि मन भारी।
करौं क्या प्रेमगति न्यारी॥

अबकि सावन सुख सौगुन परसौं पिय प्यारी संग झूलत दरसों।
श्री प्रमोद बनलता निकुंजनि कहि न सिराय माधुरी बरसों॥
सिय दामिनि घनश्याम मनोहर नवल उमंग अंग भुज परसो।
नवला नवल झुलावैं गावैं मधुर मधुर ध्वनि सातो स्वर सों॥
घन ध्वनि दामिनि दमकि दशौ दिशि पकरि श्याम श्यामा कर करसो।
ज्ञानाअलि पावस सुखमा सुख पिय प्यारी संग निशिदिन सरसों॥

झुलावैं झूलैं झुकि झेली।
झनन झनन झींगुर झनकारे अति कौतुक केली।
उमड़ि घन घुमड़ि घेरि छाये।
ज्ञानाअलि सावन मनभावन नित नव सुख रेली॥

नवल दोउ झमकि झूमि झूले।
नवल हिंडोल कुञ्ज द्रुम फूले श्री सरयू कूले॥
नवल तन भूषण छवि पावैं।
नवल बसन नव नेह परस्पर सखियन सुख मूले॥
नवल नवला वहु संग सोहे।
नखशिख रूप अनूप सोहावन स्वामिनि सम तूले॥
नवल घन चहूँ ओर छाये।
ज्ञानाअलि रस भाव वृष्टि लखि मिटि गइ हिय शूले॥

हिय विच खट कैरि सजनी निशि दिन पिय की बात।
सावन आवन ह्वौ मन भावन सो दिन बीते जात॥
झुलिहौ झूमि झमकि झुकि पिय संग परसि मनोहर गात।
ज्ञानाअलि अभिलाष मिलन की आइ मिले मुसुकात॥

रसिया ना मानै सजनी झूलत मन न अघाय।
सोवत सजनी अपने भवनवां औचक मोहिं जगाय॥

गावनवां ऐलोरे झूलनवां झुलिहौं सजनवां।
सावन ऐलोरे छवि दरशैलो सजनी रिमि झिमि बुन्द बरसै लोरे।
ज्ञानाअलि मुद सरसैलो जिय की जरनि बुझैलो मन भावन सुख मैलो रे।

झुलनवां दीजै थोर धीरे झूलौ झुलनवां।
सिय सुकुमारी वे जनक दुलारी प्यारी तुम रघुबंश किशोर।
अधर सुधा रस पीजै पिय प्यारी मुख दीजै लीजै गरवा लगाय पिय झुलनवां मेटै मोर।।
ज्ञानाअलि झूलि झुलावै बहु सदिखन्त्र बजावै कोउ सखि तान सुनावै घन ध्वनि दामिनि शोर।।

आजु रसकेलि मचावोंगी।
इन पिय प्यारे को रस बस करि हिय तपनि बुझावोंगी।
करि नव सप्त शिगार मनोहर अंग अंग भूषण सजिकै
गान बजाय लगाय लाल उर संग मचावोंगी।
तनुं तनुं तुम तुम तननननन छुम छुम छुम छुम छुमछननननन
तदियन दिरना तुम तन दिरना गति दरशावोंगी।
सुनि सिय बानी सखिन सोहानी हिय हरषानी मन ललचानी।
ज्ञानाअलि यश गाय गाय सिय पिय मन भावोंगी।

नटत नटवर नटि नागरिया।
संग सोहै अनोखी नवल बाल गुण गुण रूप उजागरिया।
लखि शरद रैनि छवि छाय रही प्रियतम प्यारी गलबांह गही।
मुख निरखि निरखि हिय हरखि हरखि नृत्यत सखि सागरिया।
मुख मयंक रस पान करै मुसुकान परस्पर प्रान हरै।
जब उघटत संगीत गीत भई रस बस बावरिया।
क्षण क्षण नई नई गति लावे दोउ मिलि गावें स्वरन मिलावै।
ज्ञानाअलि गुण गावें मन भावें पिय प्यारी छवि आगरिया।।

खंजन दृगन लेत मन मयनन।
सुख सागर नागर छवि आगर प्रेम विवश कहि कहि मृदु बयनन।
पिय वल्लभा प्राणधन जीवन जा बिनु निशिदिन क्षण पल चयनन।
त्यों चकोर चित चोर वदन शशि पियत सुधा छवि रस भरि नयनन।
जग जीवन जानकी रमण छवि कवि कोविद गावत मति पयनन।
ज्ञानाअलि दोउ छके रूप रस सुख सुखमा अंग अंग भरि पयनन।।

रसकेलि कलोल अमोल लोल दोउ कनक अजिर नृत्यत रसिया।
अवधेश लल्न मिथिलेश लली छवि छैल छबीली मन बसिया।।

सम वयस किशोरी सहचरिया दमकै तन दामिनि द्युति लसिया।
गति गान तान लै सप्त स्वरन उघटत संगीत नइ नइ गंसिया॥
अनुपम मयंक युग मध्य चहूँ दिशि छवि ललना उडूगण दसिया।
ज्ञानाअलि देखत सुख समाज अस को न फंसै यहि रस फंसिया॥

जगजीवन जानकि जान शरद सुखदानी।
विहरत अशोक वन संग सीय वरदानी।
ज्यों कञ्चनलता तमाल तरुन तरु जानी।
अंसन भुज लपटी वेलि सदा अरुझानी॥
शिर क्रीट चन्द्रिका धरनि मन्द मुसुकानी।
नखशिख भूषण वर बसन निरखि मनमानी।
सुखमा समुद्र सरि उमंगि वही रसखानी।
ज्ञानाअलि पीवत नित तृपा नहिं भानी॥

नृत्यतर सकेलि निधान सखिन संग नीके।
धन जीवन प्राण अधार रसिक जन जी के॥
श्रुति कुण्डल करत कलोल कपोलन पीके।
लखि मुकुट लटक शिर क्रीट अलिन मन बीके॥
अलकावलि अलिमुख कुञ्ज रसिक रस हीके।
रसमत्त भौंह धनु नैन पैन शर ठीके॥
कटि पीताम्बर की कसनि हंसनि संगती के।
लखि लगत कोटि नट नटनि मन्दगति फीके॥
अस नटवर वेष बनाय हरत मन सीके।
ज्ञानाअलि ऐसी कौन करति त्रय लीके॥

नित नइ नइ केलि कलोल लोल दोउ बन प्रमोद डोले।
रस लम्पट सुखमा सोहन छवि सोहन मन मोहन प्यारी पियगोह मृदु हंसि हंसि बोलै।
चटक चांदनी छटा न थोरी पियमुख शशि सिय रसिक चकोरी अंसन भुजतोलै।
नव सनेह सुख रस की वनिया हाव भाव दृग फेरनि गतिया रसदंतिया खोलै।
ज्ञानाअलि सिय पिय रसिक विहारी विहरत शरद रैनि उजियारी सखियन मन मोलै॥

आजु रस रास तैयारी। सुदिन संग सीय सुकुमारी।
मंगल भरि कनक करधारी। कलश कल सुरभिवरवारी।
साजि नव सप्त मनहारी। नवल तन लाल की प्यारी॥
सबै निसिवंश उजियारी। सलोनी सुमुखि छवि भारी॥
यन्त्र तन्त्रादि करतारी। सप्त स्वर सहित लयधारी॥

मूर्छना मुरनि हंसिनारी। निरखि सखि सबै मतवारी॥
ज्ञानाअलि सौज सजि सारी। पिया हित मिलन चलि झारी॥

रसिक रस खानी अब हम जानी।
चितवत ही चित्त चोरि भोरि करि मन मृग गति मद भानी।
मुख सुखमा छवि मदन सोहावन बोलत अमृत बानी।
करि मन मधुप अधर रस पीजै यह मेरे मन मानी।
हास विलास रास मण्डल को सुनि मन मुदित जुड़ानी।
ज्ञानाअलि तजि लोक लाज गृह सियवर हाथ बिकानी॥

शरद सुखदानी मेरो छैल गुमानी।
नटवर वेष धर्यौ प्यारी संग सकल गुणन की खानी॥
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति सिय सुन्दरि पटरानी।
चितवनि हरनि मरनि तन मन धन नहिं राखत कुलकानी॥
उपमा रहित सरस सुखमा छवि देखत मति बौरानी।
बाणी मौन थकित कवि कोविद रूप सुधा मति सानी॥
जुलमी जबर जगत यश जाहिर तिहुँ पुर नाम निशानी।
ज्ञानाअलि जेहि ओर चितै हंसि सो यहि रस लपटानी॥

आयो वसन्त सोहागिनि के हित जाको सोहाग तिहूँ पुर छायो।
और है कौन कहौ जग में जेहि को यश बेद पुराणन गायो॥
सीय सहेलि नवेलि सबै अलबेलि भरी गुण रूप सोहायो।
और कि काहु चली सजनी जिन राजकुमारहि नाच नचायो॥
जाकी कटाक्ष बिलास अनोखि पिया चित चोर को चित्त चोरायो।
ज्ञानाअलि मन भावन को गहि आजु सियाजु को भेंट करायो॥

खेलै वसन्त सिया जु पिया संग अंग उमंग महा सुकुमारी।
कोटिन राजकुमार कुमारि दुहूं दिशि भीर भई अति भारी।
केशरि रंग अबीर कुमकुमा धुंधि गुलाल छई अंधियारी।
एक सो एक महा रगरी पिचकारिन मारें प्रचारि प्रचारी।
रंग तरंगिनि भावत रंग दुहुँ दल कूल समूल उखारी।
लाज भगी भयमानि अभागिनि गावहिं गीत रसीली गारी।
भीजि गये पिय के पट पीत सिया जु कि भीजि गई तन सारी।
ज्ञानाअलि सुख सिन्धु परी नहिं सूझ कछू चहुँ ओर निहारी॥

नवल दोउ खेलत फाग अरे।
रघुनन्दन श्री जनक नन्दनी अंसन बांह धरे।
मन सों मन दृग दृगन लरावत कर सों कर पकरे।
अबिर उड़ावत दोउ मिलि गावत गति स्वर एक करे।
उर लपटावत कर छुटकावत पिय सिय फन्द परे।
ज्ञानाअलि यह युगल माधुरी यकटक ते न टरे।।

प्यारी प्रियतम दृग अलसाने।
उनिदे मनहुँ मांझ सरसीरुह रतनारे मदसाने।
क्षण मूंदत क्षण खोलत नैना सखियन रुचि पहिचाने।
सुमन सेज मण्डप सुभनन रचि लखि सिय पिय मनमाने।
अंसन भुजधरि बैठि सेज पर मन्द मन्द मुसुकाने।
ज्ञानाअलि लखि यह दम्पति छवि धन जीवन निज जाने।।

लाड़िलि लाल जगे जग जीवन पिय प्यारी दोऊ छवि जाल।
मनहुँ तमाल तरुन तरु के संग लपटी कनक लता सियवाल।।
छूटी केश अलक अरुझानी बिथरि गई मोतिन मणि माल।
अंसन भुज आलस रसमाते मधुर मधुर बोलत हिय शाल।।
अरस परस मुख चन्द बिलोकत कहा बरणौं चितवनि सुख हाल।
ज्ञानाअलि रसिकन जीवन धन अधराधर मधु पियत निहाल।।

पहिरावत पट पीत पिया कटि सियतन गौर श्याम रंग सारी।
अंग अंग भूषण बसन मनोहर सजि कमला बिमलादिक नारी।।
बिछी फरस गद्दी तकिया धरि चौपरि खेलत तन मन वारी।।
भूलि गये दोउ खान पान सुधि याम एक दिन चढ़यौ पनिहारी।
ज्ञानाअली कलेवा कुञ्जहिं चले क्षुधित सखि प्रेम विचारी।।

युगल चन्द छवि दृगन निहारी।
श्यामा श्याम सिंहासन सुन्दर बैठे सुमन कञ्जकर धारी।
श्याम पीत रंग बसन मनोहर गौर श्याम तन जुल्फै कारी।
अरुण कञ्ज दृग बाण भौंह धनु चितवनि जुलुम चलनि मतवारी।
विविध हास कोउ गाय मधुर स्वर बजत जन्त्र मृदु नृत्यत नारी।
डेढ़ याम दिन चढ़यौ कह्यौ अलि रीझि रसिक सिय सजी सवारी।।
चौंसठि आठ सोरहो बत्तिस चारि यूथ सखि न्यारी न्यारी।
चली शिंगार कुञ्ज ज्ञानाअलि युगल नाम जय जयति उचारी।।

आरति सखिन शिंगार सजोरी। पिय प्यारी छवि चन्द चकोरी।।
बैठे सुभग सिंहासन प्रियतम सजल जलद सिय दामिनि कोरी।
बरसत सुधा माधुरी बिहंसनि भरि भरि पियत दृगन पुट गोरी।
विविध स्वाद मेवा मन रोचक लिये खड़ी मणि थार भरोरी।
दाख बदाम छोहारा किस्मिस गरी सरस मिश्री रस बोरी।
पाइ श्याम श्यामा संग शोभित नीकी बनी मनोहर जोरी।
अतर पान दै गाय मधुर स्वर बजहि यन्त्र बहु नृत्य रचोरी।
सुमन माल पहिराय नागरी आरति करि वलि वलि तृण तोरी।
लै आदरस देखावत सहचरि ज्ञानाअलि जय जयति मचोरी।।

प्यारी बीण सुनी पिय कानन।
उठे नवल राजीव विलोचन ज्यों मृग सुनि मृदु तानन।
चले जोहारि सभासद गृह गृह प्रियतम खान प्रियाकर पानन।
करि बरखास सियापुर बनि तन परी चोट घन घोर निशानन।
घतिटका चारि चहूँ युग बीते आइ मिले ज्यों तन प्रिय प्रानन।
बैठे लाल लाड़िली के संग घन दामिनि उपमा मद भानन।
कियो निहाल लाल ललनन मिलि विविध हास कोउ करि दृग सानन।
ज्ञानाअलि दम्पति बिलास रस पियतहि बनै मूक कहि जानन।।

रूप माधुरी , गुणकथन, नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा, यह जीवन विश्राम।।

जानकी नौ रत्न माणिक्य

रामसखे विरचित

समान्य परिचय : आरम्भ में श्री मार्कण्डेय संहिता से हरिहर ब्रह्मादि प्रोक्त श्री जानकी जी की स्तुति प्रार्थना है जिसमें प्रायः 'रघुवरस्यांके सदा संस्थिताम्' श्री जानकी जी का ध्यान है। इसके अनन्तर रामकी दान लीला का वर्णन है। फिर कवितावली है।

डायमण्ड जुबली प्रेस कानपुर से १८९९ में छपी है। कुल ३७ पृष्ठ हैं। 'दान लीला के १२ पद हैं और 'कवितावली' में २५ कवित्त हैं।

विषय : कृष्णलीला के अनुकरण पर दानलीला का वर्णन है तथा कवितावली में 'फटिक सिला' पर राम द्वारा सीता का शृंगार, सरयू तट पर सीतारमण का कुञ्ज विहार, ध्यान के पद, रास विलास, धाम, रूप, लीला और नाम की उपासना का सविशेष हृदयहारी मनोमुग्धकारी वर्णन है।

उदाहरण—

आवत पालि ग्राम तै, नन्दन कुँवरि नवीन।
अवधि लाल दधि दान को, रोकिव रसिक प्रवीन ।।
बन प्रमोद की गैल विच, करिये धनुप निवारि।
रोकन की मम युक्त यह, लहु सब सखा विचारि ।।
करि धनुईयन वारि अब, बैठे सुर तरु की छाह।
राम सखे दीजै दरस, दै सुख की गलिबांह ।।
सुनौ ललन हौ डगर वह, रोकी कैसे आजु।
रघुपति के नर्म सखा, तुम कहियो होइ सुकाज ।।
पानन को रघुनाथ को, दयो नृपति यह देस।
याते सब मग कर लगत पुनि या बिपिन विशेस ।।
तुम दधि लै आई सखी, लगिहै अब कछु दान।
बैठे हैं रघुवंश मणि, करिये जाय सनमान ।।

बिपिन प्रमोद सो बोरि महा ह्वै आवो दही लै बड़ी अलबेली।
मानत ना डर काहू को नेकहू पाई अचानक आजु अकेली ।।
दीजौ हमै करि नेग तुहै भावतो चित्त की चोर हौ रूप नवेली।
बात हमारी सुनौ सब कान दै हौ तुम तौ दय जोग महेली ।।

ग्वालिन जोगन तुम त्रिया, तुम रूप जोग उदार।
हमरी जानि जबात सुनि, को हम करौ विचार ।।

जानत है तस्कारी पतिनी हम आदि अनादि की काहे को खीजिये।
सुन्दर श्री रघुनाथ जू लाड़िले वातिनि की चतुराई न कीजिये ।।
तन धन प्राण सबै आगे पिय चाहिये जो कर में अब लीजिये।
बन प्रमोद की कुन्जन में चलि राम सखे रस भावतो पीजिये ।।

तुम्हरी मृदु मुसक्यानि में, हम तो गई विकाइ।
राम सखे अब विलसिये, बन प्रमोद सुख पाइ ।।

घूम घुमारौ गुलाब को घाघरो पीत चमेली की ओढ़नी झीनी।
कञ्जकी लाल कसै कल कंचुकी नील जुही की संजा पुजु दीनी ।।
चम्पे को हार कनेरि की चन्द्रिका देखि कै चित्त भई रति हीनी ।।
'फटक शिला पै राम सखे पिय फूल सिंगार सिया छवि कीनी ।।

अवध की सहेली अलबेली नवेली आजु ढूंढि ढूंढि ढूंढै फिर तरु तरु पतान मैं।
व्याकुल विरह अंग बूड़ी राम स्याम रंग मातल अनंग सिरमौर बल बतान मैं ।।

सरयू के तीर निरखि बैठे रघुवीर भेटे बन कुटीर कुञ्ज कुसुम छतान मैं।
छूटे गिर बार भार राम गये बार बार हरिहरि पुकारती हरी हरी लतान मैं॥
अवध के बिहारी अवतारी अव तान को राम सखे प्यारो दशरथ कुमार है।
सरयू को बासी निवासी ललित कुञ्जन को काछनी को काछे बनमाली सुकुमार है।
सीता रमण सुख भवन धनुष धारी सखिन मध्य नटवर सिंगार है।
राम को विलासी अविनासी ईश ईसन को कामदा को नाथ सो अनाथ निराधार है।
गो लोक लीला चित्रकूट में बिराजनि सब मध्य जामै प्रमोद बाटिका सुहात है।
विकटाद्रि गोवर्द्धन सरयू नदी आदि उहाकी सुखमा जेती इहाँ झलकात है।
रामसखे सूझत न महा मठ अज्ञन को जिनकी मति नित कुसंगनि में बिकाति है।
नृत्य चरण अंकित भूमि नृत्य राघव जू की मन्दाकिनी तीर तहाँ प्रगट दिखात है॥
मानो विषै कटक काटि पटकि महीतल नृपति बैराग जीति विजै हर्षात है।
नटक मयूर कीर कोकिला रटक गान बेली सो वितान तार धुजा फहरात है।
लटकि लटकि लता प्रतिविम्ब जौ हटकी जल उज्ज्वल लहै धाइसी सुहाति है।
राम सखे घट की स्याम प्रेम चटकी होत देखै फटक शिला भटक मिटि जाति है॥

रामसखे

कृत पदावली

खेमराज श्रीकृष्णदास ने निज वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई में संवत् १९७९ में मुद्रित कर प्रकाशित कराया। इसमें कुल मिलाकर राम सखे जी के १७५ पदों का संग्रह है, कुल पृष्ठ ५२ हैं। इस संग्रह में भगवान् राम और भगवती सीता की रसमयी लीलाओं का बड़ा ही भव्य ध्यान है। भाषा साफ सुथरी है और कहीं-कहीं उर्दू-फारसी के शब्दों की भरमार है। इस शाखा के उपासकों में सूफी प्रभाव स्पष्ट है क्योंकि अनेक स्थलों पर सूफी शब्दावली मिलती है। इतना ही नहीं भाव व्यंजना भी लगभग वैसी ही है। इश्क मजाजी की मांसलता और हकीकी की सूक्ष्मता का एक साथ दर्शन होता है। कुछ पदों में 'पछांही' प्रभाव स्पष्ट है तथा कहीं-कहीं मारवाड़ी मिश्रित पञ्जाबी का भी पुट है। लगता है श्रीराम सखे जी बहुश्रुत और बहुज्ञ थे और देश का पर्यटन भी किया था जिससे उन उन स्थानों के प्रभाव उनकी भाषा पर सहज रूप में परिलक्षित हैं।

भावना की दृष्टि से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि श्री रामसखे जी की सम्बन्ध-भावना सखी भाव की है और बहुत दृढ़ एवं पुष्ट है। राम और सीता के विभिन्न अवसरों के रूप और लीला रस का आस्वादन इनके पदों में खूब छक कर किया जा सकता है।

उदाहरण—

राघव भोरहीं जागे नींद भरी अंखियन मन भावन।
बैठे उठि फूलन शय्या पर कोटिन काम लजावन॥

मृदु मुसक्यात जम्हात सिया तन झुकि झुकी परन सुहावन।
रामसखे या मधुर रूप लख मो जिय अतिहिं जिवावन॥

आली मेरी आँखिन लागि गयौ है।
सुन्दर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दयौ है॥
चलि न सकति डग मगन भूमि पगतन मन विवश भयौ है।
रामसखे उर अवध सांवरो निशिदिन रहत छयौ है॥

नैन में आनि समान्यो मेरे अवध पियारो।
मृदु मुसक्याय छोड़ि जुलफै मुख चेटक सों पढि डारो॥
कहा करौं कित जांउ सखी री चित ते टरत न टारो।
रामसखे घर लगत दुखद अब भयौ मन छवि मतवारो॥

चुनरी रंगना भिजावो मै तोरी लैहों बलैयाँ।
बरज्यो मानि अवधेश लाड़िले बार बार परौं पैयाँ॥
कोमल कर जु मुरकि जैहें देखो जिन पकरो मोरी बहियाँ।
रामसखे पिय जान देहु अब खीझै सासु घर महियाँ॥

अहो पिय राम पकरि सिय लीन्हो कटि पट सखियन छीनो।
होरी समैं रास मण्डल में मन भायो सो कीनो॥
मुख सों ससलि गुलाल मैथिली अखियन अंजन दीनो।
रामसखे लखि अवधलाल प्रभु प्यारी के रंग भीनो॥

प्यारे संग होरी खेलत प्यारी।
बन प्रमोद रास मण्डल में रंग मच्यो अतिभारी॥
डारै सिया गुलाल पिया पर पिय छोड़ै पिचकारी।
रामसखे लखि यह छवि ऊपर प्राणन ते बलिहारी॥

सिय के सपने की पिय बात चलाई।
नेह भरे राम सपन सुनावत सिय निसि दीन्ह दिखाई॥
तोरित तन कर कमल फिरावत सेज निकट चलि आई॥
ओढ़े नील झीन सारी शिर काम घटा जनु छाई॥
लम्बे केश छुटे एंड़िन लौ रस वश लेज जम्हाई॥
बीरी विहंसि दई मो आनन मिलि हिय तपनि बुझाई॥
अति सुकुमारि फूलते कोमल मुख विधु निंदित लुनाई॥
झलक तिलक जावक सी सीज्यौ पान पीक गल जाई॥

कोटि कोटि छवि सिन्धु वारिये जा परत्याई ॥
चम्प कला चपलातें अद्‌भुत नैनन रही समाई ॥
कैसें मिलै प्रसिद्धि प्रिया वह करौ सो जतन बनाई ॥
रामसखे कहि कहि हे मीते सुधि बुधि सब बिसराई ॥

रामा मो पै मोहनी डारी डगभरित लोन जाई ॥
बन प्रमोद की कुञ्ज गलिन में मोतन मृदु मुसक्याई ॥
तलफत नैन रूप मद प्यासे भये जुड़वत मुरझाई ।
रामसखे पिय उघर मिलोगी लोक लाज बिलगाई ॥

दशरथ जू के श्याम सलोने मुखड़ा टुक दिखाउ रे ।
बिन देखे छिन कल न परत है अंखियां रूप पियाउ रे ॥
छाड़ि रोप पिय भेंटि अंक भरि तन की तपनि बुझाउ रे ।
रामसखे मुनि प्राण पियारे जियरा नहिं तरसाउ रे ॥

ये दोउ चन्द बसो उर मेरे ।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी अरुन कमल कर कमलन फेरे ।
चन्द्रवती शिर चमर ढुरावति आसपास ललना गन घेरे ॥
बैठे सघन कुञ्ज सरयू तट चन्द्रकला तन हंस हंस हेरे ।
ललित भुजा दिये अंश परसपर झुक रहे केस कपोलन नेरे ।
रामसखे छवि कहि न परति तब पान पीक मुख झुक झुकि गेरे ॥

मिलि जावो रामा पियारे ।
बन प्रमोद में खड़ी पुकारौं सुनिये रूप उज्यारे ॥
सुंदर श्याम कमल दल लोचन मो आंखिन के तारे ॥
रामसखे जल बिनु मछरी ज्यों तलफत प्राण हमारे ॥

अब दशरथ जू कौ लाल होहली मन मेरो छलि लै गयौ ॥
मृदु मुसक्याइ छकाइ कै हेली अंखियन में छवि छै गयौ ॥
टूट गेंद मिसि कंचुकी हेली अंखियन में छवि छै गयौ ॥
महा सुघर नृप सांवरो करि हेली छल झगर मू ले गयौ ॥
अधर सुधारस सिन्धु में हेली वरवश चित्त डुबै गयौ ॥
मोती युत शुक नासिका हेली अरु जिय चिबुक चुभै गयौ ॥
उलिगन पान खवाइ के हेली चेरी चारु बनै गयौ ॥
पीताम्बर के छोर सों हेली मुख मो हांकि रिझै गयौ ॥

जुलफन प्राण फंदाय कै हेली दृग शर कठिन गडै गयौ।।
उर नख छत धनु छाइ ज्यों हेली निज अपनी यश कै गयौ।।
तब तें कछु भावत नहिं हेली विरह विथा तनु कै गयौ।।
विकल करी रिपु समर ने हेली हरद वदन वपु ह्वै गयौ।।
अवध कुँवर की माधुरी हेली कौन देख रसि रै गयौ।।
कल न परत छिन बिनु मिलै हेली पलक पलक कल्प वितै गयौ।।
वरिहों अवध पिय उधर कै हेली कुल डर सकल भगै गयौ।।
रामसखे हिय माँह री हेली लगन बीज हठ बै गयौ।।

फटिक शिला मंदाकिनि तीरं। विहरत दम्पति रघुपति गीरं।
विरचित पुष्पं सुभग समीरं। गुंजत मधुप निकर मधु भीरं।
नील वारिधर सुखद शरीरं। कुसुम समूह विविध मणि गीरं।
जनक सुता छवि निधि गंभीरं। तड़ित वरण राजित सुख सीरं।
सुमन विभूषण पद मंजीरं। चन्द्रकला सखि गान सुधीरं।
निवसत माल कुञ्ज तट नीरं। लता वितान ग्रथित घन थीरं।
सहचरि जटित रतन मणि हीरं। गावन नटत हरत मन पीरं।
सुमन पराग गुलाल अवीरं। नृत्य मयूर नाद पिक कीरं।
निवसत षट पद कंज निधि छीरं। विलसत ऋतु पति विरह अधीरं।
जनु रति पति धरि तनु रणधीरं। विश्व विजय हित कसि तूणीरं।
यह छवि घन करि गोप्य अनीरं। रामसखे मन परम कुटीरं।

मिल जेंवत पीतम संग सिया दोउ मंगल मोद बढ़ावे हो।
कौर परसपर देत चन्द्र मुख मन्द मन्द मुसक्यावे हो।
भोजन विविध परोसत विमला कमला विजन डुलावे हो।।
शोभा सिन्धु कही न परै कछु माधुरि कुञ्ज सुहावे हो।।
चन्द्रकला सखि झारि लिये कर सरयू जल अंचवावै हो।
रामसखे प्रभु थोर प्रसाद रह्यौ अवशेष सुपावै हो।।

अचमन करत राम पिय प्यारी।
श्यामा पान लिये कर ठाढ़ी रामा लिये जल झारी।
चन्द्रवती खर्का दर्पण लिये चन्द्रकला सुकुमारी।
सुभगा लिये वागौ पीतम कौ सहचरि लिये सिय सारी।
करि अचमन बैठे सुख आसन सकल जनन सुखकारी।।
रामसखे वलि बल दम्पति छवि सुन्दर बदन निहारी।।

नृत्य राघव मिलन

श्रीराम सखेजी

नृत्य राघव मिलन दोहे, चौपाई, कवित्त में संवत् १८०४ चैत्र शुक्ल तृतीया को लिखा गया जैसा ग्रन्थ के अन्त में स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है—

संवत् अष्टादश चतुर शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन उद्भव सब रस बीज ।।

इसमें कुल मिलाकर १५० दोहे और १४६ चौपाई तथा २० कवित्त हैं। इसके दो संस्करण प्राप्त हैं। प्रथम संस्करण की द्वितीयावृत्ति लखनऊ के मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में दिसम्बर सन् १८९६ में हुई और एक और संस्करण बम्बई के छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने अप्रैल १८९७ में लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में छपवाकर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में लीला रस की अपेक्षा सिद्धान्त सम्बन्धी मुख्य तत्वों का सन्निवेश ही विशेष रूप से हुआ है। इसमें भक्ति का स्वरूप, शरणागत धर्म, नाम, रूप, गुण, प्रभाव, धाम, परत्व, अवध, प्रमोदवन, माधुर्य लीला, रामावरण, अवधावरण, जीव-ईश्वर सम्बन्ध निरूपण, नर्म सखाओं के रहस्य, रसिक साधकों के लक्षण, रसिकों की अनन्य रीति आदि गम्भीर विषयों का वर्णन बड़ी ही सरल, सरस एवं सजीली भाषा में मिलता है।

कुल मिलाकर यह ग्रन्थ राम रसिकोपासना के सिद्धान्त ग्रन्थों में ही मुख्य रूप से लिया जा सकता है। इतस्ततः लीला के और रूप लालसा मिलनमाधुरी, युगल नृत्य तथा सखाओं सखियों द्वारा शृंगार विधान के पद भी मिलते हैं परन्तु हैं बहुत कम। विशेषतः दिव्य प्रमोद वन, दिव्य अवध, के आवरणों का वर्णन है। भाषा बड़ी ही सरल निरलंकार और साफ है। अर्थ और भाव तक पहुँचने में पाठक को कहीं कठिनाई नहीं होती।

उदाहरण :

प्रात समय सिया लाल पुष्प रचित शय्या पे जागे रंग महल में उनींदे अलसात है।
लट पटे पाग पेंच अटपटे बैन मृदु उज्ज्वल रस भाव भरे मृदु मुसक्यात है।।
भूषन वसन शिथिल मरगजी माल धरे उरझे उरहार कच बिथुरे सुहात है।
ढीले अंग आलिगण दिये भुजा अंशन औ मदन मद छाके नैन झूमत जम्हात है।।

तामधि एक सिंहासन सोहै।
रचित विविध मणि अति मन मोहै।
तापर महा पद्म इक राजै।
दल महस्र मोतिन मय भ्राजै।
तापर राजत सिया रघुनन्दन।
अतसि पुष्प चम्पक मद गंजन।

सिया करै सोरह शृंगारा। चोरन चित अवधेश कुमारा।
मांग सिन्दूर तेल रचि वेनी। चन्दन खौरि महा सुख देनी।।
पान खाति बोलति मृदु बैना। दमकत दशन हरत प्रभु बैना।।
भूषण जे हिमि रतन जड़ाये। चन्द्रिकादि अंग अंग मन भाये।
मणि मानिक जें पट मैं पोहैं। कञ्चन बिनु अंगन अति सोहैं।।

कसन किंचुकी घाघरौ इनहिं आदि कछु आनि।
बसन चूंदरी श्याम रंग राम सखे छवि खानि।।

कुञ्चन कवल फूल ऊपर अवध जाके,
शहर महल लौने अमित उदार हैं।
अद्भुत स्वरूप जाके कर्णिका सिंगार चित्र,
अगर सुगन्ध रंग पाँचौ जग पार हैं।।
रचित उज्ज्वल वितान बूंद लीला रस सार हैं।
रामसखे मकरन्द भरे भंवर विहारवै करैं
सीताराम सेवा दोऊ निर्विकार हैं।।
राम को रूप अनूप समुद्र में,
आगरि नाव निवाह नहीं है।
आखिन्ह देखि जु जाति वही सब,
डूबि अथाहन थाह मही है।
फेरि फिरै न फिरावन हार को,
फेरे रहै सो उठाऊ वोही है।
रामसखे मति चाय करौ,
चित्त चुंबक लोह की लीक सही है।।

काम कृपान खुली अलकैं मुख शायक से दृग भौंह कमानैं।
चोट लगै न बचै रण भूतल वीर मुनीम वली भट जानै।।
गोल कपोलन्ह बीच परै मन घायल माने मनोरथ मानै।
रामसखे मुसक्यान मरोरनि नासिका मोति की पीर निदानै।।

संगम दिव्य कलोल कलोलन्हि भावती विलसै बिलसावै।
शोभा तरंग बढ़ै सब के मन चाव चढ़ै रिझवार रिझावै।।
होहि कुतूहल कोशल बीथिन्ह कोमल कोटि सुमेर नवावै।
रामसखे भीजे रस बंदन श्री राजा दशरथ लाल भिजावै।।

सौरभ सौर पराग समीर सों चूर पिये मकरंद भरे से।
नील हरे पियरे सितरंग मै अंग सुरंग रंग सुघरे से।।
बोलत बौर झलाझल ओप पै ओपत चोप पै चोप धरे से।
रामसखे रति मौन कि पौरन्हि आय खरे पवरे मधुरे से।।

चन्द्रमा भौन जहाँ परियंक पै सैन निकुञ्ज त्रिखण्ड के ऊपर।
दंपति जानकि राम तहाँ नर्म नीन्द भरे दृग जाइ बधू वर।।
सोवे समेत सुतन्त्र समाज ते मंजरी सवै समान भरी उर।
सेवा विधान श्रीराम सखे करै प्रीतम राम तिया तन ह्वै कर।।

सुरभि नीर सुरभित सुमन सुरभि भोग ताम्बूल।
रामसखे सेवै युगल मैन कुञ्ज दिन तूल।।
विविध केलि वचनादि सब सबविधि पूजि रिझवारि।
रामसखे नीराजहि सभा भवन पगधारि।।

लगत राम प्रिय प्रान तै तजि न सकति उर त्याइ।
तिय स्वाधीन जुभर्तृका वोवत हरि तेहि पाई।।
कुञ्ज कुञ्ज प्रति राम को ढूंढति सरयू तीर।
नारी यह अभिसारिका धरति न नेकहु धीर।।

नित्य राम मण्डल रघुनाथा। सकल त्रियन को करत सनाथा।
तोषत सवन जासु तस भावा। कृपावन्त रघुनाथ सुभावा।
कहुँ नर्म सखन राम सिंगारै। पुनि निज नयनन रूप निहारै।
कहुँ अपनौ सिंगार करावै। राम कान्ति नर्म सखन दिखावै।
इन्हें जु आदि ख्याल बहु खेलै। नितहि राम रघुबंसिन भेलै।
यह वर ध्यान ताहि उर लागै। सो सव मत तोई लौ त्यागै।

रसिक लक्षण—

चित्त सन्तोष महा धन लीने। रघुबर की लीलन्ह अति भीने।।
रसिक अनन्य न सो मिलि लोभ। उनके पगन धोई मन छोभै।।
जानि नात निज बारहि बारा। राम समान करै उपचारा।।
सखा सखी द्वै भाव जु राखै। मधुर चरित राम के भाखै।।
विधि निषेध सव कर्म जु त्यागै। रहत सदा रघुपति छवि पागै।।
पूजै नहीं पितर बहु देवा। रामहि की भावै जिय सेवा।।
राखै एक राम विस्वासा। करै न त्रिभुवन दूसरि आसा।।

राम कुटंब कुटंब निज जानै। सपने जग नातौ नहिं ठानै॥
सीतापति कृत जग सब देखै। यौते सब जिय सम करि लेखै॥
त्रिजग योजि आदिक जीवन गन। देहि न दुख काहू बच क्रम मन॥
आये हरष गये नहिं शोका। तृण मान देखै ब्रह्मलोका॥
नृप अरु रंक होई किन कोई। रसिक बिना वे त्यागै दोई॥
रसिकन के नित भोजन पावै। रसिकन बिनु भिक्षा चित ल्यावै॥
राखै इक हिम अर्थ गुदरी। जनु विराग की त्रिया सुन्दरी॥
तुलसी की धारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहि तिलक निर्मातिल चन्दन। हरदी विन्दु पीत जग बन्दन॥
भृकुटी सन्त सीस पर जन्ता। करै मिही रेखन छविवन्ता॥
बोरि हृदिका मै धनुशायक। धरे भुजन छापै रघुनायक॥
एक सूत वस्तर रंग पीरा। राखै तन बानौ रघुबीरा॥
राम मन्त्र षड अक्षर काना। करै यही उपदेश प्रधाना॥

दयावान बानी मधुर, त्यागी सहित बिबेक।
लीन्हें निज चैतन्य चित, राम रास ब्रत एक॥

कटि कोपीन कमण्डल धारी। वन प्रमोद कल कुञ्जन चारी॥
भनै नृत्य राघव जे बानी। राम रसिकता हिय उफनानी॥
राम राम ग्रन्थन मन ल्याई। सुनै सुनावै प्रेम बढ़ाई॥
मन क्रम वचन रास को ध्याना। करै सु निस दिन परम सुजाना॥
बचन रास के पद उच्चारै। मन करि रास धारना धारै॥
तनकरि रास सिंगार बनावै। लखि सिय राम रूप बलिजावै॥

संवत् अष्टादश चतुर, शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन, उद्भव सब रस बीज॥

ज्ञान दरश वैराग्य रवि, भक्ति नजर जब होइ।
रामसखे रघुपति मिलहु, तव निज जिय सुख होइ॥

रसिक अनन्य वहै सुख मानी। राम रूप बिनु लखहि न आनी॥
छवि आसक्ति रहहिं मन माहीं। क्षण पल राघव बिछुरत नाहीं॥
हेरि ववऊ सुन्दर नर नारी। राम वियोग करहिं अति भारी॥
वेष नृपति छैलन असवारी। आवत राम ध्यान छवि भारी॥

सुनि कोकिल कर कूक, मृदु नटनि मयूर निहारि।
रामसखे मन करत झप, मिलन राम छवि बारि॥

अरुण पीत रंग लखि छविकारी। मोहहिं कलि सुधि अवध बिहारी।।
कहुँ विलोकि नग जटित नूपुरन। अवधलालकर रूप चुभत मन।।
सिन्धु सुगन्धि राग सुनि काना। लावत नयनन राम सुजाना।।
लखि श्रावण घन तड़ित शरद शशि। रह रघुनन्दन विरह चित गशि।।
देखि कुसुम वसन्त ऋतु शोभा। छावत राम प्रेम उर गोभा।।
रसिक अनन्यन कर यह रीती। तेहि उर लगहि ऐनि अति प्रीती।।
सो सुर पूज्य योनि कोऊ जिय। पाइय जासु जूठ तृप्ति हिय।।
ताकर जूठिन कर जु प्रतापा। करहिं मुक्ति जिय विनु तप जापा।।

रसिकन कर जूठन प्रबल, आप करी रघुनाथ।
शबरी के फल जूठ भपि, त्यागि मुनिन कर साथ।।

अद्भुत रत्न पुलिन सरयू तट। झरत तहाँ द्युति सुधा सोम बट।।
नटत राम तहाँ नित्य बिहारी। लीन्हें संग सिया सुकुमारी।।
कोटिन सखी सखा नृप घेरे। लिये यन्त्र गावहिं प्रभु नेरे।।
रत्नागिरि तहँ करत उज्यारी। कोटि चन्द्र द्युति तापर वारी।।
हरित पीत सित श्याम सुरंगा। फूले लतन फूल बहु रंगा।।
चम्पक बकुल कदम्ब अशोका। सोहत लगत माधुरी वोका।।
तिन महँ सिया मान अति करहीं। राम मनाइ अंक पुनि धरहि।।

हरिचन्दन सन्तान बहु, पारिजात मन्दार।
रामसखे इन तरुन की, कुञ्जै लसति अपार।।

अन्तर ध्यान होहिं क्षण में हरि। ढूंढि लैहिं सिय तबहिं प्रेमकरि।।
अन्तर ध्यान रास महँ प्यारो। लहहिं सखी सु भक्ति करि चारो।।
बहि रंगा अति रंगा प्रेमा। पराभक्ति रसिकन सुख क्षेमा।।
कबहुँ सखी पूजहिं मन लाई। राम वेष सखि कोउ बनाई।।
क्रीट शीश धनुहीं कर धारहिं। तन मन प्राण निरखि छवि वारहिं।।
चमर छत्र व्यजनादिक ढोरहिं। करि प्रणाम हाथन पुनि जोरहिं।।
वहिरंगा यह भक्ति दिखाई। अतिरंगा अब कहत बुझाई।।
कबहूँ सखी ध्यान अति ठानहिं। नयनन मूंदि राम हिय आनहिं।।
अतिरंगा यह भक्ति बखानी। प्रेमा और भनत रस सानी।।
कबहुँ सखी ढूंढति मिलि पुञ्जन। शरद रैनि सरयू कर कुञ्जन।।

बूड़ी राम वियोग हृद, ढूंढति व्याकुल अंग।
रामसखे छवि बावरी, बेधी शरन अनंग।।

कबहुँ फूल शय्यन सब हेरहिं। कहि कहि राम पियामुख टेरहिं॥
कहुँ गहि गहि बूझहिं व्यासन रान। राम वियोग नहीं सुधि बुधि तन॥
डसहिन व्याल रामतिय जानी। झूमति फिरहिं प्रेम रस सानी॥
कोऊ अति बिकल प्रेम बश नारी। बोली अस मैं राम बिहारी॥
मैं नृप के मणि आंगन चारी। मैं भुशुंडि संग भुजा पसारी॥
मैं कठोर शंकर धनु तोरी। मैं सिय संग कीन्ही गठजोरी॥
मैं रघुपति प्रमोद बन वासी। मैं नटवर बर राम बिलासी॥
प्रेमाभक्ति ललित यह गाई। पराभक्ति सुनिये सुखदाई॥
कोउ तिय कहहिं मिलत सुनि गाना। सब मिलि गाइय राम सुजाना॥
तब सब मिलि सरयू-तट गावा। करि करि नृत्य रूप दृग छावा॥
रघुनन्दन तब तत्क्षण आये। युवती सकल प्राण से पाये॥
लिये ललित धनुहीं कर तीरा। जनु अद्भुत कोउ काम शरीरा॥
राम धनुप माधुर्य अपारा। देखि काम निज धनुष बिसारा॥
रतन क्रीट घूंघुर युत अलकें। पान खात लखि लगत न पलकें॥
कोउ सजनी आसन करि सारी। बैठारत पिय अवध बिहारी॥
कोउ तिय कहि अस भौंहन तानहिं। हम तुम्हरी गुमराई जानहिं॥
सिया करहिं सोरह श्रृंगारा। रोचन चित अवधेश कुमारा॥
मग सिन्दूर तैल रचित वेनी। चन्दन खौर महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बयननि। दमकत दशन हरति प्रभु नयननि॥
भूषण जे हिम रतन जड़ाये। चन्द्रिकादि अंग अंग मन भाये॥
मणि माणिक जो पटमहँ पोहे। कञ्चन बिनु अंगनि अति सोहे॥

कसनि कंचुकी घांघरो, इन्हें आदि कछु आनि।
बसन चूंदरी श्याम रंग, राम सखे छवि खानि॥

फूलमाल मोतिन के गजरा। बलया करण लसत दृग कजरा॥
मुख उर अतर गुलाब लगाये। गुंजत-भ्रमर सुरभि अति पाये॥
मेंहदी हाथ पगन मा हौरी। देखि देखि भई रति अतिबौरी॥
यह सिय छवि कछु वरणि न जाई। तापर प्रभु नित रहत लुभाई॥
सोरहु करहिं श्रृंगार श्याम घन। मोहन हित अति सिय दामिनि मन॥
जुल्फन तैल खौर सिर चन्दन। मुकुटादिक भूषण दृग अंजन॥
बीरा मुख मणि माणिक हारा। चुपरै अंग सुगन्धि उदारा॥
फूल गूंथि अंग अंगन पहरें। मोतिन माल उठन छवि लहरें॥
कछनी कसन इजार सुरंगा। बसन पीत पट ओढ़न अंगा॥

अरुण हरित रंग धनुकर सोहहिं। स्वर्ण पंख विचित्र शर मोहहिं॥
मनहुँ महा बैकुण्ठ गवन पर। तापर गोपुर मध्य अवध वर॥
अवध अवध की अवधि जो वरणी। लवधि प्रेम करि ताकर धरणी॥
तहँ सरयू मणि घाटन छाई। कहि न जात अद्भुत रुचि राई॥
फूले जल थल कमल अनन्ता। वन प्रमोद नित रहत वसन्ता॥
गुंजत भ्रमर कोकिला बोलत। नटत मयूर काम जनु खोलत॥
बिनु देखे यह राज लुनाई। पल पल कलप समान विहाई॥
जब लगि तुम विहरहु खेटक वन। तब लगि हम अति विकल रहहिं मन॥
क्षण क्षण लखहिं झरोखन जाई। सन्ध्या की आवनि सुखदाई॥

नयननि ते नहिं होहु तुम, न्यारो क्षण पर लाल।
रामसखे यह बीती, कहहिं सकल मृदु बाल॥

नटहिं राम अरु सिया परस्पर। मोर हंस गति लेत गतिनबर॥
सोहत राम सखिन मधि प्यारे। मनहुँ तड़ित अग बिच घन तारे॥
बीण मृदंग मुरलिका आदिक। बाजन सखिन बजावहिं स्वादिक॥
गये राम पुनि मोर सुहायो। प्रथम भोग मधुपर्क लगायो॥
पुनि सखियन अस्नान करावा। गोदन ले शृंगार बनावा॥
कोउ कर धूप दीप कोउ रचहीं। कोउ हिमथार भोग मृदु सचहीं॥
कोउ सरयू जल कर अंचवावन। कोउ ताम्बूल देहिं शशि आनन॥
कोउ आरती करहिं अति प्रेमा। लखि प्रभु रूप मनावहिं क्षेमा॥
पिय सन्मुख ह्वै बांचति निव्या। मिलन हेतु नववधू सइव्या॥
एक रीति आठहु पटरानी। मिलन चहति प्रभु सौं रति सानी॥
अटकैं तहँ घटिका ह्वै चारी। नारि सबै समप्रेम निहारी॥
जाइय अस समझी यह बाता। लखहि न कोउ काहू पहँ जाता॥

नर्म सखा

जे रघुकुल नृप सखा कहावहिं। नृप चरित्र तिनके मनभावहिं॥
रासादिक मृगयादिक रंगा। रहहिं सदा दोउन के संगा॥
राम तुल्य ऐश्वर्य राज सुख। यद्यपि जियत बिलोकि राम मुख॥
कहुँ सजि कै गज पर चढ़ि हर्षहिं। प्रभु की गोद बइठि रस वर्षहिं॥
कहूँ मानिनीं तियन मनावहिं। करि बसीठि प्रभु कहुँ जु मिलावहिं॥
कहुँ रति दान तियन प्रभु देहीं। कहुँ व्यजनादिक टहल जु लेहीं॥
जानि नात निज बारहिं बारा। राम समान करहिं उपचारा॥
सखा सखी ह्वै भाव ज राखहिं। मधुर चरित्र राम करि भाषहिं॥

विधि निषेध सब कर्मजु त्यागे। रहत सदा रघुपति छवि पागे।।
कहुँ आपुहिं रति पति रति पोषहिं। धरि तियन तन अति प्रभु कहँ तोषहिं।।
कहुँ नि तियन आपुरस बोरत। रास ठानि प्रभु जो चित चोरत।।
कहुँ रघुपति संग करि गलबाहीं। नृत्यत रंग महल के माहीं।।
सिय जो करति केलि प्रभु के संग। चुम्वन मिलन आदि जेते रंग।।
प्रभु अरु आपु परस्पर रूपा। पिये नित्य डूबे रस कूपा।।
यह सुख कहँ जो प्रापति होई। अस जग जन कोटिन महँ कोई।।
वैष्णव धर्म जन्म बहु करई। तब यह मारग कहँ अनुसरई।।
तुलसी कर धारहिं गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला।।
देहिं तिलक निरमायल चन्दन। हरदी विन्दु पीत जगबन्दन।।
भृकुटी अन्त शीश पर्यन्ता।। करहिं मिहीं रेखन छवि वन्ता।।

दयाबान बाणी मधुर त्यागी सहित विवेक।
लीन्हें निज चैतन्य चित राम रास ब्रत एक।।

सुत दारा धन राज्य सुख मगन जगत जिय मन्द।
राम रास लखि रसिक जन लहत परम आनन्द।।

राघव संग इक सेज रमन नृप सखा प्रिये अति।
तहँ देखत मृदु रूप बढ़ति रघुनाथ मिलन रति।।

बन प्रमोद रस रास छके रस छन्दन सिर्जत।।
जिय ईश्वर निज रूप पाय नित बदत द्वैतमत।।

प्रभु ह्वै अदृष्ट जल कूप तिनके हित प्रकटे निकट।
सब रसिक मुकुट हरितन अघट राम सखे रघुकुल प्रकट।।

अरे दिवाना कहा न माना झूठ भुलाना है पछिताना।
बिरादराना मोहब्बत ताना गोपुर जाना नहीं समाना।।
राम न जाना भजि शैताना फिरि आना पार न पाना।
प्रेम लुभाना जो कछु जाना नहीं ठिकाना वे भगवाना।।

श्री सीतायन

श्री रामप्रियाशरण प्रेमकली

स्वामी रामप्रियाशरणजी 'प्रेमकली' का लिखा 'सीतायन' ग्रन्थ के दो काण्ड मिलते हैं। बालकाण्ड और मधुर मास काण्ड। पहला काण्ड सितम्बर १८९७ में और दूसरा काण्ड अक्तूबर में श्री छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में छपाकर प्रकाशित किया।

बालकाण्ड में सीता-उर्मिला श्रुतिकीर्ति माण्डवी के जन्म का वर्णन है तथा दैसवज्ञों द्वारा इनके आदि शक्ति जगज्जननी रूप का तत्त्व-विवेचन है। इसमें नित्य युगल रूप का बड़ा ही भव्य एवं मनोहारी वर्णन है साथ ही श्रीराम और सीता का वास्तविक एवं तात्त्विक स्वरूप का ध्यान है। दिव्यधाम, अयोध्या तथा उसमें कनक भवन का रहस्यमय नित्य रूप का ध्यान है और नारद द्वारा जनक को इनके प्रति संबंध में भविष्यवाणियाँ हैं।

रहस्य प्रमोदवन श्री जानकी घाट अयोध्या में 'सीतायन' की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जिसमें—बालकाण्ड, मधुर काण्ड, जयमाल काण्ड, रसमाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड—ये मात काण्ड हैं और क्रमशः प्रत्येक काण्ड में ४१, ३९, १२०, ५५, ३०-२८, ४—इस प्रकार कुल मिलाकर ३१७ पन्ने या ६३४ पृष्ठ हैं। 'सीतायन' रसिकोपासना का एक प्रधान आकर ग्रन्थ माना जाता है और उसकी इस साधना में बड़ी प्रतिष्ठा है।

'सीतायन' के 'मधुर मालकाण्ड' में प्रेमकलीजी ने आत्म परिचय दिया है जो इस प्रकार है—

प्रिया शरण गुरु भावना अरु निज भाव समेत।
युगल नायिका करि कहौ प्राप्ति भाव के हेत॥
नेह कली आचार्य मम प्रेम लली मम रूप।
युगल सुनयना की सुता अद्भुत युगल स्वरूप॥
वय सन्धिनि मधुराननी परम मनोहर अंग।
गौर बरण सिय कुन्ज में रहत सदा सिय संग॥
मधुर भावना युगल की अरु श्रृंगार रस रीति।
सो सब वर्णन करत हौं अति प्रसन्न अति प्रीति॥
द्वितीय मधुरता में कहव मीता जन्म प्रसंग।
जवन हेतु जेहि दिन भयो शिशु चरित्र बहुरंग॥
बहुरि तेहि दिन जन्म है उर्मिलादि सुकुमारि।
तिन सब को वर्णन करब सुन्दर चरित बिचारि॥

षष्ट अष्ट षोड़श दल विमला। कमलाकर सिंहासन अमला।
षष्ट अष्ट षोड़श मंजरि है। चहुँदिशि राजति आनन्द भरिहै॥
तेहि के मध्य सिया अलबेली। अद्भुत राजति रूप नवेली॥
श्याम केश मस्तक भरि के हैं। सूक्ष्म सघन मणि मोति गुहे हैं॥
भाल बिशाल भृकुटि वर बांकी। काम धनुष छवि हरत हरांकी॥

कञ्चन मणि मय थार लसत कर आरती।
अमित वेष धरि नाचति गावति भारती॥
वेद न पावत पार नेति कहि कहि रहि गये।
नृप को भाग सराहि मनहिं प्रमुदित भये॥

सघन श्याम चिक्कन कुटिल मस्तक भरि शुठि बार।
जननी निरखत चन्द्र मुख बार बार बलिहार॥

छमछम छननन पगन ते नूपुर बजत अनन्द।
जनक सुनयना सुत्त नवित शिशु लीला करु सीय।
जो यह छवि निरखत नयन चारि मुक्ति अनयीय॥
वेद विदित जो तत्त्व यह जनक सुता सोइ चार।
रानी देखहिं छवि मगन सब दिशि सुरति बिसारि॥
प्रिया शरण श्री जनक के अजिर सहित सिय आदि।
ज्यहि हिय नैनन में बसैं ब्रह्मात्मक सुख वादि॥
जेहि सीता के अंश ते अमित रमा रति होत।
अमित उमा शारद शची तेहि तन की उद्योत॥
रहति सदा पुनि टहल में क्षण क्षण भृकुटि निहारि।
जेहि समय जस रुचि लखति तेहि क्षण कौन प्रचार॥
मूल प्रकृति जेहि अंश है जग जेहि भृकुटि विलाश।
विधि हरिहर जेहि गुण लिये रचिपालत पुनि नाश॥
जिनके चरण सरोज के अंकन ते अवतार।
मीनादिक सब रूप हैं सिय के अमित बिहार॥
गोद लै चूम्बति दुलारति भाव होत आपरनि।
चुटकि ध्वनि सुनि नचति अजिर सो सकल सुख अनुशरनि॥
कबहुँ लखि प्रतिविम्ब नाचति कबहुँ चलि गिरि अरनि।
परस्पर खेलति कुंवरि सब किलकि झुकि पुनि डरनि॥
श्री राधा आल्हादि शक्तिनी ज्यहि श्रुति गावै।
कोटिन रति कह मोहि रास आचार्य कहावै॥
सो चन्द्रिका ते होत रूप गुण शील अमित छवि।
विमल अंग गौरंग देखि ज्यहि लजत बाल रवि॥
नन्द नन्दन के संग में विविध रास रचना रची।
व्रज गोपी सब संग में सोइ रमा शारद शची॥

बाल बिहार

नखसिख मञ्जु मनोहर ताई। कहि न जाइ अंगन रुचिराई॥
बिहरति महल सकल मन भावति। कबहूँ हंसि हंसि ताल बजावति॥
कबहुँ परस्पर नाच नाचवति। कबहुँ मधुर स्वर मंगल गावति॥
कबहुँ परस्पर बचन उचारति। कबहुँ मुकुर लै वदन निहारति॥

लखि छवि मगन होइ पुनि जाहीं। मुकुर हाथ से त्यागति नाहीं॥
प्रतिबिम्बहि पूंछत तुम को है। इतै कहाँ ते आनि बसौ है॥
तुम केहि की पुत्री सुकुमारी। नखसिख मञ्जु महा छवि भारी॥
को तव तात कवन तव माता। मोसन कहहू सत्य सब बाता॥
छवि छवि निज प्रतिबिम्ब भुलानी। तेहि छन आइ सुनयना रानी॥
सिय चेतन्य भइ मातु निहारी। यह तो है प्रतिबिम्ब हमारी॥
मैं भूली अपनी परिछाहीं। यह तो अपर नारि कोउ नाहीं॥

यहि विधि अमित विहार सुख, करति रहति दिन रैन।
जननी लखि प्रमुदित रहति, अति छवि अति सुख ऐन॥
सकल सुता निमि बंश की, सिय की रुचिहि निहारि।
सब समाज मिलि गइं हरषि, महली रास बिहारि॥

जस इत कुंअरि मनोहर राजै। तस उत कुंअर महा छवि छाजै॥
सब प्रकार सुन्दर चहुँ ओरा। अति प्रसन्न लखि मानस मोरा॥
तिन लखि छवि भइ प्रेम अधीरा। कंस क्यों मन उपजी अति पीरा॥
जब लगि अधरन राम चुमइहै। तब लगि सुख कोइ यतन न पइहै॥
कोइ के अरुण चूनरी राजै। छवि की खानि मनोहर भ्राजै॥
सिय निज महिमा प्रकट देखाई। सो महि कहत एक नहिं आई॥
लखी राम सिय अद्भुत रूपा। वरणि न जाय सो बात अनूपा॥
तब राजा बहु विनय जनाई। सिय सन्तुष्ट भई सुख पाई॥
पुनि राजा निज प्रश्न सुनाई। कहिय बात सब मोहिं बुझाई॥
सब तें परे पुरुष को अहई। का तेहि नाम कहाँ सो रहई॥
केहि के रचित भवन दशचारी। केहि महँ लीन होत जग सारी॥
सुनि पितु वचन परम हर्षाई। बोली सीता वचन सोहाई॥
सो सम्बाद सुन्दरी तन्त्रा। सीता की बर वाणि विचित्रा॥
तुम को नित्य पिता हम जानी। हमको पुत्री तुमहुँ बखानी॥
सबसे परे पुरुष श्री रामा। श्याम स्वरूप महा सुख धामा॥
हम ते उनते नहिं कछु भेदा। रूप भेद पुनि तत्त्व अभेदा॥

जहँ दोऊ विराजहीं तौन धाम सुनु तात।
प्रकृति पार गोलोक है तेहि मधि पुर विख्यात॥
नाम अयोध्या भनत श्रुति ब्रह्म बिष्णु शिव ध्यान।
उमा रमा ब्रह्माणि तेहि निशि दिन करत बखान॥

अब सुनु राम ध्यान मन लाई। श्रवण करत अघ पुंज नशाई॥
वन अशोक सरयू तट मांहै। रचना सकल काम रति मोहै॥
कंचन भूमि खचित मणि नाना। मन चित आनन्द मय अस्थाना॥
कल्प वृक्ष तहँ परम सोहावन। मूल तले मणि महल सो पावन॥
ताके मध्य वेदिका राजै। चिन्तामणि की कान्ति बिराजै॥
सिंहासन मणि मय अति सो है। गज मुक्ता झालर लटको है॥

अयोध्या

राम अनादि सीता अनादि अवध अनादी।
तुम्हरी पुरी अनादि सकल कह बेद के वादी॥
दोउ राय अनादि अवध मिथिला की गादी।
चतुर्वेद षट शास्त्र पुराणादिक प्रतिपादी॥
तुम राजा सब जानतहू तुम्हरे गृह की बात सब।
अपरनि को तब लखि परै तुम्हरी कृपा कटाक्ष जब॥
लीला सकल अनादि जबहिं यश रुचि तस करहीं।
ताकहँ आविर्भाव कहत श्रुति वाक्य न डरहीं॥
सिया राम पर रूप भक्त संग करहिं विहारी।
भक्तन के वै श्याम गौर युग शरण अधारी॥
सिया उर्मिला नेह अरु प्रेमा। अष्टयाम एक संग सनेमा॥

श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी के कुछ लीथों में छपे ग्रन्थों का पता लगा है जिनका इस 'रसिक सम्प्रदाय' में विशेष आदर है—

१. **श्री जानकी मंगल** —श्री जानकी जी के रूप का ध्यान
२. **श्री राम मंगल** — श्री राम जी के रूप का ध्यान; पुनः नाम, रूप, लीला, और धाम की दिव्यता पर विचार
३. **भूषण रहस्य** — भगवान् राम और भगवती सीता के शरीर पर सुशोभित विविध शृंगार और आभूषणों का विन्यास
४. **अश्विनीकुमार बिन्दु**
५. **हनुमत बिन्दु**
६. **श्याम लगन**
७. **श्याम सुधा**
८ **जानकी बिन्दु**
९. **कृष्ण सहस्र परिचर्या**

इन नौ ग्रन्थों के अतिरिक्त भी श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी लिखित और लीथो में छपे कुछ और ग्रन्थ भी मिले हैं—जैसे,

गया बिन्दु, शिसा-व्याख्या (संस्कृत), सांख्य तरंग और वैराग्य प्रदीप।

वृहद् उपासना रहस्य

श्री प्रेमलताजी

श्री सीतारामजी दोनों एक ही हैं। देखने में दो भासते हैं। केवल भक्तों के हितार्थ हमेशा उभय रूप धारण किये रहते हैं, परस्पर सम्बन्ध दोनों में जल; तरंग; गिरा; अर्थ; सुमन, सुगन्ध; रसोई, स्वाद; बिम्ब; प्रति; मनी, मोल; देह, देही, सेस; सेसी की नाईं हैं।

गर्व करो रघुनन्दन जानि मन माहिं।
अपनी मूरति देखौ सिय की छाहिं।।

श्री सीतारामजी दोनों एक हैं और इनके चरित्र तर्क्य हैं। भाविक लोग कहते हैं कि हे श्री राम लला जी, आप श्री सिया जू के चेरे हैं, इस माधुर्य रस सानी बानी को सुनि मन्द मन्द मुसिकाते मन भाते, बोलते, भाविकों के वशीभूत हो रहते हैं। भाववश्य भगवान्, सुख निधान करुणा भवन। इस ग्रन्थ में तो निरे भाव ही भाव भरे हैं। भाविकों के ग्रन्थों में अभाव की बात ही नहीं होती। भगवत के आश्चर्यजन्य चरित्र भागवतों की ही बानी में मिलेंगे अन्यत्र नहीं। भागवत प्रभु के संग हमेशा विहार करनेवाले हैं। जहाँ वेद-वेदान्ती शास्त्र विद्याभिमानियों की स्वप्न में भी गति नहीं, तहाँ अन्तःपुर में सखी रूप से भागवत श्री सीतारामजी की देहली नित्य सेवा करते हैं और नित्य लीला में भी दासादि रूप धरि-धरि प्रभु को परमानन्द देते हैं।

चारु शिला हनुमान पुनि, शम्भु सुशीला आलि।
दोउ तन ते सिय राम पद, सेवहिं आयसु पालि।।
दास सखा वहिरंग ते, अन्तर पतनी भाव।
आत्म समर्पी भक्ति करि, मिले प्रभुहिं सहचाव।।

नाम प्रसंग

अपर नाम सब विबुध गण, राम नाम सुर राज।
जापक उर अमरावती, राजत सहित समाज।।
अपर नाम अवतार सब, राम नाम सिय राम।
जापक उर श्री जनकपुर, विहरहिं जहँ वसु याम।।
कोटिन साधन साधियें, कोटिन जन्म सुधारि।
राम नाम की रटन सम, सुखद न कहत पुरारि।।

रूप प्रसंग

एकै पुरुष राम सब नारी। जहाँ लगि दृष्टि परै तनु धारी॥
सब महँ करै रमन सोइ रामा। आतम राम परचौ तेहिनामा॥
हम सब सिय की शक्ति स्वरूपा। सब के पति सोइ राम अनूपा॥
मिथ्या पुरुष सकल हम भाई। भीतर सिय की शक्ति समाई॥
यह विवेक जिन्हि के उर होई। आतम ज्ञानी जानहु सोई॥

सिया अलिनि की को कहै, सुख सुहाग अनुराग।
विधि हरिहर लखि थकि रहे, जानि छोट निज भाग॥
बहुरि त्रिपाद विभूति ये, श्री, भू, लीला, धाम।
अवलोकहु रमनीक अति, अति विस्तरित ललाम॥
विश्व विलास निकुञ्ज अब, अवलोकहु यहि ओर।
नाटक होत जथार्थ जहँ, अति विचित्र चितचोर॥
नित्यानित्य पसार बहु, नूतन छन छन मांझ।
उपजत विनसत लखि परै, जिमि जग भोर सु सांझ॥

विद्या माया सिय बलराखै। निज बल वुद्धि अविद्या भाखै॥
दोउ माया सिय निज प्रगटाई। लीला हेतु प्रकृति विलगाई॥
निज निज दल दोउ विरचि सुमाया। करहिं चरित बहु जात न गाया॥
नराकार यक तन इक नारी। बनी उभय दोउ दलनि मझारी॥
लीलाहित आपहि दुइ रूपा। बनी नारि यक पुरुष अनूपा॥
सो जड़ माया पुरुष न नारी। प्राकृत जो नाना तन धारी॥
तेहि जड़ बन महँ विद्या माया। पैठि बनीं सोइ निजहि भुलाया॥
जड़ महँ बैठि सुजड़नि निहारी। मोती चेतन सक्ति विचारी॥
सनमुख रही विमुख भइ सोई। जड़ संग मिलि चेतनता खोई॥

हमहम करि दुख सहत अति, विवस मोह मद सार।
भोगहिं निज कृत कर्म फल, फंसि जड़ माया जार॥

विद्या माया कर दल जोई। सियहिं भजत सब सनमुख होई॥
विमुख अविद्या दल दुख रूपा। भयेउ त्यागि सिय चरन अनूपा॥
चढ़हिं स्वर्ग कहुँ नरकनि परहीं। सिय पद विमुख विपुल तन धरहीं॥

जयति जयति सर्वेश्वरी, जन रक्षक सुखदानि।
जय समर्थ अह्लादिनी, सक्ति सील गुन खानि॥

जयति स्वतन्त्र सकल घट वासिनि। जयति सुमुखि अवलोकहु दासिनि॥

जयति नाम तब सब सुख दाता। जन्म मरन नासन दुख त्राता ।।
जयति परम परमारथ रूपा। जयति चरित तव अकथ अनूपा ।।
छमहु देवि अपराध हमारे। कीन्ह मोह बस जो अघ भारे ।।
अब करु कृपा स्वामिनी सोई। कबहूँ हमरे मोह न होई ।।
जयति परम पावन सुख मूला। जयति हरन संश्रुति भ्रम सूला ।।
जय सरनागत वत्सल भामिनि। विश्व रूप चेतन बहुनामिनि ।।
राम ब्रह्म की प्रान अधारा। जय जन पालक हरन विकारा ।।

जयति शान्ति सुखमा सदन, क्षमा सील सर्वज्ञ।
जयति भक्ति प्रद शक्ति पर, मंगल स्वभाव कृतज्ञ ।।

जयति सखी गन मध्य विहारिनि। जयति सुकीरति जग विस्तारिनि ।।
जय मद मोह कोह भ्रम हरनी। असरन सरन दग्न जन जरनी ।।
पुरुष भाव उर धरि अग्याता। बिसरेऊ हम तव पद जलजाता ।।
जग करता पालक संहरता। बने रहे हमहीं धरि नरता ।।
अब करि कृपा सरूप लखावा। जानेउ अकथ अनूप प्रभावा ।।
यह छवि बसै सदा हमरे मन। अस कहि परे चरन पुनि तिहुँ जन ।।
परम कृपालय सिय मुसिकानी। बोलीं सरल मनोहर बानी ।।
तुम्ह अतिशय प्रिय तिहुँ जन मोरे। मम महिमा जनि भूलेऊ भोरे ।।
जो कछु भौमा तुमहिं सुनाई। जानेउ सत्य सु बात सदाई ।।
सनमुख जो पावहिं कवनिउं तन। भजहिं मोहिं धरि सखी भाव मन ।।
मम भूषण चन्द्रिका अनूपा। धारहिं ते सब मोर सरूपा ।।
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रा धारी। पावहिं मोहिं निश्चय नर नारी ।।

राम पुरुष यक वाम सब, रमण करै सब संग।
मोर निकट निवसत सु जिमि, बिम्ब श्याम शुचि रंग ।।

तन छाया इव कबहुँ न तजहीं। अस विचारि सनमुख मोहिं भजहीं ।।
जहाँ देह तहँ छाया रहहीं। देह बिना छायहि को लहहीं ।।
छाया पुरुष मोर जो रामू। रमन करों तेहि संग बसु जामू ।।
छनहुँ न तजत मोहिं मैं तेही। उभय एक जिमि छाया देही ।।
जब चाहों तब श्याम सरूपा। प्रगटों पुरुषाकार अनूपा ।।
करों चरित तेहि संग मिलि नाना। भक्ति हित आनन्द निधाना ।।
लीला ललित सगुन सुखकारी। पढ़ि सुनि पावहिं जन मोहि झारी ।।
सगुन उपासक युगल सरूपा। ध्यावहिं ते न परहिं भवकूपा ।।

दशरथ सुत राम सिया, जनक की दुलारी।
नखसिख सोभा अपार, लाजत लखि कोटि मार।।
बरनत छवि बार बार, सारदा उहारी।
भूषन मनि जाल माल, लसत विविध जटित लाल।
नैन कञ्ज ललित भाल, तिलक मोद कारी।।
गौर वरन सियाराम, सुभग अंग मेघ स्याम।
पीत वसन उत ललाम, इत सुनील सारी।।
राजत सुख गुन निधाम, सेवति पद विपुल वाम,
सीता कर कमल राम, धनुष वान धारी।।
सुर नर मुनि धरन ध्यान, कीरति कल करत गान,
प्रान के सुप्रान ब्रह्म, ब्रह्म के अधारी।।
सरन पाल अति उदार, हरन हेतु भूमिभार,
करत चरित विविध सार, वदत वेद चारी।।
'प्रेम लता' सोच त्यागि, युगल चरन कमल पागि,
जपिसु नाम जीह जागि, दमन दोष भारी।।

धाम प्रसंग

गऊ लोक के मध्य सो, अति विस्तरित ललाम।
निवसि जहाँ बिहरत सदा, अलिनि सहित सियराम।।

नहिं तहँ कर्म धर्म तप ध्याना। कुजोग जग्य नहिं जप तप ग्याना।।
पूजा पाठ न जादू टोना। तीरथ वरत न साधन मोना।।
जनम मरन नहिं रोग वियोगा। नहिं तहँ पाप पुण्य कर भोगा।।
अहंकार कामादि विकारा। नहिं तहँ प्राकृत विषय विहारा।।
हठ सठता अविचार न रोषू। कपट दम्भ पाखण्ड न दोषू।।
नाना मत न सठता वेषू। राग विराग न ईर्षा द्वेषू।।
जाति बरन नहिं आश्रम चारी। वेद पुरान न इन्दु तमारी।।
पञ्च तत्व उरमिनि खट मन्दा। अष्ट प्रकृति नहिं कोउ दुख द्वन्दा।।
सकल विकार रहित सो धामू। सब लोकनि ते पार ललामू।।
तेहि महँ केवल केलि प्रधाना। सिय सियवर कर कहहिं सुजाना।।

अवलोकहिं बड़ भागिनी, ललना गन समुदाय।
निवसि संग वसुजाम सुख, तिन्हिकर बरनि न जाय।।

अनन्द अकथ अनूप निकाई। धाम प्रभाव बरनि नहिं जाई।।
कोटिन भवन विसाल सुहाये। जगमगात नहिं जात सुगाये।।

राजहिं ललना गन तिन्हि माहीं। वृन्द वृन्द सिय की भुज छाहीं ॥
जब जब करत चरित प्रभु नाना। भक्तनि हित सिय राम सुजाना ॥
तब तब ते धरि रूप अनूपा। प्रगटहिं संग सुरुचि अनुरूपा ॥
गुरु पितु मातु बन्धु परिवारा। बनहिं सखा दासादि अपारा ॥
लीला करहिं अमित तन धारी। ललना सिय पिय सुरुचि निहारी ॥
खग मृग भूषन बसन सुवासन। हय गज धेनु रथादि सुखासन ॥
भवन भण्डार सुपलंग बिछौना। चमर छत्र मनि मानिक सौना ॥
लीला केरि विभूति जो, सब सिय परिकर रूप।
सत चेतन आनन्द मय, त्रिगुनातीत अनूप ॥
जेहि विधि रहहिं मुदित सियरामा। सोइ सब अलिगन करहिं सुकामा ॥
सियपिय कृपा अलिनि के बीचा। सकल समर्थन जानहिं नीचा ॥
जहँ जस योग तहाँ तस रूपा। धरि साधहिं प्रभु काज अनूपा ॥
करि कारज पुनि आलिनि अंगा। धरि बिहरहिं सुख दम्पति संगा ॥
पुरुष एक जहँ केवल रामू। अपर सकल तिय गन गुन धामू ॥
नित्य विभूति धाम साकेता। नित्य बिहार न लखहिं अचेता ॥
बिहरहिं जहाँ संग सिय रामा। तहँ नहिं अपर पुरुष कर कामा ॥
भूषन बसन सेज सुख सामा। सब चेतन अलि रूप ललामा ॥
विविध रूप धरि श्री सिय आली। सेवहिं प्रभुहिं प्रेम प्रतिपाली ॥
कनक भवन विख्यात जग, राजहिं जहँ सियराम।
तेहि की उपमा योग नहिं, अखिल लोक सुरधाम ॥
अलिनि सहित सिय राम कृपाला। करत चरित तेहि माँहिं रसाला ॥
महल मध्य सुन्दर सर सोहत। निर्मल नीर घाट मन मोहत ॥
सावकास चहुँदिसि फुलवारी। लगी ललित बहु भाँति सम्हारी ॥
विपुल कुंज सुख पुंजनि पूरे। मनि दीपक बहु राजत रूरे ॥
बिछे पलंग बहु घले हिंडोरे। कुंज कुंज प्रति मोद न थोरे ॥
मनिमय चित्र विचित्र अपारा। शोभित भीतिनि विविध प्रकारा ॥
जेहि महलनि सियराम निवासा। अकथ तहाँ कर भोग विलासा ॥
सेवहिं चरन अमित वर वामा। कहौं प्रधाननि केर सु नामा ॥
श्रुति कीरति मांडवि उरमीला। कौसिक कमला विमला सीला ॥
चन्द्रकला श्री लछिमना, चारुसिला - ससिभाल।
हेमा - छेमा - जामुनी, मदनकला - रसमाल ॥
प्रीतिलता श्री युगल विहारिनि। दुग्धवती - सुभगा - सुखकारिनि ॥
ग्यान कला - कोविदा - कृपानी। सगुना - सरस्वती - मुदकानी ॥

विस्वमोहिनी - मथुरा मीरा। प्रेमप्रभा सु द्वारिका - धीरा।।
ये सब जूथेस्वरीं सयानी। सेवहिं दम्पति पद प्रन ठानी।।
कनक भवन के चहुँ दिसि घेरे। इन्ह के मदन सुशोभित नेरे।।
सबके भवननि सुख अनुकूले। भरेउ विपुल प्रद मोद अतूले।।
कुंज कुंज प्रति अलीं अपारनि। जूथेस्वरीं सुजूथ हजारिनि।।
राजहिं गाजहिं पुर चहुँ फेरे। कंचन भवन बने सब केरे।।
सन्तादिक आदिक वन नाना। सोहत सुभग न जात बखाना।।
फूले फर हरे लहराहीं। विहरहिं ललना गनितिन्हि माहीं।।

उपासक प्रसंग

युगलोपासक

युगल उपासक चरण की, जे शिर धारहिं धूरि।
तिन्हि कहँ दशहू दिशि कुशल, नशहिं अमंगल भूरि।।

युगल उपासक आनन्द रासी। श्री सियराम स्वरूप विलासी।।
कर्म धर्म साधन सुखकारी। करहिं युगल सम्बन्ध विचारी।।
बहुमत बादी पन्थनि वारे। विपुल भरे जग झगरत हारे।।
युगल उपासक दुर्लभ भाई। जिन्हि उरनि बसत सिय रघुराई।।
युगल उपासक चरण सु सेवा। कोटि काम धुक सम सुख देवा।।
जिन्हि के मन दम्पति सियरामा। बसहिं निरन्तर सब सुखधामा।।
तिन्हि कर संग रंग सिवकाई। कोटि कल्पतरु सम सुखदाई।।
त्रिगुणातीत वचन वर करणी। युगल उपासक की श्रुति बरणी।।
युगल उपासक कर उपदेशा। जन्म मरण भ्रम हरण कलेशा।।
युगल उपासक जो गुरु करहीं। सो सम् सो जन श्रम विनु भव निधि तरहीं।।

मन क्रम वचन विकार तजि, सेवहिं जे सियराम।
तिन्हि की सेवा करहिं जे, पावहिं ते मन काम।।

उपासना

पुरुष एक रघुपति अपर, जड़ चेतन सब जीव।
नारि रूप यह ज्ञाना दृढ़, भयेऊ कृपा सिय पीव।।

नरतनु पाइहु आतम ज्ञाना। तजहिं न सज्जन जीव सुजाना।।
नारि पुरुष कवनिऊं तन धरहीं। निय स्वरूप निज सो न विसरहीं।।
जिन्हि पर कृपा करहिं भगवाना। तिन्हें लखावहिं आतम ज्ञाना।।
युगल रूप सेवा अधिकारा। पावहिं जिन्हि तिय भाव सुप्यारा।।

युगल उपासक मन क्रम वयना। सेवहिं चरण निरखि छवि अयना।।
वरणों तिन्हि के कछुक सुलक्षन। सकल यथारथ कछु प्रतिपक्षन।।
श्री सियराम युगल अनुरागी। होत उपासक जन बड़ भागी।।
युगल भावना रस मन रंगा। भूलि न करहिं विजातिनि संगा।।
युगल भाव वर्द्धक जो गाथा। पढ़हिं सुनहिं भजि सिय रघुनाथा।।

युगल चरण की आश इक, युगल धाम महँ बास।
रटहिं रटावहिं नाम नित, युगल हरण भव त्रास।।

जग प्रपंच ते काम न राखत। युगल रहस्य सुधा रस चाखत।।
करहिं मजातिनि संग निचन्ता। रटहिं बैठि नतु नाम इकन्ता।।
कामादिक मद दम्भ विकारा। त्यागि भजहिं सियराम उदारा।।
इष्ट स्वरूप नाम गुण धामा। जानहिं सबके भेद ललामा।।
युगल सुभाव ध्यान गुण गाना। करहिं सदा उर आतम ज्ञाना।।
आठऊ याम भरे अह्लादा। रहहिं पाय निज इष्ट प्रसादा।।
जो कोउ करै सु प्रश्न उपासक। युगल भाव सम्बन्ध प्रकाशक।।
यथा शक्ति तेहि बोध करावहिं। प्रभु प्रिय हेरि न तत्त्व दुरावहिं।।

पीत बसन कण्ठी युगल, पीत सु तिलक लिलार।
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रिका, सहित नाम युग सार।।

पुरुष भावना जो हिय धारे। दास सखादि तदपि प्रभु प्यारे।।
गुप्त विहार न देखन आवहिं। हठ वश परेउ दूरि पछितावहिं।।
हनुमदादि शिव धरि अलि रूपा। निरखहिं गुप्त रहस्य अनूपा।।
अस विचारि जे चतुर उपासी। हठ तजि धरहिं भाव उर दासी।।
तन ते दास सखादिक भावा। राखहिं उर तिय भाव सुछावा।।
हनुमत सम नहिं कोउ प्रभु प्यारे। दास सखादि भावना वारे।।

चारुशिला हनुमान सोइ, शिवसु सुशीला बाम।
चन्द्रकला श्री भरत पुनि, लखन लक्ष्मिना नाम।।

देखउ ग्रन्थ खोजि सब भाई। जीव मात्र तिय पति रघुराई।।

तत सुख बिनु न उपासना, बिनु उपासना जीव।
बन्धन दे छूटत नहीं, मिलत न श्री सिय पीव।।

प्रभुहिं मिलन हित भाव सु नारी। धरि उर सेइय जनक दुलारी।।
तर्क वितर्क न यहि महँ कीजै। युगल सरूप सेइ सुख लीजै।।
पति पत्नी कर भाव प्रधाना। रस शृंगार केर सब जाना।।

जो निज उर यह भाव सुधारहिं। तन दे दास सखादि उचारहिं॥
ते प्रभु प्रिय कछु संशय नाहीं। आवत जात सु महलनि मांहीं॥
कारण करन सकल रस केरे। रमाधीश शृंगार बड़ेरे॥

सुखदाई श्री सम्पदा, रामदेव सिय इष्ट।
पति पत्नी सम्बन्ध शुचि, जेहि महँ प्रद सु अभीष्ट॥

पंचसंस्कार प्रसंग

बिनु व्याही जिमि कन्या क्वारी। जानहु सहस खसम की नारी॥
जब वह करै व्याह एक साथा। अरपि अपन पौ जेहि के हाथा॥
होइ एक पति जब तेहि खासा। तब मिथ्या पति होई निराशा॥
तिमि जग जन मनमुखी विलासी। सब देवनि के बने उपासी॥
सबकी पूजा अस्तुति बन्दन। करत मन्द तजि सिय रघुनन्दन॥
प्रभु सम्बन्ध हीन तिमि नाना। भजन भाव रति भगति सु ध्याना॥
जब लगि भजत न सिय रघुराई। गुरुमुख होइ अंग वेष सजाई॥
सब देवनि की परिहरि आशा। करत न जब लगि प्रभु विश्वासा॥
तब लगि राम मिलन अति दूरी। वेष विहीन सु भगति अधूरी॥
राम भगति बिनु लख चौरासी। मिटति न पावत शुभगति खासी॥

अष्टयाम भावना प्रसंग

संबंध का महत्त्व

बात्सल्य शृंगार वा, सान्ति सख्य अरु दास।
पाँचहु रसिक सुभाव सह, सेवहिं प्रभु पिदव खास॥

बिनु सम्बन्ध स्वरूप न जानै। केहि विधि इष्ट सु सेवा ठाने॥
नाम स्वयं - सेवा - अधिकारा। भाव - परापति सुख आधारा॥
मातु - पिता - भगिनी-प्रिय - भ्राता। बंस - विचार - महत्त्व सु-नाता॥
रस - अनन्यता - इष्ट - भावना। रीति - रहस्य - प्रबोध - पावना॥
अस्थाई - निज ये सब भेदा। जानें बिन न मिटत उर खेदा॥
ये चौबीस सूत्र सुखदाई। इन्ह के भेद भाव बहुताई॥
सम्बन्धनि महँ ये सब बानी। लिखीं ललित नहिं जाइ बखानी॥
जो सम्बन्ध लेइ सो जाने। रसिक अनन्य भाव सुख माने॥

श्री वैष्णव सम्बन्ध बिनु, प्रभु सेवा अधिकार।
सपनेहु पावत नहीं, करै कोटि उपचार॥

बिनु सम्बन्ध लिये तनु जोई। छूटै नो प्रभु लहहि न सोई॥
बिनु सम्बन्ध सुग्यान विचारा। व्यर्थ यथा गणिका शृंगारा॥
लवण बिना बर व्यंजन जैसे। बिनु सम्बन्ध सु वैष्णव तैसे॥
बिनु सुगन्ध के सुमन नवीना। तिमि वैष्णव सम्बन्ध विहीना॥
बिनु सम्बन्ध भजन व्रत कर्मा। होत न वैष्णव कहँ प्रद नर्मा॥
बिनु सम्बन्ध सु वैश्नव कच्चा। वेष बनाय न प्रभु रंग रच्चा॥
वेष प्रताप तिलोकनि मांहीं। पूजे जात सु भक्त कहांहीं॥
बिनु सम्बन्ध न स्वामी सेवा। पावहिं वैष्णव सब सुख देवा॥
बिनु गौने की व्याही नारी। पति बिनु पिहर वहै दुखियारी॥
तिमि श्री वैष्णव वेष सु धारी। बिनु सम्बन्ध न मिलत खरारी॥
पाँचौ मुक्ति भक्तिरस भीना। लहहिं न जन सम्बन्ध विहीना॥

निज निज रस के ज्ञातनि, खोजि लेइ सम्बन्ध।
सेवा करि मन बचन क्रम, नशै हिये को अन्ध॥

जो अनन्य एकै रस केरे। मन बच क्रम सियवर पद चेरे॥
युगल नामरत गत मद माया। हेतु रहित जीवनि पर दाया॥
ऐसे रसिकनि के पद सोई। भली भाँति सम्बन्ध सु लेई॥
गऊ लोक विच श्री साकेता। नगर अनूपम सोह सचेता॥
कोटिनि भवन विपुल विस्तारा। रचना अद्भुत अकथ अपारा॥
गलिनि गलिनि विरजा की धारें। कलपतरुनि की लगी कतारें॥
चली वजार लतनि करिछाये। पुरवासी सुचि सुभग सुहाये॥
चहुँदिसि विविध विटप अमराई। विपुल जलाशय वरणि न जाई॥
विपुल विहार सु अस्थल सोहै। जिनहिं देखि सुर मुनि मन मोहै॥
कनक भवन तेहि पुर बिच राजै। कोटिनि भानु तेज लखि लाजै॥
अति उतंग बहु केतु पताका। फहरत निरखि सुरनि मन थाका॥
ग्यान विराग कर्म करतूती। चलति न जहँ रस केलि विभूती॥

विविधि रंगकी जटित मणि, परे झरोखनि जाल।
कलश कंगूरा अमित शुचि, सोभित सुखद विशाल॥

वाहिर महलिन की रुचि राई। अद्भुत अकथ कहहुँ किमि गाई॥
भीतर कुंज निकुंज अनूपा। बने खचित मणि विविधि सरूपा॥
बिछे पलंग बहु घले हिंडोरे। कुंज कुंज प्रति मोद न थोरे॥
चौवारिनि चित्राम सुहाये। मणि माणिक मय जायं न गाये॥
परदनि की अनुपम रचनाई। देखत बनै बरणि नहिं जाई॥

मखमलादि मृदु पाट पटोरे। बिछे लेत चित बरबस चोरे॥
जीना ललित न जात बखाने। लघु विशाल सुन्दर सोपाने॥
दीपक मणिन केर बहु भ्राजै। भेरि संख धुनि नौबत बाजै॥
समय समय अनूकूल अगारा। शोभित सुखद विचित्र उदारा॥
जब जेहि कुंज जहाँ रुचि होई। तब तहँ सुख विहरहिं प्रभु सोई॥
चन्द्रकला श्री चारु सुशीला। यूथेश्वरी उभय मन मीला॥
चन्द्रकला श्री भरत सुजाना। चारुशिला जानहु हनुमाना॥

कोटिनि यूथ सु अलिनि के, इन्हकर भुज बल पाय।
विहरहिं सुख साकेत महँ, युगल चरण उरलाय॥

जहँ देखौ तहँ ललनहिं ललना। सेवहिं दम्पति त्यागहिं पलना॥
निज निज कुंजनि यूप बनाई। बसहिं मुदित सिय पिय यश गाई॥
कुंज कुंज महँ सिय रघुराई। निवसहि यक यक ढिग सुखदाई॥
सुनि न रसिक उर अचरज मानहु। सिया अलिनि एकै करि जानहु॥

विलग विलग सुख देत प्रभु, आलिनि रुचि अनुसार।
जानहिं अलि हमरहिं भवन, राजहिं दोउ सरकार॥

कृपा खानि श्री जानकी, दया सिन्धु रघुनाथ।
बड़ भागिनि आलीं सकल, बिहरहिं सम्पति साथ॥

समय विलोकि सुदम्पति जागे। नयन चहूँ प्रेमालश पागे॥
बारहिं बार लेत अगड़ाई। खोलत मूंदत चख सुखदाई॥
ढाँकत मुख दोउ कहुँ पट टारी। देखहिं आलिनि नयन उघारी॥
अरुझि अरुझि सोवहिं कहुँ जागहिं। लखि छवि अलीं सराहति भागहिं॥
जयति जयति कहि परदा टारी। गई कहति ढिग बलि बलिहारी॥
करि बिनती ललि लाल उठाये। तिहूँ दिशि तकिया दै बैठाये॥
अलसानी छवि नयन निहारी। भई मुदित आरती उतारी॥
मंगल थार दिखाय निछावरि। कीन सुमणि गण पट प्रमोद भरि॥
उरझेउ लट भूषण सुरछाये। आलिनि अनिर्वाच्य सुख पाये॥
लेत उबासीं दोउ अलसाने। पुनि लखि लखिनि ओर मुसिकाने॥
हास बिलास होत सुखकारी। आलस बिगत भये पिय प्यारी॥
लखहिं परस्पर छवि पिय प्यारी। चिबुक निकर धरि गर भुज डारी॥
कबहुँ परस्पर सिय पिय दोऊ। करहिं शृंगार लखहिं सब कोऊ॥
येहि विधि कीन्ह शृंगार सुहावा। दर्पण लैकर आलि दिखावा॥
रीझहिं निज निज रूप निहारी। उभय परस्पर गर भुज डारी॥

कुंज कुंज महँ परमानन्दा। उमगत जात जहाँ दोउ चन्दा।।
ग्यान कला यहि कुंज मझारी। अधिकारिनि सिय पिय की प्यारी।।
धाय आइ चरणनि लपटानी। आपुहिं अति बड़ भागिनि जानी।।
तव श्री प्रीतिलता सुखदाई। सयन कुंज महँ चलीं लिवाई।।
सयन कुंज महँ सादर जाई। पौढ़ेउ सेज सिया रघुराई।।
स्यामल गौर मनोहर जोरी। सुन्दर सुखद सुबयस किसोरी।।
अवलोकहिं अलिगन चहुँ ओरी। जनु जुग चन्दहिं निकर चकोरी।।

मधुर मुरव्वा खाय कछु, सुचि जल अचवन कीन्ह।
प्रेमलता अलि बिहंसि सुख, बीरी निज कर दीन्ह।।

केलि कुंज गवने अलि साथा। चलीं पाय रुख सिय रघुनाथा।।

युगल प्रिया अधिकारिनी, कुंज हिंडोर सु माँहि।
समय जानि पठई अलीं, प्रमुदित दम्पति पाँहि।।

चले हिंडोर कुंज हरषाई। लगीं संग ललना समुदाई।।

पावस ऋतु धरि विविधि तन, सेवत प्रभु सुख कन्द।
यह रहस्य जानहिं रसिक, कोउ कोउ हृदय अमन्द।।

कबहुँ परस्पर झूलत दोऊ। उपमा योग न त्रिभुवन कोऊ।।
बाढ़त पेंग डरपि सिय प्यारी। लपटहिं पिय अंग गर भुज डारी।।
फहरत पट भूषण रव करहीं। मुक्तनि हार टूटि महि परहीं।।
छूटीं अलकें दोउ दिशि कारी। लहरहिं ललित सु लागहिं प्यारी।।
निरखहिं अलीं परम वड़ भागिनि। दम्पति चरण कमल अनुरागिनि।।
कवहूँ प्रीतम सियहिं झूलावत। लखि नखसिख छवि अति सुख पावत।।
कवहुँ चमर कहुँ विजन दुरावत। कवहुँ नचत पिय सिय गुण गावत।।

रासकुंज

सुभग सिंहासन सिय रघुवीरा। बैठे सहित सजनि की भीरा।।
रासारम्भ सु आयसु पाई। कीन्ह नाइ शिर अलि समुदाई।।

कमला - विमला - लक्ष्मना, कृपा - कौशिकी बाल।
अधो उवारा - जामुनी, वागमती - शशिभाल।।

गुह्य

रसिकनि ते मागा कर जोरी। सुनहु कृपाल विनय यह मोरी।।
गुप्त केलि दम्पति जो करहीं। यहि कर ध्यान सिवादिक धर हीं।।

रति शालादिक युगल विहारा। दूसर यह सम्बन्ध उदारा।।
कृपापात्र बिनु ये जनि भाखौ। मन्त्र समान गुप्त करि राखौ।।
विहरहिं अलिनि संग वशुयामा। कृपासिन्धु दम्पति सियरामा।।
कुञ्जनि कुञ्जनि बननि सु वागनि। विहरत हृदय भरे अनुरागनि।।
येक नारि ब्रत प्रभु उर माँहीं। रहत गुप्त बहु जानत नाहीं।।

विश्वरूप प्रभु कुञ्ज सव, कुञ्ज रूप संसार।
विहरत श्री सियराम जहँ, सेवत जीव अपार।।
रटहिं नाम तिय भाव उर, धरि दृढ़ सुजन ललाम।
चिन्तहिं चरित प्रपंज तजि, गावहिं ते सियराम।।

रघुराज-विलास

श्री रघुराजसिंह जी

महाराज

नवलकिशोर प्रेस द्वारा १९२४ में मुद्रित और प्रकाशित।

इसमें, कृष्ण भगवान् और राम के झूलन, प्रेम कहानी, होली के पद हैं। अन्तिम भाग में प्रेमपरक विनय के कुछ भजन हैं।

उदाहरण —

आली सरयू के तीर गड़ो हिंडोलना झूलत सीताराम।
मन्द - मन्द वरसत घन बुंदन।
झरत मनहुँ कलिका नव कुंदन।।
हरित वरन आराम छने छन दिशनि दिशनि दीपति दामिनियाँ।।
झमकि झुलाय रहीं कामिनियाँ।
पिय छवि दृग आराम।।
श्री रघुराज शोक सब विगरो।
पूरण पयो मनोरथ सिगरो।।
आनन्द आठो याम।।

झूलत कुंजन भीजि रहे दोउ।
प्रिय मृदु बैननि मोहि गई सिय,
सिय मृदु बैननि मोहि रहे सोउ।।
सिय झझकति हरि करनि संभारति,
सिय के कर पकरत विहंसत ओउ।

श्री रघुराज छकीं सब सखियाँ,
अंखियाँ में नहिं पलक करे कोउ ।।

प्यारी हो आजु सखि रंग - महल में झूले कनक हिंडोरे ।
चहुँकति उमड़ि घुमड़ि घन बरषत ।
गाय गाय सावन सखि हरषत मंजुल मोरवन शोरे ।
फहरत अरुन वसन छवि छहरत ।
लचकत लंक सचन रस माचत लागत पवन झकोरे ।।
श्री रघुराज सुहावन सावन ।
सरस सनेह सरस सरसावन जनक किशोरी अवध किशोरे ।।

आवत भीजत होऊ हो ।
सरयू तीर कदम्ब झुलन हित सखि सब कोऊ हो ।
वरसत मन्द मन्द घनन बुंदन चुवत अरुण पट हो ।
वै पटुका लै ओट करत कर वै गंचल तट हो ।
छहरि छहरि छिति छन छन छन छवि पुनि पुनि दुरति दिशानन हो ।
मन अघाति नहिं लखि लखि सिय रघुनन्दन आनन हो ।।
सुख सरसावन सावन सांझ सखी सब सावन गावें हो ।
मोर शोर चहुँ ओर सुहावन सिय हुलसावें हो ।
कोशल राज अनोख लाड़िलो जनक लाड़िली जोरी हो ।
बसहिं कृष्ण जन सनहिं सदा यह आशा मोरी हो ।।

रघुवर कैसी है तेरी नजरिया ।
एकहु वार परति जेहिं ऊपर रहत न तनहिं खबरिया ।।
हे अवधेश - लला बनरा बनि डोलहु डगर डगरिया ।
श्री रघुराज जनकपुर- नारी मोहें झांकि झंझरिया ।।

लला तुम होहु न आंखिन ओट ।
एक पलक विन दरश कलप सम लगत कुलिश सी चोट ।।
पीर पराई जानत हो नहिं यह सुभाव है खोट ।
श्री रघुराज विदेह- लली - पिय तजहु निठुरता कोट ।।

मेरो मन राम लला-सों अटको ।
अब तौ बरबस जाय मिलोंगी कोऊ किलेको हटको ।।
श्याम - सरूप नैन रतनारे कुटिल अलक मुख लटको ।
लखि रघुराजहिं आजु लाज को टूटि गयो री फटको ।।

आली सियावर कैसा सलोना।
कोटि मदन-मूरति न्यौछावरि दै दै सुखी चलि भाल दिठौना।
मोर डरत जिय डगर नगर महँ कोऊ सखी करि देइ न टोना।।
हौं तो जाइ ललकि गर लगिहों रैहों न देइ जो मोहिं भरि सोना।
कहर परी यह जनक-शहर-महँ छूट्योरी खान-पान निशि सोना।।
श्री रघुराज मौर वारे पर अव तो हमहिं फकीरनि होना।।

सखि आज अनूपम वेष वन्यो अवधेश-लला मिथिलेश-लली।
दोउ नैनन सैनन चैन करै रति मैन लजावत शोभ भली।।
अंगराग रंगे अनुराग रंगे शिर चन्द्रिका पाग धरै विमली।
मुसक्यात बतात अघात न आनन्द कंज मे पानि में कंज-कली।।
तनु केसरि नीर हनी पिचकी गुह ग्रीषम ताप हरै सफली।
रघुराज विराजत राज-लला बलि जात विलोकति मंजु अली।।

रघुवर खेलत सिय संग होरी।
सरयू तीर कुंज सुख पुंजन
भूषित सुखित करोरिन गोरी।।
परम रमनीय बन कलिन कंचन भवन
बहुत छनछन त्रिविध पवन सुमनोहरो।
कुन्द मुचुकुन्द बहु वृन्द आनन्द कर,
मन्द कर नन्द वन तरुन कुसुमित थरो।।
पुहुमि वहु पुहुम सुपराग - पूरित पृथुल,
झरत कल नल सकल सलिल रंग केसरी।
नदत कल कीर कोकिल निकर मोद कर,
सरयू तट करत शीतल सकल सीकरो।।

वीण डफ वेणु मंजीर मिरदंग,
मुरचंग सारंग तहँ बजत बहु बाजने।
यूवति अनुराग भरि राग, वहु रागतीं,
बागतीं वाग महँ विविधि सुख साजने।।
चलत चामीकरन चारु पिचकारि,
केसरि मच्यो कीच सउलीच बहु रंगमें।
नचति जति जति सुगति युवति तति,
रति सहित मेलि सुगुलाल रघुलाल सुउमंगमें।।

कुंज बिच सखि कहूँ सखिन बिच कुंज कहुँ,
सखिन बिच सीय कहुँ सीय बिच राम हैं।
मनहुँ कहुँ जलद बिच दामिनी दमकती,
दामिनी बीच कहुँ दिपत घन श्याम हैं।।

चूमतीं पिय - वदन घूमतीं मदमतीं,
झूमतीं हरि भुजन निदरि सुर-सुन्दरी।
छीनि पिय कर कटक चटक कर धारि,
पहिरावतीं नेहवश अंगुलिन मुंदरी।।
झुकहिं झझकहिं झपहिं जकहिं जुमकहिं जमहिं,
लखहिं ललकहिं लुकहिं हँसहिं हुलसहिं सही।
तकहिं तरकहिं दुरहिं थिरहिं थिरकहिं थरहिं,
धरहिं धावहिं धरहिं रोरिकहिं नहिं कहीं।।

लपटि कहुँ झपति कहुँ रपटि बहु निपट हटि,
जनक-तनया सहित करत सुविहार हैं।
मध्य सखि मंगलहिं निरखि रघुनन्दनहिं,
बारहीं बार रघुराज बलिहार हैं।।

आली मेरो रघुवर करत सोहाग।
लै कुसुमन बनमाल बनावत बिहरत मो संग लाग।।
मो प्रतिविम्ब विलोकि मुकुर महँ तजत तासु अनुराग।
अस रघुराज प्राण प्यारे सों रुसब परम अभाग।।

विलसति रघुवर आलि वसन्ते।
शीतल मन्द सुगन्धि - समीरित सरयू तट दिनान्ते।।
अमल कपोले कुण्डल लोले विलसत आभा पूरे।
मनसिज केतु बिम्ब इव मनसिज मुकुरत लेन विदूरे।।
कनकासने पीतपट राजित नव - नीरद - मदहारी।
कनक गिराविव मरकत श्रृंगं तदुपरि तिमिरविदारी।।
जनक सुता-वदनद्युति - पूरित पांडुर वदन - विहारी।
रघुवर वदन - नील - विभया हरिताभा जनक कुमारी।।
पवन वशादति सूक्ष्म-सलिल - कण पूरिततनुरतिकामम्।
ज्ञान वसन्तागमसरयूरिव जलैः प्रसिंचति रामम्।।
परमविशाल रसाल कुसुमकृत कुंजे मधुकर गुंजे।
सुखयति रघुराजो श्री रघुराजं सखिम- समूह - सुखपुंजे।।

राम का रूप

स्मर मद दमन कदंब कुवर बिच सखी सियावर सोहै।
नख शिख लौं अंग अनूप माधुरी लखि मुनि मन मोहै।।
रुचिर चौतनी चमक शीस महुं कुसुम कली गोहै।
चिक्कन कच घुंघवारे लसत वर अलिगन मिलि सोहै।।
केशर तिलक कलित अति भाले कुटिल शुभग भौंहै।
मानहुं काम को दंड सहित वर हाटक शरसोहै।।
कुंडल कलित जड़ाउ करण युग नासा मणि सोहै।
रदन कुन्द अरुणाधर पल्लव हास्य मधुर मोहै।।
उर वर कनक माल राजत अति मणि मुक्ता पोहै।
भुज युग अगत जड़ित बूत सुन्दर कर धनुशर सोहै।।
नाभी गहर गंभीर उपर वर मालपदिक सोहै।
कटि पट पीत कनक किंकिणि युत लखि रतिपति मोहै।।

झुकि झुकि झमकि कदंब बिटप तर सखि सिया वर झूले।
जन दुख दमनी मन प्रिय पूरणी श्री सरयू कूले।।
वन प्रमोद उर मोद देत सखि नाना तरु फूले।
चन्दन चम्पक कुंद चमेली लखि रतिपति भूले।।
गुला बांस गुलाब कदंब सुगंधे सुर तरु नहिं तूले।
उमड़ि उमड़ि घन गरजत सुन्दर बरषत अनुकूले।।
मणिन झड़ित वर कनक हिंडोले झूलत मन फूले।
कुसुम सिंगार कलित श्री सिय पिय हसत अधर मूले।।
गाय झुलावे झमकि झुकि सजनी लखि मुनि मन डूले।
उर आनंद भरी सब सजनी सुधि बुधि सब भूले।।
को वर्णे छवि छवि पर सजनी नहिं त्रिभुवन तूले।
रामनारायण स्वामि श्यामरो सब के मन कूले।।

शरद ऋतु जान के सारी।
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी।।
धरे मणि मोति की माला।
सोहै संग सुंदरी बाला।।
नचत बर नागरी राजे।
मधुर धुनि नूपुरे बाजे।।

टेरत बर तान को प्यारे॥
गावत स्वर सुंदरी न्यारे।
घुमरि घुमि लेत है घुमरी।
सुधी जब व्याह की सुमरी।
भरी आनन्द में प्यारी
पकड़ कर राम को सारी॥
मिले सियराम अँकवारी।
नारायण राम बलिहारी॥

नटत श्री रामसिया मिली जोरी।
धवल सिंगार धरे प्रभु प्यारी सोहे सखी बीच सुंदर जोरी॥
धवल निशापति सोहे शरद को धवल कांति चहुं दिगि झलकोरी॥
छुम छुम छुम पग पैंजनिया बाजे ताता थेई थेई बोलत सखियोरी।
ताल ताल मृदंग मिलावे आलीगन मधुर मधुर स्वर गावे किशोरी॥
हास विलास भई वस भामिनी देह सुधी बिसरी सब कोरी॥
पिया भुज सोहे सीय अंक पर सीय भुज सोहे पिय अंक भलोरी।
रामनारायण के प्रभु रसिया रस भीनी सुन्दर सखियोरी॥

राघो सिय खेलत होरी।
इत रघुनाथ सखा लिये अनुजन उत मिथिलेश किशोरी।
केशर कीच मची छत ऊपर रंग बरसै चहुं ओरी॥
चलो सखि देखन सोरी॥
मुख भीजो सिय जनक नंदिनी चंदन केसर घोरी।
रीझ रीझ दृग आंजि लाल के लियो पीतांबर छोरी॥
किये सब सुधि बुधि भोरी॥
फगुवा दियो है सकल मन भावन ठाढ़े युगल कर जोरी।
बंदन करत सकल जग बंदन चंदन भाल लगोरी॥
हंसीं सब सखि मुख मोरी।
राम जानकी ध्यान बसो हिय गौर श्याम बरजोरी॥
रामदास दंपति छवि ऊपर निरखि बदन तृण तोरीं।
दृगन से क्षण न टरोरी॥

हम चाकर रघुनाथ कुंवर के।
यम के दूत निकट नहिं आवें द्वादश तिलक देखि यम डरपे॥
गुरु के बचन ज्ञान दृढ़ राखो सुमरन भजन सिया रघुबर को॥

तुमहिं यांचि प्रभु और न यांचों नहिं आश्रित कोउ नारी नर को।
अग्रदास स्वामी पटो लिखायो दसखत दशरथ सुत के कर को।।

शृंगार प्रदीप

श्री हरिहरप्रसाद

सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म परमेश्वर श्री दशरथनन्दन भगवान् श्री रामचन्द्र जी तथा श्रीमती जनकसुता जगज्जननी श्री जानकी महारानी का शृंगार मनोहर दोहे, कवित्त, सवैये एवं पदों में वर्णन किया है। लेखक ने स्वयं अपने को श्री जानकी का कृपापात्र होना स्वीकार किया है। मुंशी नवलकिशोर के छापखाने में सन् १८८६ ई० में लिथो में यह छपी। इसकी एक खंडित प्रति प्राप्त है जिसमें कुल ११६ पद मिलते हैं। संभव है यह पुस्तक कुछ और बड़ी हो और अधिक पद उसमें हों। अस्तु। इसमें एक बहुत बड़ी विशेषता है कि लेखक ने दोहे और पद का क्रम रखा है और इसमें लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि लेखक ने दोहे में तत्त्व की बात अत्यन्त सांकेतिक रूप में कह दी है और पद में उसे ही भली भांति पल्लवित किया है। दोहे बहुत ही चुस्त भाषा में हैं। थोड़े से शब्दों में अधिक-से-अधिक भाव भरने की क्षमता अपूर्व है। दोहे जितने ही सांकेतिक हैं, पद उतने ही व्याख्यात्मक और विवरणात्मक। कुल मिलाकर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि शब्दों में चित्रांकण करने की शक्ति विलक्षण है और जहाँ जहाँ श्री जानकी जी के रूप, गुण, वय, शृंगार, लीला, स्वभाव का वर्णन आया है, वहाँ 'कवि का हृदय भावों से भर आता है। श्री जानकी जी की कृपा का प्रसाद कवि को प्राप्त है यह शृंगार प्रदीप' से स्पष्ट है। उदाहरण—

इत कलंगी उत चन्द्रिका कुंडल नखिन कान।
सिय सिय बल्लभ सों सदा बसो हिये बिच आन।।

बसौ यह सिय रघुबर को ध्यान।
श्यामल गौर किशोर बयस दोउ जे जानहुं की जान।।
लटकत लट लहरत श्रुति कुंडल गहनन की झमकान।
आपुस में हंसि हंसि कै दोऊ खात खिआवत पान।।
जहं बसंत नित मह मह महकत लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में अलि कोकिल करगान।।
वहि रहस्य सुख रसको कैसे जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जहं मति पहुंचत नहि थकि गये वेद पुरान।।

बिहरत गलबाहीं दिये सिय रघुनन्दन भोर।
चहुं दिशि ते घेरे फिरत केकी भंवर चकोर।।

नक मुक्ता लहरै इतै उत नथ मोती हाल।
बिहरत गलबाहीं दिये निरखहु झांकी हाल॥
जिनके अंग प्रसंत तें भूषित भूषण होत।
होत सुगन्ध सुगन्ध युत पोतो मोती होत॥
शोभा हू शोभा लहत जिनके अंग प्रसंग।
विधि हरिहर वाणी रमा उमा होहिं लखि दंड॥
तिन सिय सिय वल्लभ चरण बार बार शशिनाथ।
चरण धूरि परिकर युगल नयनन मांझ लगाय॥
देव सुधा सागर घरचो पद मुक्ता छिन जाय।
भाग्य सरिस लहि निज भणित पोतहु दियो मिलाय॥
विधि हरिहर जाकहं जपत रहत त्यागि सब काम।
सो रघुवर मन महं सदा सिय को सुमिरत नाम॥

सिय जू रानिन में महरानी और सभै रौतानी।
चितवत भौंह खड़ी कर जोरे इन्द्रानी ब्रह्मानी॥
गौरा पान लगावत रचि रचि रमा खवावत आनी।
आठौ सिद्धि खड़ी कर जोरे नवनिधि मनहुं बिकानी॥
कोटिन ब्रह्मांडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी॥
जो माया एकै घटि पर सबहिं पियावत पानी।
सोउ चाहत जाकी करुणा को बार बार सनमानी॥
जा बिनु पातौहिलि न सकत जो सब घट माहं समानी।
संत जनन की इष्ट देवता राम प्रिया जग जानी॥

श्री वन मनहीं मन में भावत।
कहत न बनत बनत वह देखत कोउ सुकृती रस पावत॥
रंग रंगीले फूल सियामय मधुकर प्रेम बढ़ावत।
भासत देखि कुंज को अंतर सिया चली जनु आवत॥
कबहुं केसरिया कबहूं चुनरी कबहुं नील लहरावत।
कबहुं गुलाली महकत पट छबि कुंजन में दरशावत॥
जेहि कारण जप तप को साधत घर तजि मूड़ मुड़ावत।
याको देखत सोई देवता अनायास उर छावत॥

जैति सिया तड़िता बरण मेघ वरण जय राम।
जै सिय रति मद नाशिनी जै रति पति जित साम॥

जयति श्री जानकी राम जोरी।
जगमग तनु गर तन जनु विमल नखत गत बदन पर वारिये शशि करोरी॥
शरद नभ श्याम श्री राम मुनि मन अगमत मनहरन जोतिसी सीय गौरी॥
दोउ मिलि राम की रामता बनि गई जहां कलिकाल की नहिं झकोरी॥
भई बड़ि भीर रघुवीर छवि लखन को झांकि झांकहिं तिया तिनकतोरी।
बरत महताव पर परत पांखी यथा प्रेम बश होय रहीं देह भोरी॥
तहां सिय मातुकी का दशामें कहों देव में भयल गिग यठ गोरी।
रीति व्यवहार तब कोक है कोक रै थकित गति देखि शशि जनु चकोरी॥

जगमग सिय मंडप में मंगल मचि रह्यो।
मंगल पुहप आपुइ जनु इहां नचि रह्यो॥
सोरह विधि शृंगार मदन मत में कहे।
अनायास ते सिय अंगन में सजि रहे॥
अंगन की उज्जवलता सों शृंगार है।
नित नयो साजै ऐसो याको विचार है॥
शृंग नाम अभिमान सो जामें नित्य बढ़।
जेहि साजत अंगन में दूनो रंग चढ़॥
आपुहि मह मह महकत सिय जु को अंग है॥
गन्ध लगावनि हारि मनहिं में दंग है॥
नील कमल से सिय दृग आपुइ अंजिर है॥
अंजन साजिन के मन तब लजि रजि रहे।
नित चिक्कन कच सिय के पिय के सनेह भरे।
आलिन तेल लसावति मन संदेह परे॥
सिय अधरन पर लाली मानहुं पीक है।
सखि कह पी कहुते यह लाली नीक है॥
अधरन ओठन तर रहि होहु उदास हो।
सोई ऊंचो जा में अमिय को बासहो॥
सिय पांयन की लाली लहलह लहकत है।
नाउन लिये महावर लखि लखि अहकत है॥
सियतन पावन उज्ज्वल गंग तरंग से।
तिनको मज्जन केवल जनकी उमंग से॥

आन न यहि मम ताते आनन नाम है।
सिय मुख ही में अर्थ बनत अभिराम है॥

माया के सब तजे हसनि में समाय रहे।
राम से धीर पुरुष हू जामें लोभाय रहे॥
राम धरे धनुवाण सुरति सिय भौंहन में।
औ सूरति सिय जू के नयन रिसोहन में॥
कानन में सिय जू के राम लोभाय रहे।
लोग कहत गये कानन ते बउराय रहे॥
देव नजरि जहं हार तितहं का ताम की।
चूक सुधारहिं सज्जन पतित गुलाम की॥
झूलत रंग हिंडोरना दम्पति भरे उमंग।
मेरु शृंग राजत मनो घन दामिनि यक संग॥

अवध बाग जस नंदन तहं ऊंचो श्री खंड।
कनक हिंडोला तहं पर्यो जामें कंचन दंड॥
जग मग रत्न अनेकन बग बग कंचन पीठ।
नाद विन्दु मंडल लसै जहं पहुंचत नहिं दीठ॥
तापर सिय बर राजत जैसे दामिनि वंत।
दोउ दिशि प्रेम झुलावत साजन सुरतइ कंत॥
राग समय मंडल बंध्यो झरन लगे रस बुंद।
रोम रोम रस भीनत मिटे ताप दुख दुन्द॥
दोउ परस्पर अमिय से बनि रहे गरके हार।
सुमनन की वरषा भई गरजन की वलिहार॥
वह कंकण वह शिर पटा वह मांनिन की माल।
इन्द्र धनुष मंडल बना पीतरंग्ति खरु लाल॥
श्रवण पुनर्बसु चोकड़ा नित सावन हिं जनाव।
देखि मोर मन हरषत पहुंची जड़ित जड़ाव॥
या जोड़ी पर वारों अपने तन धन प्रान।
पूरण मंडल मचि रह्यो वाजत देव निशान॥

सांख्य योग वेदांत को छांड़ि छांड़ि सब जंग।
चरण शरण सिय ह्वै रहहु करि मन मांह उमंग॥

सियाराम चरण चन्द्रिका

कविराज लछिमन

सियाराम चरण चन्द्रिका : जैन प्रेस लखनऊ से सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचंद बम्बई वाले ने मार्च सन् १९९८ में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमें राम और सीता जी के चरण कमलों का बहुत ही भाव पूर्वक ध्यान है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ उल्लेख्य है।

उदाहरण—

जुगल सुरंग जोग बल के कला से तल भूषन भुअन सारदा के अवतार में।
लछिमन नखन बहाली मंजु मोती लर तरल तरंगै गंग अमृत अगार में।।
राव रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्बुज पै वैर ही प्रभा जो दान कीरति प्रचार में।
विज्जु धन भार में न सिंधु वार पार में न रतन अपार में न पारस पहार में।।

देव वधूटी लवा वरसें परी किन्नरी मौज में मंगल गावें।
त्यों लछिराम सची सुभ सारदा भाल विसाल पराग लगावें।।
ना गल लीन री देवि दिगंग ना नेक प्रणाम अभै वर पावें।
मैथिली श्री रघुनन्दन के पद कज प्रभा भरे पूजन आवें।।

रामचन्द्र चरणाम्बुज त्रिभुअनपाल।
हरन जुगा जुग जन के ज्वर जय जाल।।
श्री रघुवर चरणाम्बुज आनंद कंद।
ध्यान करत जन जीतें जग जम फंद।।
सिअ चरणाम्बुज गोरे सज मणि मंच।
पारस चितामणि छवि जारत रंच।।
रामचन्द्र चरणाम्बुज गज रथ रास।
बरसत नृप सिरही रे मुकुट प्रकास।।
रामचन्द्र पद पावन सावन मास।
बरसत जन वन अमृत अचल अवास।।

श्रीरामचन्द्र विलास

श्रीनवलसिंह 'श्रीशरण' युगल अलि कृत

एक खंडित हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत् निवास में महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज के निजी पुस्तकालय में प्राप्त है। उमा-महेश्वर संवाद में सम्पूर्ण पोथी है—प्रथम अध्याय में राम की बारात का वर्णन है—भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ संपूर्ण मिथिला में हाथी पर

बैठ कर सब को सुख देते हैं। वहाँ सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों को लेकर यह शोभा विमान में बैठे देखते हैं। और फिर, पुरवासियों से मिल कर शोभा देखते हैं। मुनियों की रमणियां ने आरती की, हार पहनाये। उन्हें भी नेग निछावर दी जाती है। दूसरे अध्याय में वधू-प्रवेश का वर्णन है। इसमें 'मुख दिखाई' का प्रसंग बड़ा ही मधुर है। विवाहोत्तर देवपूजन का वर्णन तीसरे अध्याय में है। कंकन छोड़ने की लीला तथा मत्स्य वेधन लीला का वर्णन चौथे में है। मत्स्य-वेधन में श्री जानकी जी के हाथ में मछली की डोरी है और राम जी के हाथ में धनुष। रामजी वेधना चाहते हैं पर सीता जी की कुशलता से मछली बच जाती है। पंचम अध्याय में विलास खंड है—इसमें राम और सीता के संभोग विलास का बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। छठे अध्याय में 'चौठारी' का वर्णन है—जहाँ राम सीता का द्यूत वर्णन है। सातवें अध्याय में श्री राम जानकी की काम-क्रीड़ा का वर्णन है। आठवें में महारानी सभी सखी देवांगनाओं के साथ अयोध्या पधारती हैं। नवें अध्याय में राम सीता का माधुर्य विहार है। दसवें अध्याय में सीताकृत पाक वर्णन बड़े विस्तार से वर्णित है। ग्यारहवें अध्याय में परस्पर उपायानोपाहार भेंट पत्र-विलेखन का प्रसंग है। बारहवें में श्री राम-जानकी का पुनः मिथिला गमन है।

संवत् १९०७ शालिवाहन १७६२ में झाँसी में यह ग्रन्थ लिखा गया।

उरझे सियपिय नेह जाल री।
रूपरासि सियप्रिय सुह्लादिनी रसिक सनेही नृपति लाल री।।
रदछद रद सुगंउ करधारी प्रीति विवस रस सिंधु बाल री।
युगल अली जीवो तुर पति रसभोगी दृग निधि विमाल री।।

सखि री मोको भूलति नहिं सिय प्यारी।
केलि निकुंज ललित सज्जा पर प्रिय तमाल ढिग कनक लता री।।
आल वाल सखिजन मंडल मनु फूली ललित साखा सुभुजा री।
युगल अली सुमनोरथ फूलवर फूलत फलत सुरहत सदा री।।

सेज हिंडोरो सोवत पिय प्यारी।
गावत गीत झुलावत नागरि रूप राशि जोवन मतवारी।।
मोद सुकुमारि अंग सेवा पर पान करत माधुर्य सुधा री।।
चमरी विजन मोरछल कोऊ रूप प्रशंसा कर कोई नारी।
चहुं दिसि कोटिनि राजकन्या सेवत दंपति रूप महा री।।

आजु री सिय छबि अधिक बनी।
निज कर श्री नृप लाल सिंगारी अंग अंग सोभा अति ही जनी।।
मुक्ता मांग सुमन वेणी रचि सीस चंद्रिका रचित मनी।
बेंदी भाल वंदि श्रुति भूषण जटित विविध विधि हीर कनी।।

छूटी अलक कपोल उरोजन जनु सिव सीस सुराज फनी।
नथ मुक्ता अधरों पर राजत मनहुं सुवाकन कीर चुनी॥
स्याम वरन कंचुकी कलित छबि गल भूषण सुषमा सु तनी।
भुज सुकुमार सोहाय आभरण ललित मुद्रिका जटिल पनी।
लहँगा सुभग किंकिनी कटि में कटक सुहंसक ललित ध्वनी।
युगल अली सीता अंग सुख मानिसि वासर हिय नेन सनी॥

भावनामृत-कादम्बिनी

श्री युगलमञ्जरी जी

हस्तलिखित प्रति, श्री हनुमत् निवास में सुरक्षित—यह रस भावना का सुन्दर ग्रंथ है। पन्ना ५५। साहित्य की दृष्टि से यह ग्रंथ अद्वितीय है। भाषा बड़ी ही रसमयी रसभरी है—

प्रेम विवस हियरे लगत जिया लेतु चुराय।
हँसि हँसि रसवति आकरत भरयो सिंगार सुराय॥
कल कपोल कुण्डल हलक अलक झलक छवि देत।
ललकि ललकि हिय सों लगत पलक चित्त हरि लेत॥
झूमि झूमि झुकि झुकि परत दिये अंस भुजमाल।
हँसि हेरत चित चोरहीं कब देखिहैं सिय लाल॥
अलकैं उरझीं चंद मुख दृग कपोल लसि पीक।
अंजन अंजिन रदसुपट सिय पिय अलिथ वदीक॥
अलसाते सुदृग मदन सुभाते वैन॥
उठे सुहाते सेज पर कब देखिहैं अलि नैन॥
करि करि चिंतन सेज सुख वितई जाम सुनीठि।
तिनकों अलि कल परत कस सदै बसियें पिय पीठि॥

उरझीं अलकैं कुंडलन हार हीय उरझानि।
अंग अंग उरझे दोऊ उरझी छवि हिय आनि॥
सुरझावन लागीं अली उरझि गए सब अंग।
यार झूमि उरझे सदा रसिक हीय दृग संग॥

भली बनी छवि आज की नहीं कहीं कछु जात।
मुनि जन तिय करि देति हैं, नारिन की का बात॥
छोड़ि जुलुफ गल बांहि दै हिय गजमुक्ता हार।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार॥

सीतावल्लभ लाल की सुछबि बिलोकिय तीय।
हँसि हेरत हिय सों लगत भरे नेह कमनीय।।

सुखद सेज पर राजहीं सेवत सखी समाज।
गौर स्याम सुखमा अयन रसिक सिरोमणि राज।।

समय-रस-वर्धिनी

श्री सियाअली कृत

एक हस्तलिखित प्रति खुले पन्नों में हनुमत् निवास में प्राप्त है। कुल ९५ पन्ने है। कुल ग्रन्थ कवित्त सवैयों में है। आरम्भ में नाम माहात्म्य है। फिर मिथिला माहात्म्य है। तदनन्तर है श्री सीता जी की छवि का वर्णन।

उदाहरण :

सोहत नील निचोलनि पै घन अन्तर में दुति ज्यों चपला की।
गांथें अनेक अमोल नगें जिनि छीनि लई छवि चन्द्रकला की।।
प्रेम सखी मुक्तागन रव छलै रै लरै विरची कमला की।
दृष्टि हटी न चली सिया के उरहार विलोकत राम लला की।।

इसके अनन्तर लीला और धाम का वर्णन है। तदनन्तर सीताराम के संयोग का वर्णन है—

प्रात लाल जागे सिया संग रति पागे अंग अंग छवि पै अनंग कोटि वारे हैं।
रतन पर्जक पर अंक धरे प्यारी निधि रंक ज्यों निसंक छिन होत नहिं न्यारे हैं।।
छूटे बार भार वनमाला उरहार जूटे बार बार घूमे रसमत्त दृग तारे हैं।
घूमि घूमि जात अलसात ओ जह्मात दोऊ मन्द मुसकात राम सखे प्राणप्यारे हैं।।
छूटे केश पानपीक मण्डित कपोलन पै लटपटे पाग पेच अटपटे वागे हैं।
मर्गजी माल वक्ष कुमकुम लपटाय स्वच्छ अंग अंग ढीलियों अनंग रंग पागे हैं।
भाल पद जावक सौ अंकित पिय अवधि लाल रामसखे नई बाल संग अनुरागे हैं।।

नित्य रासलीला

श्री सियाअली

श्री हनुमत् निवास में पत्राकार प्रति हस्तलिखित, कुल ४१ पन्ने। कवित्त दोहे चौपाइयों में—आरम्भ में श्री अयोध्या की शोभा का बड़ा ही भव्य मनोहर वर्णन। नाना प्रकार के फूलों, फलों, वृक्ष-लताओं, पक्षियों का बड़ा ही सजीव चित्रण। तदनन्तर महल का महान् मंगलमय स्वरूप वर्णन, तथा कुञ्जादिकों की शोभा विस्तार। फिर युगल मिलन—

सुमन सेज सियालाल रंगीले
करत केलि रस रूप उज्यारे।
कर कमलन गण्डन दोउ धारें
पीवत रस पिया राजदुलारे।
रंग ललित रंगन पर राजत
पुनि सुकलिन कमलन कर वारे।
चूमि रहे दोउ अंग मनोहर
जिमि मधुकर सरोज मतवारे।
विहंसि विहंसि कछु कहत छबीले
सिया अली अलि सों छवि धारे।।

देखो आली सोभा अतिसै बनी री
रतन मनिन्ह जुन जड़ित सिंघासन
तापर जुगल किसोर रागिनी भीजे
अंग सिन्द मुखश्रम तें जनु रवि बाल
सुअभिन घणी री ।
हीरन में सिर क्रीट चन्द्रिका मोतिन की छवि अमित तणी री।
अलकन लोल, कपोलन ऊपर नासा बेसर अलक जणी री।
रद तमोल दुति मैन वार वहु सो छवि कवि को कहत भणी री।
श्रम जल विन्दु विराजत मुख पर सिया अली अति सुख सों घणी री।।
पीत स्याम औ अरुन कमल पर छलकत स्याम की ओसकणी री।

सीतावर राम रवन नटवर वरवेश धरन
जुवती मन मोद करन निरखो सखि सो री।
अंगन्ह दुकूल कसैं दामिनि द्युति अति सुलसें
भाल तिलक भृकुटि मंद अतुलित छवि त्योंरी।
चिकन सुनि चिकुरि माह जूही सुमनन सुचाहि
अधर अरुनतर कपोल धारी दृग बोरी।
कुण्डल मृदु अति अमोल झूमत नागिनि सुलोल
सुन्दर सुकुमार अंग चन्दन सुचि खोरी।
नैन अमल अरि सुमैन विहंसत कछु कहत बैन
छवि समुद्र मनो तरंग नासा मनिहि लोरी।
धारे भुज अंस ललन नींदत गति हंस चलन
सिया मुख ससि दृग चकोर दृग सों दृग जोरी।

सोभित भामिनि सु साथ पिय उर घन तड़ित गात
जिमि भुअंग रहि दुराय चन्दन अंग कोरी।
भौंह कुटिल लसि अपार बिन्दा सुखमा की सार
मुख सुचन्द्र माननि मन लाल केरि झोरी॥
खंजन दृग जोरि हँसत जोवन मह जोर कसत
अंगण प्रति रस लखाय प्रीतम चित चोरी॥
वेणी सुमनन अपार गुही अलिगन सँभार
राखे पीठी दुराय नागिणीपतियों री।
क्रीट जड़ित मनिन्ह चारु मोती मानिक सुपार
झुके सिर सुचन्द्रिका जु उरझै दृग गोरी॥
सोभा ससि जुगल बदन नख सिख सुखमा की सदन
लोभे रति काम कोटि अंगन प्रति दोरी॥
बाजत रव विन मृदंग नाचत मति अति सुगन्ध
गावत नव सरस रंग ललना चहुँ ओरी॥
राजत नृप राज सदन वन प्रमोद सघन कुञ्ज
लीला ललित करनि काम रूप सो धरोरी॥
मांगत सिया अलि सुदान लुब्ध मधुप इव सुजान
बसों सहित भामिनी सुकमल नैन मोरी॥

इसमें जल-विहार का वर्णन बड़ा ही रससिक्त है।

दम्पति रुख अति पाइकै चारु शीला हंसि बोल।
चन्द्रकलादिक हेरितन करिय सकल दुई गोल॥
एक दिसि स्याम सब अलिनि युत एक दिसि सिय संग वाल।
लागे छीनन वारि कर अति सुप्रेम दोउ लाल॥
नाना भेद फुहार में छीचि राम सिय वाल।
मुखन लेह जल मेलि मुख बड़ी प्रेम छवि॥
छूटि अंग अंग वसन छिपि योवन दृग हहरा जाल।
सहि न सकत प्रिय विकल मन लपटि लपटि उरझात त॥
विवस अंक भुज मेलिकै मुख सों मुख हंसि मेलि।
चंचरीक जिमि जलज महँ करत विविध रस केलि॥

लाल अंग वर स्वाद सुजागी
पिउ पिउ स्याम कहन सो लागी।

रच्छद करि गण्डन भुज भारे
सुरति केलि सखि गावहिं न्यारे।।
जिमि कंचन गिरि मेघ सुहाई
तिमि सुलाल पिया उर में छिपाई।।

जे० बदी १, संवत् १९२९

श्यामसखे की पदावली

गोस्वामी श्री श्यामसखे के ४४५ पदों का यह वृहत् संग्रह कनक भवन अयोध्या से श्री लक्ष्मीशरण रामसनेही जी से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वालों ने प्राप्त कर लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १८३८ ई० में छपवा कर प्रकाशित किया। युगल सरकार सीताराम के रूप रस एवं लीला-विलास के पदों का यह संग्रह अपने ढंग का अकेला है। भाषा में कहीं-कहीं पंजाबीपन है और कहीं-कहीं भोजपुरी का पुट भी मिलता है। ध्यान देने की बात है कि श्यामसखे जी न केवल रसिक भक्त हैं, परन्तु एक सधे हुए गायक भी हैं। समस्त राग और उनकी रागिनियों का इतना अच्छा भावपूर्ण उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा में बहाव है और कहीं-कहीं उर्दू फारसी के शब्द भी आये हैं, जो बहुत प्यारे लगते हैं। सम्पूर्ण रामलीला इसमें आ गई है और सीताराम के मिलन, झूलन, दरस परस और विरह का जैसा मनोहारी वर्णन श्यामसखे जी ने प्रस्तुत किया है और ऐसे भव्य रूप में कि वह अन्यत्र मिलने का नहीं।

अस्तु, इस विशाल ग्रन्थ से कुछ उदाहरण देने का लोभ-संवरण करना कठिन है—

सिय पिय आजु सरस रस भीना।
सुफल मनोरथ भयो हमारो जगो जानकी ये वर दीन्हा।
दरसन हित लालच उर बाढ़ी भई है बिकल लखि रूप नगीना।
श्याम सखे विरहिन मन मोहन वसहिं दृग सिय राम नवीना।।

चलु देखु सखी तन सांवर को।
सिर मौर धरे सिय को बनरो।
श्रुति कुण्डल डोल कपोलन को।
छवि नासा मोतिन की लहरो।
चित खैंचि गहे मिथिला पुर को।
तिरछी चितवन दृग हे कजरो।
बिसरे नहिं श्याम सखे जिय सों।
कर कंकन सोह हिये गजरो।।

चित्रकूट चलु हे सखी फटक सिला के ओर।
श्यामसखे निज सखिन ले विहरे राजकिशोर।
चित्रकूट चम्पक लता चामीकर तरु छांह।
चन्द्रकला विहरे धरे श्याम सखे गलबांह।
चित्रकूट कलि काम तरु काम कामदा देत।
राम धामदा सेइये श्याम सखे यहि हेत।
चित्रकूट वन बाग में चारि भुजा ब्रह्मेश।
श्याम सखे सखि रूप धरि सेवहिं राम नरेस॥

रघुवर कैसे बिसरिहो बतियाँ।
कब तो होय सांझ घरबाती मेरी तो लागि सुरतियाँ।
नदिया तीर भई जो बातें रस बस भीजी मतियाँ।
श्याम सखे मैयाँ श्याम सलोने तोकों लगैहों छतियाँ॥

रघुवर आए नवल बनि नारी।
करि सिंगार सुघर बनिता की सिर पर गागरि भारी।
बीते रात कहत घर घर में त्यों जल पियनिहारी।
श्याम सखे मैयाँ रसिक बहादुर करत विहार विहारी॥

दृगन बिच छाय रह्यो राघो जी के नैन।
लाली निरखि छकीं मन आली सब तन में मद फैलि रह्यो।
श्याम करत घायल निसु बासर सीतल सिसिर दै रह्यो।
श्याम सखे बांकी चितवनियां पर हूँ बिनु मोल बिकै रह्यो॥

चित चोरे प्यारे राघो की रसीली बतियाँ।
टेढ़ी भौंह जुल्फ पर टोपी निरखत भूलि गई मतियाँ॥
नहिं भावै घर को सुख सम्पति नहिं भावै पिय संग रतियाँ।
श्यामसखे दिन राति मैंया को अस मन होइ लगावों छतियाँ॥

हमारे मन सियवर के रस रंगी।
जब से सियवर के रस राती तब से भई चित चंगी।
धसनि फुलेल हंसनि जुबनी संग फीको लागति संगी॥
श्याम सखे बिनु देखे माधुरी जोवन जात उमंगी॥

निरदई श्याम से नैन लगी जल भरन भूलि गई गागरिया।
टेढ़ी शिर पाग लटै बगरे तन सांवर गावत रागरिया॥

मोहि देखि भभूत चलाइ दिया तब से चित चैन न नागरिया।
इत छैल के छौ रस ते न छकी भारी डर है उत सासुरिया।
इतहू से गई उतहू से गई वदनामी लई शिर सागरिया॥
पिय नेह के कारन छांड़ि दियो सारे घर लाज उजागरिया।
बदनामी उठाइ के श्याम सखे रसिया से मिली गरे लागरिया॥

पनिघट पर हमको मोहि लई दशरथ के प्यारे सांवरिया।
जल भरत धरत कटि करकि गई सरेखत सारी सरकि गई निरखत छवि।
घूंघट उघरि गई चित चंचल ज्यों भई बावरिया।
फिर संभरत धरि धरि शीश घड़ा मन मोहन वालन नजर पड़ा।
दृग लागत चौगुन चाह बड़ा सुधि भूलि गई घर गांवरिया।
धरि खींचि लई पिय पीत पटा मानों दामिनि के संग मेघ घटा।
बिनु मोल बिकी हम श्याम सखे पिय के संग दीन्ही भांवरिया॥

ठाकुर से मेरो ध्यान लगोरी।
ठाकुर दशरथ लाल हमारे ठकुराइनि मिथिलेश किशोरी।
बैठे कुञ्ज धरे गल बहियां चन्द्रकला विमला चहुँ ओरी।
श्याम सखे दम्पति छवि निरखत पिय प्यारी की सुन्दर जोरी॥

मेरो मन बावर भई आली।
निरखि निरखि नैनन की कटा छटा।
जुल्फ जाल खौर भाल मुक्तन के गरे माल आसपास बालचाल में नटा।
दीन्हे गर बांह बांह सरजू तट कदम छांह खेलत कर कमल सखी माधुरी लटा लटा।
रसिकन सोय धरत ध्यान जीवन धन प्रान मान श्यामसखे पपिहा पिय से घटा॥

लला छवि - भामिनि आज करी।
टेढ़ी पाग सुरुख रंग जामा जुल्फनि पेंच परी।
छड़ी गुलाव लिये कर गजरा कुञ्जन मांह खरी।
श्यामसखे पिय भेंट भई है हंसि उर मालधरी॥

रसिक सिरोमनि राम।
विहरें संग लीन्हें वाम।
चन्द्रकला किसला विमला सखि राजति पिय चहुँ ओर।
कनक लता के मध्य जुगल जनु दामिन के संग मोर॥
झुकि रहीं अलकैं लट काम। बन किशोर जहँ गुल्म लगे हैं गावत अलिगन गीत।
शुक दादुर पिक हंस चन्द्रिका पिय प्यारी रस रीत।

गजरा मोहैं अभिराम।
कोई मुख पान खिलावत भावन कोई आदरस देखाय।
कोइ सखि करनि गुलाब फुहारें कोइ कर धरि उर लाय।

अंखियन मारें छवि धाम।
धिधिकट धुधुकट मृदंग बजावत कोई सारिगम गति तान।
कोइ पट खैंचत सैन दिखावत कोइ कर रति उत्थान कोइ श्रम पोंछे तन घाम।
रसिकन हित पिय करत रहस रस पूरन रस सिंगार।
यह रस जान शंभु सनकादिक सिय पिय राम विहार।

निज उर धारे सखे श्याम।
आवै गलबांह धरे हो प्यारी जी की छवि रसमाते।
प्यारी की लट कुण्डल अरुझाने सरुझन कौन करै।

जगे अंखियन रसराते।
फूल उड़ावत गेंद खेलावत सो सुख कहि न परे।
पगनि धीरे धीरे घर जाते।
श्यामसखे यह युगल माधुरी मन अभिलाख करे तनक मोहि तन मुसुकाते।

चलु सखि पौढ़े राजकिशोर।
कनक भवन के ललित कुञ्ज में दुति दामिनि छवि जोर।
जनक लली चरनन पर लोटत रस बस करि घन घोर।
महलन में मञ्जरी अलापें मधुरी तानन सोर॥
श्यामसखे सखि पीत पिताम्वर लै आई बड़े भोर॥

सांवली छवि वनि आई है।
अधर बिम्ब फल मधुर सुधाकर सुख रस सरसाई है॥
मांग मोतिन सों छाई है।
राहु मदन जुग मीन पीन शशि मिलन सोहाई है॥
दशन दाड़िम सरमाई है।
पान पीक झलकै. कपोल कण्ठा रुचि राई है॥
कंचुकी ललित लगाई है॥
अंगिया भरे सनेह गेह प्रीतम फलदाई है॥
सकल सोभा अधिकाई है।
श्याम सखे मुसुकात मिली पिय के गरे लाई है॥

कगवा बोले मीठी बतिया अचरा डोले रे मोरी।
गगन मंदिल चढ़ि डोरिया लगै हों बिनु पनिहारी की गोरी।।
पंच पकवान पिया को जेवैं हों अन्दिया चारों सेज डसैहों।
श्याम सखे ले सेज सुतैहों हिलि मिलि करिहों रे भौंरी।।

चूनर मोरी भीजे हो राज।
रिमि झिमि बुंद परत चूनर पर सासु ननद की लाज।
श्यामसखे तुमसे रस बस भई अब घर की नहिं काज।।

मन बसि गई सरूप निहारे।
बाबा हो मोरि ब्याह करा दे रघुबर राज दुलारे।
मोरा जीवन मों अरुझानो सरुझत नहीं सभारे।
श्यामसखे मेरी ब्याह करा दे पजि कै लोक विचारे।।

पिय विनु सखी नींद न भावंदा।
छन आंगन छन गैल अथाई छन जुग जामिनि जावंदा।
शीतल शशि कर निकर हुताशन जलद मनहुं बरसावंदा।
श्यामसखे कद वा दिन आवें भेंटो पिया गरे लावंदा।।

सजन संग सोइया रे राती आली रे बिरह भरी सारी रात।
बन प्रमोद जहँ सीतल छहियां फूली रही जल जात।।
सेज सोहावन रस उपजावन पुरवैया सरसात।
फूलन के नख सिख लों गहना पहिराये भरि गात।।
श्यामसखे सैंया अवध रंगीले हंसि हंसि पूंछत बात।।

श्याम विनु नीको न लागत धाम।
दिन दिन देह भई दुबरी सी रट लागी सियाराम।।
कब मिलिहैं पिय बाल सनेही बीते युग सम जाम।
श्याम सखे मोहिं भेंट करा दे ताकी होंगी बाम।।

लाल मोहिं आस तेहारी हो।
सुनिए कोशल चन्द के एक अरज हमारी हो।
तुम जल निधि हम सरिता हैं तुम पति हम नारी हो।
तुम बासर हम राति है तुम चन्द हम चकोरी हो।।
तुम नायक हम नायका गठ बन्धन जोरी हो।
नात बात तुमसे भली जग नेह लवारी हो।।
श्याम सखे अपनाइए सब चूक बिसारी हो।।

संवलिया कैसे धरों जिय धीर।
बिनु देखें तोरि सांवन्हि सूरनि अंखियां ढरकत नीर।
हम तुमरे जिय हम तुम जाने सासु ननंद बेपीर।
छन छन देखत रस उपजावत बिछुरत बिकल शरीर।
श्याम सखे को दरद मिटावै बिनु बालमु रघुवीर।।

किन बिलमायो री।
बारी वयस सखी कंपति रहति दुख अमित मदन कर जरत झरत मद अंगियां अंग भिजायो री।

मास असाढ़ बूंद बरसावन सावन सब सखि झूल झुलावन।
भादों रैनि भयावन सखि री हियरा मोर डेरावन।
आसि बन कमल कली बिन सायो री वे।
कातिक दिनकर अरघ मनावति अगहन मांग कढ़ाइ बिलखि पिय बिनु गुनि गुनि मन श्यामसखे मोरी अंगिया जोर जनायो आयो गरवां मोरे लायो री वे।

सैया संगे ससुरा में रहब पियारी।
नैहरा के पाँचों यार भये बैरी।
जो भी न रहा सो ननंद बिगारी।
छोड़ दियो संग की पचीसो सखियां पिया पिया लागी है रटन हमारी।
श्यामसखे हम भइ है सुहागिनी फिरि नहिं पिसव नैहर जत सारी।।

चढ़ियो न जाय मोसे सैयाँकी अटरिया।
दश औ पाँच थान का लहंगा बीस पाँच लागे मोतिन की नरिया।
बड़ी दूर पिया केर अटरिया।
कसकि कसकि उठे कमर हमरिया।
श्यामसखे जिय हुलसि हुलसि रहे रस बस सैयां जी जोरि हों मैं यरिया।।

अटरिया कैसे के चढ़ि जाउं।
तीनि महल को लाल अटरिया सैयां सेज लजाउं।
पाँच सखी मेरे बैर परी हैं पाँचे देखि डेराउं।
श्याम सखे मैं तो बारी सुहागिनि ठाढ़ी भई पछिताउं।।

सुधि आइ गई सैयां सपन वारे।
बौरी सी फिरों अंगनवारे।
दिन अंधिआर राति उजिआरी देवरा बोलावे भवनवां रे।
श्याम सखे रहे गगन मन्दिर में काहे को कियो गवनवां रे।।

ढरकि गई रे मोरि बारी उमरिया।
बारी वयस परदेस सिधाये तब से न लीन्हीं खबरिया।
कबहुँ न डीठि बलमु से लाई कबहू न सोई अटरिया।
लै चलु श्यामसखे जहँ बालमु फिरि मनिहो तोरि निहोरिया ॥

श्री सीताराम-शृंगार रस

श्री महाराजदास जी

श्री जानकी घाट अयोध्यापुरी के महन्त महावीर दास जी उपनाम जनमहाराज ने 'महा-रामायण' के आधार पर श्री सीताराम के शृंगार का वर्णन दोहे-चौपाइयों में किया है। यह छोटी-सी पुस्तिका राजपाली प्रेस, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद से सन् १९१५ ई० में छपी। आरम्भ में भगवान् राम और भगवती सीता का परत्व-वर्णन है। इसके अनन्तर युगल सरकार के चरणचिह्नों का वर्णन है। तब दिव्य साकेत धाम और उसमें दिव्यलीला-विहार का वर्णन है। अन्त में दो घनाक्षरियों में प्रणय निवेदन है। उदाहरण—

दिव्य अयोध्या

बिरजा तट इक नगर सुहावन।
परम रम्य पावन मन भावन ॥
दिव्य अयोध्या ताकर नामा।
दम्पति धीश जहाँ सियरामा ॥
द्वादश दुर्ग बने अति सुन्दर।
एक मध्य जो परम मनोहर ॥
विद्रुप चौखठ तड़ित केवारा।
इन्द्र नीलमणि जगमग द्वारा ॥
कंचन मणि मय भीति सुहाई।
कहौ कवनि विधि वरनि न जाई ॥
क्रीट चन्द्रिका परम प्रकासा।
तहँ नहिं रवि शशि करहिं निवासा ॥
अति सुगन्ध मन्दिर शुचि शाला।
तहाँ फेन सम सेज रसाला ॥
हरित लाल मणि जंगलन झलकै।
अगणित राम सिया छवि छलकै ॥
ताहँ मणि मोतिन की झालरि।
जगमगाति आंगन द्युति लालरि ॥

स्वेत हरित सिन्धु रमणि सोहै।
आंगन छवि लखि सुर मुनि मोहै॥
उत्तर कौशिल्या अज नन्दन।
प्राची दिशि हनुमत करै बन्दन॥
दक्षिण लखन उर्मिला स्वामी।
करशर धनुष युगल अनुगामी॥

भरथ शत्रुहन परम शुचि, मांडवि संग अनुरूप।
श्रुतिकीरति शृंगार मय, सेवहिं रघुकुल भूप॥

कामियों को नारि जिमि तृषित को वारि जिमि भौरन को प्यार जिमि फूलन कतार हो।
पंकज को भानु जिमि मुनिन को ज्ञान जिमि रंकन निधान पिक ऋतु सुविहार हो॥
सुत जिमि मातन को नेह गोत नातन को हंस मन भावै जिमि मानस किनार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिय कोशिला कुमार हो॥
दीपक पतंग जिमि राग है कुरंग जिमि मणि है भुजंग घृतपावक अहार हो।
नीर हूँ को क्षीर जिमि प्राण को शरीर जिमि नैन को पलक मोर घन रव प्यार हो॥
चातक को स्वाति जल पातक को पाप भल सती शिव पिव रति भावै जिमि मार हो।
जन महाराज कर जोरि कहै बार बार तिमि प्रिय लागो सिया कोशिला कुमार हो॥

जैसे भौंरा सुमन रस, तैसे सन्त सुजान।
राम सिया रस माधुरी, करे निरन्तर पान॥
रमा उमा ब्रह्मानियां, सिया चरन की आस।
जाके बस सब देव हैं, कृपा कटाक्ष निवास॥

श्री राम प्रेम मंजरी

प्रेममञ्जरी विलास

श्री जानकी घाट अयोध्या के श्री गुरु हुजूरी जी महाराज के प्रधान शिष्य श्री महावीरदास उपनाम श्री महाराजदास जी के रचे हुए श्री सीतारामोत्सव विहार के पदों का यह संग्रह पं० श्री रामवल्लभाशरण जी की अनुमति से देशोपकारक यन्त्रालय में सन् १९०७ ई० में छप कर प्रकाशित हुआ। आरम्भ में श्री गुरु वन्दना है, तत्पश्चात् श्री गोस्वामी जी की वन्दना, श्री सरयू जी की वन्दना, अन्तर्गृही की परिक्रमा, श्री सरयू जी की बधाई, श्री हनुमत् जन्म बधाई, फिर श्री सीताराम युगल सरकार का ध्यान और लीला-रस का आस्वादन-वर्णन है।

सिया छबि नयना सुखकारी।
देखि रूप रति मन मारी।
मुख मंडल बहु राकाशशि छबि उपमा कबि हारी।
सिर पर केश अमित अलि शोभा नागिन लटकारी॥
गौर अरुण शुभ अंग मनोहर अरुण चरण नारी।
अरुण ललाट चंद्रिका बेनी उदित तिमिर हारी॥
भूषण बसन अंग में जगमग नील पट्टसारी।
कंठा कंठ मनिन उर गजरा दामिनी झलकारी॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता राम प्रिया प्यारी।
दास महाराज युगल पद बंदौं मोमे पतित तारी॥

अब देखु अली सियाराम लला मनि मंदिर में मन मोद भरै।
छबि आनन्द कंदकला झलकै चहुं ओर प्रकाश बिलास करै॥
सजनी सजि आजु समाज बनो फुल दूलह दुलही देखि तरै।
महाराज सुदाम के प्रान इहै दृग में दोउ मूरति प्रेम करै॥

आली निरखहु छबि अब प्रेम पिया।
जाके बदन मयन मत शोभा चितवन में चित अमल किया॥
जाको सत सुरेश सम बैठक सिंहासन पर बाम सिया।
जाको यश गावत सुरनर मुनि कवि कोविद शिवनाम लिया॥

मज्जन मंमति चकोर चिते राम सिया रस रूप।
जैसे चन्दाशरद की शोभा अमित अनूप॥

कमल नयन खंजन दृग अंजन पीत बसन तूला।
अलि सब रामसिया मुख हेरत निमिष निमिष शूला॥
अवधपुरी कुंजन की शोभा सुमन मनिन झूला।
रतन कनक मणिमय रच्यो नगन जड़ित चहुं ओर॥
राम सिया प्रतिबिम्ब छविलेत सबन चित चोर।
दास महाराज युगल छबि नख सिख दरस नयन खूला॥

निरखत सखि झूलन की छबि।
रतन जड़ित मनि मय जगमग दुति मनहुं इन्दु के अटा॥
तामें शोभितराम सियाजू सुरंग बसन अंग डटा।
सावन लता हरितद्रुम पल्लव उमड़ि घुमड़ि घन घटा।
बरिसत मेघ चहुं दिसि रिमि झिमि दादुर पपीहा रटा॥

सावन सुख आनन्द भयो है उमगि नीर भरि नटा।
दास महाराज युगल छबि चितवनि प्रेम अमिय रस सटा।।

युगल छवि आज बनी बांकी।
अरुण चरण फल सुखमा की।।
शरद रैन भइ इंदु प्रकाशित अमृत मय छाकी।
सुकुल वरण सब असन बसन हैं कमलनयन जाकी।।
बैठे सुघर रसीले रसिया निरखु अली झांकी।
घेरि लिये चहुंदिशि में मनि गन जैसे चंद्र चकोर ताकी।
बाजत ताल मृदंग सितारा सुरमुनि गावत जश जाकी।
दास महाराज हृदय सुख छायो राम सिया दोउ फल पाकी।।

सजि साज समाज युगल रसिया।
बैठे कनक भवन में शोभित दरसन करत नयन बसिया।।
भूषण बसन बिचित्र अंग में क्रीट कनक मनि सिर लसिया।
कमलानन दृग जुल्फ अली सम मानो पीवत झुकि झुकि रस रसिया।
गान करत अवलोकि पिया सुख दास महाराज रसिक फंसिया।।

सखि आये कुंअर अलबेला।
देखु देखु छबि परम प्रकाशित गही नयनन कर मेला।
कैसो रूप अनूप है सजनी कोटि मदन मद हेला।
अवध छैल दोउ बीर बांकुरा तुरिहै धनुष करि खेला।
दास महाराज निरखि किन लीजै दान अमर पद देला।।
सिया जी सैन दियो सखियन को लेहु ललन को घेरी।
काजर करि चुनरी पहिराई नाच नचाइ को तान दई सिरदंग तर ताल परी।
लखन लाल जी को चन्द्रकलादिक पकड़ लियो बरजोरी।
कमल नैन मुख निरखत सजनी हंसि हंसि बात करी गले पर बांह धरी।।
भूषन बसन रंग से भीज्यो भीज गयो तन गोरी।
दास महाराज सुमन सुर बरसत रंग में रंग करी गुमान में आप भरी।।
नैना रंग से भरी।।

युगलोत्कंठ प्रकाशिका

जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभशीला' जी

श्री राजकिशोरी वर शरण (परमानन्द जी) ने श्री रहस्यप्रमोद भवन जयपुर मंदिर, अयोध्या से दूसरी बार संवत् १९९४ में प्रकाशित कराया। प्रथम संस्करण में यह पुस्तक श्री सीता-

रामशरण भगवान प्रसाद जी ने 'रसिक उरहार' नाम से छपवाया था। वस्तुतः इसमें 'विनयमाला' और 'रसिक उरहार' दोनों ही सम्मिलित हैं। 'युगलोत्कंठ प्रकाशिका' में आरंभ में दोहे हैं और बाद में गेय पद।

विषय—आरंभ में परिकरियों सहित श्री स्वामिनी जी की वंदना है। रस से भरे दोहे बड़े ही भावमय हैं। संपूर्णग्रंथ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। लीला रस के वस्तुतः आस्वादन एवं अनुभव से ओतप्रोत है। विरह ऐसी तीव्रता वेदना और उसका ऐसा निश्चल वर्णन अन्यत्र नहीं मिल सकता। कृष्ण भक्त कवियों में जो स्थान घनानंद का है, रामभक्त कवियों में वही स्थान जयपुर चंदेली का है।

उदाहरण—

परिकरि युत श्री स्वामिनी, सुख विवर्धनी साथ।
हमको दीजे सुख सदा, अब गहि लीजे हाथ॥

पद पंकज देखे विना, वृथा जन्म जग जात।
सीतावर जुत मिलहु अब, छिन पल कलप विहात॥

हे सीते नृप नन्दिनी, हे रघुराज कुमार।
तुम बिनु व्याकुल चित रहत, रही न नेकु सम्हार॥

असन वसन कुल कान तजि, सब से भई उदास।
विरह अग्नि बाढ़त भई, तापै पवन उसांस॥

ताहू पर घृत परत है, टपकत नयनन नीर।
बुझत नहीं बाढ़त अधिक, को जानै यह पीर॥

गृह बाहर बन में फिरूं, कहूं न चित ठहराय।
जहं तहं जिय घबरात है, अब दुख सहो न जाय॥

नैन मूंदि कबहूं रहौ, बैठी गृह एकंत।
सूरति कौ अनुभव करौं, खोले फिर बिलपंत॥

तापर फिर लीला रचित, चित अवलम्बन हेत।
प्रिय प्रीतम की कांति वह, कछू सीतल कर देत॥

तदपि चित्त माने नहीं, विरह ज्वाल के जोर।
घन बिजुली सम दर्श दो, श्यामल गौर किशोर॥

बदन माधुरी गर्ज रव, बचनामृत जुत पीर।
विरह अग्नि बूझे जबहिं, मिलन वर्ष हो नीर॥

हे बिधू बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम!
कब दिखाइहो बिधु बदन, पद पंकज अभिराम॥

दृग चकोर मन भ्रमर है, रसना चातक नाम।
कब देखें प्रीतम प्रिया, सुख विलास के धाम॥

कबहुं कि वह दिन होयगो, प्रिय प्रीतम के संग।
भाव सहित अवलोकिहौं, जिमि चकोर परसंग॥

पद पंकज की माधुरी, मन मधुकर ह्वै लीन।
मिलन बिना व्याकुल रहत, बिरह व्यथा तन छीन॥

हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम।
चातक मम गति हो रही, सुनिये करुणा धाम॥

दृगन छबीली छवि बसी, जल समुद्र जिमि मीन।
ताहि बिलग मति कीजिए, हो तुम परम प्रबीन॥

बिथा होत जिमि मीन के, बिछुरे प्रीतम नीर।
वैसी गति मम देखि कै, कृपा करहु रघुवीर॥

देखत जग में मधुरता, सुन्दरि सुन्दर रूप।
तन व्याकुल ह्वै जात बिनु, देखे रूप अनूप॥

रूप अनूप दिखाय के, कीजै नैन सनाथ।
अछत नाथ अस क्यों करो, देउ प्रिया को साथ॥

सुनि कोकिल की कुहुक मृदु, उठत हिये में हूक।
सिसिक सिसिक कर मीजती क्षमा करो अब चूक॥

हम तो सब औगुन भरी,तुम हौ गुण की खानि।
गुनन आपने रीझिये, बिरदा वलि उर आनि॥

नटत मयूरी देखि कै, बिरह सतावै मोय।
केकि कंठ तन की सुदुति, लखि-भुज मन भ्रम होय॥

कब भ्रम तुम यह मेटिहौ हे नृप राज किशोर।
गलबाही दीन्हे लखै, गौर श्याम चित चोर॥

देखत नृप तनया जगत, प्राकृत राजकुमार।
मिलिहो हमसे कबहुं अस, जस लौकिक ब्योहार॥

सब जग अपने मित्र युत, सुख भोगत दिन रैन।
हमको दुख दिन प्रति अधिक छिन पल कबहुं न चैन॥

हे सीते करुणाअयन, जतन बन नहिं एक।
केवल कृपा कटाक्ष को चातक की सी टेक॥

स्वाति-बूंद पिय युत मिलन मेरे जी की आस।
पूरण कबहूं कीजियो, जबलौं घट में स्वांस॥
और कृपा कर दीजियो, जब लग तन में प्रान।
प्राण नाथ जुत नाम तव, रटै छोड़ि अभिमान॥
चातक रटि घटि जाव भल, घटे न मेरो नेह।
चरण कमल मकरंद की दृढ़ भौंरी करि लेह॥
बिरह तपावै मोहिं ज्यों बाढ़े, अधिक सनेह।
जैसे कुन्दन के तपै, निरमल होवै देह॥
काम क्रोध मद लोभ ये, जग में करे सनेह।
तब सनेह के रिपु अहैं नेकु न परसे देह॥
अरुण प्रीति छबि घटाकी, अटा विलोकी जाय।
अंसुवन झर बरसन लगी, तन सब दई भिंजाय॥
भई शिथिल नहिं चल सक, सीतल स्वांस समीर।
तन कंपाय व्याकुल करी, बेगि मिलो रघुबीर॥
बहु विधि भूषण नग जड़ित, देखि चढ़त है पीर।
कब पहिरैहौ निज करन, सुन्दर श्याम सरीर॥
बसन अमौलिक देखि कै, मन न धरत है धीर।
प्रिय प्रीतम के योग यह, मणिन जड़ित है चीर॥
रुचि रुचि वसन सम्हार तन, कब पहिनैहों पीय।
कोमल पुहुपहुं ते अधिक, तन सुन्दर कमनीय॥
अंग सुगंध बहु विधि धरे, मणिन पात्र रमणीय।
पिय प्यारी के उर लसै, सुफल होय तब जीय॥
राज साज साहित्य जुत, सब परिकर लिय संग।
निसि दिन विहरेंगे कबहुं, महलनि कुंज अभंग॥
बन बिनोद क्रीड़ा ललित, सांझ सबेरे बाग।
कब देखेंगे नैन यह, जगिहैं हमरो भाग॥
फूल वाटिका महल की विहरत युगल किशोर।
कबहुं कि यह छबि देखि हौं,मनहारी चित चोर॥
जल विहार सरयू सलिल, करत सखी जुत लाल।
कब देखें झीने बसन, चिपट रहे छबि जाल॥

कबहुं परस्पर प्रीति बस, अरस परस श्रृंगार।
करत देखिहौं प्राण पति, लहमति कुंज मझार॥

रचि सिंगार दोऊ खड़े, दै हित सो गलबांहि।
कोटि रतन तब वारिहै, तन मन से बलि जांहि॥

कब देखौं वह माधुरी, जनक लाड़िली संग।
प्रीतम हित बतियां करत, उर अति मोद उमंग॥

सुरति विहार बहार की, बातें अलिन समाज।
सुनि सकोच दृग लाड़िली, देखहिं बदन सलाज॥

कबहुं कि वह दिन होयगो, जनक लली के पास।
चेरी ह्वै नेरी रहौं, लैहौं अंग सुबास॥

कब लखि है नख-माधुरी, पद पंकज दृग मोर।
जिन ससि को तरसत रहैं, मुनि गन भये चकोर॥

सरद रैनि की चांदनी, बिहरत युगल किशोर।
नृत्य सहित दंपति लखैं, सखि मंडलि चहुं ओर॥

करै मान जब लाड़िली, प्रीति विवश तुम संग।
कब मनाय सिय स्वामिनी, आन बटाऊं रंग॥

मुरक चलन तिरछी नजर, पिय तन चितवत नैन।
कब सुनिहौं निज कान सों प्यारे प्रीतम बैन॥

बहुरि मान को छोड़ि कै, प्रीतम उर उमगाय।
मिलत देखिहै नैन यह, जन्म सुफल हो जाय॥

राम अमित मुख स्वेद कन, प्यारी तन झलकंत।
करिहौं कब पंखा पवन, हरिहौं श्रम हुलसंत॥

सैन कुंज पुनि गवन करि, करिहो सखिन निहाल।
सो छबि कब हम देखिहौं, प्रीतम संग रसाल॥

मिल बिलसत प्रीतम प्रिया, फंसे रूप छवि जाल।
तन मन से अंगन रसे, प्रेम छके रस चाल॥

बातें केलि कलान की, शील सकुचि दृग लाज।
कब देखोगी दृगन हम, रस बस रस के काज॥

रस माते रस पान कर, रस राते तब नैन।
रस छाके रसकेलि मैं, नैन मते छबि मैन॥

नैनन लखि छकि है कबै, मैन छकी दृग सैन।
नैना पल लागै नहीं, मुख से बनै न बैन।।

कब हम देखौं लाड़िली, छकी छबीली कांत।
सिथिल बदन भूषण बसन, पिया केलि सुरतांत।।

भूषण बसन सम्हारि हैं, सुन्दरि सकल सुदेश।
पलक पीक कज्जल अधर, यह छबि लखै हमेश।।

हे करुणाकर जानकी, राम जानकी जान।
सब परिकर की जान तुम, हे मम जीवन प्रान।।

कब दिखाइहो महल सुख, पय पीवत रुचि संग।
श्री महराज किशोर युत, सयन समय की संग।।

अलिगन पान कराय के, सयन करत सुख दैन।
प्रीतम संग पौढ़ी महल, सखि छबि छकिहै नैन।।

लाल लाड़िली छबि छके, जागे महलनि कुंज।
कब यह छबि मैं देखिहौ, जगि है भाग सपुंज।।

मिलन सुधि कीजे हो मोरी।
कसकत हिये वियोग तिहारे, रैन दिवस सुनि बोरी।।
छिन-पल-कल नहिं परत सखी री, सिय स्वामिन बिन मोरी।
सुभ शीला की जीवन धन है, मिलि मिथिलेश किशोरी।।

जगे आली पिया प्रेम रस भीने।
नयनन नेह खुमारी झूमति, प्रिया अंस भुज दीन्हें।।
रास नृत्य छबि सुख के भोगी, दृगन मैन छबि लीन्हें।।
सुखमा अंग अपारी झलकत, रतिपति की छबि छीनें।
सुभशीला सिय अलक सम्हारति, नेह शिथिल तन कीन्हें।।

प्रात समय आन सखी मधुरतान गावै।
प्यारी प्रीतम सुजान जगे दर्श पावै।।
रास श्रमित छबि निहारि वारि फेरि जावै।
तन मन की तपन मेटि उर में सुख ल्यावै।।
आरति सुनि श्रवन नयन लली लाल जागे।
घूमित लोचन विशाल प्रिया प्रेम पागे।।

बिथिरित दोउ कच कपोल भूषण उरझाने।
नयनन छवि रति विशाल मोद में ममाने।
रास श्रमित अंग शिथिल पुनि पुनि अलसावें।
प्रिया कंध अंस मेलि फिर फिर झुकि जावें॥
देखति शोभा अपार उर सुख उपजावैं।
अधरामृत पान करत सिय जू सकुचावैं॥
कहत बयन प्रिया मयन नयन से बतावैं।
टुक लाज करो समुझि धरो परिकरगण आवैं॥
शरद रैन उत्सव में विविधि आज आये।
ते सब सुखमा विलास देखन छवि छाये॥
तिनकी तन नयन मयन करें उतै झांको।
सुभ शीला ललित प्रेम दृष्टि इतै ताको॥

राम श्रमित भये लाल, रैन मैन जागे।
प्रिया केलि सुखमा में लोचन अति पागे॥
थकित केलि श्रमित अंग यद्यपि नहिं हारे।
मयन ऐन जंग करत सूर बीर मारे॥
परिकर गण विविध आज भांति भांति आये।
तिनके कछु बैन सुनत मन में सकुचाये॥
प्रिया अंस मेलि कंध मसनद झुकि बैठे।
मानहु रति कामजीत विजय भवन पैठे॥
सहचरि गण सकल आये दर्श नैन पाये।
देखति छबि शिथिल अयन नयन में लगाये॥
नयन ललित लज्जित की सुखमा कवि को कहे।
जानत सोई रसिक अली जिनके उर मोद बहै॥
सरिता उर घुमड़ि बाहिर को आवत है।
नयनन के मध्य मनहु दृग जासी दर्सत है॥
दृगन नीर प्रेम छयो मोद मैन भाई है।
सुभशीला करि प्रणाम पास अलि आई है॥

कनक भवन राजत पिय प्यारी।
पहिरें ललित बसन सु बसन्ती, सिय पिय मोह भरा री।
परिकरि गण सब समय रूप हैं, बाग वसन्त फुलारी।
ललनन के तन चंग कली से, लसत भूषणन डारी॥

मदन मनोरथ केलि अनेकन अलि नव गुंज तमारी।
हास विलास मुकुन्द कली सम, दौड़ि मदन सनकारी।।
ललित तमाल बदन सिय सुखकर, करि कमलन गलबांही।
मनहु तमाल लता वेली द्रुम, लिपटहिं नेह भराहीं।।

आली हरो चित श्याम सलौना।
अद्भुत रूप अनूप सकल विधि, कोशलेश सुत सुजन खिलौना।।
जिय अकुलाय लखे विन वह छबि, पितु गुरु जन डर निरखि सकौ ना।।
हिय हुलसत प्रिय मीत मिलन कों, अवध कुवर विन कोइ को हौना।।
सचराचर व्यापक सुखदाई, रोम रोम मम श्याम समौना।
कृपाशील जस प्यारो छबीलौ, गुन बल भूल हुआ है न हौना।।

वैष्णव-विनोद

श्री वैष्णवदास

काशी-निवासी बाबू कामेश्वर प्रसाद के सुपुत्र बाबू गया प्रसाद उपनाम वैष्णवदास के रचे हुए कुछ प्रेम-प्रधान पदों का संग्रह भारत जीवन प्रेस (काशी) से सन् १९०३ ई० में छपा। इसमें राधाकृष्ण और सीताराम के प्रणय-विलास एवं लीला-विहार के १०५ पद हैं, जो अत्यन्त भावपूर्ण एवं मधुर हैं।

उदाहरण—

हिंडोला झूलैं सिय रघुराई।
मनिन जड़ित सुन्दर सिंहासन रेसम डोर लगाई।।
कदम की डार डार की झूला सरजू तीर सुहाई।
चातक मोर पपीहा कुंहके कीरहु यह धुनि लाई।
सीताराम कहहु मेरे प्यारे जाते बिपति नसाई।।
स्याम घटा नभ ऊपर छाई दामिनि चमक दिखाई।
नान्ही नान्ही बूंद परत कंचुकि पर पौन चलत पुरवाई।।
राम मलार अलापत सुन्दरि ढोल मृदंग बजाई।
देव विमान चढ़े हरखित मन सुमन बृष्टि झरलाई।।
मेघ स्याम सम बदन राम को सोभा कहि नहि जाई।
वैष्णव दास पाइ आयसु को पुष्प माल पहिराई।।

बृहत् पद-विनोद

रसदेव कवि

लक्ष्मीनारायण प्रेस (मुरादाबाद) में छोटेलाल लक्ष्मीचन्द वम्बईवाले ने मुद्रित कराकर सन् १९०८ ई० में प्रकाशित किया। यह ग्रंथ भी विशुद्ध काव्य की दृष्टि से सर्वथा आदरणीय है।

उदाहरण—

देख सखि सुभग छवि जानकी रवन की।
श्याम अभिराम तन काम तरु मनहुं महि नील नीरद निरखि निखिल निज गवन की।।
क्रीट शिर ललित कल कलित कुंडल जुगल वलित दिनकर मनहु अमित द्रुति श्रवन की।
पीत केसरि तिलक भाल भाजित विमल मनहुं शशि वीच पथदेव गुरु गवन की।।
अलक आनन परी अमित झलकन कुटिल मनहुं शशि वैरि जुग राहु रचि भवन की।।
लसत उरमाल मणि पीत पट कटि कसे मनहु घनजोति घन मिलत रुख पवन की।।
बाहुं आजान कुल कमल रघुवंश मणि चारु सर चाप करत कनि मृग ठवन की।
कनक नग जड़ित आसीन आसन रुचिर देखि रसदेव सतकाम मन भवन की।।

मंजु मूरति मृदुल मोहिनी मन वसी।
क्रीट शिर पै ललित श्रवन कुंडल कलित फलित शुभ भाल पै तिलक केसरि लसी।।
लसत पट पीत कटि कसत लट फंसन मुख पियत जनु पन्नगी सुधा शशि मेघसी।
देखि अभिराम छविराम की जाम वसु मलत रसदेव मन काम के मुख मसी।।

देखु सखि आजु छवि जानकी जानकी।
वदन सोभा सदन कुंद कलिकादन कदन लखि करत मति मदन के मान की।।
अंग भूषन जड़ित संग पूषन तड़ित देव झूखन अड़ित विपुल फल दान की।
बास परजंक कलखास रघुवंश मणि दास रसदेव मोहि आस नहि आनकी।।

देखौ श्री रघुवीर की आंखें।
श्याम सेत विच अरुन कंज सम जनु बैठ्यौ वटोरि अलि पांखें।।
चितवनि चलनि पलनि पलकन की मीन मनोज खंज मृग माखैं।
दीरघ जुगल कुटिल भृगुटी अहि जनु रसदेव लौटि रस चाखैं।।

देखु री छवि अधिक बनी है।
गोल कपोल लोल कुंडल कल वोल ठोल अनमोल जनी है।
भूषन विन दूषन पूषन जनु मंजु मयूषन जड़ित कनी है।।
दसन दमक दरसत विद्रुमनि में जनु घन में घनजोति घनी है।
मुख मयंक पर लट लटकत जनु पियत सुधा रस सरस फनी है।।

दृग दीरव सित स्याम पूतरी उपमा छबि कवि कौन गनी है।
जनु अलि युगल कमल दल ऊपर पर पोंछत मकरन्द सनी है।
हरि मूरति मंजुल मनोज लखि सखि नख शिख रस देव मनी है॥

सिय की बेंदी अजब वनी री।
सुवरणा पर विरंचि संचित रचि चित्र विचित्र कनी री॥
कीधौं शशि पूरणा विकसित नभ दूनी दाह घनी री।
कीधौं प्रातकाल रवि कोरथ पूरण जोति जनी री॥
कीधौं अरुन जलज के भीतर झालरि जलज तनी री।
कीधौं महि सुत के ग्रह साथे राजित साजि अनी री॥
कीधौं कम्पा में सम्पा फंसि की अहि छोड़ि मनी री।
छवि मनोज मंजुल निरखत यह कवि रसदेव मनी री॥

देखु री छबि राम लला की।
लटकें लट भुजंग मुख पर जनु पियत सुधारस चन्द्र कला की॥
कनक क्रीट कुंडल कानन पर दिज दुति देखि दवी चपला की।
शोभा सदन वदन की देखत मदन कोटि रस देव भला की॥

छवि मन राम लला की खटकै।
तिलक विशाल भाल केशरि को घुंघुवारी लट लटकै॥
पीत वसन की कछनी काछे आछे चखचित अतकै।
शोभा लखि रसदेव छकित भे मनसिज कोटि न भटकै॥

कहां लाल गुलाल लगाए लाल।
सुख सौतिन के संग में रसाल॥
राति रहे किस घात में झूठी बात करत परभात काल।
छूटी अलक पलक अलसानी झलक रही छवि छलक आल॥
काजर अधर पीक पलकन पर जावक केसरि तिलक भाल।
भूलो वसन वसन कहां कीनो दसन दाग बर लागे गाल॥
बरबस झपटि लपटि काहू को उर उपटे विन गुनके माल।
आयो इत रसदेव सांवरो लखि बानिक सब मे निहाल॥

झूलत रघुबर जनक दुलारी।
परम पुनीत पुलिन सरयू की प्रफुलित लता मुदित बन झारी॥
मणि गण जड़ित गड़ित पटुली युत खम्भ युगल मंजुल अधिकारी।
राजत रसिक शिरोमणि दम्पति आभा अमित अनूपम भारी॥

ओनए नए नील नीरद नभ मन्द मधुर गरजत जलधारी।
दमकत दामिनि द्रुति दशहूं दिश चातक मोरवा कीर पुकारी॥
युवती यूथ जुरी जाहिर जग चतुरी जाय झुलावत सारी।
छवि रसदेव देखि दोउन की कोटि मदन तन मन धन वारी॥

झूलत लाल लली संग अलियां।
करत खड़ी सिगरी दिश बलियां॥
कंचन कलित हिंडोल ललित कल कुंज बलित सरयू तट थलियां।
बरसत घन दरसत दाँमनि दुति सरसत जल हरषत सरि चलियां॥
सीतल सीर समीर धीर वर गंध गंभीर खिली तरु कलियां।
लखि रसदेव उमंग आनद को अवध शहर की गलियां गलियां॥

कारी कारी रे बदरिया कारी कारी लागै रे।
निज अंधियारी मारी दामिनि उघारी बारी बारी रे उमिरिया वारी बारी पागै रे॥
मोरवा पुकारी हारी झिल्ली झनकारी भारी झारी रे डगरिया डारी डारी बागै रे।
अवध बिहारी रसदेव उरधारी ठारी थारी रे मुरतिया प्यारी प्यारी जागै रे॥

विनय-चालीसी

श्री रूपसरस जी

श्री सियाशरण जी महाराज मधुकरिया जी के आज्ञानुसार श्री राजकिशोरीवरशरण जी (परमानन्द जी) ने टीका कर के ओरियेंटल प्रेस (अयोध्या जी) में ई० सन् १९३२ में छपवाया।

इसमें कुल ४० दोहे हैं। रूपलता जी का दासी भाव है। इसी भाव से भावित होकर आपने ये अनमोल दोहे लिखे हैं। भाषा बड़ी सुथरी और भावमयी है।

उदाहरण—

रघुवर प्यारी लाड़ली लाड़लि प्यारे राम।
कनक भवन की कुंज में बिहरत है सुखधाम॥

गलबहियां कब देखिहौं इन नयनन सियराम।
कोटि चन्द्र छवि जगमगी लज्जित को टिनकाम॥

रंग रंगीली लाड़ली रंग रंगीलो लाल।
रंग रंगीली अलिन में कब देखौं सियलाल॥

हे सीते नृप नंदिनी, हे प्रीतम चितचोर।
नवल वधू की वीटिका, लीजे नवल किशोर॥

हंस बीरी रघुबर लई, सिय मुख पंकज दीन।
सिया लीन वर कंज में, प्रीतम मुख धरि दीन॥
निरखि सहचरी युगल छबि, बार बार बलिहार।
करत निछावर विविध विधि, गज मोतिन के हार॥

झूलन बिहार-संग्रहावली

श्री कृपानिवास जी

श्री रसिक निवास जी, श्री रसिक अली जी, श्री रामसखे जी, श्री रसभासिनी जी, श्री रसिक विहारिणी जी, श्री युगलप्रिया जी, श्री सरयू सखी जी आदि रसिकोपासकों के झूलन संबंधी पदों का यह संग्रह बम्बईवाले सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने डायमंड जुबली प्रेस (कानपुर) से सन् १८९८ ई० में छपवा कर प्रकाशित कराया। संग्रहकर्ता हैं टीकमगढ़ के श्री लछिमनदास भंडारी। वे लिखते हैं कि 'श्री परम उपासक श्री रसिकाधिराज संत शिरोमणि श्री १०८ श्री गोमतीदास जी के आज्ञानुसार' उन्होंने यह संग्रह प्रस्तुत किया। जो हो, यह संग्रह कई दृष्टियों से परम उपयोगी है, क्योंकि एक ही स्थान पर एक ही विषय पर अनेक रसिकोपासकों के भजनों का तुलनात्मक अध्ययन भाषा और भाव की दृष्टि से सहज ही संभाव्य है। कई स्थानों पर लगता है केवल परंपरा का निर्वाह हो रहा है; परन्तु अधिकांश पद हृदय से निकले हुए भावों की भव्य अभिव्यंजना में सर्वथा समर्थ सिद्ध हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है। इन्होंने सीताराम-विहार की दिव्य लीलाओं का साक्षात्कार किया था और आनन्द विभोर हो कर प्रेमावेश की मधुमयी रसदशा में इन पदों का निर्माण किया था। अस्तु :

सावन आयो मन भावन को गरलावन मोहिं दीजै।
पावस पाये प्रान पियारे प्यार अधिक सुख कीजै।
कृपा निवास श्री राम रसिक को अधरामृत रस पीजै॥

जनकपुर तीज सुहावन आई।
झूलत साजि सवारि सखा जन पाद्य मनोज बनाई॥
पावस मेघ झरै रसवारी झिमझिम झिमझिम झरलाई।
अरुन बसन तन लपट सुहाये उपमा समन बिहाई॥
चहु दिस पुंज पुंज वनि नागर रंग रंग छवि छाई।
जनु छवि अंकुर प्रगट धरनि तें लतन वितान तनाई॥
उमग झुलावत मंगल गावत राग मलार जमाई।
त्रिविधि पवन की बहन अलिन की गुंज समुंज सुहाई॥
विविधि संधार बढ़त साथनी वेसम संग सहाई।
रीझत जापर जनक लाड़ली निज कर देत बुलाई॥

लहरै ललित लेत वै सधनि हास विनोद उम्हाई।
समै सुहावनि सावन तरुन ते हरित भूमि बिगसाई॥

सिया वल्लभ लाल झूलत हां जहां रामराम सीता लाल।
लाल कंचन खंभ सुंदर ललित डाडीलाल।
लाल भूंपन अंग झलकत लसत चीर सुलाल।
लाल दोउ के वदन सोभा अधर वीरी लाल।
लाल सखियां लाल गावन गावनि सब झुलावति लाल।
मोर हंस चकोर कोयल भनत बानी लाल॥
लाल रीझत लाल ऊपर परस्पर सब लाल।
कृपा निवास सुलाल जो निरख नैन निहाल॥

ए दोउ झूलै रंग हिंडोरै।
दशरथ सुन अरु जनक नन्दनी चितवन मैं चितचोरै॥
नान्ही नान्ही बूंद पवन पुरवाईये सब थोरैं थोरै।
हरी भरी भूमि घटा झुकि आई सग्यू लेत हिलोरै॥
बानी विमल सखी सब गावैं अपने अपने ठौरै।
नागरि नाम लिवावत पिय को हसत सिया मुख मोरै॥
हय दल गय दल रथ दल पैदल कोट बन्यो चहु ओरै।
उपवन माझ विहंगम बोलें कोयल मोर चकोरै॥
वाजे वजन लगे चहु दिस सों मनों सघन घन घोरै।
निरतत नटी नटी लघु मोहन ताता थेई तान जो तोरै॥

हिंडोरै झूलत सिया जू प्यारे।
परम मनोहर खंभ कनके मानौ मदन सवारे॥
रतन जटित सुभ डांढ़ी सुंदरि छवि पटली मनि हारे।
तापै राजत राम जानकी लेत मधुर सुहुलारे॥
चितवन दोउ चित चोर परस्पर आनंद रस विसतारे।
समै सुहावन सोभा परमित कोटि मैन रतिवारे॥
'रूपलता' सखि गहै झूलनों निरखत सुमति विसारे।
कबहुंकि चेतन होय झुलावत रस छाकी मतवारे॥
वर्षत वारिध लगत सुहावन छूटत प्रीत फुहारे।
भीजत जे बड़ भाग्य सराहत प्यारी चर्न अधारे॥
जो सुख उमग्यो का कहि वरनौ चिनमय केलि बिहारे।
कृपानिवास विलास विलोकत लोचन परम सुखारे॥

नवल पिय प्यारी जू रहस झुलावै।
सुरति सिंघासन नेह नवल दोउ खंभ खरी छबि पावै।।
अंग अनंग उमंग झोट रस रमत विनोद उपावै।
मदन मनोरथ घटा छई झरिचाह चपल वर्षावै।।
सकुनालंकृत तलप मुखर वर दादुर समै जनावै।
कृपानिवास प्रसाद उपासिक देखि नैन लड़ावै।।

कीनै बसन मधि लसत दुति कल कनक मर्कत मणि सनी।
जनु जोनि रजनी मिली सजनी सरद वादर चांदनी।।
श्री राम वाम सु अंग मिलकै सुभग सोभा यों लसी।
जनु काम पावस श्याम घन में तड़ित चंचल रस बसी।।

सुभ पुलन पावनि सरित वर जहां झूमि सावर झर झरै।
जनु भूमि इन्द्र सुफाग खेलत सियावर पग रंग भरै।।
नव जूथ जूथ निजु वनिजन चहुं ओर ललन लड़ावहीं।
जनु भक्ति भगवत की सुकीरत वेद श्रुति सव गावहीं।।

झुकि झपटि झोरे देत सखिया झमकि झाई जल लसै।
जनु मदन रति सर केलि अवस चपल कौंति कर सरसै।।
द्रुम सघन वन फूले सुमन जहां सकुन मंगल धुनि करै।
जनु निगम छंद अमंद बानी दूंयस उच्चरै।।
लै तान नवल सुजान कबहौं प्रान प्रमदा बारहीं।
सुम जानि निज कृति जानकी वर रूप दृगनि निहारहीं।।
यह झूलनौ सुखरास परम बिलास पावसि रितु कह्यौ।
फूलि आस कृपा निवास की नित चरन पंकज लगि रह्यौ।।

झूलावत राम रसिक पटरानी।
नेह नाह कौं निरख नागरी नैन में मुस्क्यानी।।
कर गहि डोरि चको दृगन की चितवनि चन्द लुभानी।
कृपानिवास विलास मगन प्यारी प्रीतम के हित द्रानी।।

मिल झूलत सीया राम दोउ रसरंग हिंडोरे आजु भलै।
अरुन वसनतन भूपन झलकति सुमन सहित मनहार गलै।।
चतुर सिखावति नाम सिया लै स्याम आवै मुद लाज टलै।
मुख मोर हसै पिय ओर लखै पट घूंघट में दृग ओर चलै।।

स्याम गौर रंग एक भयो मनो प्रेम सिंधु छबि गंग लै।
यो केल परम सुख छाय रह्यो नव कंज नवल रस नेह डलै॥
यक प्रीत बादरी गरज उठी झर ज्यौर बन्यो अलि प्रान थलै॥
सखियां कल कोकिल मोर मनो रस गान सुने रति राज छलै॥
चहुं ओर समाज विराज रह्यौ मनो मोद बाग सुख फूल फलै।
अति नेह हुलास विलास बढ्यौ लखि कृपानिवास के नैन खुलै॥

सिया रवन हिंडोरै झूलै पिय जू के संग।
प्यारो नेह जनावूं कर डोरि झुलावै गावत प्यारी गुन परम उमंग॥
कोई सरस हिलोरो पिया करत निहोरो मन रावरे हाथ तनत रत तरंग।
प्रिया रीझ भीज दृग सैन दई अलि चतुर संभारि मिलाये अंग॥
रस केलि रले सखि नैन पले देखि लुभाने अमित अनंग।
रस प्रीत डरी सुख यह भारी कृपानिवास हुलास अभंग॥

सिया रहसि हिंडोरनै आज झूलै छै।
दोउ गरबाहीं महलन छांहीं छबि रंग अंगद फूलै छै॥
सुरति झाटलाल गैहै सुहावनि मनरा फेलन भूलै छै।
कृपानिवास सिया पिय सोभा देखि सखी जन फूलै छै॥

आज रस भीने प्यारे झूलत डोल।
कर सों कर दृग सों दृग मव मे हंस हंस बोलै दोउ रस भरे बोल॥
फाग सेस अनुराग उघारत मुखर सुघट पट उट पट खोल।
कृपानिवासी हली मन दीन्हों जानकी वर कर थिर नित ओल॥

इन नई रीति निहारि बाढ्यौ अलिन उर आनन्द।
दृग कंज प्रफुलित लाल के निरखत सिया॥
मुख चन्द प्यारी बदन जलजात छवि मकरंद अलि पिय नैन।
रसपान करत न टरत छिन छाये छके दिन रैन॥

हिय हार उरझें दुहुन के त्यौं अली झोंका देत॥
सुरझै न झोकति झपटि लपटी नवल पिय रस लेत॥
लखि श्रमित सम झूलन पिया प्यारी लई भरि अंक।
लै गोद पिय झूलन लगे लखि छके वदन मयंक॥

सनमुख सरस झूलन लगे अति झमक झोंटा देत।
प्यारी पिया उर कंठ लिपटी अली सो रस लेत॥

इक अली युगपट ग्रन्थ दै शिर मौर मौरी धराय।
वे ब्याहता बन लगी ललना मोद हिय सरसाय॥

आंदोल केलि निकुंज यहि विधि झूले सिय रघुलाल।
पुनि चित्र बन मन मुदित गमने रूप निधि सुखजाल॥
कोटिन अलीगण संग शोभित रूप गुण की मूरि।
जिनको निरखि रति लाजत अपर उपमा कूरि॥

हिंडोरै झूलत सिय ठकुरानी।
श्रुत कीरत उर्मिला माड़वी रूप शील गुन खानी॥
मचौ हिंडोला नाम लिवावनि चतुर सखी मुसकानी।
सिय जू मकुच रही नहिं बोली अग्रअली मनमानी॥

सिय झूलत हिंडोरै पिय संग वनी।
सरजू तीर सोम बट छाहीं संग सखी नव नेह सनी॥
पहिरे बसन सुरंग सुगंधी भूषन जड़ित सुरंग मनी।
गावत ताल रंगीली तानन रस मालिन वलहारी मनी॥

झूलत सिय पिय आज हिंडोरै।
घन गरजत बिजली अत चमकत बरसत रिमझिम बोलत मोरै॥
ज्यों ज्यों प्रीतम रमक बढ़ावत सिय डरपत पकरत पट छोरै।
रसमालिन बिमलादि सखी सब नाचत थेइ थेइ तानन तोरै।

हिंडोरै झूलत सिय प्यारी॥
सरजू तीर हिंडोल कुंज विच सुरतरु को डारी॥
प्रीतम रमक बढ़ावत गावत करि अलाप चारी।
डरपत लली दसन रस लागहिं हंसत सखी सारी॥
बैठी पिय भरि अंकलीन सिय बड़े प्रमोद भारी।
रसमालिन यह रस बिनोद लखि रति पति बलहारी॥

हिंडोरै झूलत जुगल किशोर।
श्याम गौर मन हरन ललन दोउ अंग अंग अति चितचोर॥
भूषन बसन सरस रस छवि लख उमगत जोबन जोर।
चरवत पान परस्पर दोऊ निरखत दृग की कोर॥
हंग हंसि अली मुदित मन गावै झोंका दे दुहुं ओर।
रसमालिन छवि निरख दुहुंन की वारिय काम करोर॥

सियाराम पचीसी

मदारी लाल वैश्य (सहादतगंज, पुराना चौतरा लखनऊ) द्वारा किए हुए इस संग्रह को सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचन्द (बम्बई वाले) ने रामा प्रिंटिंग प्रेस (फैजाबाद) से अक्टूबर सन् १९०६ ई० में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमें 'सिया सोने की अंगूठी', 'राम सांवरो (नीलम) नगीना है।' इसी भोग पर पच्चीस कवित्त-सवैये हैं जो बड़े ही मनमोहक और गेय हैं। प्रतीत होता है, इस समस्या की पूर्ति स्वयं श्री मदारी लाल ने की है और एक ही प्रसंग पर ये पच्चीस कवित्त-सवैये बड़े ही प्यारे लगते हैं। भाषा साफ सुथरी प्रवाहमयी और प्रभावोत्पादिनी है। स्वरूप का ध्यान मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है।

उदाहरण—

इतै मृग अंक मुख उतै मृगराज लंक,
इतै गजराज गति उतै मद मीना है।
तै नैन खंजनीन उतै खंजनील,
इतै उतै खंजनीन हीना है॥
इतै प्रेम पूरन है उतै प्रेम पूरन है,
इतै उतै दोऊ लखि मेघा गति.दीना है॥
लपन गगन बानी गिरा देखि गिरै सिया,
सोने को अंगूठी राम नीलम नगीना है॥

नैना अनियारे मृग खञ्जन से न्यारे,
देव शोभा के पिटारे सुठि मानों जग मीना है।
कम्बु सों ग्रीव दंत दाड़िम लजाने,
नासिका सी कीर शब्द कोकिला प्रवीना है।
हरिहू सकाने कटि पेख भुजदण्ड मानों,
माधो बखाने मेष करिवर को छीना है।
मेरे मन आली सुन आपहू बिचारि सिया,
सोने की अंगूठी राम सांवरो नगीना है॥

ऐरी सुन आली आज देखे है कुवर द्वै,
आये फूल लेन तहां दरस आज कीना है।
आई जा घरी से सुधि भूलत ना एको छिन,
कैसे करूं वीर मेरो चित्त चोरि लीना है॥
बाणी सकुचानी आली किमि कहै रूप,
गाती को छाती हुलसाती ज्यों बारि बीच मीना है।

मुदित मदारी कहै उपमा मन्न वारूं सिया,
सोने की अंगूठी राम नीलम नगीना है॥
कंज से नयन रंभा तरु से बिशाल जंघ,
नाल से उनाल भुज दंड लव लीना है॥
शुक तुंड नासिका मरालन की गति छीना,
कोकिला की बाणी भई बाणी पर छीना है॥
केहरि सों कटि वृष कंध सों सुभग,
कंध काम फर फंद भृग द्रग धृग दीना है॥
कहै रामलाल जोड़ी रुचि रुचि बनी सिया,
सोने की अंगूठी राम नीलम नगीना है॥

भजन, रसमाल

श्री वेंकटेश्वर प्रेस से छपा श्री हरिचरणदास जी के ग्रंथ में सीताराम के श्रृंगार विहार एवं विविध लीलाओं के पद साधना और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। श्री हरिचरण दासजी ने ग्रंथ के अन्त में अपना परिचय दिया है—

राज्य है मझवली जग जाहिर सुखली तपा।
मौजे पैकवली पवहारी जी को धाम है॥
श्री स्वामी सीता आदि रामदास महराज।
जिन्ह के निशिवासर सियाराम हीं सों काम है॥
तिनके लघु शिष्य हरिचरणदास पास नित।
कसबे गोपालपुर जीले सरनाम है॥
रानी हरियालि जी के मंदिर महंथ एह।
'भजन रस माल' कहि लही सुख आज है॥

संवत् १९४७ के भाद्रपद कृष्ण १० रविवार को श्री हरिचरणदास जी ने यह ग्रंथ पूरा किया—

संवत् मुनि[७] श्रुति[४] अंक[९] शशि[१],
कृष्ण भाद्रपद मास,
तिथि दिग[१०] रवि दिन रोहिणी,
किए चरण हरिदास॥

इसमें झूलन विवाह, सरयूतट विहार, होली, वाटिका विहार, जलविहार, कनक भवन-विहार के गेय पदों का खासा अच्छा संग्रह एक साथ मिल जाता है। सभी पदों पर राग-रागिनियों में नाम दिये हुए हैं।

झूलत झूलन अवध रंगीले।
पहिरे हरित वसन वर भूषण क्रीट मुकुट झमकीले।
कहि न सकत छवि शेष गणेशहु शारद की मति हीले।।
अति सुख साजि झुलावति सिय सखि सोभित तन पट नीले।
जन हरिचरण युगल जोरी यह मोरे हिय मो वसीले।।

देखु छवि झुलन की सखी त्रिण तोरि के।
श्याम तन राम घन सुभग दामिनि सिया झुलत दोउ सरजु तट हँसत मुख मोरि के।
मंजु मणिखंभ सु विचित्र पटुली जड़ित हरित वपु वसन नग लेत चित चोरि के।
देत अति झोंक नहि रुकत पीतम प्रिया कहत हरिचरण मोहि चितव दृग कोरि के।।

राम सिया के झुलावे सखि झुलना।
कटि अतलस के लहगा पहिरे सारी सुरंग रंग तुलना।
हलकत हार हुमेल तिलरिया सिर सेंदुर कर फुलना।।
कजरी गावै तान सुनावै श्री सरजू जिके कुलना।
जन हरि चरण रहस सावन के निसिदिन छवि एह भुलना।।

झूलत सिया संग प्राण पियारे।
रवि शत कोटि कीट दुति निरखत वदन मयंक शरद छवि हारे।
कुंडल झलक अलक लटकन वर अलि अवली जनु करत जो हारे।।
भाल विशाल तिलक गोरोचन नैन मऊ सरसिज रतनारे।
नासा मणि सोभित अधरन पर गले बैजंती माल सँवारे।।
कटि किंकिनि पटपीत मनोहर कर कमलन धनु सायक धारे।।
मंद हसनि रति मार विमोहनि चितवनि चोरित हृदय हमारे।।
सावन घन घमंड चहुदिसि तें गरजत मेघ घटा अतिकारे।
जन हरिचरण झुलन झाँकी पर तन मन धन सखिया सब वारे।।

आजु सियावर झूलन झूले।
सावन अधिक सुहावन पावन छवि छावन सरि कूले।।
बकुल कदंब तमाल देवतरु वन प्रमोद सब फूले।
कोकिल नाद गान सहचरि को सुनि धुनि मुनि मन भूले।।
लालन साथ सखा सब बनि ठनि सिया सखी सम तूले।
दे गलबांह नाह प्यारी दोउ उमगि राजरस मूले।।
मणिमय खंभ डोर रेसम की हेम रचित सुख डोले।
जन हरिचरण विलोकत अनुदिन भुवन भाग जेहि खूले।।

आज राम ब्याह सुनि पुर नभ जै जैति धुनि साजि के विमान देव देखवे को आयो।
मणिन मैं वितार रच्यौ हरित वेणु पत्र खच्यो मानिक तह खम्ह सच्योअद्भुत छबि छायो।।
बैठे चारों कुमार कुल गुर दोउ श्रुति उचार रीति सहित दान मान गुनि जन गुन गायो।
मागे रुचि जाहि जोइ दीन्हो नृप ताहि सोइ लीन्हे कर चंवर हरीचरण शरण पायो।।

राघो जी के उनींदे नैना।
लट पट पाग अलक मुख विथुरे बोलत कल वल वैना।
मोतिन भाल गले बिच हलकै झलकै छवि दिन रैना।।
ठुमुकि ठुमुकि पगु धरत धरनि पर गति लखि लाजत मैना।
जन हरिचरण कमल मुख धोवत सो सुख शेष कहै ना।।

मोरे मन में बसो नृप लाल लली।
इत रघुनाथ स्याम सरसीरुह उत सीता चंपा कि कली।।
सोभित सखा सहित रघुनंदन उत राजति सिया संग अली।
क्रीट मुकुट कुंडल श्रुति सोहे सिया कि चन्द्रिका बिंदु भली।।

सरद सोहाई निहारो निशि नीको।
केदली मंडप मध्य सिंहासन लपत भानु छवि फीको।
तेहि रजनी अवधेश कुवर वर सोभित संग लिए सीको।।
सुरभी छीर विलोकि विमल विधु वरषत पोस अमी को।
जन हरिचरण निरखि जोरी युग हरखि मोद अति जीको।।

आलि री आज चलो श्री अवध नगर नृप कुंवर खेलै जहं फाग।
पहिरे वसन वसंती जामा पटुकन मोती लाग।।
कर पिचकारी निहारि नैन भरि सुफल करौ निज भाग।।
मणिमय मुकुट मनोहर माथे गाछे पाख सुकाग।
केशर खोर भाल श्रुति कुंडल लखत मदन तन जाग।।
सुनि होरी गोरी सब बनि ठनि चलि अंग साजि सुहाग।
जन हरिचरण फाग सरजू तट निरखत अति अनुराग।।

नचाये हरि फाग नृप खोरी।
संग सखा रिपु वदन भरत अरु लखन रंग झोरी।
पकड़ि अली मिथिलेश लली के मोतिन लर तोरी।।
एह सुनि सिद्धि कुवरि सखि सुंदरि प्रभु पटुका छोरी।
जन हरिचरण दोउ दल रसवस लखत जुगल जोरी।।

देखि के सुन्दर स्याम धाम नृप दशरथ को कोटि शतकाम मद सोभा को सटको।
क्रीट मुकुट कुंडल वनमाल हार मुकुटन को किंकिनी ललाम दाम नूपुर पग लटको।
ऐसो निकाई हरिचरण हिय छाई आज मुख की लुनाई शशि कोटि छबि छटको।
धाई पुरनारी कुल रीति को विसारी वारी प्यारी पियनि रखत जग टुटे लाज फटको।।

रामप्रिया-विलास

भाव की रसमग्नता एवं सम्बन्ध की अनन्यता का सुंदर मधुर निदर्शन। राग रागिनियों पर ध्यान विशेष है और लक्ष्य है गेयता। परन्तु कुछ पद बड़े ही सजीले और प्रभावपूर्ण हैं। भाषा टकसाली है, प्रवाहमयी।

राघो प्यारे आज खेलें होरी किशोरी संग।
कुंकुम अगर कपूर अरगजा मृगमद कीच मचोरी अबिर की धूर-उड़ावत गावत धूम मची चहुं ओरी।।
प्यारो परम प्रवीण प्यार सों पकरि सखी मुख रोरी मानहुं जलद अंक गहि दामिनि लरि शशिसों रंग वृष्टि करोरी।
राम प्रिया दोउ निरखि परस्पर हंसि झिझके मुख मोरी जनु खजन जुरि जुरत परस्पर विज्जु छटा लखि भाजि चलो री।।

विजन गोलैहों पुष्प मालिनि मनैहों,
वस्त्र भूषण पन्हैहों नीकी पलंक बिछैहों मैं।
बीरिहूं लगैहों पग पंकज दबैहों,
चारु चामर चलैहों दासी रावरी कहै हों मैं।।
अनत न जैहों न तु दीनता सुनैहों निज रामप्रिया
सीम काहू और पैन नैहों मैं।
राजन के राज महाराज राघवेन्द्र राम
आपकी कहाय अबकाहू की न ह्वै हौं मैं।।

मैं दरश लोभानी कोऊ जतन वतावै कोय।
इश्क दशा कोऊ आशिक जानै जो रंग रातो होय।।
अलख अगोचर सेज पिया की क्योंकर मिलना होय।
रामप्रिया को रघुकुल भूषन राह देखैया होय।।

भक्त-प्रमोदिनी

अयोध्या-निवासी पं० रामलोटन मिश्र रचित 'भक्त प्रमोदिनी' परम प्रेमाभक्ति के रस म पगे पदों का संग्रह है। आफताब प्रिंटिंग प्रेस (फैजावाद) से १९२२ ई० में छपा।

दृगन बिच बसि गयो राज कुमार।
जिया मानत नाहीं ए तरिसि रहे दोऊ नैन दरस बिना कैसो करो दसरथ के लाल वै
तो रघुबन्सी दिलदार।।
अलक झलक घूंघुर वाले चिकनारे कारे दृग रतनारे प्यारे कोटि काम वारी डोरो
लौटन के जीवन अधारे सुकुमारे वारे सन्तन प्राण अधार।।

प्रभू मैं वटिया जोहों तोर। अब रही आश एक तोर।
लागे अषाढ़ मेघ नभ छाये पिया मोर नहीं हाल पठाए।
पपिहा पिउ पिउ शोर मचाए कृपा करो दशरथ के छोर सावन में सखि झूलें हिंडोला,
गावत गीत प्रेम रस बोरा सुनि सुनि देत विरह झकझोरा रघुपति हरी विपत्ति सब
मोर।

भादो मास रैन अंधियारी गरजत घन बरसत अति बारी।
कोउ न सुने यह बिथा हमारी देखो दयानिधि अपनी ओर।।
लागे कुआर शरद ऋतु आई चले पथिक सुन्दर मग पाई।
ऐहैं कब पिया गले लपटाई लौटन कहत दोउ कर जोर।।

रहब कैसे नगरी तोरी रे सांवलिया।
दोहा प्रीति करी सुख लहन को इत उत दोउ बन जाय।
निठुराई प्रभु मत करो दीनी सुरत भुलाय।।
लगब केहि कगरी।

करम कुटिल की फेर पड़ी, चलत न कोई उपाय।
तुम चाहो पल में बनै झषबो सब मिट जाय।
हीय भाग अगर हारे मैं सेवक तुम स्वामी हो सुनिये कोशल राज।
अब तो निबाहै बनेगी।
बांह गहे की लाज।
फिकिर मेरी सगरी तोरि रे सवलिया।
अवध नगर सरयू नदी संतन को दरबार।
सिय राम तहां बसत नित लौटन के रखवार।
अवध की डगरी बसब सांवलिया।।

सीताराम-नखशिख-वर्णन

प्रेमसखी-कृत

सीता और राम के नख-शिख का यह वर्णन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शब्दों में चित्र खींचने की कला में प्रेम सखी को अपूर्व सफलता मिली है। लीला विनोद का अन्तिम अंश, जहां सखियों ने राम को लँहगा चोली पहना कर स्त्री-वेश में सजाया है और सीता जी के पास गौने में आई नई बहू के रूप में प्रस्तुत किया है वह दृश्य दर्शनीय है। कुल मिला कर इस ग्रंथ को मात्र साहित्यिक दृष्टि से, रस की दृष्टि से, परम संग्रहणीय एवं आदरणीय माना जायेगा।

कैधौं पारिजात के सुमन की ये पाखुरी है जावक सजोग अनुराग रस भीनी है।
जग चतुराई की कुसलताई पाई तव सुखमा समूह को विभाग विधि कीन्हीं है॥
पति को अतन जानि रति कंज ढिग आनि पंच बान बानन की सामी धरि दीन्हीं है।
विधि हर मेरे दस भालन की भाग थली प्रेम सखी सिया पद आंगुरी नवीनी है॥

है युग खम्भ ए कंचन के पलना पग झूलन आए सिगार है।
प्रेम सखी मन डोरी तनी गति हंसन की सी झुलावन मार है॥
गावती गीत अली बिछिया रघुनन्दन नेह नचावत हार है।
पीन सुढार बनी चिकनी ये विराजत जानुकि जानु उदार है॥

नीलम नीली कसी सी है मध्य कंचन के तन जानि केधौं सिगार पांति साजी है।
आई स्याम ताई की निकाई सब सिमिटि कै जाहि देखि देखि रोम रोम पिय राजी है॥
झीनि दरसात है विसाल छवि सरसात रूप सुधासर मे सेवार सी विराजी है।
प्रेम सखी मेरी जान सुखमा समूह राजी गुन गन राजी धौ सिया की रोम राजी है॥

प्रेम सखी सुखमा सरते उमड़ी छवि चारु तरंग भली है।
प्रेम प्रभा ह्वै त्रिधा दरसै जिन पै परि डीठि हलीन चली है॥
देखे व नैनहिं जात कही पिय के चित की विश्राम थली है।
धारे मनोहर रूप अली परमादिकि धौ सिय की त्रिवली है॥

वोरी रंग नील है किशोरी जू के गोरे गात छवि सरसात देखि कंचुकी सुहाई है।
नगन जटित बूटी चारु जर तारिन की असित निसा में ज्यों नखत छवि छाई है॥
रुचिर वनी है नेह सो धेन सनी है जामें सुखमा घनी है प्रेम सखी मन भाई है।
उरज नवीन तरु चारी है विहारी दृग मृग फादिवे को प्यारी जारी सी लगाई है॥

प्रेम वसुधा से सिय अधर सुधा से वैन ललित सुधा से प्रिय अधिक सुधा से है॥
सहज हंसो है अनखो है न कदापि होत बिंबा से अरुन है कमल मोद वासे है।
माधुरी अनूप जाने प्रीतम के मन नैन रहत निरंतन जो पियत पिया से है।
देखि देखि प्रेम सखी वारने करत प्रान जनम अनेक के अखिल अघ नासे है॥

नैन अनिआरे तारे पुंडरीक पान मारे सिय पूतरीन पैं द्विरेफ गनवारे हैं।
कछु कजरारे सील सागर सुधा सुधारे वरुनी विशाल धारे जोर छोर वारे हैं।।
दीन पै सनेह वारे प्रीतम के प्रान प्यारे उपमा न पावत विरंचि रचि हारे हैं।
मीन मृग खंजन बनाए विधि प्रेम सखी वारि वन व्योम बसै लज्जित विचारे हैं।।

वा अनियारी विलोकनि की छवि गाइवे को विधि की वुधिहीन है।
प्रेम सखी मिथिलेश सुता की कटाक्ष के कोर भए गुन तीन है।।
मीचु समान दशानन की सुर धेनु समानि सु पालन दीन है।
रूप सुधा की तरंगिनी सो निशिद्योस जहां हरि को मन मीन है।।

अमल कपोल पर तिरे सों वदाने कौन देखै वनि आवत तरौनन समेत है।
ढके नील सारी सों किनारी जरतारी कोर अलकै वलित ह्वै अधिक छवि देत है।।
तरनि तनूजा विधु व्याल लघु लागे मोहि उपमा न दीन्ही प्रेम सखी एहि हेत है।
एई बड़ भागी जाहि सिय छवि प्रिय लागी परम अभागी जे अनत चित देत है।।

मेचक सघन सुकुमार है सेवार है ते सिया जू के सीस के विराज विसाल वार।
मोर पखवार तमधार मरकत तार पन्नग कुमार रचे कोटि कोटि करतार।
उपमा के हेत प्रेम सखी वुधिवान प्रभु करत रहत नित नए नए उपचार।
मोर पच्छ डारे त्वच पन्नग नवीन धारें मन में न आवै तौ वनावै विधि वार वार।।

झीनी हू ते झीनी है नवीनी नित नित होत नील रंग सारी प्यारी सुधा सों सुधारी है।
सब सुखकारी जापै मेघ माला वारि डारी दामिनी सी चहुंधा किनारी जरतारी है।।
भागन की भाग ऐसी सुखमा सोहाग ऐसी सिया जू कृपा कै जाहि निज तन धारी है।
उपमा न आवै तौ बतावै कैसी प्रेम सखी देखि देखि होत बार बार बलिहारी है।।

राजिव नैन के नैनन की छवि जानत नैन विलोकि भये धनि।
तैसे विसाल बड़ी वरुनी दृग सुंदरता सखि आई सबै बनि।।
प्रेम सखी जिनकी सुखमा जुग कोटि लों शेश न आपु सकै गनि।
मीन मृगा अरु खंजन वापु रे दै उपमा बदनाम करौ जनि।।

नामी की निकाई जाति कौन पहं गाई जातै उपजै विरंचि जो पसारे जग जाल है।
रूप सुधा वापि सी विराजत गंभीर धीर रोमन की राजी जापै सूक्ष्म से बाल है।।
त्रिवली निसेनी सी अधिक सुख देनी श्रेनी हंसन की आवत विचित्र मनी माल है।
प्रेम सखी मेरी जान सुदृढ़ बनायो यह पादप सिंगार को ललित आल बाल है।।

जंघा जानु युगुल विलोकि रघुवीर जू की उपमा को विरंचि विरंचि पछितात है।
कदली के खम्भ जे वनाए बहुतेरे ते तौ मानि लघु आपुको कम्पत पात पात है।।

मत्त गजराजन के कीन्हें सुंडा दंड फेर बापुरे लजाय कै निकारि दए दांत है।
विधि सो न आवै तौ बतावै कैसे प्रेम सखी इनकी समान मोहि एई दरसात है॥

प्रेम सखी तरु सबै फूलन के भारन सों लता बेली अरुझानी भूमि झुकि आई है।
बिविधि बहत बात सीतल सुगन्ध मन्द कुहू कुहू बोलै कारी कोकिला सुहाई है॥
अलिनी अलिन संग नलिनी निकुंजनि में मत्त मधुपान फिरै दशौ दिशा धाई है।
जनक सुता के अंश भुज दीन्हे रघुनाथ तिन बन बीथिन में रमत सदाई है॥
गोरे श्याम अंग रति कोटिन अनंग संग जाकी छवि देखि होत लज्जित विचारे हैं।
चंद कैसो भाग भाग भृकुटी कमान ऐसी नासिका सुहाई नैन जोर छोर वारे हैं॥
ओठ अरुणारे तैसे कुंद से दमन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुंघुरारे हैं।
अंश भुज धारे दोऊ नील पीत पट धारे प्रेम सखी राम सिया जीवन हमारे हैं॥

कंचन की गुजरी विछियां तुम को लहंगो अंगिया पहिराइ हौ।
कंचुकी साजु खवाइ विरी पहिराय चुरी अवतंस बनाइहौ॥
मांग सवारि कै प्रेम सखी शिर सेंदुर दै फिर अंक लगाइहौ।
दै तिय को छवि सुन्दर जू हम लाडिली जू के अजूरि नचाइ हौ॥

जावक लगायो जल जात ऐसे पायन में विछिया कलित ह्वै अधिक छवि छाई है।
घूमि रह्यो घेर बारो लहगो सबज रंग नील जरतारी सारी कंचुकी सुहाई है॥
प्रेम सखी अंग अंग भूपण विविध साजि वहू बहू कहत वधूटी गहि ल्याई है।
सुभगा सखी सिया जू के तुरत हजूरि कियो नवल बधूटी एक सासुरे ते आई है॥

फूल-बंगला

श्रीमोदलताजी

श्री मोदलता जी द्वारा संपादित यह छोटा सा ग्रंथ 'फूल बंगला' भगवान राम और भगवती जानकी के फूल शृंगार एवं युगल विलास के पदों का एक संग्रह है। इस संग्रह में सब प्रकार की सरस रचनाएँ हैं।

सजि सुमन शृंगार, दोऊ सोहै भरे प्यार, छाई शोभा की बहार फुलबंगला में।
दोउ गर भुज डोर, हेरै दृग पट डारप्रेमी-जन-बलिहार-फुलबंगला में॥
मन्द मुसकै निहार करै हिया आरस परस-रस वर्षो अपार फुलबंगला में।
झांकी बांकी मजेदार, गावें गुणी यंत्र धार होत सुमन न्योछार फुलबंगला में।
धन्य स्वामिनी हमार-धन्य राघो सरकार मोद नाचें जय जयकार फूलबंगला में।

रंगे मोरे नयना युगल शोभा।
श्याम गौर मिलि अनुपम झांकी मनहुं मेघ संग तड़ित दुरैना।
अरस-परस गलबांही दीन्हें लसत मनोहर मृदु मुसकैना।।
क्रीट चन्द्रिका नासा मणि नथ डोलत कुंडल कर्ण फुलैना।
'मंजुलता' नख-शिख स्वामिक देखत भाव बखान बनैना।।

बिन देखे नयनवा न मानें हो।
जब से लखी दृग माधुरी मूरति रूप सुधा रस चसकानें हो।
मुख सरोज मकरन्द पान करि जन मधुकर मन मस्तानें हो।।
जिमि शशि ओर चकोर विलोकत रूप सुधा रस चसकाने हो।
अहह सुजान राम प्रिय तुम बिनु कौन मौन मन की जानें हो।।

नैनन की बलिहारी हो श्री प्रिया जी।
भाव भरे रस भरे है मनोहर मुद-प्रद अवध-विहारी हो।।
चितवनि चपल चतुर चित चोरत, मुरनि-ढुरनि अति प्यारी हो।
अंजन बिनही सोहावन वावनि, वर्षा वन सुखवारी हो।।
पगे प्रेम प्रीतम सुजान तिन, नवल रसिक विहारी हो।
हेमलता उपमान वारि सब, अनमिष रही निहारी हो।।

ये दोऊ चन्द बसो उर मेरो।
दसरथ सुत श्री जनक नन्दिनी अरुण कमल कर कमलन फेरो।।
बैठे कनक सिंहासन ऊपर, आस पास ललना गण घेरो।
ललित भुजा दिये अंस परस्पर, झुकि रही केस कपोलन नेरो।।
चन्द्रावति सिर चौर डुलावति, चन्द्रकाल तन हंसि हंसि हेरो।
राम सखे छवि कहि न पड़त जब, पान पीक मुख झुकि-झुकि गेरो।।

श्याम अंग बसन सुरंग सोहै संग बंधु नाचत तुरंग चाल चलत चलांकी है।
कंकन करन रस रंग मणी माल उर भाल में तिलक मंजु मौर शिर ढांकी है।।
चन्दन मुख मन्द मन्द हंसनि आनन्द भरी नैन अरविन्द छवि फन्द मनसा की है।
झांकी जेहि झांकी यह बांकी रही ताकी कह राम दुलहा की वर बांकी बनी झांकी है।।

बाणिद बरन वपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणा मन बंत बाहु वीरता की है।
बिविध बिभूषन बिशाल बनमाल बनी बाम में विराजती त्यों बेटी बसुधा की है।।
बिधु सो वदन वर बारिज विलोचन है बिहसनि बड़ी बाधा विदरनि बांकी है।
बसै रस रंग के बनज बुधि बोध बीच विश्व बीर राम की विमल बांकी झांकी है।।

सीता तड़िता के तन बसन समान घन
घनश्याम तन पट द्युति तड़िता की है।
मानो कल नील कंज शील पुंज सिया,
नैन लाल कंजहू ते मंजु आंखें रसिया की है।
पैखे रस रंग मणी शोभा दोऊ दोहुन की,
मंद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झांकी बुधि कतहू न झांकी
अस राघव सिया की जस बांकी बर झांकी है ।।

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने,
ललित सुबाहु कल कंठन कसे रहै।
केलि के उछाह छवि छाके दोऊ दोहुन के
लूटत आनन्द लीला लोभित लसे रहें।।
फेरत बिलोचन बिलोल त्यों विनोद
माते राते रस रंग मणि हेरत हसे रहें।
आनद के कंद दोऊ चंद रघुनंद सिय
सरस हमारे हिया कमल बसे रहें।।

सीताराम संयोग पदावली

परमभक्त श्री बैजनाथ कुरमी

श्री बैजनाथ जी रामावत-सम्प्रदाय में एक परम प्रवीण भक्त माने जाते हैं। इन्होंने रामचरित मानस की टिप्पणी लिखी तथा गोस्वामी तुलसी दास जी के समस्त ग्रंथों का भावार्थ लिखा। ये स्वयं मानस के एक सफल कथावाचक थे। सीताराम संयोग पदावली की प्रति पीले रफ कागज पर लीथो में, जुलाई सन् १८८० ई० की मुंशी नवल किशोर (लखनऊ) के छापेखाने से, छपी प्राप्त है। आरंभ में श्री श्री जानकी के जन्म की मंगल वधाइयाँ हैं तब श्री रामजी के जन्म की वधाइयाँ हैं। तव संक्षेप में रामकथा है और राम तथा सीता के रूपमाधुर्य का अलग-अलग वर्णन के पश्चात् इनके विवाह का पूरे विस्तार एवं सरसता से वर्णन है। फिर युगल स्वरूप के नाना-वध शृंगार विहार एवं लीला विलास के पद हैं जो अनुभव और साधना से परिप्लुत हैं।

झूलत सीय झुलावत नारी।
कनक जटित मणि रुचिर पालने शोभित आंगन रूप उज्यारी।
कर कमलन सजि रुचिर पहुंचि या पगन पहुंचिया रुनुझुनुकारी।
सुखमा सदन वदन आनन्द निधि जननी निरखि जात वलिहारी।।

छबि देखि मगन रघुनन्दन की मिथिला पुर की सब कामिनियां।
श्रुति कुंडल लोल छुटी अलकै मुख चन्द्र मनो सित यामिनियां।।
शिर कंचन कीट त्रिखंड धरे बन माल गरे कुंजर मनियां।
घनश्याम शरीर पै वारि धरीं पट पीतमनो थिर दामिनियां।।
कटि तूँन शरासन बाण धरे गति कौन कहै सुख धामिनियां।
लखि सुंदर रूप शिखानख लौं सब मोहि गई गज गामिनियां।।
मन आनन्द देह विहाल भइ यह बात कहै सब भामिनियां।
अब बैजनाथ संयोग बन्यो वर योगि मिल्यो सिय स्वामिनियाँ।।

राम बना जस अजब सलोना।
तस नहिं सुना दीख नहिं नैनन ज्यो न है नहिं आगे हु होना।
श्याम अनूप भूप लालन को रूप समान विरंचि रचोना।
भूलिनि लखि मुख चंद माधुरी कामिनि देह गेह सुधि होना।।
औसर आजु राज मंदिर में लेवै लाभ लाज धरि कोना।
सो पछिताइ खाइ बिप मरिहै खोलि नयन लखिलैवे रि जो ना।
मै भरि अंक सफल तन करिहौं उमगो मैं न लाज उर झोना।।
बैजनाथ सीता बल्लभ पै निश्चय आजु पतिव्रत खोना।।

राम बना कछु कै गयो टोना।
जब ते लखी सखी वह मूरति सूरति हिय से जात अजोना।
भय न लाज उर मै न महाबल नेह उमंगत हो सर होना।।
पैन कटाक्ष चुभी नैनन में दिन नहिं चैन रैन नहिं सोना।।
छूटि धीर दृग नीर कपोलन खोलि बोल कछु बोलि सको ना।।
टूटि बहत कुल कानि तीर तरु प्रेम प्रवाह रुकै रोको ना।।
मैं भरि नैन खोलि घूंघट पट करिहौ देह सुगंधित सोना।
बैजनाथ जानकीनाथ के हाथ बिकात लोक सकुचोना।।

देखु सखी छबि राम बने की।
कंचन मौर खौर चंदन शिर जगमग द्युति मणि माल घने की।।
पग जावक कंकण कर राजत भूपण सकल सुदेश ठने की।
बैजनाथ कहि कौन सकै गति मृदु कटि पर पट पीत तने की।।

राज कुंवर बना राम सखारी।
मन भावत कहि जात न मोसन अलबेली छवि आजु लखीरी।।

जामा जर कस मौर विराजत पीत वसन मृदुलंक छखोरी।
कहत बचन सखि प्रेम विवश ह्वै बैजनाथ मुनि सब हरषी री॥

रघुवर रूप देखि मन भावत।
सुन्दर श्याम सरोज बदन पर मदन अनेक देखि बलि जावत॥
चंदन खौरि मौर शिर ऊपर कुंडल श्रवण अलक झलकावत।
मणि माला छवि पदक ज्योति उर कंटक पीत देखि सकुचावत॥
पीत वसन कटि तडित बिनिंदित चलनि मस्त मातंग लजावत।
पान खाति मुसक्याति माधुरी दृग चितवति उर कहर जनावत॥
बैजनाथ मोहिं सुधि नर हत तन मन बसु याम राम गुण गावत॥

राघो जी बना सलोना भाई।
सुन्दर बदन मदन लखि लाजत उपमा किमि कहि जाई॥
चंदन खौरि मौर शिर शोभित अलक कपोलन छाई।
बिहंसनि मधुर फेरि दृग चितवनि लखि चित लेत चोराई॥
कुंडल श्रवण ललित कंठावलि कुंजर गणि छवि छाई।
पीत वसन अंग लसनि मनोहर झाकत दृग न समाई॥
कमल चरण पर अमल महा उर नखन मधुर अरुणाई।
निरखि निरखि अंग अंग माधुरी बैजनाथ बलिजाई॥

श्याम सुन्दर रघुनाथ बने की।
छवि लखि मन न अघात री माई॥
निरखत ललकि पलक नहिं लागत देह विवश होइ जात री माई।
आठौ याम श्याम रंग भीनी का मन कछू सुहात री माई।
बैजनाथ भूली सब सुधि बुधि दृग माधुरि पगि जात री माई॥

तेरी छवि ने हमारो मन लीन्हे।
सुनिये जी राज कुमार सहज लाज कुलवंती बाला गुरुजन लाज अपार।
निरखत तव मुख चन्द्र माधुरी तन गति रहि न संभार।
चंद्र चकोर मोर घन चातक स्वाती बूंद अधार॥
यदि गति में तरनारि जनकपुर मन करि लेव विचार।
परत न चैन रैन दिन हमरे नयन बहत जल धार॥
बैजनाथ रघुनंदन तुमहीं जीवन प्राण अधार॥

होरी आजु राम सिय फागु रचेरी।
बन प्रमोद फूल फूल विटप सब दल भारन भरि जात लचेरी।

गुल्म लता चहुं ओर विविध विधि महि चित्रित मणि हेमखचेरी।
धवल धाम बहु वरण मनोहर कनक कोरि नग पीत गचेरी।
नामधि लाल लली राजत रसि मदन विलोकत छवि सकुचेरी।
नवल सखी अलबेलि प्रिया प्रिय राज कुंवर लिये छैल जचेरी।
मोद उमंगि उछाह भरे सब जयति जयति दुहुं ओर मचेरी।
वीन मृदंग ताल डफ बाजत नृत्यकार बहु भांति नचेरी।
बैजनाथ सुनि मोहित जग भयो सुर-नर-मुनि नहिं एक बचेरी॥

हिंडोरे झूलत सिय प्यारी।
रंगभवन मधि लाल झुलावत गावत गुण नारी।
रंग के झूलन छविकारी॥
अली कली सो खिलो गीली निरखत छबि भारी।
रंगके भूषण अंग धारी रंग गान करि बांध रंगीली॥
नट तन बालनारी रंगीली घटा सों बनकारी॥
गरजि घुमड़ि चपला चमकत मखि मोर शोर भारी रंगीली झूलन सुखकारी।
बैजनाथ दोउ लाल झुलन की छवि पर बलिहारी॥

हिंडोरे माई झूलत युगल किशोर।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस भुज जोर॥
शीश मुकुट मणि माल हलन की पलन चलन चित चोर।
सुखमा सर युग कमल नयन लखि कुंडल जनुरवि भोर।
मन्द हसन तन लसन विभूषण वसन कसन जर कोर।
जनु घन तडित विलास विविधि लखि सखि दृग चकित मयोर॥
भालतिलक लखि झलक अलक को पलक सहत नहिं कोर।
ज्यों जस को तस ह्वै रस की वश हाय फंस्यो मन मोर॥
नील पीत पट अद्भुत राजत श्याम वपुष ढिग मोर॥
वारों मैं बैजनाथ यहि छवि पर रति युत काम करोर॥

हिंडोरे माई झूलत दशरथ लाल।
सोह बाम दिशि जनक नंदनी कनक लता ज्यों तमाल॥
शीश सुभग मणि मुकुट विराजत मोहत तिलक सुभाल।
विथुरी अलक कपोलन राजत कुंडल श्रवण विशाल।
पान खात मुसक्यात परस्पर चितवनि करत निहाल।
दै गल बांह लेत जब झोंका उरझि जात मणि माल॥

श्याम गौर दोउ अंग मनोहर पीत बसन ढिक लाल।
बैजनाथ छबि लखि बलिहारी सखि गावत दै ताल॥

लाल बिन कैसे मन धीर धरै।
बिन देखे मुख श्याम की शोभा नैनन नीर झरै।
होइ प्रभात बदन कब देखौं जियरा कल न परै॥
बैजनाथ कोउ श्याम मिलावै उरकी तपनि हरै॥

मोहिं इस्क पीर गम्भीर और नहिं भावै।
बिन देखे छबि रघुबीर धीर नहिं आवै।
तन श्याम सजल घन तडित पीत पट धारी।
सुख सदन वदन पर मदन कोटि बलिहारी।
शिर मुकुट पुरट मणि जटित तिलक द्युति जागै।
लखि ललक अलक की झलक पलक नहिं लागै।
श्रुति कुंडल नैन विशाल कछुक कजरारो शुचि विद्रुम बिंब अधरपर वारी।
भुज भूषण सहित विशाल बान धनुधारी कटि कसे तूण पट रुचिर मदन छबिहारी।
मुख चन्द मधुर मुसक्याति बिरह शर मारे।
अब बैजनाथ बलि जाउं दरश दियो प्यारे॥

चित चाह लगी रघुनंदन की।
कछु मोहिं न भावत री सखिया।
गति सूरति आश चकोर भई मुख चन्द अनूप जही लखिया।
छबि देखि पगी नव नेह जगी सब लाज भगी जग को रखिया।
अवगाहन ते बिलगात नहीं तन श्याम पयोनिधि ते अंखिया।
तन कंप उठै बुधि मोरि भई धन देखि यथा अहि को भखिया।
अब बैजनाथ नहिं छूटि सकै मन जाय फंस्यो मधु को मखिया॥

राम सिय आजु बने परभात।
शीश मुकुट इत ललित चन्द्रिका कुंडल श्रवण सुहात॥
चूनर संग बसन पीताम्बर शोभित श्यामल गात।
बैजनाथ छवि कहि न परत है रति शत मदन लजात॥

राम सिय सैन शाल अलसात।
आलस भरे उनींदे नैना झूमत झुकि झुकि जात॥
चन्द सरिस द्वउ मुख की शोभा कमल मनहुं कुम्हिलात।
बैजनाथ छबि कहं लै बखानौ लखि रति मदन लजात॥

हरषित दोउ यक संग रहेरी।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस पर बांह गहेरी।
को हर गौरि नेह इत सांचो रूप सिन्धु रति काम बहेरी।
बैजनाथ द्वउ तन की सुखमा छबि सिंगार जनु प्रेम गहेरी ॥

बिगत निशा प्रातकाल जागे सखि लाल सवन व्योम तिमिर जाल अरुण प्रभा नाशी।
फूले बहु कमल ताल भागे बहु भ्रमर माल उडगण द्युति छीन हाल चकई पिय प्यासी ॥
राजत मुख सेज भौन आलस वश सिया रौन उपमा रति मार कौन निरखत छबि दासी।
हुमसत पुनि मिलत पदक चिक्कन मृदु छूटि अलक बिलुलित मुख चन्द झलक किधौं मदन फांसी

धोवत मुख विमल वारि पोंछत मृदु बसन वारि मंगल मय भोग धारि अलिगण चहुंपासी।
उबटन मंजन सुकारि अंशुक भूषण सवारि वारत धन प्राण नारि दरश आश प्यासी।
नील पीत श्याम गौर जरकस युत जलज छोर कुंडल धन भानु मोर मुकुट प्रभा खासी।
बैजनाथ सहित क्षेम धारे इमि नेह नेम जनु सिंगार सहित प्रेम पावन सुखमा सी ॥

हमारी दिशि हेरो प्यारे पीतम लाल।
तन हारी लखि रूप की रचना मन हारी तेरी चाल ॥
मुख लखि हरष विवश दियो अबला तन मन धन सब काल।
चाहत निशि दिन रूप माधुरी चितवनि निरखि निहाल ॥
मेहर प्याय कहर ना चहिये गहि भुज चहि प्रतिपाल।
बैजनाथ दृग प्यास दरश की छबि रघुनंद विशाल ॥

रंगीले द्वउ राजत रंग भरे।
श्याम गौर अभिराम मनोहर छबि मिलि होत हरे ॥
दशरथ सुत अरु जनक नंदनी अंगन बांह धरे।
मरकत फटिक तमाल की चंदा घन जनु तड़ित अरे ॥
जनु ह्वै रूप एक ह्वै बैठे हरि तिय रिति निदरे।
बैजनाथ निरखत नित अलियां निशि दिन पल न परे ॥

निहारी छबि चाहत नयन पिये।
चंद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यों मीन जिये ॥
श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये।
बैजनाथ गति एक रावरी नहिं कछु चाह बिये ॥
राम तेरी माधुरी प्यारी मो दृग लखि न अघाय।

चातक त्रिपित जल पाय ॥
अंबुज नयन बैन रस भीने जब हेरत मुसक्याय ॥

यक टक रही दारु पुतरी ज्यों देश दशा बिसराय।
परत न चैन रैन दिन मोको कब उर मिलिये धाय॥
तिहारी छवि देखि सांवरे मन मेरे नहिं कलरे।
निशि बासर मोहिं और न भावत कौन करी छल रे॥
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपल रे।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पियो जल रे॥

लखौरी आजु राजत सिय संग राम।
दिव्य कनक मणि जटित सिंहासन आसन सुख को धाम।
शीश क्रीट इत ललित चंद्रिका वदन उभय मुख धाम॥
कुंडल वीर बुलाक अधर पर त्यों बेसरि दिशि वाम।
बेंदों भाल तिलक मृग मद को कुसुम युगल गल दाम॥
वैजंती वन माल पदिक पर चंद हार अभिराम।
कनक बलय केयूर मुद्रिका भुज भूषण बहु नाम॥
नूपुर पग मंजीर पीत पट तट चूनर रंग श्याम।
पिय छवि नील जलद लखि लाजत तड़ित वरण सी वाम।
वैजनाथ यह देखि माधुरी वारों में रति शत काम॥

श्रीरामविलास

ठाकुर मथुरा प्रसाद सिंह (चौगड़वा, जिला वस्ती) का लिखा यह ४० पृष्ठों का ग्रंथ दोहे-चौपाइयों में 'रामचरित मानस' का लघु संस्करण कहा जा सकता है। इसमें सरल सुबोध दोहे-चौपाइयों में राम का चरित्र अंकित है। संवत् १९६४ की चैत्र रामनवमी को यह ग्रंथ लिखना आरम्भ हुआ। राम की बारात का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही है। इस ग्रंथ की सब से बड़ी विशेषता इस बात में है कि जनकपुर में श्रीराम के विवाह के समय जानकी की सखियों के साथ जो हास-परिहास होता है, वह बड़ा ही सजीव और आकर्षक है। श्रीराम और श्री जानकी का नख-शिख वर्णन भी कम मनोहारी नहीं है।

श्री सम्वत उनइस मैं, चौंसठि चइत सुमास।
राम जन्म तिथि राम गुण, वरणौं सहित हुलास॥
राम बरात समूह, पै कछु गिनती करत कवि।
डेढ़ कोटि गज जूह, तीस कोटि वर बाजि है॥
कोटि पचीस उदार, जगमगात हैं पालकी।
बहुरि भार वरदार, सात कोटि पच्चीस लख॥

श्री राम जी का नखशिख वर्णन

पदतल अरुण सुमृदुल अति, कोमल वारिज फीक।
अरु गुलाब नहिं बाल रवि, सुखमा केर थलीक।।

सकल सुचिन्ह विराजत नीका। दहिने पद ऊरध स्वमतीका।।
अष्ट कोन अरु रंभा विराजें। हल मूसल अहिसर पट भ्राजें।।
वारिज स्यंदन पवि जौ रूपा। सुर तरु अंकुस ध्वजा अनूपा।।
मुकुट चक्र सिंहासन अहई। जम सुदंड जमदंड को दहई।।
छत्र चौर नर अरु जै माला। ये चौविस दहिने पद थाला।।
पुनि बायें पद रेखा बरणी। सरजू सरिता गोपद धरणी।।
कलसा केतु जम्बुफल लसई। अर्ध चन्द्र दर लखि जिय फंसई।।
पुनि षटकोन और त्रेकोना। गदा जीवनरु बिंदु सलोना।।

सक्ती सुधा मुकुंड कल, त्रिवली झख ससि पूर।
बीन बंसि धनु तून पुनि, हंस चंद्रिका रुर।।
ये अड़तालिस चिन्ह नित, बसत रामपद माहिं।
मथुरा सुजनन के सदा, सुख सुभदायक आहिं।।

येइ येइ रेखा सियपद माहीं। दाहिन वाम भेद पै आहीं।।
सोहत काम कुर्म पद पृष्ठा। नूपुरादि भूषन छवि श्रीष्ठा।।
कल अंगुलिन अंगुठन नख जोती। पंकज दलासनि जनु मोती।।
दुहू पद जावक कलित संवारे। रचना देखि विरंचि जू हारे।।
सोहत उभै कमल पद त्राना। लाल मदन के जीह समाना।।
लसत कड़ा युग गुल्फ जानु अति। जंघ कदली तरु किमानुहति।।
केहरि कटि सम लंक सुहाई। किंकिणि मंजु रुचिर अधिकाई।।
सुभग विराजति पीअरी धोती। निंदति सिसुरवि तड़ित की जोती।।

राजत नाभी सर त्रिबलि, सींढ़ी रोम से बाल।
उर मुक्तामणि माल जनु, उड़ि बहु आव मराल।।

हृदै पदिक कल भृगु पद रेखा। उर श्रीवत्स सुरुचिर अलेखा।।
दोउ भुज कलित बिसाल सुहाई। अंगदादि भूषन छवि छाई।।
कनक सुमणि पहुंची करमाहीं। रेख विचित्र वरनि नहिं जाहीं।।
अगुलिनि अगुंठन नख दुति रूरी। मुदरी लेइ चोरि चितशूरी।।
याही कर धनु बान विराजै। सुरन सुखद असुरन दुख साजै।।
लसत जनेव स्याम तनु बांका। जनु घन पर दामिनि सुभ आंका।।

जरद जड़ित अति सोहहिं जामा। रतन निकन बहु लसत ललामा॥
पीत कन्हावरि कांखा सोती। छोरन माहिं लागि मणि मोती॥

वृषभ कंध सम कंध कल, मंजु कम्बु सम ग्रीव।
सरद इन्दु की मद हरण, आनन सुखमा सीव।
अधर अरुण रद औलि मृदु, हंसनि हरत जन चित।
जनु बिद्रुम सु विमान सुर, सभा सुमन वर्रात्त॥

चिबुक सुहनु नासिका सुहाई। लसत बुलाक विचित्र बनाई॥
कल कपोल बरणौं केहि भांती। काम गेन ससि जोति लजाई॥
श्रवनन सुभग मुकुंडल डोलहिं। परमत गाल लेत मन मोलहिं॥
सोहत जुगल नैन छवि पीना। लाजहिं कंज खंज मृग मीना॥
अस छवि नहिं त्रैलोक के बीचहिं। चितवनि चारु सुधा जनु सींचहिं॥
उभै भौंह सोभा अधिकाई। मदन धनुष सम वरनि न जाई॥
भ्राजत तिलक बिमाल सुमौली। केम निरखि लाजति अलि औली॥
विबिधि सुगंध अलक गह बोरी। बायम पर सम सुभग न थोरी॥

पियरी पाग विचित्र रचि, तेहि पर मणि मै मौर।
अधिक सुहाई छवि निरखि, विधिहू की मति हौर॥
अनु जन युत रघुनंदनहि, निरखि निरखि सब नारि।
मधुरी मूरति उरमिनी, प्रेम विवश भई झारि॥

जनकपुर में सखी के साथ हाव विलास

चंबल चखन दरश अतुराई। सखिन समेत राम पहं आई॥
लखि ननदोइन मय सुख कैसे। तलफत मीन नीर लहि जैसे॥
पुनि किमि भई मुदित सब नारी। जिमि चकोरि राकेस निहारी॥
तब प्रभु कैकरधरि मिधि बांकी। करि भृकुटी मुख अंचल ढांकी॥
बोलीं सुनिये राज कुमारा। बड़े तमकर चित्त चोरन हारा॥

चित्त हमार चोराय कै, आयो मासु के तीर।
मिद्धि केर इमि बचन सुनि, बोले श्री रघुबीर॥
भामिनि उलटी बात जनि, कहु निज औगुन मोय।
मम आगमन सुजानि कै, तुमहिं लुकाने जोय॥

बहुरि रसिक पति पद सिर नाई। कहौं कथा रसिकन सुखदाई॥
जे नेवंत मिथिला पति केरी। आई राजकुमारि घनेरी॥
अति निरदूपन अंग सु बसनू। भूषन सकल सजे जिस फंसनू॥

सब के उर अभिलाष अभंगा। बोलब हंसब राम के संगा॥
जेहि नारि जाकहं ध्रुव अनुरागा। ताकहं मिलत बिलम्ब न लागा॥
तिनहूं सकल सुनी यह बाता। सिद्धि सदन आये चहु भ्राता॥
आई बेगि निकर हरषाई। आदर सिद्धि कीन सचुपाई॥
रघुबर रूप निहारन लागीं। नयन प्रेम जल चल सुख पागीं॥
कोउ कल जंघ सुदेखति धोती। कटि किंकिणि लखि प्रमुदित होती॥
कोउ नाभी उर बाहु निहारी। जामां लसत कन्हावरि डारी॥
अधर सुबीरी अरुण सुहाई। बाल दिनेश प्रभा जनु छाई॥
काम म्यान ते किधौं निकारी। सिकली कीन धरी तरवारी॥
चिबुक सुहनु थल सुंदर गालू। कोउ देखति नासा छवि जालू॥
कोउ जोहति नयनन की शोभा। जिनहिं बिलोकि मदन मन छोभा॥
सुधा गरल बारुनी समाना। श्याम सेत रतनार सुहाना॥
राम बिलोचन जेहि दिशि करहीं। मरत जियत झुंकि झुंकि सो परहीं॥
भौंह चाप जनु मनसिज केरा। चितवनि शायक तिब्र घनेरा॥
लागी जुवतिन के उर घाऊ। दरद करत अति सहि नहिं जाऊ॥

देखति कोऊ ललाट की, सुखमा तिलक सुरूर।
कोउ अवलोकति अलकश्रुति, कुंडल छबि रह पूर॥
श्री रघुनंदन छैल नृप, चितवत जिन की ओर।
तेहि सुधि नहिं घरबार की, जिमि मदान्ध जन भोर॥
रसिक शिरोमणि राम, नवल प्रीति अभिलाष अति।
जस जिनके उर जाम, रहा लालसा तवन रुचि॥
राउर मूरति नीर सम, हम सब के मन मीन।
किमि जीहैं बिरही घनी, भाषौ परम प्रवीन॥
सिरजे रहे बकि मनहिं अस, जब गौनब ससुरारि।
करब कतल मिथिला नियन, प्रीति षड़गते मारि॥
बनिता जानि अवध्य हम, सब बिधि राजकुमार।
सो तुम कानि न लेसहू, कीन्हेंउ मन सुखसार॥

मारयो चखन बिसिख विषवारे। भृकुटी चाप चढ़ाय के प्यारे॥
जग बीड़ा कुल सीवं प्रसंगा। ये सब होहिं क्षणक महं ध्वंसा॥
लागि प्रीति जो क्रम मनवानी। सो नहिं छूटे सारंग पानी॥
जैसे जल लहि सनरजु गांठू। अरु जिमि नवै न उकठ कु काठू॥
तिमि कबहूं छूटै नहिं नेहा। मरबस जाय जाय बरु देहा॥

ऊंच नीच चाहै जेहि पाहीं। लागै प्रीति सो अति प्रिय आहीं॥
तेहि देखे बिनु राजकुमारा। तरस न जाय कोटि उपचारा॥
यदपि रयन दिन मीत सरूपा। अवसि टिकै उर सुखद अनूपा॥

तद्यपि तरसत रहत चख, जुगल यार बिनु देखि।
जिमि चकोर राकेश के, जोहेहिं सुखी विशेषि॥
जाति मींव कुल केर बहु, धर्म जाय नृप ढोट।
पै मूरति निज यार की, होय न नैनन ओट॥

बाचा शालरु परवस रहई। पै बियोग नहिं यार मो लहई॥
वहु विधि दुख सहि जाय शरीरा। नहिं सहि जाय यार की पीरा॥
निज प्रीतम बिछुरत सुख जेते। भौमहं दुख सम लागत तेते॥
यद्यपि हम अविवेकी नारी। जाति हीन सब भांति गंवारी॥

राम का उत्तर

मोसम प्रीति करै जो प्रानी। जानि अजान केहूं विधि आनी॥
चख पूतरि सम भामिनी, जोगवहुं में तेहि काहिं।
अवगुण एक न देखहूं, देखौ गुण तेहि पाहिं॥
मम इमि बानि है लाड़ली, जानै नेहीं हार।
न तु मोहिं लहहिं न मनुज करि, बहु विधि के उपचार॥
जिन जिन प्रेमी केर जग, सुनियत बड़ि मर्याद।
मोधहु तिन तिन माहिं जो, है यक यक अपवाद॥

वहु दुख सहि दिन करते कंजा। लखहु विचारि प्रीति किये पुंजा॥
पै नहिं करुणा करत दिनेशू। प्रेमिहिं जाग्त परें कलशू॥
पुनि लखु तरसत रहत चकोरा। चितवत शशि मग प्रीति न थोरा॥
ताहि जोहि मानत निज छेमां। बिधु मन नेकु न गड़ी सो प्रेमां॥
प्रीति किये अति मणि नें नागू। बिछुरत तेहि महमा न त्यागू॥
पै न प्रीति सो मणि के धंसई। दिन प्रति उदित होय नहिं झसई॥
चातक मोर जलद पर भारी। करत प्रीति मिधि राजकुमारी॥
नेकु न घन तेहि नेह बिचारै। ऊपर ते पवि पाहन डारै॥

अरु झंख जल वस दिवम निसि, रहति न कबहूं भिन्न।
मीन केर इमि देखि रति, नीर के मन नहिं खिन्न॥
लखु प्यारी दीपक सिखहिं, देखि सु सलभ लोभाय।
कूदि जरत कृषानु के, लेसहु दरद न आय॥

इमि वहु प्रीति मान है प्यारी। चलनि पोच हिय लखहु विचारी।।
एक तौ एक पर त्यागत देहां। एक न चितवत निरदै गेहां।।
हे मिधि आदिक राजकुमारी। ऐसन है नहिं नेह हमारी।।
अपने प्रीति मान जन संगा। तजौ न क्षण भरि प्रीति अभंगा।।
प्यारी मम प्रीतम के काऊ। खर्ब जानि अभिमान देखाऊ।।
करों ताहि अतिनि कर विशाला। जाते नावहिं शिव विधि माला।।
अरु सजनीं सब भुवनन माहीं। मवहिन ते अरचावों ताहीं।।
कहं तक बरणौं तासु बडाई। हमहीं ताको सीस नवाई।।

निज वहिके तनु में तनिक, मर्म न टिकवों फूर।
कबहुं सनेह न तजौ तेहि, करै जो कोटि कसूर।।
राजकाज तिहुं भुवन के, सम्पति सकल जु आहिं।
अनुज तनय सिय देहं निज, मोकहं तस प्रिय नाहिं।।

जस प्रिय लागत सहज सनेही। मानहु बचन कहौं मति एही।।
बिविध शरीर धरौं जेहि लागी। कानन कानन बागहु जागी।।
दुःख सहों सिर ऊपर कीता। पै परि हरौं न आपन मीता।।
गजगणिका अरु जमन जटाई। अजामील सेवरी कपिराई।।
रिक्षप पौनज तमचर राऊ। ये सब जानहिं मोर सुभाऊ।।
जो निज बाट बटोरि सकल थल। सो बांधें मम चरण नेह भल।।
अटौ में सेवक इव तेहि संगा। सजनी यह मम बानि अभंगा।।
मोसे नेह जोरि जो फेरी। आस करै दूजे सुर केरी।।

वहु विनती वह जन करै, तौ न जाउं तेहि तीर।
येहू बानि मम कठिन है, कह मथुरा रघुबीर।।

रहे सु ग्रन्थ यह राम विलासू। रसिक जनन कहं परम सुपासू।।

रम्य पदावली

इस सुवृहद् ग्रंथ की एक खंण्डित प्रति मिली है। लेखक कश्चित् 'कोविद' कवि है। इसमें भगवान श्री राम और श्री जानकी जी के परस्पर अरस परस, मिलन, हास विलास, झूला और होली की लीलाओं के पद है। लगभग चार सौ पद इस संग्रह में हैं।

रघुवर विहरत वीथिनि वीथिनि यूथिनि वन प्रमोद मद तावत।
रंग विरंग रंग लै संगन वजत मृदंग न गावत।।
तिरहुति पति दुहिता वनिता कहुं घेरि घेरि बिलगावत।
काबू करि बाबू भरतादिक फौरन फाग मगावत।।

लाल लाल संग लाल वाल लखि सोम समूह सजावत।
मंदार द्रुम सुमन सार सहृदार सुमन बरसावत।।
विहंसि विहंसि रस रसिक शिरोमनि होरि होरि कहि धावत।
चाहत जानि प्रसाद समय कवि कोविद मुद मन भावत।।

होरी गोरी भई भोरी।
रघुनंदन अरु जनक नंदनी अनुशासन सब दोरी।
रंग सरित वह वाय धाय धरि सबहि विहसि बरजोरी बोरी।
गान विधान नवीन धाहिनी प्रिय तर करमिलि जोरी।
कोविद कवि छवि वादन अद्भुत सुनि जय धुनि चहु ओरी शोरी।।

हिंडोरा झूलत राज किशोर।
गरजै गगन मेघ मधुरी धुनि दामिनि करत अजोर।
श्याम घटा वगु पांति विराजै पवन चलत झकझोर।।
वंसी वेन सितार सारंगी सम को सुर एक ठोर।
ढोल मृदंग मजीरा महुरि धुन उपजत घनघोर।।
गावत सुर नर नारि सुहावन सावन उठत अडोर।
निरखत सुर वर वधू पुलकितन राम नयन की कोर।।
अति आनन्द उभय पुरवासी लखत राम की वोर।
कोविद राम सिया को झूलन कंज मधुप मन मोर।।

झूलत उमंग भरे पिय पिय सिय संग रे।
रतन जड़ित मैं वनो हिंडोला प्रमुदित रंग करे।।
युगल थंभ विचित्र सोहै मोतिन लाल भरे।
हरित लतान वितान चारु तर केकी कूक करे।
कोविद कवि छवि निरखि हरखि हिय मुद आनंद भरे।।

सैयां सावन झूलन झूलो।
सेवन घन चाहत धन मित लखि सखि बनि रितु अनुकूलो।।
धीर समीर तीर सरजू को नीर सुरभि फुल फूलो।।
कोविद सुर तरु तरमनि झूलो।
गुनि गन गुन सम तूलो।।

भक्त मनरंजनी

प्रेम सखी-कृत

श्री प्रेमसखी की "भक्तमन रंजनी" यथा नाम तथा गुण है। अनेकानेक राग-रागिनियों में प्रेम के मधुर रस में पगे पदों का यह सुंदर सुवृहद् संग्रह वास्तव में भक्तों के मन को प्रेमाह्लाद से परिप्लुत कर देने में समर्थ है। सन् १९०१ ई० में जैन प्रेस(लखनऊ) से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने छपवा कर प्रकाशित किया।

चंचल चपल चाल चलत सुहाई रे।
चंचल अनोखी बाल चलत मधुर मंद।।
लचक लचक जात कामिन लजाई रे।
चंचल नयन खंज भृकुटी कमान तान।
मुख की चमक चारु चन्द्रमा लजाई रे।।
रसिक बिहारी रामचन्द्र को मिलन हेत।
धावत धरा के धाये नागर कुमारी रे।।
चमकि चमकि चख प्रेम को सुधारस।
मधुर मधुर रस पियत अघाई रे।।
प्रेम सखि देख प्रेम चन्द्रावलि बीर ऐसे।
सोलहो सिंगार कर राम को रिझाई रे।।

महारासोत्सव अर्थात् सीताराम रहस्य

यह श्री हनुमत्संहिता का अवधी गद्य में अनुवाद श्री अम्बिका प्रसाद दैवज्ञ ('अवध मंडलान्तर्गत जिला उन्नाव तहसील हसनगंज औरासी ग्राम निवासी') का गद्य में मिलनेवाला इस संप्रदाय का एक विलक्षण एवं परमोपयोगी ग्रंथ हैं। गद्य का नमूना हम नीचे दे रहे हैं। परन्तु, अनुवाद में बीच-बीच में कहीं कहीं सार रूप में दो एक दोहे भी आ गए हैं। भाषा लड़खड़ाती हुई परन्तु सशक्त है और भावाभिव्यक्ति में सफल। लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १९०४ ई० में छपी।

कोई स्त्री अपने प्यारे को नमस्कार करती है कोई मद से अपने पियारे पर रिस करती है फिर ज्ञान भये प्रसन्न करै खातिर जैसे पतिव्रता लड़ाई को दूर करती है तैसे।

कोई सखी संकेत कुंज के बीच में जाय कै तहां नहीं देखती है तब अपने प्यारे सखा को बढ़ी रिस से रिसवावती है।

कोई सखी कुंजवन में जायकै तहां अपने प्यारे को देखि कै विरह की आगि में जरती जो देह है ताको उत्कंठा स्त्री की नाय लपिटि कै बुझावती है।

कोई स्त्री फूलों के मालों को गुहती है अपने प्यारे के लिए चरित्र गावती है कोई सखी फूलों की सेज सजाती है जैसे वस्त्रों की सेज बनावने वाली—

दोहा

माला फूलों के कोई गुहति चरित पिय गाय।
कोई सेज बनावती जिमि वस्त्रन की नाय।।

कोई स्त्री अपने प्यारे को छन भरि छाती से नहीं छोड़ती है अपने प्राणन ते परम पियार रक्षा योग्य जैसे स्वाधीन भर्तिका अर्थात् अपने ही वश अपना स्वामी।

कोई स्त्री अपने पति की इच्छा करने वाली आनंद से जल्दी जाती भई कुंज ते और कुंज में घुसती भई जैसे आनन्द से अभिसारिका स्त्री (अभिसारिका उसका नाम जौनि एकांत में लाज छोड़ि कै) अपने पति के तीर जाती है। यथा हित्वा लज्जाभयेश्रिष्ठामवेनमदनेन या अभिसार- यतंकातं सा भवेदभिसारिकेति।

कोई मानिनी सखी का नर्मता करि कै बशि करि लेते भये भली यतन से प्रेम की हचूंटी बाणी से ऐसी बाणी बोलते भये।

हाव भाव के प्रभाव के जानने वाली कोई सखी राघव जी के आगे मुस्क्याती है।

सखियों के नाम

उज्ज्वला कांचनी चित्रा चित्ररेखा सुधामुखी हमी प्रशंसा कमला बिशदाक्षी सुदेशका।

चंद्रानना चंद्रकलामाधुर्यशालिनी वरा कर्पूरांकी वरारोहा ई सोरह १६ स्त्री रसोत्सुका है।

तौने कमल के पत्रों पर १६ सोरह सखी शोभती हैं मुनियों में सरिष्ट है अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु।

शोभना शुभदा शांता संतोपा सुखदा सती चारुस्मिता चारुरूपा चार्वंगी चारुलोचना।

हेमा क्षेमा क्षेमदात्री धात्री धीरा धराई सखी वहु विधि की सेवा में युक्त रात्रि में श्री मैथिली रघुनंदन जी को सेवती है।

क्षीरोद्भावा भद्ररूपा भद्रचारु भद्रदा भाववर्जिता विद्युल्लता पद्मनेत्रा पावनी हंसगामिनी।

रमणीया प्रेमदात्री कुंकुमांगी रसोत्सुका यहा यतनी बारह सखी कमल के बाहर दलों पर बसती हैं।

महार्हा मालवी माल्या कामदा काममोहिनी रति क्षिती नतिवती प्रेमदा कुशला कला।

लीला यतनी बारह सखी उपदलन में वसती हैं यई सब जनी श्री रामचन्द्र जी को सेवन करती हैं बड़े प्रेम में बूड़ती हैं आनन्द में युक्त श्री राघव जी को देखती हैं।

फिरि आठ दल के बीच में बहु विधि के सुहागों से भरी कुंजों में ठाढ़ी सखियां नित्य ही राघव जी की सेवा करने में युक्त दोहा।

फिरि बसुदल के बीच में बहुविधि साजि सुहाग।
कंचज में ठाढ़ी नितहि हरि सेवन मन लाग।।

पहिले वेष कुंज में नम्रता करिकै श्री सीताराम जी बैठते भये तहां बिलासिनी नाम सखी मैथिलो जी रघुनन्दन जी दूनौ जनेन को देखिकैं।

जल्दी वस्त्र कुंचुकी डुपट्टादि सीता जी को औ जामा दुशालादि राघव जी को औ गहन बुलाक कंठादिकों से और मालों करिकै भक्ति ते दूनौ जनों के अनूप रूप बनावती भई।

फिरि दूनौ सीताराम जी मालती कुंज को जाते भये जहां (मांगानदं) नाम सखी रहती है तेहि की सेवा के संतगते प्रेम करिकै सीताराम जी दूनो जने परम आनन्द को प्राप्त भये।

फिरि श्री राघव जी सीता जी के सहित ('केलि कुंज') के बीच में जाते भये जहां नित्य ही (वृन्दासखी) नित्यानन्द में बूड़ती है।

तहां आनन्द करिकै बिहरत हैं केलि के कुतूहल से काम केलि करिकै सीता जी राघव जी को प्रसन्न करती भई।

तब फिरि मन के रमावन वाला (सुखद) नामकुंज को देखि कै दूनौ जने परम आनन्द में प्राप्त भये जहां (नित्या) नाम सखी शोवती है।

फिरि हिंडोलक कुंज में वारम्बार घूमते हैं तहां (प्रेम प्रदर्शिनी) नाम सखी बसती है तौनि स्त्री श्री रघुनन्दन जी का मनोरथ पूरण करती भई।

सुन्दर डोलना कुंज में प्यारी सीता जी के सहित श्री राघव जी जाते भये जहां (वसंत-रंगिनी) नाम सखी परम आनन्द मे भरी बसती हैं।

वसन्त ऋतु में परम चित्र विचित्र फूलों करिकै लपेटित कोयल भवरों के झुंडों से प्रसन्न कामदेव के बढ़ावन वाला भोजन कुंज में मैथिली जी और सखियों करिकै सहित श्री राघव जी जाते भये तहां (सदानुमोदिनी) नाम सखी आनन्द ते भोजन छ रस के औ छप्पन ५६ प्रकार के भक्ष्य भोज्य चोख्य लेह्य तथा मालपुआ जलेबी लड्डू खाझा खुरमा खीरपिर कै भोजन भगे सेंवई मलाई पूरी बरा मुंगारै मिथौरी मिही रोटी घी से भीजी इत्यादि भोजन कटहर तोरई परवर इत्यादि तरकारी अदरख आम अंवरा इत्यादि अंचार किलहा गलका करौंदादि खटाई आम धनि-यांदिकों की चटनी इत्यादिकों के बनाय कै श्री सीतारामचन्द्र जी को तृप्त करती भई।

शयन करने वाला चारु नाम कुंज का भगवान राघव जी नर्म सेजों करिकै सहित देखिकै बड़े आनन्द को प्राप्त भये।

जहां साक्षाल्लक्ष्मी वाली मदनमंजरी नाम सखी स्थित ह्वै कै तहां सीता जी के सहित रामचन्द्र जी शयन करते भये तब शयन में स्थित राघव जी को देखिकै प्रेम करिकै जगावती भई।

अष्टदल के उपकोनों में वेली औ वृक्ष शोभित हैं माधवी चंपा मल्लिका पुन्नागचमेली।

लौंग लतिका अंवरा तुलसी परम चित्र बिचित्रै सब सुगन्धों से भरी सब फूलों से फूली है।

जिनके फूल बड़े मीठे सवाद वाले पाना अमृत ते मीठे तिनकी शरणागत में शोभित है जहां हंसने में आनिंदित। गांवती हैं नाचती हैं श्री सीता राम जी को देखती हैं हे अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु हृदय में धारण करहु। वीणावती सखी वीणा का हाथे में लीन्हे औ सुगंधिका स्त्री बंशी का हाथे में पकरे कविला सखी बिलास करिकै सहित औ शेष सखी सब शोभावों से भरी। सुख से

सातौ स्वरन भाव निषाद ऋषभ गांधार षर्ज मध्यम धैवत पंचम ए स्वरन को धारण करिकै सुख के देने वाली सती ('खंजनाक्षी')खंजन की चाल के समान चंचल आंखों वाली रसोंवा की मंजरी रूपी खंजरी का हाथ में लिये। गान कला गीतों की कला जानने वाली सखी हाथ में मीठे स्वर वाला मृदंग लिये सारंग लोचनी सखी बड़े आनंद करिकै सारंगी का बजावती है। सुखदामिनी नाम सखी छुवने के सुख दनेवाली सुख के मंडलों से जटित सब सखियां सब नवो रसों के जानने वाली श्री रघुनन्दन जी के राधिका (यह रूप कृदंती 'राध साध संसिद्धौ' धातु का है) सेवन में लगी। सरिष्ठ वार कमल की गुजरियों के दानों से जटित सखियां स्थित महाचित्र विचित्र मणियों से पवित्र मंदिर में चंद्रमा सूर्य अगिनि के करोरि तेज को ठगने वाले चिंतामणि के मन के मोहन करने वाले में ।। तहां मंत्रों करि कै मल से रहित पवित्र सिंहासन शोभित है सैकरन स्वर्णों से पूजनीय सुंदरे नरम केवल ठगने में प्राप्त होय कै गुरु की वाणी ते पार जाने में स्वगम्य रूपवाले में। सहित ओंकार सब बीजों सब मंत्रों से लपेटित जैसे मणियों के समूहों से युक्त ऐसे सिंहासन के बीच में श्री रघुनन्दन जी शोभित हैं। तेहि में पैठती भई कमल की पखुरियों के समान आंखों वाली लवी लंबी दूतों वाहें प्रसन्न मुखों वाली तपाये सोने के समान गहनों से जड़ी जौनी सखी के जान की जीवन श्री रघुनन्दन पियारे हैं। आपस में चित्रन के जानने वाले दूनौ जने आलिंगन करते भये हंसने की वाणी से हृदयों में स्नान करते हैं ब्रह्म का आनन्द और सब सुख कै आनंद देने वाले घर्षणा ते रहित ऐसे रासेश्वर श्री राघव जी को नमस्कार है।

> प्रभया रामचंद्रस्य सीतायाश्चप्रभावत:
> सदा प्रकाशतेत्यर्थस्थूलं परमपावनं
> यद्धयात्व निमिपार्धेनरसिका यांति तत्पदम्।

भावना अष्टयाम

अथवा

श्री सीताराम मानसी पूजा

श्री सीतारामशरण रामरसरंगमणि जी

[श्री सीतारामशरण रामरसरंग मणिजी श्री अयोध्यावासी ने श्री सीताराम रसिक जनों के सुखार्थ रचना किया उसी को श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी के स्नेही श्री दुर्गा प्रसाद जी संवत् १९६१ में चन्द्रप्रभा प्रेस (काशी) में छपवा कर श्री सीतारामानुरागियों के हेतु सुलभ किया।
गद्य में मंगला आरती से शयन तक की मानवी सेवा का वड़ा ही भव्य मनोहारी वर्णन।]

ध्यान

> राजत रत्न सिंहासन मध्य सियायुत श्यामल राम सुजाना।
> छवि सु लच्छन लाल लिए छबि जासु छपाकर कोटि समाना।।
> श्री भरतौ भरतानुज चौर चलावत दक्षिण वाम विधाना।
> मारुत मारुत लाल करें रसरंगमणी कर यों उर ध्याना।।

बैदेही सहितं सुर द्रुमतले हैमे महामण्डपे,
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं मुनीन्द्रैः परम,
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामम्भजे श्यामलम् ॥

तब श्री राम रस रंग बिहारी जू शयन करते भए।
बाम भाग श्री रसिक राज वल्लभा जी शयन करती भई।
श्री भक्ति भक्त दोनों दिव्य विग्रहों की चरण सेवा करने लगे।
तदुपरि श्री युगल के नयन पंकजों को निद्रा से मुद्रित देखि सहित
समाज श्री भक्तिपरानुरक्ति जू
श्री युगल कृपाल जू की शोभा मन में धरि मन्द पदों से
बाहिर निकसि के कपाट बन्द कर देती भई।
और सहित समाज शयनशाला के आवरण भवन में बिराज
कै झीने स्वर से बिहाग राग में श्री युगल यश गाने लगीं।
तदनन्तर शयन करि कै स्वप्नावस्था में श्री सीताराम चन्द्र जू
के समीप प्राप्त भई सेवानुरागी साधक भी श्री भक्ति
पद पंकजों को साष्टांग प्रणाम करि,
उनके नीचे दक्षिण में शयन करि स्वप्न में श्री सीतारामचन्द्र जू
के समीप प्राप्त भया और सुख सिंधु में मग्न भया।

परिशिष्ट

[क]

महावाणी

रस श्रृंगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहिं सोइ अधिकारी जग में।
कांचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन में।
यावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा।
नहीं अग्र अस सन्त के सर लायक जगमाहि रस।।

कृपानिवास श्री राम प्रिया की कृपा अगम सब सुगम हमारे।
नित्य निकुंज विहार करो रति रंग रंगी रहो लाड़िली गोरी।।
प्रीतम प्रान सुजान के संग दिये गलबांह बसो हिय मोरी।
श्री चन्द्रकलादि अली गुनआगरि नागरि रूप लखें तृन तोरी।
ईश मनाय अशीशें सबै कि बनी रहे नित्य किशोर किशोरी।।

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्यभूमि चमकति चहुं ओर।
चक्राकार रास मंडल रचि राग रागिनी के कल शोर।।
चन्द्रकला विमलादि रंगीली, वीणा मृदंग लिये कर जोर।
चारु शीला सुभगा हेमा लिए, मुरली मुचंग चिन्नरी जोर।।
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति, क्षेमा स्वरहिं भरत रसबोर।
मदन कला करताल बजावत, सारंगी नन्दा टंकोर।
पिय शिर सुभग सुकीट विराजै, चन्द्रिका सीता के शिर रोर।।
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत, पिय उर मोतिन माल उजोर।
कोटि कोटि रतिकाम विमोचन, नटवर वेष श्याम अरु गौर।।
रूप माधुरी कहि न परत हैं, अंग अंग छवि कै उठत हिलोर।
कर मे कर दोऊ मिलि धारे, नयनन शैन चलत दुहुं ओर।
कवहुं अधर रस पियत परस्पर, रस मतवारे दोउ चितचोर।।

प्यारी हाव 'पियाचित करषत, पिय के भाव प्यारी निज ओर।
दोउ रस सिन्धु मगन रस लम्पट, अग्रअली नहिं चाहत मोर।।

देखो सखि अति अनन्द रास रच्यो रामचन्द्र,
रजनी छवि छिटकि रही सरद चांदनी।।
बहु सखि मंडलाकार नृत्यगान स्वर संभार,
नृत्यत रघुनन्दन मिथिलेश नन्दनी।।
कंचन मणि लसत भूमि नृत्यत पद चपल घूमि।
नूपुर छननन छमक छमक छन्दनी।।
कमला विमलादि तान रागा अनुगादि गान।
करहिं राग रागिनी कला कलिन्दनी।।
चन्द्रकला वीणा मुचंग धुनि मृदंग मधुर।
अपर सखि सीतार तार तर तरंगनी।।
ताधिग-धिग ताधिग-धिग, ताधिन्ता ताधिन्ता।
धिकिट धिकिट धिधिकिट धिधिकट प्रबन्धनी।।
उघटत सगीत राग, ताल मूर्छानदि ग्राम।
हाव भाव पानि मुरनि नैन खंजनी।।
श्री रामचरण युत समाज मेरे हिय में विराज।
यह विहार नित अखण्ड रसिक मन्डनी।।

सरद पून विमल चन्द विमल मही अनन्द कन्द।
रामचन्द्र रास रच्यो देखन सघी धाई।।
सरयू पूलिन बिमल कूल फूले वहु रंग फूल।
कमल चम्प केतकी कदम्ब सुरभि छाई।।
बोलहिं सारो मयूर कोकिला मराल कीर।
गुंजहि अलि सकल राग रागिनी वनाई।।
किन्नरी अप्सरा गान मूर्छन स्वर ताल तान।
धरहिं भूमि तरुन लतन नीर गगन जाई।।
बाजहिं मृदंग जंग मारंगी तमूर।
चंग वीण बेणु आदिक स्वर ताल गति सुहाई।।
युग युग सखि विच विच एक मध्य रामनिरतत,
संगीत तांडवी मुगंध गति अनेक लाई।।
गावहिं षट राग राम रागिनी स्वर ताल ग्राम।
सब धरि सखि रूप राम रास हेतु आई।।

जानकी रघुनन्दन मन भावनि भये रैन।
ब्रह्म श्री रामचरण सर्व जीव परमानन्द पाई।।

आज सखी लखु रास मंडल में नृत्यत हैं रस रंग भरे।
बन अशोक सम भूमि खचित मणि रवि सम अमित प्रकाश करे।।
श्री रघुनन्दन जनक नन्दनी अभित मदन तबि अंग धरे।
क्रीट मुकुट चन्द्रिका मनोहर भूषन अंग अंग नगन जरे।।
कुंडल मकर हार मोतिन के वैजन्ती बनमाल गरे।
नासा मणि झूलत अधरन पर केसर चन्दन खौर करे।
मोतिन मांग भरी बरवेनी कुटिल अलक जनु भ्रमर खरे।।
मणि कंकन पहुंची कर चूरी बाजू वंद जराऊ जरे।
नील पीत पट लसत दुहुन तन श्याम गौर मिलि लगत हरे।।
किंकिन मुखर अरुण कर पल्लव पग नूपुर झनकार करे।
थेइ थेइ करत भरत स्वर अलिगन निरतत पिया संग अनन्द भरे।।
बजत मृदंग ढोलक सारंगी झांझ मजीरा वीन वरे।।
जगु जगु सखिन बीच रघुनन्दन करसों कर धर लसत खरे।
कर मंडल निरतत सखियन संग निरखि मदन बहु मूरछि परे।।
पूर रह्यो वन मंडल सोरस अचर सचर चर अचर करे।
सुर मुनि अगम सुगम रसिकन को रस माला यह ध्यान धरे।।

रसिक दोऊ नूतन रंग भरे।
बिपिन अशोक रास मंडल विच जनक लली रघुलाल हरे।।
अमित रूप धरि करि कछु चेटक जुग जुग तिय मधि श्याम अरे।
क्रीट मुकुट की लटकि चन्द्रिका झुकनि मदन पद दूर करे।।
मोतिन हार जुगल उर राजत कुन्द मालती माल गरे।
पग नूपुर मंजीर मधुर धुनि कंकन किंकिनि मुखर तरे।।
मुरज मजीरा ढोल सारंगी अरु मुरली के टेर करे।।
विविध ताल संगीत अलापत ततथेइ ततथेइ कहत खरे।।
कबहुं मधुर मुस्काय के दम्पति निरखति छबि भुज अंश धरे।।
कबहुं सुरति करि ब्याह समय की फिरति भांवरी रसिक वरे।
यह रस रास महा सुख सागर द्वादश योजन लो सवरे।।
रस माला भरि पूरि रही बन जग कोइ बुन्द प्रकाश करे।।

आज जनक दुलारी रस रंगन भरी।
चम्पा के बरन वारी वसन सुरंग वारी बदन मयंक वारी रूप अगरी॥
अरुण अधर वारी बोलनि मधुर वारी तिरछी चितवनि सर मारति खरी।
वेसर सुपास वारी मुक्त मृनाल वारी उरज उतंग वारी मदन जरी॥
मोतिन के हार वारी मध्य भाग छीन वारी।
जघन गंभीर वारी भावन भरी।
गमन मराल वारी नूपुर झनकार वारी रसमाला उर वारी मोह्यो मनरी॥

सांवरे सलोने जू झमकि झुकि आवेरे।
शरद की रैन पिया अधिक सोहावेरे॥
मंद मुसुकाये प्यारी जू के गलबांह दिये उंचे स्वर तान ले मधुर स्वर गावरे॥
रास मंडल अली संग लली करधरि छम छम छननन नूपुर बजाव रे॥
कटि लचकनि ग्रीव मुरनि धुरनि नैन कुंडल अलक मनि क्रीट झलकावरे।
नवल बिहारी प्रिया लली संग रसवम अली संग लता कुंज मन ललचाव रे॥

प्यारी जू के चंद्रिका में चन्दहुं लजायो रे।
नीलतम घन उड़गन चहुं दिशि सोहै जुग सुत नागिनी अमिय रस पायो रे।
भौंहन की टेढ़ी तिरछी नैन की सान लखि वेसरि हलनहुं में चितहुं चोरायो रे।
उरज उतंशहुं, की कंचुकी की चमकनि हारहूं हमेलन की अलनि रमायो रे।
नवल बिहारी पिया स्वामिनी की निवी लखि मदन के रसवस कसमस छायो रे॥

कर धरि पिया नटे पिया मुख हेरि हेरि।
चहुं दिशि अलिगन छमछम छमकत मंद मुसुकनि में मदन रस भेरि भेरि॥
फहरत बसन सुगंधन छहरत मोती माल टुटत सखिन के टेरि टेरि॥
उरज गहत कर अधर चूमत जब पूछत रसीली बात अली मुख फेरि फेरि।
नवल बिहारी प्रिया घूंघट मिस निहुकत पिया रस लहत बांधत वन्द वेरि वेरि॥

सारद विधु चय विजित वरानन विधु कर निकर सुहासम्।
मदन चाप जित भृकुटि कुटिल तिल सुमन मुक्त धृत नाशम्॥
चारु चिवुक दर ग्रीव मनोहर स्वधर विम्ब प्रतिभासम्।
मुकुर कपोल चिकुर चय चुम्बित नयन सरोज विलासम्॥
जनक सुता कर धृत परि नृत्यति ललित कंठ कृत गानम्।
पद नूपुर रव रंजित दश दिशिउर्वा रत ताल प्रमाणम्॥
पश्य मुदा रघुनन्दन मतिशय चित्त चमत्कृत वेषम्।

जनक सुता रंजन रतिपति मद गंजन मंगमशेषम्।।
'श्री रसिक' भणित् सीतापति गीतं ललित पदावलि नीतम्।
सज्जन श्रुति सुख प्रद मिद मद्भुत मंचित ताल विनीतम्।।

युगल छवि देखे नयन सिरात।
जन सुषमा सर मध्य लसत दोऊ नील पीत जल जात।।
वदन किधौं छवि नगर वसत जहं सम्मति विविध लखात।
चोरि लेत चित को जब मृदु हंसि करत परस्पर बात।।
कबहुं बैठि चौसर खेलत दोउ हार जीत पक्षपात।
रूप भरी गुण भरी चतुराई संग सखिन की व्रात।।
विहरत कनक भवन गृह आंगन कबहुं अटन चढ़ि जात।
देखत फिरत रसिक अरी तहं तहं जहं जहं प्रिय दोउ जात।।

सजीवन जीवन युगल किशोर।
रैन ऐन मद नैन चैन चय चखत चतुर चितचोर।।
हंसत हंसावत होश जोश विन वांस लेत रस वोर।
सुधि बुधि विशद विहाय छाय छवि होय रहे चन्द चकोर।।
आस पास सहचरी सोहागिनि सिखवहिं मदन मरोर।
श्री युगल अनन्य अली रसिया दोउ उरझि रहे निशि भोर।।

•दृगन भरि छवि लखु सीय रघुवीर।
कनक भवन राजत प्रिया प्रियतम श्यामल गौर शरीर।।
अंग अंग नव रंग रंगे वर, लसत सुरंगी चीर।
फूल छड़ी प्यारी कर राजत पिय कर शुचि धनुतीर।।
नजर बाग अनुराग लाग फल नटत मोर मनकीर।
नर देही सुमिरन वैदेही हेतु वदन मुनि धीर।।
हृदय पत्र लेखनी प्रीति करु तत्व मसी मुदनीर।
श्री जानकी वर दम्पती छवि सम्पति लिखले सखी तसवीर।।

सीया जू के दृग छवि नित नवीन।
अंजन मिस रंजन मन पिय लखि श्याम सु डेरा कीन।।
गौर अंग अरुणाम्बर झीनहु कहि न सकत अति झीन।
छिन छिन छटा घटा रस वरसत चित्त चातक रसलीन।।
नित संयोग वियोग न सपनेहुं निज मुद खुद लैलीन।
कृपा साध्य गुरु जुगल विहारिनि जानहिं रसिक प्रवीन।।

प्रिया जू के नेह भरे दोउ नैन।
अंजन युत रंजन मनरंजन अलिगन के सुख दैन।।
खंजन मोर मीन पंकज दल दुरि बन कोउ जल सैन।
रती कहै मैं अहौं रती भरि मैन कहै मम मैन।।
उमा रमा ब्रह्मानि आदि सब तौली सुमति तु लैन।
श्री मिथिलेश कुमारि प्यारि पिय उपमा तो कहु है न।।
जेहिं दिशि हंसि दरसत सरसत मुद बरनत बरनि व नैन।
जुगल विहारिनि जानन प्रीतम जे निरखत दिन रैन।।

किशोरी जू के अनुपम रसमय बैन।
सुधा सुधाकर शुक पिक हूं नहिं कोकिल हूं सम हैन।।
मन्द हंसनि रद लसनि अधर छवि फंसनि प्रिया प्रद चैन।
अंग अंग छवि फवि कवि दवि मति सारद बरनि सकैन।।
करत विहार अपार पिया संग कनक भवन सुख दैन।
श्री जुगल विहारिनि भरि उमंग सखि सेवति हैं दिन रैन।।

मद छाकी छबीली गहि प्रीतम को रग वोरे री।
मंद विहंसि मुख मोरि फेरि दृग झकझोरनि चित चोरे री।।
छीनि लई करते पिचकारी मुख भांड़त बर जोरे री।
रसिक अली राघव कर जोरत गहि रहिं अंक न छोरे री।।

रघुनन्दन खेलत होरी।
विपुल सखिन जुत जनक नन्दिनी बनेउ सखा हरि ओर।
फाग मची बहु बाजन गानन होत शोर चहुं ओर।।
लसैं सब सुन्दर जोरी।
कुम कुम की चमची सरयू तट लाल भई जल धार।
वर्षहिं रंग देवतिय नाचहिं काहु पट न संभार।।
अंग सब रंगन बोरी।
राम सखन ललकारि अग्र बढ़ेउ एन सखियन करि जोर।
भरत शत्रुहन लखन लाल को धरि लाई निज ओर।।
करहिं मन भावत सोरी।
भूषन बसन उतारि लीन्ह सब निज भूषन पहिराई।
श्री राम चरन सखि छोड़ दीन्ह तब सीय की जीत कहाई।।
भई जय जनक किशोरी।।

परि मेरो श्याम सनेही मेरे वस अनुराग री।
अधरामृत दै गल भुज मेलों खेलोंगी संग फाग री ॥
कुचनि गुलाल लाल पर डारों उरझो मनमथ जाग री ॥
नैनन की सैनन से छिरकों प्रकट करों सब लाग री ॥
पिय के शीश ओढ़ाउव चून्दरि मैं जू धरों शीर पाग री।
लाल नचावों आपने आगे मैं गावों हंसि राग री ॥
जोइ जोइ कह्यो कियो सिय प्यारी भारी भरी है सुहाग री ॥
श्री कृपानिवास महा सुख निरखत सखियां सराहत भाग री ॥

श्याम मुख रंग की बून्द ढरी।
मानहुं काम कसौटी उपर कंचन की कस परी ॥
अलकैं चुवै मनहुं घन माला रस अनुराग भरी।
श्री कृपानिवास अलीगण अंखिया सीयवर रूप अरी ॥

श्याम मुख लाल गुलाल लगी।
नील कमल जनु प्रकट प्रात रवि अरुण किरन जगमगी ॥
अलकैंघूमि आई मुख उपर केसर रंग रंगी।
षट् पद वधू आय अम्बुज लौं अरुण पराग पगी।
रूप अनूप विलोकत आली नेह सनेह सकी।
दम्पति अली रूप निधि सीते पीय अति रूप पगी ॥

सइयां जाने न पैहौ डारो न मो पर रंग।
श्री मिथिलेश लली की अली सब आनि जुरी एक संग ॥
सुनि सकुचाय रमाय दृगन दृग बोलत वचन उमंग।
काह करेगी विपुल नारि लगि जावो हमारे अंग ॥
कंठ लगाय भिजाय भिजे रंग बढ्यो परस्पर जंग।
श्री युगल प्रिया यह फाग अनोखी लखि रति पति मद भंग ॥

निसि दिन तरसे नयन मां री आली श्याम बिना।
जब सुधि आवत श्याम सुन्दर की हिय के मरोरे मदन मां री ॥
श्री दशरथ नन्दन प्राण पती को बिन देखे न चयन मां री।
श्री युगल अनन्य अली विरहिनियां चाहत अब ही मिलन मां री ॥

जेहि दिन पिय से मिलन वां हो राम सोइ सुभ दिनवां ॥
मिलन उछाह अथाह माह सुख चाह बढ़त छिन छिनवां हो रामा ॥

सरल सुभाव जाउ वलिहारी विलमायो प्रभु किनवां हो रामा।
पलक कलप सम बीतत मीत विन व्यर्थ अहै जग जिनवां हो रामा।।
सरन भरोस एक सतगुरु प्रद हों सब साधन निवां हो रामा।
जुगल विहारिनि बिरह मरज हरि देहु दरस सुख छिनवां हो रामा।।

बैठे युगल बिहारी री सजनी दिये गलवाहीं।
पान बिरा पिय प्यारी मुख पिय देत पिया मुख प्यारी री।।
पान खात बतरात परस्पर हंसि हंसि अलक सवारी री।।
कबहुं परस्पर मुख चूमत हैं पीवत अधर सुधारी री।
कबहुं लटक पिय प्यारी ऊपर पिय उपर सिय प्यारी री।।
कबहुं बलैया लेत परस्पर राई लोन उतारी री।
यह रस मोद निरखि सुख अह निसि होत पलक नहिं न्यारी री।।

फूल बंगला

बंगला फूल मध्य दोउ बैठे सोहत श्यामा श्याम।
अरुन बसन प्यारी तन राजत प्रीतम पीत ललाम।।
जाही जूही ललित चमेली सेवति वैला दाम।
झम झम परत गुलाब फुहारे घनन घनन घनश्याम।
निरखि प्रिया अनुपम छवि प्रीतम नवल रूप अभिराम।।
कहत बनत नहिं कहो कहा सखि ये कामहु के काम।
प्रीतम देखि प्रिया सुन्दरता कहत मनहिं मन राम।।
हम तो बिके सदा इनके कर विना मोल के दाम।
रहो दोउ आनन्द परस्पर श्री जानकि वर सुखधाम।।

युगल ललन नव छवि शृंगारो।
फूल सेज चांदनी सुफूलन फूल पाग सिर धारे।
जामा फूल फूल ही पटुका फूल पेंच गलहारे।।
फूल कंचुकी चूनरि फूलन फूल मांग झलकारे।
फूल माल दोउ गरे विराजत कोटि चन्द्र उजियारे।
मानो फूल सिन्धु में खेलत रति मनोज द्वै तारे।।
फूल शृंगार देखि प्रिय प्रीतम सखियां प्रान बिसारे।
श्री जानकी वर की भूरि सजीवनि वाह कहत वलिहारे।।

रथ चढ़ि चले सरयू तीर।
रसिकनी मिथिलेश नन्दिनी रसिक श्री रघुवीर॥
प्रथम मास अषाढ़ पावस बहत त्रिविध समीर।
उमड़ि घुमड़ि घमंड घन धुनि व्यापि रही गंभीर॥
श्याम गौर सुरंग अंग सुपहिरि कुसुमी चीर।
जड़े भूषण नगन के छवि देखु मन करि थीर॥
हरित भूमि विभाग कंचन जटित मनि गन हीर।
हरित द्रुम सघनावली खग मधुर बोलत कीर॥
सहचरी गन अमित चहुं निशि गान तान सुधीर।
युगल प्रिया सु उतरि रथ ते पूजि मानस नीर॥

उमड़ि घुमड़ि आई वादर कारी।
दशरथ नंदन जनक लली जू बैठे सखिन संग महल अटारी॥
कुसुमी बसन युगल तन राजत जगमगात भूषण उजियारी।
अलकैं बिथुरि रहीं मुख ऊपर मुकुट चंद्रिका लटक सवारी॥
चंद्रावती मृदंग टंकोरति चंद्रा तानपूर करतारी।
चंद्रकला जू बीन बजावति गावत उमंग भरे पिय प्यारी॥
अधिक प्रवाह बढ़चो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगल प्रिया रसिकन के संपति अगम निरखि रति पति बलिहारी॥

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर॥
राजत छवि मै रतन हिंडोरा तापर बोलत कीर।
गावहिं छवि अवलोकि प्रेम भरि चहुंदिशि सखिन की भीर॥
वाजत बीन मृदंग उपंग मृदंग ताल अति धीर।
जुगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गंभीर॥

किशोरी संग झूलत नवल किशोर।
दशरथ नन्दन जनक नन्दिनी सुन्दर श्यामल गौर॥
सरयू तीर सुखद प्रमोद वन विश्व भूमि शिरमौर।
ता मधि मणिमय रचित हिंडोरा लसत हेम मय डोर॥
चन्द्रकला सखि हरषि झुलावति विमला ढोरति चौर।
जुगल प्रिया यह मधुर केलि लखि सुधि बुधि सब भई भोर॥

सद्गुरु वचन महारस मानौ परौ न भ्रम की फांसी।
सेज विहार रास रस लूटौ त्यागि वियोग उदासी।।
युगल विहार भावना करिहौ भटकौं न तीरथ काशी।
और ठौर उझकौ नहिं नयनन राम सिया छबि प्यासी।।
गुरु प्रसाद भई रसिक छाप अव नाहिन वटु सन्यासी।
भाव कुभाव धरे कोइ मन में कोइ करे उपहासी।।
लोक लाज कुल मान बड़ाई आश त्रास सब नाशी।
कृपानिवास कृपा करी सीय जू करिहौ युगल खवासी।।

करि सोरहो शृंगार पिया घर जाना ही होगा।
रति बिछिया प्रेमा सुमहावर चमकत प्रभा अपार।।
धृत सनेह तदीय सु नूपुर मधु मदीय मदकार।
उरु पर साटी सोइ धारो कर मनसिज उदगार।।
मान किंकिनी कटि में सोहै प्रणय उरस्थल हार।
कुच पर राग अनुराग कंठमणि महाभाव नथ प्यार।
रुढ़ सिन्दूर अधिरुढ़ सु कज्जल सौभागिनी शुभकार।।
मोहन मोदन कर्णफूल धरु जो सोहाग विस्तार।
शीश फूल मादन मनमथ सम शीश उपर सुठिधार।
यामें नित्य विलास सहस्रधा केलि अपरम्पार।
रति स्थायी की यह सीमा प्रबल अमित रसदार।।
यहि विधि करि शृंगार मनोहर प्रीतम मन बसकार।।
व्यक्त यौवना तूं अति सुन्दर गर्वीली गतिधार।।
रमकि झमकि के पिय संग मिलि के देहिं सुरति सुखसार।।
तव तों सौभागिनी तू पिय के ह्वै जैहो गलेहार।।
तू वे वे तूं ऐक्य होय के फिर नहिं द्वैत प्रचार।
यथा अम्बु निधि मिलि के सरिता द्वै नहिं एकाकार।।
शिव शुक सनक शेष श्रुति हनुमत औ मुनि रसिक उदार।
यह उपासना रस समुद्र में मज्जत सांझ सकार।।
बिनु निर्हेतुकी कृपा सीय की यामें नहिं अधिकार।
यह रसमोद बिना रस वेत्ता जानत नाहिं गंवार।।

अनुक्रमणिका

ग

घ

च

ज

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

ह

क्ष

ज्ञ